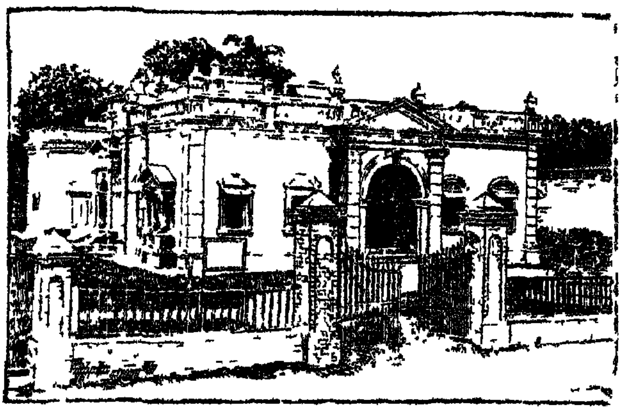
नागरीप्रचारिणी पत्रिका

अर्थात्

प्राचीन शोधसंबंधी त्रैमासिक पत्रिका

[नवीन संस्करण

भाग २—अंक



संपादक

रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा

और

चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी बी० ए०

—:*:—

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

वैशाख, संवत् १९७८] [मूल्य प्रति संख्या—एक रुपया

लेख-सूची ।

प्रकाशित होने के लिये स्वीकृत लेख ।

[१] अशोक की धर्मलिपियाँ ।

[२] महर्षि च्यवन का रामायण ।

[३] नंदिवर्धन ।

[४] पुरानी हिंदी (२) ।

[५] प्राचीन जैन हिंदी साहित्य ।

[६] विविध विषय ।

[७] राजपुताने के भिन्न भिन्न विभागों के प्राचीन नाम ।

[८] राजाओं की नीयत से बरकत ।

[९] बूंदी का सुलहनामा ।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

[नवीन संस्करण]

दूसरा भाग-संवत् १९७८

१—निवेदन।

इस संख्या से नागरीप्रचारिणी पत्रिका के नये संदर्भ का दूसरा वर्ष आरंभ होता है। संपादकों ने अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार पत्रिका की, पाठकों की तथा हिंदी की जो कुछ सेवा गत वर्ष में की है वह विवेकी पाठकों के सामने है। पत्रिका को समय पर प्रकाशित करने का निरंतर उद्योग करते रहने पर भी हम इसमें कृतकार्य न हुए, विशेषतः प्रेस की लंबी हड़ताल से पत्रिका इतनी अधिक पिछड़ गई कि इस विषय में कुछ निवेदन ही नहीं किया जाता। यद्यपि ऐसे विषय की सामयिक पत्रिकाएँ साप्ताहिक या मासिक पत्रों की तरह नियत समय पर ही निकल जायँ यह संभव नहीं, तो भी इस वर्ष इस शिथिलता को यथाशक्ति दूर करने का प्रयत्न किया जायगा।

जैसे संपादक यह जानते हैं कि पत्रिका में क्या क्या विशेषताएँ हैं, उससे अधिक वे यह जानते हैं कि पत्रिका में क्या क्या त्रुटियाँ रही हैं। उनके निराकरण का उद्योग वे तो यथाबुद्धि करेंगे किंतु हिंदी तथा पुरातत्व के प्रेमी पाठक भी इस विषय में कृपा करके उनका हाथ बटावें। पत्रिका को और कई रूप दिए जा सकते थे।

अंगरेज़ी में भारतवर्षीय प्राचीन शोध पर इतने लेख और इतनी पुस्तकें छप चुकी हैं कि उनका अनुवाद ही छाप कर पत्रिका पचासों वर्ष तक अपना कलेवर भर सकती थी, दूसरों की खोज को अपनी कह कर मिथ्या कीर्ति को अपना सकती थी । ऐसा करने से न पत्रिका का गौरव होता, न पाठकों का ज्ञान-विस्तार । अंगरेज़ी तथा अन्य भाषाओं के पत्रों में जो पुराने शोध के लेख छपते हैं उनकी सूची देकर, हर एक पर पंक्ति दो पंक्ति में अपना मत देकर, सब के समालोचक बनने का दुःसाहस भी हमसे न किया जा सका । जहां तक हो सका वैसे ही लेख लिखे और छापे गए हैं जिनमें कोई नवीनता हो, जिनसे पाठकों की ज्ञान-वृद्धि हो, जिनसे इतिहास के किसी भाग पर नया प्रकाश पड़े तथा जिनमें लेखकों का जहां तक संभव हो कुछ अपना परिश्रम हो । यह संभव है कि एक ही प्रांत या एक ही विषय पर अधिक लेख छपे हों, किंतु इस प्रादेशिकता की त्रुटि को विचारते समय कृपा कर के यह ध्यान में रखना चाहिए कि संपादकों और लेखकों का अभ्यास और श्रम जिस विभाग या प्रांत के विषय में अधिक हो उसीपर वे अधिक और अच्छा लिख सकते हैं । पुरातत्व के विषय में रुचि रखनेवाले सज्जनों की संख्या थोड़ी है । कुछ लोग तो यथाश्रुतग्राही हैं, जितनी खोज हुई है उसीसे संतुष्ट हैं । कुछ लोग खोज की खुजलाहट को नास्तिकता समझते हैं और पुरानी दंत-कथाओं से आगे बढ़ नहीं सकते । खोजियों में जो हिंदी जानते हैं उनकी संख्या और भी थोड़ी है । जो अंगरेज़ी का मोह छोड़ कर हिंदी में कुछ लिखना पढ़ना चाहते हैं उनकी संख्या उससे भी थोड़ी है । जो संपादकों की प्रार्थना पर लेखों से पत्रिका को भूषित करने की कृपा करते हैं उनकी संख्या और भी थोड़ी है । इसलिये प्रादेशिकता के दोष को मिटाने का उपाय कृपालु हिंदी-प्रेमियों के ही हाथ में है ।

इस वर्ष इस बात का अधिक यत्न किया जायगा कि हिंदी भाषा से संबंध रखनेवाले विषयों पर अधिक लेख प्रकाशित हों ।

पुरानी हिंदी के विषय में जो लेखमाला इस अंक से आरंभ की जाती है उसमें कई नई बातें प्रकाशित होंगी जो आशा है कि पाठकों को रुचिकर होंगी।

इतना ही निवेदन और हिंदी प्रेमी पाठकों की उदार कृपा के अवलंब का आवाहन कर पत्रिका के नवीन संदर्भ का द्वितीय वर्ष आरंभ किया जाता है।

* *
*

डाकृर सर जार्ज ग्रियर्सन ने रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयर्लैंड के जरनल की अप्रैल सन् १९२१ ई० की संख्या में पत्रिका के नए संदर्भ की बहुत प्रशंसापूर्ण समालोचना की है। इसके लिये हम सोसाइटी तथा डाकृर महोदय के बहुत ही कृतज्ञ हैं। इस प्रतिष्ठित पत्र में हिंदी तथा पुरातत्व के ऐसे विद्वान की लेखिनी से प्रशंसा पाकर हम लोग बहुत उत्साहित हुए हैं, 'यं प्रशंसन्ति पण्डिताः'। हमारी यही कामना है कि पत्रिका आगे के लेखों से ऐसी प्रशंसा के योग्य ही सिद्ध हो। सर जार्ज की समालोचना का अनुवाद इसी अंक में अन्यत्र छापा गया है।

* *
*

२—पुरानी हिंदी-(१)।

[लेखक—पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बी० ए०, अजमेर ।]

हिंदुस्तान का पुराने से पुराना साहित्य जिस भाषा में मिलता है उसे संस्कृत कहते हैं, परंतु, जैसा कि उसका नाम ही दिखाता है, वह आर्यों की मूल भाषा नहीं है। वह मंजी, छँटी, सुधरी भाषा है। कितने हज़ार वर्ष के उपयोग से उसका यह रूप बना, किस 'कृत' से वह 'संस्कृत' हुई, यह जानने का कोई साधन नहीं बच रहा है। वह मानो गंगा की नहर है, नरौने के बाँध से उसमें सारा जल खैंच लिया गया है, उसके किनारे सम हैं, किनारों पर हरियाली और वृक्ष हैं, प्रवाह नियमित है। किन टेढ़े मेढ़े किनारों वाली, छोटी बड़ी, पथरीली रेतीली नदियों का पानी मोड़कर यह अच्छोद नहर बनाई गई और उस समय के सनातन-भाषा-प्रेमियों ने पुरानी नदियों का प्रवाह 'अविच्छिन्न' रखने के लिये कैसा कुछ आंदोलन मचाया या नहीं मचाया, यह हम जान नहीं सकते। सदा इस **संस्कृत** नहर को देखते देखते हम **असंस्कृत** या स्वाभाविक, प्राकृतिक नदियों को भूल गए। और फिर जब नहर का पानी आगे स्वच्छंद होकर समतल और सूत से नपे हुए किनारों को छोड़ कर जल-स्वभाव से कहीं टेढ़ा, कहीं सीधा, कहीं गँदला, कहीं निखरा, कहीं पथरीली कहीं रेतीली भूमि पर, और कहीं पुराने सूखे मार्गों पर प्राकृतिक रीति से बहने लगा तब हम यह कहने लगे कि नहर से नदी बनी है, नहर प्रकृति है और नदी विकृति,—[हेमचंद्र ने अपने प्राकृत व्याकरण का आरंभ ही यों किया है कि संस्कृत प्रकृति है, उससे आया इस लिये प्राकृत कहलाया] यह नहीं कि नदी अब सुधारकों के पंजे से छूट कर फिर सनातन मार्ग पर आई है।

इस रूपक को बहुत बढ़ा सकते हैं। संभव है कि हमें इसका फिर भी काम पड़े। वेद या छंदस् की भाषा का जितना सात्म्य पुरानी प्राकृत से है उतना संस्कृत से नहीं। संस्कृत मे छाना हुआ पानी ही लिया गया है। प्राकृतिक प्रवाह का मार्ग-क्रम यह है—

१—मूल भाषा, २—छंदस् की भाषा, { ३—प्राकृत—५—अपभ्रंश
४—संस्कृत }

संस्कृत अजर अमर तो हो गई किंतु उसका वंश नहीं चला, वह कलमी पेड़ था। हाँ, उसकी संपत्ति से प्राकृत और अपभ्रंश और पीछे हिंदी आदि भाषाएँ पुष्ट होती गईं और उसने भी समय समय पर इनकी भेंट स्वीकार की।

वैदिक (छंदस् की) भाषा का प्रवाह प्राकृत में बहता गया और संस्कृत में बँध गया। इसके कई उदाहरण हैं—(१) वेद में देवाः और देवासः दोनों हैं, संस्कृत में केवल 'देवाः' रह गया और प्राकृत आदि में 'आसस्' (दुहरे 'जस्') का वंश 'आओ' आदि में चला, (२) देवैः की जगह देवेभिः (अधरेहिं) कहने की स्वतंत्रता प्राकृत को रिक्थक्रम (विरासत) मे मिली, संस्कृत को नहीं, (३) संस्कृत में तो अधिकरण का 'स्मिन' सर्वनाम में ही बँध गया, किंतु प्राकृत में 'म्मि,म्हि' होता हुआ हिंदी में 'में' तक पहुँचा, (४) वैदिक भाषा में षष्ठी या चतुर्थी के यथेच्छ प्रयोग की स्वतंत्रता थी वह प्राकृत में आकर चतुर्थी विभक्ति को ही उड़ा गई, किंतु संस्कृत में दोनों, पानी उतर जाने पर चटानों पर चिपटी हुई काई की तरह, जहाँ की तहाँ रह गईं, (५) वैदिक भाषा का 'व्यत्यय' और 'बाहुलक' प्राकृत में जीवित रहा और परिणाम यह हुआ कि अपभ्रंश में एक विभक्ति 'ह' 'हँ' ही, बहुत से कारकों का काम देने लगी, संस्कृत की तरह लकीर ही नहीं पिटती गई, (६) संस्कृत में पूर्वकालिक का एक 'त्वा' ही रह गया और 'य' भिंच गया, इधर 'त्वान' और 'त्वाय' और 'य' स्वतंत्रता से आगे बढ़ आए (देखो, आगे)। (७) क्रियार्थी क्रिया (Infinitive of Purpose) के कई रूपों में से (जो धातुज शब्दों के

द्वितीया, षष्ठी या चतुर्थी के रूप हैं) संस्कृत के हिस्से में 'तुम्' ही आया और इधर कई, (८) कृ धातु का अनुप्रयोग संस्कृत में केवल कुछ लंबे धातुओं के परोक्ष भूत में रहा, छंदस् की भाषा में और जगह भी था, किंतु अनुप्रयोग का सिद्धांत अपभ्रंश और हिंदी तक पहुँचा। यह विषय बहुत ही बढ़ा कर उदाहरणों के साथ लिखा जाना चाहिए, इस समय केवल प्रसंग से इसका उल्लेख ही कर दिया गया है।

अस्तु। अकृत्रिम भाषाप्रवाह में (१) छंदस की भाषा, (२) अशोक की धर्मलिपियों की भाषा, (३) बौद्ध ग्रंथों की पाली, (४) जैन सूत्रों की मागधी, (५) ललितविस्तर की गाथा या गड़बड़ संस्कृत और (६) खरोष्ठी और प्राकृत शिलालेखों और सिक्कों की अनिर्दिष्ट प्राकृत—ये ही पुराने नमूने हैं। जैन सूत्रों की भाषा मागधी या अर्ध-मागधी कही गई है। उसे आर्ष प्राकृत भी कहते हैं। पीछे से प्राकृत वैयाकरणों ने मागधी, अर्धमागधी, पैशाची, शौरसेनी, महाराष्ट्री आदि देशभेद के अनुसार प्राकृत भाषाओं की छांट की, किंतु मागधीवाले कहते हैं कि मागधी ही मूल भाषा है जिसे प्रथम कल्प के मनुष्य, देव और ब्राह्मण बोलते थे[1]। जिन पुराने नमूनों का हम उल्लेख कर चुके हैं वे देश-भेद के अनुसार इस नामकरण में किसी एक में ही अंत-भूत नहीं हो सकते। बौद्ध भाषा संस्कृत पर अधिक सहारा लिए हुए है, सिक्कों तथा लेखों की भाषा भी वैसी है। शुद्ध प्राकृत के नमूने जैन सूत्रों में मिलते हैं। यहाँ दो बातें और देख लेनी चाहिएँ। एक तो जिस किसीने प्राकृत का व्याकरण बनाया, उसने प्राकृत को भाषा समझ कर व्याकरण नहीं लिखा। ऐसी साधारण बातों को छोड़कर

---

१ हेमचंद्र ने 'जिणिन्दाण वाणी' को देशीनाममाला के आरंभ में 'असेसभासपरिणामिणी' कहकर वंदना करते हुए क्या अच्छा अवतरण दिया है—

देवा दैवीं नरा नारीं शबराश्चापि शाबरीम्।
तिर्यञ्चोऽपि हि तैरश्चीं मेनिरे भगवद्गिरम्॥

कि प्राकृत में द्विवचन और चतुर्थी विभक्ति नहीं है, सारे प्राकृत व्याकरण केवल संस्कृत शब्दों के उच्चारण में क्या क्या परिवर्तन होते हैं इनकी परिसंख्या-सूची मात्र हैं । दूसरी यह कि संस्कृत नाटकों की प्राकृत को शुद्ध प्राकृत का नमूना नहीं मानना चाहिए । वह पंडिताऊ या नकली या गढ़ी हुई प्राकृत है, जो संस्कृत में मसविदा बनाकर प्राकृत व्याकरण के नियमों से, त की जगह य और ख की जगह ख, रखकर, साँचे पर जमाकर, गढ़ी गई है । वह संस्कृत मुहाविरे का नियमानुसार किया हुआ रूपांतर है, प्राकृत भाषा नहीं । हां, भास के नाटकों की प्राकृत शुद्ध मागधी है । पुराने काल की प्राकृत रचना, देशभेद के नियत हो जाने पर, या तो मागधी में हुई या महाराष्ट्री प्राकृत में; शौरसेनी पैशाची आदि केवल भाषा में विरल देशभेद मात्र रह गई, जैसा कि प्राकृत व्याकरणों में उनपर कितना ध्यान दिया गया है इससे स्पष्ट है । मागधी अर्धमागधी तो आर्ष प्राकृत रहकर जैन सूत्रों में ही बंद हो गई, वह भी एक तरह की छंदस् की भाषा बन गई, प्राकृत व्याकरणों ने महाराष्ट्री का पूरी तरह विवेचन कर उसीको आधार मानकर, शौरसेनी आदि के अंतर को उसीके अपवादों की तरह लिखा है । या यों कह दो कि देशभेद से कई प्राकृत होने पर भी प्राकृत-साहित्य की प्राकृत—एक ही थी । जो पद पहले मागधी का था वह महाराष्ट्री को मिला । वह परम प्राकृत और सूक्ति-रत्नों का सागर कहलाई । राजाओं ने उस की क़दर की । हाल (सातवाहन) ने उसके कवियों की चुनी हुई रचना की सतसई बनाई, प्रवरसेन ने सेतुबंध से अपनी कीर्ति उसके द्वारा सागर के पार पहुँचाई, वाक्पति ने उसीमें गौड़वध किया, किंतु यह पंडिताऊ प्राकृत हुई, व्यवहार की नहीं । जैनों ने धर्मभाषा मान कर उसका स्वतंत्र अनुशीलन किया और मागधी की तरह महाराष्ट्री भी जैन रचनाओं में ही शुद्ध मिलती है । और छंदों के होने पर भी जैसे संस्कृत का 'श्लोक' अनुष्टुभ् छंदों का राजा है, वैसे प्राकृत की रानी 'गाथा' है, लंबे छंद प्राकृत में आए कि

संस्कृत की परछाईं स्पष्ट देख पड़ी। प्राकृत कविता का आसन ऊँचा हुआ। यह कहा गया कि देशी शब्दों से भरी प्राकृत कविता के सामने संस्कृत को कौन सुनता है[1] और राजशेखर ने, जिसकी प्राकृत उसकी संस्कृत के समान ही स्वतंत्र और उद्भट है, प्राकृत को मीठी और संस्कृत को कठोर कह डाला[2]।

शौरसेनी और पैशाची (भूतभाषा)

इन प्राकृतों के भेदों[3] में से हमें शौरसेनी और पैशाची का देशनिर्णय करना है। यद्यपि ये दोनों भाषाएँ मागधी और महाराष्ट्री से दब गई थीं और इनका विवेचन व्याकरणों में गौण या अपवाद-रूप से ही किया गया है तथापि हिंदी से इनका बड़ा संबंध है। शौरसेनी तो मथुरा व्रजमंडल आदि की भाषा है। इसमें कोई बड़ा स्वतंत्र ग्रंथ नहीं मिलता, किंतु इनका वही क्षेत्र है जो व्रजभाषा, खड़ी बोली और रेखते की प्रकृत भूमि है। पैशाची का दूसरा नाम भूतभाषा है। यह गुणाढ्य की अद्‌भुतार्था बृहत्कथा से अमर हो गई है। वह 'बड्डकथा' अभी नहीं मिलती। दो कश्मीरी पंडितों (क्षेमेंद्र और सोमदेव) के किए उसके संस्कृत अनुवाद मिलते हैं (बृहत्कथामंजरी और कथासरित्सागर)। कश्मीर का उत्तरी प्रांत पिशाच (पिश्—कच्चा मांस, अश्—खाना) या पिशाश देश कहलाता था और कश्मीर ही में बृहत्कथा का अनुवाद मिलने से

१ ललिए महुरक्खरए जुवईयणवल्लहे ससिंगारे।
सन्ते पाइयकव्वे को सक्कइ सक्कयं पढिउं॥ (वज्जालग्ग, २१)

(ललित, मधुराक्षर, युवतीजनवल्लभ, सशृंगार प्राकृत कविता के होते हुए संस्कृत कौन पढ़ सकता है?)

२ परुसा सक्कअबन्धा पाउअबन्धो वि होइ सुउमारो।
पुरुस महिलाणं जेत्तिअमिहन्तरं तेत्तियमिमाणं॥ (कर्पूरमंजरी)

(संस्कृत की रचना परुष और प्राकृतरचना सुकुमार होती है, जितना पुरुष और स्त्रियों में अंतर होता है उतना इन दोनों में है।)

३ अगले लेखों में इस विषय पर कुछ और आता जायगा।

पैशाची वहां की भाषा मानी जाती थी । किंतु वास्तव में पैशाची या भूतभाषा का स्थान राजपूताना और मध्यभारत है । मार्कंडेय ने प्राकृत-व्याकरण में बृहत्कथा को कैकयपैशाची में गिना है। केकय तो कश्मीर का पश्चिमोत्तर प्रांत है । संभव है कि मध्यभारत की भूतभाषा की मूल बृहत्कथा का कोई रूपांतर उधर हुआ हो जिसके आधार पर कश्मीरियों के संस्कृतानुवाद हुए हैं[१] । राजशेखर ने, जो विक्रम संवत् की दशवीं शताब्दी के मध्य भाग में था, अपनी काव्यमीमांसा में एक पुराना श्लोक उद्धृत किया है जिसमें उस समय के भाषानिवेश की चर्चा है—"गौड़ (बंगाल) आदि संस्कृत में स्थित हैं, लाटदेशियों की रुचि प्राकृत में परिचित है, मरुभूमि, टक्क (टांक, दक्षिणपश्चिमी पंजाब) और भादानक[२] के वासी अपभ्रंश प्रयोग करते हैं, अवंती (उज्जैन), पारियात्र (बेतवा और चंबल का निकास) और दशपुर (मंदसोर) के निवासी भूतभाषा की सेवा करते हैं, जो कवि मध्यदेश में (कन्नौज, अंतर्वेद, पंचाल आदि) रहता है वह सर्व भाषाओं मे स्थित है" । राजशेखर को भूगोल विद्या से बड़ी दिलचस्पी थी । काव्यमीमांसा का एक अध्याय का अध्याय भूगोल वर्णन को देकर वह कहता है कि विस्तार देखना हो तो मेरा बनाया भुवनकोश देखो । अपने आश्रयदाता की राजधानी महोदय (कन्नौज) का उसे बड़ा प्रेम था । कन्नौज और पांचाल की उसने जगह जगह पर बहुत बड़ाई की है । महोदय (कन्नौज) को मानो भूगोल का केंद्र माना है, कहा है दूरी की नाप महोदय से ही की जानी चाहिए, पुराने आचार्यों के अनुसार अंतर्वेदी से नहीं[३] । इस

१ लाकोटे, वियना ओरिएंटल सोसाइटी का जर्नल, जिल्द ६४, पृ. ६२ आदि।

२ बीजोल्यां के लेख में भी भादानक का उल्लेख है, यह प्रांत राजपूताने में ही होना चाहिए ।

३ विनशनप्रयागयोर्गङ्गायमुनयोश्चान्तरमन्तर्वेदी । तदपेक्षया दिशो विभजेत इत्याचार्याः । तत्रापि महोदयं मूलमवधीकृत्य इति यायावरः (काव्यमीमांसा पृ. ९४)

महोदय की केंद्रता को ध्यान में रखकर उसका बताया हुआ राजा के कविसमाज का निवेश बड़ा चमत्कार दिखाता है। वह कहता है कि राजा कविसमाज के मध्य में बैठे, उत्तर को संस्कृत के कवि (कश्मीर, पांचाल), पूर्व को प्राकृत (मागधी की भूमि मगध), पश्चिम को अपभ्रंश (दक्षिणी पंजाब और मरुदेश) और दक्षिण को भूतभाषा (उज्जैन, मालवा आदि) के कवि बैठे[1]। मानो राजा का कविसमाज भौगोलिक भाषानिवेश का मानचित्र हुआ। यों कुरुक्षेत्र से प्रयाग तक अंतर्वेद, पांचाल और शूरसेन, और इधर मरु, अवंती, पारियात्र और दशपुर—शौरसेनी और भूतभाषा के स्थान थे।

अपभ्रंश ।

बांध में बचे हुए पानी की धाराएँ मिलकर अब नदी का रूप धारण कर रही थीं। उनमें देशी की धाराएँ भी आकर मिलती गईं। देशी और कुछ नहीं, बाँध से बचा हुआ पानी है, या वह जो नदी मार्ग पर चला आया, बांधा न गया। **उसे भी कभी कभी छान कर नहर में ले लिया जाता था।** बांध का जल भी रिसता रिसता इधर मिलता आ रहा था। पानी बढ़ने से नदी की गति वेग से निम्नाभिमुखी हुई, उसका 'अपभ्रंश' (नीचे को बिखरना) होने लगा। अब सूत से नपे किनारे और नियत गहराई नहीं रही। राजशेखर ने संस्कृत वाणी को सुनने योग्य, प्राकृत को स्वभावमधुर, अपभ्रंश को सुभव्य और भूतभाषा को सरस कहा है[2]। इन विशेषणों की साभिप्रायता विचारने योग्य है। वह यह भी कहता है कि कोई बात एक भाषा में कहने से अच्छी लगती है, कोई दूसरी में, कोई दो तीन में[3]। उसने काव्यपुरुष का शरीर शब्द और अर्थ का बनाया है जिसमें संस्कृत को मुख, प्राकृत को बाहु, अपभ्रंश को जघन-

---

(१) काव्यमीमांसा, पृ. ९४—९५.

(२) बालरामायण।

(३) काव्यमीमांसा, पृ. ४८।

स्थल, पैशाच को पैर और मिश्र को ऊरु कहा है। विक्रम की सातवीं शताब्दी से ग्यारहवीं तक अपभ्रंश की प्रधानता रही और फिर वह पुरानी हिंदी में परिणत हो गई। इसमें देशी की प्रधानता है। विभक्तियाँ घिस गई हैं, खिर गई हैं, एकही विभक्ति हैं, या आहैं कई काम देने लगी है। एक कारक की विभक्ति से दूसरे का भी काम चलने लगा है। वैदिक भाषा की अविभक्तिक निर्देश की विरासत भी इसे मिली। विभक्तियों के खिर जाने से कई अव्यय या पद लुप्त-विभक्तिक पद के आगे रखे जाने लगे, जो विभक्तियाँ नहीं हैं। क्रियापदों में मार्जन हुआ। हां, इसने केवल प्राकृत ही के तद्भव और तत्सम पद नहीं लिए, किंतु धनवती अपुत्रा मौसी से भी कई तत्सम पद लिए[1]। साहित्य की प्राकृत साहित्य की भाषा हो हो चली थी, वहां गत भी गय और गज भी गय; काच, काक, काय (= शरीर), कार्य सब के लिये काय। इससे भाषा के प्रधान लक्षण—सुनने से अर्थबोध—का व्याघात होता था। अपभ्रंश में दोनों प्रकार के शब्द मिलते हैं। जैसे शौरसेनी, पैशाची, मागधी आदि भेदों के होते हुए भी प्राकृत एक ही थी वैसे शौरसेनी अपभ्रंश, पैशाची अपभ्रंश, महाराष्ट्री अपभ्रंश आदि होकर एक ही अपभ्रंश प्रबल हुई। हेमचंद्र ने जिस अपभ्रंश का वर्णन किया है वह शौरसेनी के आधार पर है। मार्कंडेय ने एक 'नागर' अपभ्रंश की चर्चा की है जिसका अर्थ नगरवासी चतुर, शिक्षित (गँवई से विपरीत) लोगों की भाषा, या गुजरात के नागर ब्राह्मणों, या नगर (वडनगर, वृद्धनगर) के प्रांत की भाषा हो सकता है। गुजरात की अपभ्रंश-प्रधानता की चर्चा आगे है। किंतु उसके उस नगर का वडनगर या नगर नाम प्राचीन नहीं है इसलिये

---

[1] तद्भव प्रयोगों के अधिक घिस जाने पर भाषा में एक अवस्था आती है जब शुद्ध तत्समों का प्रयोग करने की टेव पड़ जाती है। हिंदी में अब कोई जस या गुनवंत नहीं लिखता, यश और गुणवान् लिखते हैं। बोलें चाहे जैसे, परसोतम और हरकिसुन, लिखेंगे तरह, पुरुषोत्तम और हरकृष्ण।

'नगर की भाषा' अर्थ मानने पर मार्कंडेय के व्याकरण की प्राचीनता में शंका होती है।

राजशेखर ने काव्यमीमांसा मे कई श्लोक दिए हैं जिनमें वर्णन किया है कि किस देश के मनुष्य किस तरह संस्कृत और प्राकृत पढ़ सकते हैं। यहां इस पाठशैली के वर्णन की चर्चा कर देनी चाहिए। यह वर्णन रोचक भी है और कई अंशों में अब तक सत्य भी। उच्चारण का ढंग भी कोई चीज़ है। वह कहता है कि काशी से पूर्व की ओर जो मगध आदि देशों के वासी हैं वे संस्कृत ठीक पढ़ते हैं किंतु प्राकृत भाषा में कुंठित हैं। बंगालियों की हँसी में उसने एक पुराना श्लोक उद्धृत किया है जिसमें सरस्वती ब्रह्मा से प्रार्थना करती है कि मैं बाज़ आई, मैं इस्तीफ़ा पेश करती हूं, या तो गौड़ लोग गाथा पढ़ना छोड़ दें, या कोई दूसरी ही सरस्वती बनाई जाय[1]।

गौड़ देश में ब्राह्मण न अतिस्पष्ट, न अश्लिष्ट, न रूक्ष, न अतिकोमल, न मंद और न अतितार स्वर से पढ़ते हैं। चाहे कोई रस हो, कोई रीति हो, कोई गुण हो, कर्णाट लोग घमंड से अंत में टंकारा देकर पढ़ते हैं। गद्य, पद्य, मिश्र कैसा ही काव्य हो द्रविड़ कवि गा कर ही पढ़ेगा। संस्कृत के द्वेषी लाट प्राकृत को ललित मुद्रा से सुंदर पढ़ते हैं। सुराष्ट्र[2], त्रवण[3] आदि संस्कृत में अपभ्रंश के अंश मिलाकर एक ही तरह पढ़ते हैं। शारदा के प्रसाद से कश्मीरी सुकवि होते हैं किंतु उनका पाठक्रम क्या है, कान में मानो गिलोय की पिचकारी है। उत्तरापथ के कवि बहुत संस्कार होने पर भी गुन्ना (नाक में)

---

१ ब्रह्मन् विज्ञापयामि त्वां स्वाधिकारजिहासया।
गौडस्त्यजतु वा गाथामन्या वास्तु सरस्वती॥

२ सोरठ—गुजरात काठियावाड़।

३ पश्चिमी राजपूताना। जोधपुर के राजा बाउक के वि॰ सं॰ ८९४ के शिलालेख में उसके चौथे पूर्वपुरुष शिलुक का त्रवणी और वल्ल देश तक अपने राज्य की सीमा नियत करना कहा गया है। वल्ल देश भाटियों का जैसलमेर है, त्रवणी उसके दक्षिण में होना चाहिए।

पढ़ते हैं । पांचाल देश वालों का पाठ तो कानों में शहद बरसाता है, उसका कहना ही क्या[1] ।

पुरानी अपभ्रंश संस्कृत और प्राकृत से मिलती है और पिछली पुरानी हिंदी से । हम ऊपर दिखा चुके हैं कि शौरसेनी और भूत-भाषा की भूमि ही अपभ्रंश की भूमि हुई और वही पुरानी हिंदी की भूमि है । अंतर्वेद, व्रज, दक्षिणी पंजाब, टक्क, भादानक, मरु, त्रवण, राजपूताना, अवंती, पारियात्र, दशपुर और सुराष्ट्र—यहीं की यह भाषा एक ही मुख्य अपभ्रंश थी जैसे पहले देशभेद होने पर भी एक ही प्राकृत थी । अभी अपभ्रंश के साहित्य के अधिक उदाहरण नहीं मिले हैं, न उस भाषा के व्याकरण आदि की ओर पूरा ध्यान दिया गया है । अपभ्रंश कहां समाप्त होती है और पुरानी हिंदी कहां आरंभ होती है इसका निर्णय करना कठिन किंतु रोचक और बड़े महत्व का है । इन दो भाषाओं के समय और देश के विषय में कोई स्पष्ट रेखा नहीं खींची जा सकती । कुछ उदाहरण ऐसे हैं जिन्हें अपभ्रंश भी कह सकते हैं, पुरानी हिंदी भी । संस्कृत ग्रंथों में लिखे रहने के कारण अपभ्रंश और पुरानी हिंदी की लेखशैली की रक्षा हो गई जो मुखसुखार्थ लेखनशैली में बदलती बदलती ऐसी हो जाती कि उसे प्राचीन समझने का कोई उपाय नहीं रह जाता । उसी प्राचीन लेखशैली को हिंदी की उच्चारणानुसारिणी शैली पर लिख दें (जिस प्रकार कि वह अवश्य ही बोली जाती होगी) तो अपभ्रंश कविता केवल पुरानी हिंदी हो जाती है और दुर्बोध नहीं रहती । इसलिये यह नहीं कह सकते कि पुरानी हिंदी का काल कितना पीछे हटाया जाय । हिंदी उपमावाचक 'जिमि' या 'जिम' ऐसी पुरानी कविता में 'जिम्वँ' लिखा मिलता है । उसके उच्चारण में प्रथम स्वर संयुक्ताक्षर

---

१ मार्गानुगेन निनदेन निधिर्गुणानां
संपूर्णवर्णरचनो यतिभिर्विभक्तः ।
पाञ्चालमण्डलभुवां सुभगः कवीनां
श्रोत्रे मधु क्षरति किञ्चन काव्यपाठः ॥

के पहले होने से गुरु नहीं हो सकता (जिम्मव) क्योंकि जिस छंद में वह आया है उसका भंग होता है। इसलिये चाहे वह 'जिम्वँ' लिखा हो उसका उच्चारण ' जिंव ' था जो जिम ही है। संस्कृत 'उत्पद्यते' का प्राकृत रूप 'उप्पज्जइ' है जो छँट खिर कर 'उप्पजइ' के रूप में है। अब यह 'उप्पजइ' अपभ्रंश माना जाय या पुरानी हिंदी? 'जइ' का उच्चारणानुसार लेख करने से 'उपजै' हो जाता है (संयुक्त पकार के कारण उ की मात्रा की गुरुता मान कर ऊपजै सही) जिसे हम हिंदी पहचानते हैं। संभव है कि जैसे आजकल हिंदी के विद्वानों में 'गये, गए' पर दलादली है वैसे ही 'उपज्जइ, उपजइ, उपजै, ऊपजै' पर कई शताब्दियों तक चर्चा हो, यद्यपि उसे अरुंतुद बनाने के लिये छापाखाना न था।

इन पोथियों के लिखनेवाले संस्कृत के पंडित या जैन साधु थे। संस्कृत शब्दों को तो उन्होंने शुद्धि से लिखा, प्राकृत को भी, किंतु इन कविताओं की लेखशैली पर ध्यान नहीं दिया। कभी पुराना रूप रहने दिया, कभी व्यवहार में परिचित नया रूप धर दिया। यह आगे के पाठांतरों से जान पड़ेगा।

ऐसी कविता के लिये 'पुरानी हिंदी' शब्द जान बूझ कर काम में लिया गया है। पुरानी गुजराती, पुरानी राजस्थानी, पुरानी पश्चिमी राजस्थानी, आदि नाम कृत्रिम हैं और वर्तमान भेद को पीछे की ओर ढकेल कर बनाए गए हैं। भेदबुद्धि दृढ करने के अतिरिक्त इनका कोई फल भी नहीं है। कविता की भाषा प्रायः सब जगह एक ही सी थी। जैसे नानक से लेकर दक्षिण के हरिदासों तक की कविता 'ब्रजभाखा' कहलाती थी वैसे अपभ्रंश को पुरानी हिंदी कहना अनुचित नहीं, चाहे कवि के देशकाल के अनुसार उसमें कुछ रचना प्रादेशिक हो।

पिछले समय में भी हिंदी कवि संत लोग विनोद के लिये एक आध पद गुजराती या पंजाबी में लिख कर अपनी वाणियां भाखा में लिखते रहे जैसे कि कुछ शौरसेनी, पैशाची का छींटा देकर कविता

महाराष्ट्री प्राकृत में ही होती थी। मीराबाई के पद पुरानी हिंदी कहे जांय या गुजराती या मारवाड़ी ? डिंगल कविता गुजराती है या मारवाड़ी या हिंदी ? कवि की प्रादेशिकता आने पर भी साधारण भाषा 'भाखा' ही थी। जैसे अपभ्रंश में कहीं कहीं संस्कृत का पुट है वैसे तुलसीदासजी रामायण को पुरखी भाषा में लिखते लिखते संस्कृत में चले जाते हैं[1]। यदि छापाखाना, प्रांतीय अभिमान, मुसलमानों का फ़ारसी अक्षरों का आग्रह, और नया प्रांतिक उद्बोधन न होता तो हिंदी अनायास ही देश भाषा बनी जा रही थी। अधिक छपने छापने, लिखने और झगड़ों ने भी इस गति को रोका।

आजकल लोग पृथ्वीराजरासे की भाषा को हिंदी का प्राचीनतम रूप मानते हैं। उसका विचार हम अपभ्रंश के अवतरणों के विचार के पीछे करेंगे किंतु इतना कह देते हैं कि यदि इन कविताओं को पुरानी हिंदी नहीं कहा जाय तो रासे की भाषा को राजस्थानी या 'मेवाड़ी–गुजराती–मारवाड़ी–चारणी–भाटी' कहना चाहिए, हिंदी नहीं। व्रजभाषा भी हिंदी नहीं और तुलसीदासजी की मधुर उक्तियां भी हिंदी नहीं।

यह पुरानी कविता बिखरी हुई मिलती है। कोई मुक्तक श्रृंगार रस की कविता, कोई वीरता की प्रशंसा, कोई ऐतिहासिक बात, कोई नीति का उपदेश, कोई लोकोक्ति और वह भी व्याकरण के उदाहरणों में या कथाप्रसंग में उद्धृत। मालूम होता है कि इस भाषा का साहित्य बड़ा था। उसमें महाभारत और रामायण की पूरी, या उनके आश्रय पर बनी हुई छोटी छोटी, कथाएँ थीं। ब्रह्म और मुंज नाम के कवियों का पता चलता है। जैसे प्राकृत के पुराने रूप भी श्रृंगार की चटकीली मुक्तक गाथाओं में (सातवाहन की सप्तशती) या जैन धर्मग्रंथों में हैं, वैसे पुरानी हिंदी के नमूने भी या तो श्रृंगार वा वीर रस के अथवा कहानियों के चुटकुले हैं या जैन धार्मिक

---

१ जैसे,—कबिहिं अगम जिमि ब्रह्मसुख अहममलिनजनेषु।
रन जीति रिपुदलमध्यगत पस्यामि राममनामयं॥ इत्यादि

रचनाएँ । हेमचंद्र की बड़ी बड़ाई कीजिए कि उसने प्राकृत उदाहरणों में तो पद या वाक्यों के टुकड़े ही दिए, पर ऐसी कविताओं के पूरे छंद उद्धृत किए । इसका कारण यही जान पड़ता है कि जिन पंडितों के लिये उसने व्याकरण बनाया वे साधारण मनुष्यों की 'भाखा' कविता को वैसे प्रेम से नहीं कंठस्थ करते थे जैसे संस्कृत और प्राकृत को ।

संस्कृत के श्लोक और प्राकृत की गाथा की तरह इस कविता का राजा दोहा है । सोरठा, छप्पय, गीत आदि और छंद भी हैं, पर इधर दोहा और उधर गाथा ही पुरानी हिंदी और प्राकृत का भेदक है । 'दोहा' का नाम कई संस्कृताभिमानियों ने 'दोधक'[1] बनाया है किंतु शाब्दिक समानता को छोड़ कर इसमें कोई सार नहीं है और संस्कृत में दोधक छंद दूसरा होने से इसमें धोखे की सामग्री भी है । दोहा पद की निरुक्ति दो की संख्या से है, जैसे चौपाई और छप्पय की—दो + पद, दो + पथ, या दो + गाथा । प्रबंधचिंतामणि में एक जगह एक प्राकृत का 'दोधक' भी दिया है जो दोहा छंद में है । पूर्वार्ध सपादलक्ष (अजमेर-सांभर) के राजा ने समस्या की तरह भेजा था और उत्तरार्ध की पूर्ति हेमचंद्र ने की थी[2] । यह ऐसा ही विरल विनोद जान पड़ता है जैसा कि आजकल हमारे मित्र भट्ट मथुरानाथजी के संस्कृत के मनहर दंडक और सवैये । प्रबंधचिंतामणि में ही एक जगह दो चारणों को "दोहाविद्यया स्पर्धमानौ" अर्थात् दोहा विद्या से होड़ाहोड़ी करते हुए कहा गया है । उनकी कविताओं में एक दोहा है, एक सोरठा, किंतु रचना 'दोहाविद्या' कही गई है यह बात ध्यान देने योग्य है । इसी प्रकार रेख़ता छंद से रेख़ते की बोली कहला गई थी (रेख़ते के उस्ताद तुमही नहीं हो ग़ालिब !)

पुरानी हिंदी का गद्य बहुत कम लिखा हुआ मिलता है । पद्य

---

१ प्रबंधचिंतामणि पृष्ठ २६, १२७ ।

२ पहुली ताव न अनुहरइ गोरीमुहकमलस्स ।
अदिट्ठी पुनि उअमइ पडिपयली चंदस्स ॥ (प्र. चिं. पृ. १२७)

दो तरह रक्षित हुआ है,—मुख से और लेख से । दोनों तरह की रक्षा में लेखक के हस्तसुख और वक्ता के मुखसुख से इतने परिवर्तन हो गए हैं कि मूल शैली की विरूपता हो गई है । लिखनेवाला प्रचलित भाषा के ग्रंथों या लोकप्रिय काव्यों में 'मक्खी के लिये मक्खी' नहीं लिखता । उसके बिना जाने ही कलम नए रूपों पर चल जाती है । गुसाईंजी के 'तइसइ' 'जुगुति' 'कालसुभाउ' 'अउरउ' अब क्रम से 'तैसेहि', 'युक्ति', 'कालस्वभाव' और 'औरा' हो गए हैं । जो कविता मुख से कान, मुख से कान, चलती है उसमें तो बहुत ही परिवर्तन हो जाते हैं । हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण (आठवें अध्याय) के उदाहरणों में एक 'अपभ्रंश' या पुरानी हिंदी के दोहे को लीजिए । अपभ्रंश और पुरानी हिंदी में सीमारेखा बहुत ही अस्पष्ट है और, जैसा कि आगे स्पष्ट हो जायगा, पुरानी हिंदी का समय बहुत ऊपर चढ़ जाता है । वह दोहा यह है—

वायसु उड्डावन्तिअए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति ।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तडत्ति ।।

[वियोगिनी कौआ उड़ाने लगी कि मेरा पिया आता हो तो उड़ जा । इतने में उसने अचानक पिया को देख लिया । कहां तो वह वियोग में ऐसी दुबली थी कि हाथ बढ़ाते ही आधी चूड़ियां जमीन पर गिर पड़ीं और कहां हर्ष से इतनी मोटी हो गई कि बाकी की चूड़ियां तड़ तड़ कर चटक गईं ।]

चारणों के मुख से कई पीढ़ियों तक निकलते निकलते राजपूताने में इस दोहे का अब यह मंजा हुआ रूप प्रचलित है—

काग उड़ावण जाँवती पिय दीठो सहसत्ति ।
आधी चूड़ी कागगल आधी टूट तडित्ति ।।

निशाना ठीक लग गया, चूड़ियां जमीन पर न गिर कर कौए के गले में पहुँच गईं और चूड़ी टूटने का अशकुन भी मिट गया ।

उसी व्याकरण में से एक दोहा और लीजिए—

पुत्तें जाएं कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण ।
जा बप्पीकी भुंहडी चम्पिज्जइ अवरेण ॥

[उस बेटे के जन्म लेने से क्या लाभ और मर जाने से क्या हानि कि जिसके होते बाप की धरती पर दूसरा अधिकार कर ले ।]

इस दोहे का परिवर्तन होते होते यह रूप हो गया है—

बेटा जायाँ कवण गुण अवगुण कवण धियेण[1] ।
जो ऊभाँ[2] धर[3] आपणी गंजीजै[4] अवरेण[5] ॥

यह भी ध्यान देनेयोग्य बात है कि मूल दोहे में 'मुये पुत्र से क्या अवगुण' कहा गया है किंतु पीछे, स्त्री जाति की ओर अपमान बुद्धि बढ़ जाने और उसका उत्तराधिकार न होने से 'धी (-पुत्री, संस्कृत दुहितृ, पंजाबी धी) से क्या अवगुण' हो गया है । अस्तु । ऐसी दशा में जो पुरानी कविता या गद्य संस्कृत और प्राकृत के व्याकरण और छंद आदि के ग्रंथों में, बच गया है, वह पुराने वर्णविन्यास की रक्षा के साथ उस समय की भाषा का वास्तव रूप दिखाता है ।

इस तथा अग्रिम लेखों में "दोहाविद्या" के उदाहरण संग्रह किए जायंगे । आवश्यक कथाप्रसंग तथा मूल का परिचय दिया जायगा । पुराने शब्दों के वर्तमान रूप और कुछ तारतम्यात्मक विवेचन दिखाया जायगा । पाठांतरों में से उतने ही दिए हैं जिनमें विशेषता है । लेखकों ने ह्रस्व दीर्घ का व्यत्यय किया है वह ज्यों का त्यों रहने दिया है, छंद के अनुसार पढ़ना चाहिए "जिन्भा जाणाहि छंदो" । पाठांतरों से जान पड़ेगा कि कोई लेखक पुरानी अक्षरयो-

---

१ धी से, पुत्री से । २ खड़े खड़े । ३ पृथ्वी, धरा । ४ गंजन की जाय, जीती जाय । ५ मलसीसर के ठाकुर श्रीभूरसिंहजी का विविध संग्रह, पृष्ठ ४८ । इस संग्रह में यह दोहा तथा 'एहि ति घोड़ा एहि थल०—' वाला दोहा ठाकुर साहब ने कविवर हेमचंद्र के नाम से दिया है किंतु ये हेमचंद्र की रचना नहीं हैं, उससे पहले के हैं, उसने अपने व्याकरण में उदाहरण की तरह और बहुत सी कविता के साथ दिए हैं । 'एहि ति घोड़ा०' की चर्चा यथास्थान होगी ।

जना को रखता है, कोई प्राकृत की चाल पर चलता है, कोई मँजी हुई देशभाषा की रीति पर आ उतरता है ।

(१) शार्ङ्गधर पद्धति से ।

शार्ङ्गधर नामक कवि ने एक सुभाषित संग्रह शार्ङ्गधरपद्धति नामक बनाया है । वृक्षायुर्वेद और वैदक के भी उसके ग्रंथ प्रसिद्ध हैं । उसने अपना परिचय यों दिया है कि शांकभरी देश के चाहुवाण राजा हंमीर के सभासदों में मुख्य राघवदेव थे । उनके गोपाल दामोदर और देवदास नामक पुत्र हुए । दामोदर के पुत्र शार्ङ्गधर लक्ष्मीधर और कृष्ण थे । यह हंमीर रणथंभोर का प्रसिद्ध हंमीर है जो अलाउद्दीन खिलजी से संवत् १३५७ में बड़ी वीरता से लड़कर परास्त हुआ । चौहानों की राजधानी पहले शांकभरी (सांभर) थी, जिससे अजमेर में आने पर भी वे शांकभरीश्वर ही कहलाते रहे । पृथ्वीराज के पुत्र गोविंद ने शहाबुद्दीन गोरी की अधीनता स्वीकार कर ली जिससे उसके चचा हरिराज ने उसे निकाल दिया । वह रणथंभोर में जाकर राज्य जमा कर बैठा । उसीका अंतिम सातवां वंशधर हंमीर था । उसके सभासद के पौत्र को उसे शांकभरीप्रदेश का स्वामी कहना ऐतिहासिक और उचित है । यों शार्ङ्गधर का समय विक्रमी संवत् की चौदहवीं शताब्दी का अंत हुआ । शार्ङ्गधरपद्धति में कई जगह उस समय की बोलचाल की भाषा के मंत्र, शब्द और वाक्य दिए हैं जो उस समय की हिंदी के नमूने हैं ।

शार्ङ्गधर पद्धति में (१) एक विष हटाने का शाबर मंत्र दिया है (पीटर्सन का संस्करण, नं० २८७०) । शाबर का अर्थ वहां यह दिया है कि जब शिव ने शबर (किरात) रूप से अर्जुन से युद्ध किया उस समय जो मंत्र उन्होंने कहे थे वे शाबर मंत्र हैं । ये वैसे ही मंत्र हैं जिनके लिये गुसांई तुलसीदासजी ने लिखा है कि 'अनमिल आखर अरथ न जापू । प्रकट प्रभाव महेश प्रतापू ।' दहने हाथ में पानी का बरतन ले कर बांए हाथ की अनामिका से सात बार

मंत्र पढ़ कर उसे हिला कर जिसे वह जल पीने को दिया जाय वह तत्क्षण निर्विष हो जाता है (नं० २८६८ - ६) मंत्र यह है—

ओं गुरु के पाय शरणम् । ओं चवि चवि चारि भार विसुमाटी ॥

(=कह, कह, विष की मट्टी के चार भार, चव=कहना, यथा सुकवि चंद सबो चवै)

(२) नं० २६४२ में साप के विष से बचने का यह मंत्र दिया है । इसे सात बार पढ़ कर कपड़े में गांठ दे ले, जब तक वह गांठ वाला वस्त्र देह पर रहेगा तब तक सांप से भय न हो—

ओं दष्ट कर अष्ट कर कालिङ्गनाग हरिनाग ।
सर्प डुण्डी विसु दाढ बन्धन शिवगुरु प्रसाद ॥

(डुण्डी=डुण्डुभ, निर्विष, जल का सांप, विसु=विष, दाढ=दंष्ट्रा)

(३) नं० ३०१८ में टीडी, सारस, तोते, सूअर, हरिन, चूहे, खरहों को खेतों से हटाने का मंत्र दिया है—

ओं नमः सुरभ्यो बल बल ज ज चिरि चिरि मिलि मिलि स्वाहा ।

(ज=जा, जादूगर अब तक 'इरि मिरि चिरि' कहा करते हैं)

(४) नं० ३०१९ में लिखा है कि मंत्र जाननेवाला धनुष की नोक से अपने साथ (सार्थ, कारवा) के चारों ओर रेखा से कुंडल करे और इस शाबर मंत्र का जप करे तो सिंह से रक्षा हो—

नन्दायणु[1] पुत्त[2] सायरिउ[3] पहारु[4] मोरी[5] रक्षा कुक्कुर जिम पुंछो[6] दुल्लावइ[7] उरहइ[8] पुंछी परहई[9] मुहि[10] जाह[11] रे जाह । आठ संकला[12] करि उर[13] बन्धउं[14] बाघ बाघिणि कउ[15] मुह बन्धउ कलियाखिणी[16] की दुहाई महादेव की पूजा पाई टालहि जई[17] आगिली विष देहि ।

---

१ नंद का ? २ पुत्र । ३ सायरी का ? ४ पहाड़ । ५ मेरी । ६ पूंछ ७ डुलाता है, हिलाता है, संस्कृत दोलायति (!) । ८ और रहता है ? । ९ छोड़ता है ? १० मुझे । ११ जा । १२ सांकल । १३ छाती । १४बांधू। १५ को (=का) । १६ कलि यक्षिणी । १७ मुझे टाल कर जा ।

(५) नं० ३०२०-३०२२ में कहा है कि जोर से 'बोलला' कहने से जहां तक शब्द सुनाई पड़े वहां तक सिंह ठहरता नहीं। शबर की स्त्री इस मंत्र को पढ़े तो चुगुलखोर, सिंह, चोर, अपमृत्यु, और बाघ से रक्षा होती है, तर्जनी अंगुली से आठों दिशाओं में इस मंत्र से रक्षा करे या मंत्रित करके 'कर्कर' (कंकरियां या कौड़ियां) आठों दिशाओं की ओर फेंके—

ओं आडू चूडू वाढी कोडी चोरु चाटु कालु कांडु बाघ स्वाहा।

(६) भाषाचित्र में एक श्लोक (नं० ५४९) दिया है जिसमे कई हिंदी शब्द आए हैं। श्लोक संस्कृत का है और संधि आदि से उसका ठीक संस्कृत अर्थ होता है। चमत्कार यह है कि पढ़ते समय धोखा होता है कि संस्कृत में अपभ्रंश कैसे आ गए। पुराने ग्रंथों में ऐसे चमत्कार के लिये जो श्लोक दिए जाते थे उनमें संस्कृत में प्राकृत-बुद्धि हो जाती थी, अर्थात् संस्कृत और प्राकृत दोनों अर्थ निकलते थे, किंतु इस श्लोक में प्राकृत का स्थान हिंदी ने लिया है—

उत्सरङ्गकलितोरु **कटारीभाजिराउत**भयंकरभालाः।
सन्तु **पायक**गणा जयतस्त्वं **गाम गोहर मिलापइलावी**॥

इसमें और हिंदी शब्द तो देखने में ही हिंदी हैं, जैसे उरुकट + अरि + इभ + आजि + राः, किंतु पायक ठीक हिंदी अर्थ (सेवक) में व्यवहृत हुआ है (सो किमि मनुज···जाके हनूमान से पायक —तुलसीदास)

(७) वहीं पर भाषाचित्र का एक नमूना और (नं० ५५०) दिया है जिसमें कुछ संस्कृत है, कुछ हिंदी। इसका कर्ता श्रीकंठ पंडित है और इसमें श्रीमल्लदेव राजा की वीरता का वर्णन है कि उसकी सेना के जोधा मार काट चिल्ला रहे हैं और वैरिनारी अपने पति से कह रही है कि घमंड छोड़ कर मल्लदेव की शरण जाओ।

नूनं बादल छाइ खेह[1] **पसरी** निःश्राणशब्दः खरः
शत्रुं **पाडि लुटालि तोडि हनिसौं**[2] एवं भणंत्युद्भटाः ।
झूठे गर्व **भरा मघालि** (?) सहसा रे **कन्त मेरे कहे**
कंठे पाग निवेश[3] **जाह** शरणं श्रीमल्लदेवं विभुम् ॥

इन अवतरणों से जान पड़ता है कि उस समय हिंदी के दोनों रूप प्रचलित थे, खड़ा और पड़ा। 'बादल छाइ खेह पसरी' भी है और 'रे कंत मेरे कहे' भी है, 'कुक्कुर जिमि पुंछी दुल्लावइ' 'वाघणी कउ मुख' भी है और 'कालियाखिणी की दुहाई' और 'गुरू के पाय' भी है। अपभ्रंश का नपुंसक प्रथमा एकबचन का चिन्ह 'उ' भी चलता था, वर्तमान में भी 'उ' था, आज्ञा में इ, उ, हु, हया हि, हटकर कोरा धातु भी रह गया था।

(२) प्रबंधचिंतामणि से।

प्रबंधचिंतामणि नामक संस्कृत ग्रंथ जैन आचार्य मेरुतुंग ने संवत् १३६१ में वढ़वान में बनाया। बंबई के डाक्टर पीटर्सन के शास्त्री दीनानाथ रामचंद्र ने बंबई में सं० १९४४ में कई हस्तलिखित प्रतियों से मिलाकर इसका मूल छापा जो अब दुष्प्राप्य है। उन्होंने इसका बढ़ाया हुआ गुजराती भाषांतर भी छपवाया था जो मैंने देखा नहीं। सन् १९०१ में टानी ने और कई मूल प्रतियों की सहायता से इसका अंगरेज़ी अनुवाद छापा। दोनों के अनुवाद कैसे हैं यह यथास्थान प्रकट होगा। इस पुस्तक में कई ऐतिहासिक प्रबंध

---

१ धूळ। २ फाड़, लूट और तोड़ कर मारूंगा (हनिसौं, मिलाओ राजस्थानी करस्यूं, संस्कृत हनिष्ये)। ३ पगड़ी उतारना और गले में कपड़ा आदि डालकर सामने आना अधीनता का चिन्ह है, जैसे, वर्तमान बंगालियों का अभिवादन, दसन गहहु त्रिन कंठ कुठारी (तुलसीदास), अपनीतशिरस्त्राणाः शेषास्तं शरणं ययुः (रघुवंश ४)।, अल्पसैन्यो मल्लसूनुर्यवित्तस्मादशङ्कत। अपनीतशिरस्त्राणस्तावरस तमवन्दत (राजतरङ्गिणी ७।१५४४)। कण्ठबद्धशिरःशाटः शीर्षत्राणोपानहं वहन्। मुक्तवेगोऽपि भूपालं कर्तुं नाशकन्क्रुधम्। (राजतरङ्गिणी ८।२२७३)

या किस्से हैं। कई बातों मे यह भोजप्रबंध के ढंग की है। जैन धार्मिक साहित्य में अपने मत की "प्रभावना" बढ़ानेवाले किस्सों का स्थान बहुत ऊँचा है। जैन धर्मोपदेशक अपने साधु तथा श्रावक शिष्यों के मनोविनोद और उपदेश के लिये कई कथाएं कहा करते हैं जो पौराणिक, ऐतिहासिक या अर्ध-ऐतिहासिक होती हैं। इन कथाओं के कई संग्रह ग्रंथ हैं जिनमें पुराने कवियों की रचना, नए कवियों के नाम, पुराने राजाओं के कर्त्तव्य, नयों के नाम, विक्रमादित्य भी जैन, सालिवाहन भी जैन, वराहमिहिर भी जैन, ब्राह्मण विद्वानों और अन्य शाखा-संप्रदायों के जैन विद्वानों का अपने इष्ट संप्रदाय के आचार्यों से सदा पराजय, आदि बातें भी रहती हैं जो वर्तमान दृष्टि से ऐतिहासिक नहीं कहला सकतीं। किंतु उस समय के हिंदू ग्रंथ भी ऐसे ही हैं। उनमें देखा जाय तो ऐतिहासिकता की उपेक्षा जैनों की अपेक्षा अधिक की गई है। इस लिये केवल जैनों ही को उपालंभ दिया नहीं जा सकता। इतना होने पर भी जैन विद्वानों के इतिहास की ओर रुचि रखने और उसकी मूलभित्ति का सहारा न छोड़ने के प्रमाण मिलते हैं। यों तो सम्राट् अशोक की धर्मलिपि के शब्दों में "आत्मपापंड पूजा परपापंड गर्हा" सभी दिखाते हैं। सं० १३६१ का समय पृथ्वीराज और रासे के कल्पित कर्ता चंद के समय (१२५० सं०) से ११० पीछे ही का है। उस समय की प्रचलित भाषा कविता अवश्य मनन करने योग्य है। सं० १३६१ मेरुतुंग के इस चिंतामणि के संग्रह करने का समय है। कोई भी उद्धृत कविता उसने स्वयं नहीं रची है। कथाओं में प्रसंग प्रसंग पर जो कविता उसने दी है वह अवश्य ही उससे पुरानी है। कितनी पुरानी है इसका ऊर्द्धतम समय तो स्थिर नहीं किया जा सकता, किंतु प्रबंधचिंतामणि की रचना का समय उसका निम्नतम उपलब्धि काल अवश्य है। उससे पचास साठ वर्ष पहले यह कविता लोककथाओं में प्रचलित हो या ऐसे घिसे सिक्के यदि सौ दो सौ वर्ष पुराने भी हों तो आश्चर्य नहीं।

कुछ दोहे ऐसे हैं जो धार के प्रसिद्ध राजा भोज के चाचा मुंज के नाम पर हैं, उसके बनाए हुए कहे गए हैं। एक गोपाल नाम किसी व्यक्ति ने भोज से कहा था। दो चारणों ने हेमचंद्र को सुनाए थे। कुछ नवघन राजा के मरसिये हैं। सं० १३६१ के लिखित ऐतिह्य के अनुसार वे उस उस समय के हैं। इन कविताओं को शास्त्री ने मागधी और टानी ने प्राकृत समझा है।

सेवेल ने गणित से सिद्ध किया[1] है कि गुजरात के चावड़ राजाओं के संवत आदि मेरुतुंग ने अशुद्ध लिखे हैं और मिति, वार, नक्षत्र, लग्न सब गड़बड़ दिए हैं, उनका ऐतिहासिक मूल्य कुछ नहीं है। पुरानी घटनाओं के बारे में चाहे कितनी ऐतिहासिक गड़बड़ हो, अपने समीप के काल की घटनाएं तो मेरुतुंग ने, जहां तक वे प्रबंध की पुष्टि कर सकती हैं, प्रामाणिक ही लिखी हैं। सिद्धराज जयसिंह, कुमारपाल, हेमचंद्र, वस्तुपाल, तेजपाल का काल गुजरात में संस्कृत और प्राकृत की विद्या तथा जैनधर्म के प्रचार का स्वर्णयुग था। भोज के समय धारा में जो विद्या और विद्वानों की ज्योति चमकी थी वह दो ढाई सौ वर्ष पीछे पश्चिमी गुजरात में भी देदीप्यमान हुई। उस समय की बातें जैनों के गौरव की हैं और उनकी संरक्षा उन्होंने बहुत सावधानी से की है।

प्रबंधचिंतामणि के एक ऐसे हिंदी अनुवाद की आवश्यकता है जिसमें ऐतिहासिक और शाब्दिक टिप्पणियां हों। इस ग्रंथ की भाषा संस्कृत है किंतु वह संस्कृत भी देशभाषाओं की उत्पत्ति और विकास के समझने में उपयोगी है। इस समय की "जैन संस्कृत" में एक मनोहारिता यह है कि जैन लेखक गुजराती या देशभाषा में सोचते थे और लिखते थे संस्कृत में। परिशिष्ट पर्व १।७५ में हेमचंद्र लिखते हैं कि 'स कालं यदि कुर्वीत को (कां) लभेत ततो गतिम्'। मरने के अर्थ में 'काल करना' संस्कृत का मुहाविरा तो है नहीं, देश भाषा का है। मँजे छँटे संस्कृत के प्रेमी इसे बर्बर संस्कृत कहें किंतु यह

[1] राय० एशि० सोसा० जर्नल, जुलाई १९२०, पृ० ३२७ आदि।

जीवित संस्कृत है, इसमें भाषा-पन है। रुचि की तो बात है, किसी को कश्मीर की कुराई के काम से सजा अखरोट की लकड़ी का सुढंग तख़ता अच्छा लगता है, किसी को हरी कोंपलों से लदी फदी टेढ़ी टहनी। यहां कुछ शब्द और वाक्य इस संस्कृत के दिए जाते हैं; जिन पर * ऐसा चिन्ह है वे अन्यत्र शिलालेखों, काव्यों आदि में भी देखने में आए हैं—

छुप्तवान—छुआ।

*उच्छीर्षक—तकिया, ओसीसा (राजस्थानी, बाण की कादम्बरी)

करवडी—दोनों हाथ मिलाकर पानी पीने के लिये पात्र सा बनाना (करपुटी)

धवलगृह—प्रधान महल (धवल = जो जिस जाति में उत्तम हो, देशी, हेम० देशी नाममाला ५।५७, तुलसीदासजी के 'धवल धाम' का यही अर्थ है, सफ़ेद महल नहीं।

सर्वावसर—राजा का सब से मिलना, दीवान-ए-आम।

राजपाटिका—राजमार्ग।

* धर्मवहिका—(धर्म के लेखे की) वही।

छुट्टितः—छूटा।

झोलिका—झोली (यदि झोलिका संस्कृत में रूढ न हो तो यह भी देशी है, हेम० देशी० ३।१५६)

धाटीप्रपात—धाड़ा डालना।

*पञ्चकुल—पंचोली राजकर्मचारी (ना० प्र० पत्रिका, भाग १, संख्या २, पृष्ठ १३४)

उद्ग्राहणक—उगाही, उद्ग्राह्य—उगाह कर, उद्ग्राहित-उगाहा हुआ।

निरुद्धं—(अमुक काल से) लेकर, लगाकर (यहां तक)।

वहमान—चलता हुआ (सिंहलग्ने वहमाने)।

न्युञ्छन—न्यौछावर।

नृपतेः कः समयः ?—महाराज क्या काम कर रहे हैं ? कैसा मौका है ?

गुरूदर–तम्बू, खेमा।

*वसहिका–मंदिर। (पत्रिका, भाग १, संख्या ४, पृष्ठ ४५०)।

चिन्तायक–सम्हालनेवाला, रखवाला।

*दवरक,कटीदवरक–डोरा (डोर: कटिसूत्रं, हर्षचरित की टीका)

*रसवती–रसोई।

यमलपत्र–(राजाओं के आपस के) पत्र, मुरासिले।

भेटित:–मिला।

पादोऽवधार्यताम्–पधारो (पगु धारे—तुलसी०)।

*खत्तक–द्वार प्रांत का ताक़।

मदनपट्टिका–मोम की पट्टी, मैण(= मोम)का संस्कृतीकृत 'मदन'।

कचोलक–कटोरी, कचोला, कचोली (राजस्थानी)।

जीर्णमञ्चाधिरूढ:–टूटी खाट पर पड़ा हुआ (क्रोध में)।

सवाहटिका घट:–प्याले सहित घड़ा (वाहटी = वाटी या बाटकी = कटोरी)?

हक्कित–बुलाया गया, संबोधित।

दानी–दंड, राजकर, दाणी, दाण (मारवाड़ी)।

गण्डित–बीमार हुआ (पशु)।

कामुक–काम करनेवाले नौकर, (पंजाबी) काम्मा, (मारवाड़ी) कामेती, कामे (हर्षचरित) (= भृतका:) (टानी–well-wishers' शुभचिंतक)।

छिम्पिका–छीपी (वस्त्र रंगनेवाली जाति)।

निजतनक गृह–अपना घर (तणा, या तणु, या तणी–मारवाड़ी गुजराती 'का')।

व्याघुटन्ती–लौटती हुई, (मारवाड़ी) बावड़ना, (पंजाबी) बौढ़ना। व्याघुटितुं–लौटने को।

वलित:–लौटा, मुड़ा।

वासण–भांडे, रुपयों की थैली (वासणी)।

विहङ्गिका–वहँगी, कावड।

* कार्मण—जादू टोना, कामण (मारवाड़ी)।

उत्तेजितं निर्माप्य—उत्तेजित (शान चढ़ा हुआ) बनाकर, करवा कर।

संग्रहणी—वेश्या।

* पट्टकिल—पटैल, पट्टक (ज़िले) का प्रबंधक।

सेजवाली—पालकी।

स्थपनिका—गिरों रखना।

समारोपयन्—सौंप दिया।

पादौ त्यजसि—पांव छोड़ता है (डरकर भागता है)।

पोत—वस्त्र (मारवाड़ी पोतिया)।

आरात्रिकमुत्तार्य—आरती उतारकर।

तत्पट्टकं विपाट्य मुमोच—पट्टा फाड़कर (राजकर) छोड़ दिया।

* मारि—मारना, अमारि—अभय।

युगलिका—डाक की चिट्ठी (हरकारे दो साथ दौड़ते हैं, टोली)।

शकुनं भरितं विधेहि—शकुन भरो (= शकुन लो)।

पाषाणसत्कजातीय, सत्क = का।

* कारापक—करानेवाला।

* तापिका—तई (कड़ाही), तवेली (तापकोऽपूपादिकरणस्थानं तापिका काकपालिका यत्र तैलादिना भक्ष्याः पच्यन्ते, हर्षचरित पर संकेत टीका)।

वप्ता—बाप (देखो आगे ११)।

चतुःसर—चौसर, एक तरह का फूलों का हार।

फुल्लावयिष्यसि—फुलावेगा, फूल उपजावेगा।

* कर्तुं लग्नः—करने लगा।

धातुओं की अनंतता, आकृतिगण और उणादि की अक्षय निधि से संपन्न वे विद्वान जो मा धातु से डियां, डुलक, डौलाना प्रत्यय बनाकर मियां, मुलक, मौलाना सिद्ध कर लेते हैं या हमारे आचार्यदेशीय सुगृहीतनामा सर्वतंत्रस्वतंत्र सतीर्थ्य जो "जयी जय-

शीलौ ऊरू यस्याः सा जयोरूः = जोरू (स्त्री) " बनाते हैं, उन्हें इन उदाहरणों में कुछ चमत्कार न जान पड़े किंतु ये देशभाषा से गढ़े हुए संस्कृत के उदाहरण हैं। कितना ही बाँध दो, जल तो नीचे की ओर रिसता ही है। देशी शब्द और वाग्धारा संस्कृत के लिये अछूत न थी, संस्कृत में इतना लोच था कि उन्हें अपना लिया करती।

प्रबंधचिंतामणि में एक जगह 'आशिष' शब्द अकारांत काम में लिया है (मातुराशिषशिखाङ्कुरिताद्य—वस्तुपाल की रचना, पृ० २६९), 'श्वान' भी (सन्निहितश्वानेन शुण्डादण्डं निहत्य पृ० १८०, –कुक्करस्तु शुनिः श्वान इति वाचस्पतिः, शास्त्री)। जयमंगल सूरि 'चातुर्यता' लिखकर हिंदी के डबल भाववाचक का बीज बोते हैं (पौरवनिताचातुर्यतानिर्जिता, पृ० १५४)

कवि श्रीपाल ने सिद्धराज जयसिंह के सहस्रलिंग सरोवर की प्रशस्ति बनाई। उसमे यह श्लोक भी था—

कोशेनापि युतं दलैरुपचितं नोच्छेत्तुमेतन्क्षमं
स्वस्यापि स्फुटकण्टकव्यतिकरं पुंस्त्वं च धत्ते नहि ॥
एकोप्येष करोति कोशरहितो निष्कण्टकं भूतलं
मत्वैवं कमला विहाय कमलं यस्यासिमाशिश्रियत् ॥

(कमल मे कोश–डांडी और खजाना है, दल–पत्ते और सेना–है, उखड़ नहीं सकता, आप ही इसमें कंटक-कांटे और शत्रु–का उपद्रव है, कभी इसमें पुंस्त्व–पुंल्लिंग और पुरुषत्व–नहीं आता, और सिद्धराज जयसिंह का खड्ग अकेला, विना कोश–मियान-के, भूमंडल को निष्कंटक कर देता है, इस लिये लक्ष्मी कमल को छोड़कर उसीमें चली आई।)

कहते हैं कि इसमें रामचंद्र पंडित ने दो दोष निकाले, एक तो दल शब्द का अर्थ 'सेना' भाषा में होने पर भी संस्कृत मे नहीं है, दूसरे कमल शब्द पुंल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों ही है। नित्य क्लीव नहीं। इसपर राजा ने सब पंडितों से आग्रह करके (उपरुध्य) 'दल' शब्द को राजसेना

के अर्थ मे प्रमाणित करवाया[1] किंतु लिंगानुशासन में कमल की नित्यनपुंसकता नहीं थी, उसे कौन निर्णय करे ? इस लिये 'पुंस्त्वं च धत्ते न वा' (पुरुषत्व धारण करता है या नहीं) यह पाठ बदल दिया (प्रबंधचिंतामणि, पृ० १५५-६) । यों संस्कृत के क्षीरसिंधु में भी कोई कांजी का शीकर पहुँच जाता था[2] ।

विपर्यांतर होता है किंतु इस जैन संस्कृत की एक बात की चर्चा बिना किए आगे बढ़ा नहीं जाता । हिंदी में क्रियापदों में लिंग देखकर बहुत लोग चौंकते हैं, 'वह आता है, वह आती है' न संस्कृत में है, न लैटिन में, न अंग्रेजी फारसी आदि में; इससे बहुत से अन्यभाषाभाषी हिंदी सीखने से घबरा उठते हैं । क्रियापदों में लिंग के आने का बड़ा रोचक इतिहास है । धातु के शुद्ध क्रिया-वाचक रूप (संस्कृत तिङन्त) में तो लिंग नहीं होता, धातु से बननेवाले क्रियावाचक विशेषणों (वर्तमान या भूत कृदंत) में उनके विशेषण होने के कारण लिंगभेद होता है । हिंदी में केवल 'है' धातु का शुद्ध रूप है, उसमें लिंग नहीं है, और जो पद वर्त्तमान या भूतकाल बताते हैं वे धातुज वर्तमान या भूत विशेषण हैं [आता है = आता (हुआ) है, आती है = आती (हुई) है, करता है, करती है, आता था, आती थी, करता था, करती थी, सं० आयान् (आयान्त्) आयान्ती, कुर्वन् (कुर्वन्त्, करन्त्), कुर्वन्ती (करन्ती)] अवश्य ही आज्ञा, विधि क्रिया में लिंग नहीं है क्योंकि वे धातु के ही रूप हैं । इन धातुज वर्तमान और भूत धातुज विशेषणों का क्रिया के स्थान पर काम में आना भाषा के

---

१ 'दल' का संस्कृत में 'सेना' अर्थ जयसिंह और श्रीपाल ने कराया यह कहना पूजार्थ ही है क्योंकि संवत् १०८३ और ११०७ के बीच में उदयसुंदरी कथा का कर्ता सोड्ढल कायस्थ लिखता है 'ननु कथमसाध्योऽयमरातिरस्मद्दलानाम्' । [गायकवाड़ ओरिएंटल सिरीज़ नं० ११, पृ० ४]

२ क्या अब यह बंद हो गया है ? आंदोलन, संपादक आदि संस्कृत में अब क्या अर्थ देने लग गए हैं ? कई लोग हिंदी की छाया पर 'आवश्यकां प्रगटीकर्तुं' लिखते हैं और संस्कृत साहित्य संमेलन के कर्णधारों के व्याकरण-कषायितोदर मुख से बिना जाने ही कभी कभी 'इयं महिमा' निकल जाता है ।

विकाश में एक नया युग प्रकट करता है। वैदिक संस्कृत में भूत काल की क्रिया के तिङन्त रूप ही आते हैं, स गतः, तेन कृतम्, अहं पृष्टवान् आदि रूप अलभ्य नहीं तो अतिदुर्लभ हैं। पीछे संस्कृत में ये निष्ठा के रूप क्रिया का काम देने लगे, उनमें विशेषण होने के कारण लिंग भेद भी था। भाषा में बड़ी सरलता आ गई, सः (सा) चकार, अकरोत्, अकार्षीत् की जगह स कृतवान्, सा कृतवती, तेन कृतम्, तया कृतम् से काम चलने लगा। यों भूतकालवाची धातुज कृदन्त को (Past Participle), चाहे वह कर्तरि प्रयोग हो चाहे कर्मणि या भावे, विशेषण की तरह रख कर आगे अस्ति (होना क्रिया का वर्तमान काल का रूप) का अध्याहार करके भूतकाल का काम चलाया जाने लगा। आर्ष प्राकृत में कुछ भूतकालिक क्रियापद हैं, पीछे प्राकृत मे आसी (आसीत्-पंजाबी सी) को छोड़ कर भूतकालिक क्रिया मानो रही ही नहीं, इन्हीं त-वाले विशेष्य-निघ्न शब्दों से काम चला। यह तो पहली सीढ़ी भाषा की सरलता में हुई। संस्कृत और प्राकृत के रचनावैचित्र्य में इससे बहुत सहायता मिली कि वैदिक संस्कृत से प्राकृत और लौकिक संस्कृत में आते आते भूतकालिक क्रिया का काम विशेषण देने लगे, वैयाकरणों की भाषा में 'कृदभिहित आख्यात' हो गया। इसी तरह वर्तमान काल की क्रिया भी केवल अस्ति (होना धातु की) रह कर वर्तमान धातुज विशेषणों का क्रियापद का काम देने लगना दूसरी सीढ़ी है जो प्राकृत से अपभ्रंश या पुरानी हिंदी बनने के समय हुआ। उपजइ, उपजै, करइ, करै यह तो धातु के (तिङन्त) रूप हैं, इनमें लिंग भेद नहीं है, इनका इ (या मुखसुख का ऐ) संस्कृत 'ति' और प्राकृत 'इ' है। किंतु उपजता है (या उपजती है), करता है (या करती है) मे 'है' (अहै-अहइ-अस्ति) धातु का रूप है और पहले पद वर्तमान धातुज विशेषण (Present Participle) हैं (उत्पद्यन्-उत्पद्यन्त-उपजन्त : उत्पद्यन्ती-उपजन्ती--उपजती ; कुर्वन्-कुर्वन्त-करन्त-करत, कुर्वन्ती-करन्ती-करती)। इस विशेषण के वास्तव रूप के अंत में 'अन्त् 'अन्ती ही है जो संस्कृत और पुरानी हिंदी

दोनों में स्पष्ट है । उसीका अत, अती हो जाता है । करतो, उप-जतो में 'ओ' 'उ' की जगह है जो पुल्लिंग के कर्ता के एकवचन के चिह्न (संस्कृत 'स' या ':') का अपभ्रंश है ।

अब इस विषय को अधिक न बढ़ाकर प्रसंग की बात पर आते हैं कि इस काल की जैन संस्कृत में भी वर्तमान धातुज विशेषण का क्रिया की तरह काम देना पाया जाता है—यथागतं ब्रजामीत्यापृच्छ-न्नस्मि (प्र.चि.पृ ११), नृपस्तस्य सौधमलंकुर्वन् (पृ.५५) वन्दिनः श्रीसिद्धराजस्य कीर्तिं वितन्वन्तः (पृ. १८२) इत्यादि । देश भाषा में सोचनेवाले कवि ने उसकी छाया संस्कृत में पहुँचा दी और संस्कृत की स्थिर भाषा में भी समय की गति का प्रभाव पड़ा । वर्तमान धातुज विशेषण 'होना' क्रिया के वर्तमान के रूप के साथ वर्तमान क्रिया का काम देने लगा और भूतकालिक धातुज विशेषण (निष्ठा, था-थी, हतो-हती, भयो-भयी) के साथ भूतकाल का । 'था' और 'हता' अस् (अस्ति) के हैं, और भया भू (भवति) का ।

अब प्रबंधचिंतामणि का कुछ पानी[1] देखिए—

(१)

अम्मणिओ संदेसडओ तारय कन्ह कहिज्ज ।

जग दालिद्दिहि डुब्बिउं बलिबंधणह मुहिज्ज ॥

पाठांतर—पुरानी जैन पोथियों में ओ औ को उ उं लिखते थे । इसके धोखे में आकर छापनेवाले कहीं उ कहीं ओ छाप देते हैं । शुद्ध पाठ छंद की मात्राओं के अनुसार पढ़ना चाहिए । अउ और अइ पुरानी लिखावट है, इन की जगह ओ और ऐ पिछली, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है । इस लिये यहाँ पर अम्मणिअउ, संदेसडउ, डुब्बिअउ, पाठ उचित हैं, पीछे से लेखकों की मुखसुखानुकारी लिखावट से वे अम्मणिओ, संदेसडो डुब्बिओ हो गए होंगे जो कविता की हिंदी से बहुत दूर नहीं हैं । ऐसे ही जैन पोथियों में 'स्थ' 'च्छ' 'ज्झ' 'ब्भ' 'त' 'भ' सदृश लिखे हुए मिलते हैं, अतएव ऐसे पाठांतर कोई

---

१ हिंदी में पानी मोती की ओप के लिये ही आता है किंतु गणरत्नमहोदधि में वर्धमान ने एक उदाहरण 'भुजंगमस्येव मणिः सदंभाः' देकर मणि के लिये भी अंभः (पानी) का प्रयोग दिखाया है ।

पाठांतर नहीं हैं, पुरानी लिपि के ठीक ठीक न पढ़ने से उपजे हुए भ्रममात्र हैं। शास्त्री तथा टानी के संस्करणों में जो पाठांतर दिए हैं उनमें से हमने यहाँ कुछ दे दिए हैं,—नारायणह कहिज्ज, जगु, दुत्थिउ (दुच्छिउ)। परसवर्ण नियम वैकल्पिक होने से हमने कहीं कहीं अनुस्वार का प्रयोग किया है और ह्रस्व दीर्घ को अधिक बदला नहीं।

अर्थ—एक समय विक्रमादित्य रात को नगर में घूम रहे थे कि एक तेली को उन्होंने यह आधा दोहा पढ़ते सुना कि 'हमारा संदेसा तारनेवाले (तारक) कान्ह (पाठांतर में नारायण) को कहना'। राजा बहुत देर तक ठहरा रहा कि देखें आगे क्या कहे किंतु उत्तरार्द्ध न सुन कर लौट आया। सबेरे दरबार में बुलाए जाने पर तेली ने दोहा यों पूरा किया,—'जग दारिद्र में डूब रहा है, बलिबंधन को छोड़ दीजिए'। दैत्य बलि बड़े दानी थे जिन्हें नारायण ने बाँध कर पाताल में भेज दिया था। यदि तेली की प्रार्थना पर तारक कान्ह उसके बंधन छोड़ देते तो जग दारिद्र से उबर आता। बलि का अर्थ राजकर भी होता है। राजा कदाचित् यह समझ रहा हो कि तेली मेरी बड़ाई में कुछ कहेगा किंतु वह तो राजा को ताने से सुना रहा है कि हम तो दारिद्र में डूब रहे हैं और बलिबंधन (करों का बाझ) छुड़ाने की प्रार्थना करते हैं। टानी ने पूर्वार्द्ध का अर्थ किया है 'हमारा राजा वास्तव में नारायण कहलाने योग्य है', और उत्तरार्द्ध के लिये शास्त्री तथा टानी दोनों कहते हैं कि 'बलिबंधन नहीं छोड़ा गया'। संदेसडउ का अर्थ टानी ने राजा कैसे किया यह चिंत्य है। 'बलिबंधणह' को 'बलिबंध ण ह' पढ़ने से उत्तरार्द्ध का यह अर्थ हो सकता है कि 'बलिबंध न छोड़ा गया' किंतु कहिज्ज (कहीजै, कहजै, कहिए) के साथ से मुहिज्ज का अर्थ छोड़िए ही ठीक है, छोड़ा गया (मोचित) नहीं।

विवेचन—अम्मणिअउ-अम्हणिअउ, सं० अस्मानं (!). अस्मनीय (!); आगे **अम्हीणा**=हमारा आवेगा। 'ण' (सं० नाम्) संबंध कारक का है (प्रा० अम्हाणं), गीतों की पंजाबी में ण का ड हो गया है मैंडा, तैंडा। **संदेसडउ**-जैसे संस्कृत में अल्प, अज्ञात, कुत्सित, स्वार्थ में 'क' आता है वैसे पुरानी हिंदी में 'ड' या 'डल' आता है, जैसे, मोर-मोरडो,

नींद-नींदडली (मारवाड़ी), रत्ति (रात)-रत्तिड़ी, आदि । तारय-तारक (के) । कन्हु-कृष्ण, कन्ह, ब्रजभाषा का कान्ह । कहिज्ज-विधि, प्रेरणार्थक, और कर्म वाच्य में जहां जहां संस्कृत में 'य' आता है वहां 'ज' या 'ज्ज' आता है, जैसे, मरीजै (मरा जाय), करीजै (किया जाय, महाराज कहँ तिलक करीजै,– तुलसीदास), कहज्ये (राजस्थानी)-तू कहना, लिखीज गयो (मारवाड़ी) लिखा गया; दीजिए (दिज्जिय, दीजै, दिज्जै) पहले कर्मवाच्य प्रयोग था, पीछे कर्तृवाच्य हो गया । दालिद्दिहि-मिलाओ ग्राम्य दलिद्दर, दलिद्दरी । डुब्बिअउ-संस्कृत धातु ब्रुड है जो देशी से बनाया जान पड़ता है, हिंदी में डूबना, बूड़ना दोनों रूप हैं, व्यत्यय का उदाहरण है । दुत्थिअउ-दुःस्थित । मुहिज्ज-छोड़िए, छोड़ा जाय, देखो ऊपर, कहिज्ज । शास्त्री इसका अर्थ 'मोचित' (छोड़ा गया) करते हैं ।

(२)

कच्छ के राजा लापाक[1] को कपिलकोटि के किले में मूलराज ने घेर लिया । लापाक (लाखा) बहुत से बोधवाक्य कह कर रणभूमि में उतर आया और वीरता दिखा कर काम आया । उन बोधवाक्यों में से एक यह दिया है—

ऊग्या ताविउ जहिं न किउ लक्खउ भणइ निघट्ट ।
गणिया लब्भइ दीहडा के दहक अहवा अट्ठ ॥

---

१ यह कच्छ का प्रसिद्ध राजा लाखा फूलाणी [फूल का पुत्र था] जिसका नाम धनाढ्यता तथा उदारता के लिये प्रसिद्ध है। यह जाडेचा जाति के चंद्रवंशी यादवों में से था । मूलराज के हाथ से इसकी मृत्यु का काल पुरानी गुजराती कविता के अनुसार कार्तिक शुक्ल ८ शुक्रवार शक संवत् ६०१ [वि० सं० १०३६=ई० स० ६८०] है। कन्नौज के राठौड़ राजा जयचंद के पोते या पड़पोते सियाजी का मूलराज की कन्या से विवाह होना तथा इसके प्रत्युपकार में सियाजी का लाखा फूलाणी को मारना आदि कथा अप्रामाणिक है क्योंकि सियाजी के दादा या पड़दादा जयचंद का समय वि० सं० १२५० [ई० स० ११९३] है। उससे सियाजी का समय वि० सं० १३०० के पीछे आना चाहिए। उस समय लाखा तथा मूलराज को हुए तीन सौ वर्ष हो चुके थे। [देखो पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा का लेख 'लाखा फूलाणी का मारा जाना' समालोचक [जयपुर] जनवरी फरवरी, १९०४] । मूलराज का राज्याभिषेक वि० सं० १०१७ में होना प्रामाणिक है।

इस दोहे को यदि कुछ नई लिखावट मे बदल कर लिख दें तो यह इतना बेगाना नहीं जान पड़ेगा—

ऊग्याँ तापित जेहि न किय लक्खो भणै निघट्ट ।

गिणया लब्भै दीहडा कै दहक अहवा अट्ठ ।।

अर्थ—(जिस) उदय पाए हुए (पराक्रमी वीर) से (शत्रु) तापित न किए गए, न तपाए गए, तो कुशल लक्खा कहता है कि (उसे जीने के) गिने हुए दिन ही मिलते हैं, या दस या आठ । यदि वीरता न दिखा कर पड़ा रहे तो कितने एक दिन जी लेगा ? उम्र के थोड़े से दिन । एक न एक दिन तो मरना है ही । इससे अच्छा है शत्रुओं को लोहा चखा कर मर जाय ।

ऊग्या-उगे हुए से, उदित से, या उदित होने पर । **ताविउ**-तापित । **निघट्ट**-कुशल (हेमचंद्र, देशीनाममाला, खिग्घट्ट ४ । ३४) । शास्त्री कहते हैं निकृष्टः (!) । **दीहड़ा**-दिन, देखो (१) की टिप्पणी में सँदेसडो । पंजाबी ध्याड़ा (दिहाड़ा) = दिन, धन्न धिग्राडो धिन घड़ी (ऊमा भामा की कविता, मारवाड़ी) । **कै**-या, कै तापस तिय कानन जोगू (तुलसीदास) । **दह**-दस, मिलाओ चौदह । **अहवा**-अथवा । शास्त्री और टानी दोनों के अनुवाद अशुद्ध हैं ।

(३)

मालवा के राजा (परमार) मुंज का राजकार्य तो रुद्रादित्य नामक मंत्री देखता था, और मुंज किसी स्त्री पर आसक्त था । रात ही रात में चिरक्किल नाम के ऊँट पर चढ़ कर उसके पास बारह योजन चला जाता और लौट आता । कुछ दिन पीछे मुंज ने आना जाना छोड़ दिया तो उस खंडिता ने मुंज को यह दोहा लिख भेजा—

मुंज पडल्ला दोरडी पेक्खेसि न गम्मारि ।

आसाढि घण गज्जीइँ चिक्खिलि होसेऽवारि ।।

पाठांतर—जै गम्मारि ।

अर्थ—मुंज, (प्रेम की) डोरी ढीली हो गई है, खसक गई है, गंवार ! तू नहीं देखता कि आषाढ़ में घन (मेघ) गरजने पर अब (भूमि) फिसलनी हो जायगी ।

शास्त्री ने अर्थ किया है कि 'आषाढ़ का (आषाढीय) घन गरजता है' किंतु आषाढि का 'इ' अधिकरण कारक है, और गज्जीईं वर्तमान काल ही नहीं, किंतु वर्तमान धातुज विशेषण (गरजता हुआ) की भावलक्षण सप्तमी भी जान पड़ती है। आगे शास्त्री कहते हैं कि 'तेरे विरह से उपजनेवाले अश्रुओं की धाराओं से फिसलनी जमीन पर कैसे आओगे इति दिक्' किंतु यह दिशा नहीं, दिशाभूल है। सीधी बात यह है कि गर्मियों में डोरी सूख जाय या ढीली हो जाय तो बरसात में मुलायम होकर तनती है (आन गाँठ घुलि जात त्यों मान गाँठ छुटि जात—बिहारी) सो बरसात होने पर तो तुम्हें बिना आए सरेगा ही नहीं, नाक के बल आओगे, किंतु फिसलनी जमीन में ऊँट कैसे चलेगा? इसलिये अभी से आते रहो। बरसात में ऊँटों को चलने में कष्ट होता है जैसा कि एक मारवाड़ी दोहा है—

ऊँटां टेघां टरडां गुड गाडर गाडांह।
सारा दोहरा आवशी मैंडक बोल्यां नाडांह॥

(ऊँट, बकरे, बैल, गुड़, भेड़, और गाड़े, ये सब कठिनाई से आवेंगे मैंडकों के नाडियों (नलैयाओं) में बोलने पर। आं, आंह-कर्ता का बहुवचन, **दोहरा**- (सं०) दुष्कर, **बोल्यां नाडांह**-भाव लक्षण (सप्तमी) **खडल्ला**-(सं०) स्खलिता, (?) सूखी, खड़खड़ानी। **डोरडी**-डोरी, देशी से गढ़ा हुआ संस्कृत दवरकी, पद्धतियों में **डोरक**-संस्कृत ही बन गया है। बाण के हर्षचरित में 'डोर' पद आया है जिसका अर्थ संकेत टीकाकार ने 'कटिसूत्र' किया है। (देखो, ऊपर पृ. २७) **पेक्खिसि**-(सं०) प्रेक्षसे, पंजाबी में अब-ईख अभी देखने के अर्थ में है, तू वेख, वह वेखदा है। **गम्मारि**-गँवार। **आसाढि**-छंद के लिये 'इ' को दीर्घ पढ़ो। **गज्जीइं**-सं० गर्जति, या गर्जन्तु, ऊपर व्याख्या देखो। **चिक्खिलि**-कीचड़ली, फिसलनी, पंजाबी चिकली (संस्कृतपिच्छिल का व्यत्यय) हेम० देशी० ३। ११ चिक्खल्ल। **होसे**-मिलाओ, गुजराती मारवाड़ी होशे। **अबारि**= राजस्थानी अबार (= अब)।

(४)

तैलिंग देश के राजा तैलप (कल्याण के सोलंकी तैलप दूसरे) की छेड़छाड़ पर मुंज ने उस पर चढ़ाई की। मंत्री रुद्रादित्य ने मुंज

को रोका और समझाया कि गोदावरी के उस पार न जाना किंतु मुंज तैलप को पहले छै वार हरा चुका था, इसलिये उसने मंत्री की सलाह की उपेक्षा की। रुद्रादित्य ने राजा का भावी अनिष्ट समझ और अपने को असमर्थ जान चिता में जल कर प्राण दे दिए।[१] गोदावरी के पार मुंज की सेना छलबल से काटी गई और तैलप मुंज को मूँज की रस्सियों से बंदी करके ले गया। वहां उसे लकड़ी के पिंजड़े में कैद रक्खा। तैलप की बहन मृणालवती से मुंज का प्रेम हो गया। एक दिन मुंज काच में मुंह देख रहा था कि मृणालवती पीछे से आ खड़ी हुई और मुंज के यौवन और अपनी अधेड़ उमर के विचार से उसके चेहरे पर म्लानता आ गई। यह देख मुंज ने यह दोहा कहा—

मुंज भणइ मुणालवइ जुव्वण गयुं न झूरि।
जइ सक्कर सय खंड थिय तो इस मीठी चूरि॥

अर्थ—मुंज कहता है, हे मृणालवति! गए हुए यौवन को (का) सोच मत कर, यदि शक्कर के सौ टुकड़े हो जाँय तो वह चूरी (चूर्ण की हुई) भी मीठी होती है।

भणइ—भणै, कहै (सं० भणति)। मुणालवइ—स्वर ऋ कि 'उ' श्रुति देखो। जुव्वण—जोबन, यौवन। गयुं—गयो (कर्मकारक)। झूरना—पछताना, विलाप करना। जइ (सं० यदि, हि० जे)। सय—शत। थिय-वर्तमान 'था' का स्त्री-लिंग, सं० स्थित, थी; गुजराती थई। इस—यह।

बीकानेर के राजा पृथ्वीराज की रानी चांपादे ने पति को अपने धौलों (श्वेत केशों) पर पछतावा करते देख ऐसे ही दोहे कहे थे—नरां नाहरां डिगमरां पाकां ही रस होय,···नरां तुरंगां वन फलां पक्कां पक्कां साव (महिलामृदुवाणी)।

(५)

रुद्रादित्य तो मर गया था। वह उदयन—वत्सराज के मंत्री यौगंधरायण की तरह अपने स्वामी को बचाने के लिये पागल का वेश धर के नहीं पहुंचा किंतु मुंज के कुछ सहायक तैलप की राजधानी

१—देखो पत्रिका भाग १ पृ० ३२५-३१।

में पहुँच गए । उन्होंने बंदीगृह तक सुरंग लगा ली । भागते समय मुंज ने मृणालवती से कहा कि मेरे साथ चलो और धारा में रानी बन कर रहो । उसने कहा कि गहनों का डब्बा ले आती हूँ किंतु, यह सोच कर कि यह मुझ अधेड़ को वहां जाकर छोड़ दे तो न घर की रही न घाट की, उसने सब कथा अपने भाई से कह दी । वत्सराज की तरह घोषवती वीणा और वासवदत्ता को ले कर निकल जाना तो दूर रहा, मुंज बड़ी निर्दयता से फिर बाँधा गया । उससे गली गली भीख मँगाई गई । उसके विलाप की कविता में कई श्लोकों के साथ कुछ पुरानी हिंदी कविता भी है जिसकी यहां चर्चा की जाती है । टानी कहते हैँ कि छपी पुस्तक में कई प्राकृत काव्य इस प्रसंग के नहीं दिए हैँ जो एक प्रति में हैँ । संभव है कि उनमेँ कुछ और हिंदी कविता रही हो ।

सउचित्तहरिसट्ठी मम्मणह बत्तीस डीहियां ।
हियम्मि ते नर दड्ढ सीझे जे वीससइ थियां ॥

पाठांतर—चित्तइसट्ठी मणह, अस्सी ते नर. हरिसट्ठो मम्मणछत्ति, हिअम्मि, पंचासडीहिया, हियम्मी. सिय जे पत्तिज्जइ तांह, अम्मी सीजै, पंसिठवइ तियांह ।

अर्थ-सब (के) चित्तों को हर्षित करने (या हरने) के अर्थ प्रेम की बातें बनाने में चतुर स्त्रियों मे जो विश्वास करते हैं वे नर हृदय में बहुत दुःख पाते हैं । पाठांतरों से इस दोहे के कई रूपांतर हों यह जान पड़ता है । जे पत्तिज्जइ तांह (जो पतीजते हैँ उन्हें या उनमें) से जान पड़ता है कि पूर्वार्द्ध का अंत और तरह भी रहा हो । 'मम्मणह बत्तीस' का अर्थ कामदेव की बातें किया जाता है, किंतु पाठांतरों में छत्ति(स), पञ्चास, मिलने से संभव है कि यह बत्तीस भी संख्या हो और इसमें स्त्रियों के पुरुषों को मोहन करने की कलाओं की परिसंख्या हो, जैसे नाई को **छत्तीसा** या **छप्पन्ना** कहते हैं । छप्पन्ना का अर्थ, ५६ कलायुक्त नहीं, किंतु छै बुद्धि वाला (सं० षट्प्रज्ञ) है, षट्प्रज्ञ बुद्ध की उपाधि भी है ।

सउ—सब, राजस्थानी सै, सौ, मारवाड़ी सँग (हैं) । हरिसट्ठी—हर्ष + अर्थ, या हर (य) + सार्थ, राजस्थानी साठे = हाठे = आठे या आटे = वास्ते, मराठी साठीं = लिये । मम्मणाह—मन्मथ = कामदेव, या मथमथ करना, महीन महीन बातें (चोचले), ह = का। बत्तीस—बातों में। डीहियाँ—चतुरों (सं० दक्ष) में, गुजराती मारवाड़ी डाह्या, डीहि = दीर्घ, बढ़ीचढ़ी, मिलाओ सं० दीर्घिका (बावडी) = हिं० दिग्घी, डिग्गी डीघी। हियम्मि-सं० स्मिन् और हिं० में के बीच में 'म्मि' है। दड्ढ—दग्ध। सीझै—दुःख पाता है। राजस्थानी। सीझना = गलना या पकना (दाल का) सं० सिध्यति से है, संभव है कि यहां पाठ खीझै हो जो सं० खिद्यति से है। वीससइ-विश्वास।करते हैं। पत्तिज्जइ-पतीजते हैं, पतियाते हैं, प्रत्यय करते हैं, सहसा जनि पतियाहु (तुलसीदास), पंजाबी में पतियाने का अर्थ मनाना या रिझाना भी है। पंतिस्वइ-केवल पत्तिजइ का लेखप्रमाद है. अनुस्वार पर आगे टिप्पणी देखो। थियाँ, तियाँह—स्त्रियों में।

(६)

झाली तुट्टी किं न मुउ किं न हुयउ छारपुंज ।
हिंडइ दोरीबंधीयउ जिम मक्कड तिम मुंज ॥
[कुछ बदला हुआ रूप आधुनिक हिंदी का सा—
जलि टूटि किसि न मुआ, किम न हुयो छरपुंज ।
हिंडै डोरी बांधियो जिमि मक्कड तिमि मुंज ॥]

पाठांतर—झोली तुट्टि वि किं न कउ, मुयउ, छारहपुज, घरि घरि तिम्म नचावइ जिम, तुटवि, झोली त्रुटी, हूयउ ।

अर्थ—(आग में) जल कर या (फांसी की रस्सी) टूट कर (मैं) क्यों न मरा ? राख का ढेर क्यों न हुआ ? डोरी से बँधा हुआ जैसे बंदर घूमता फिरता है वैसे मुंज (फिरता है)। पाठांतरों में—झोली (फांसी का फंदा) टूट कर भी कुछ न किया,...घर घर वैसे नचाया जाता है जैसे···।

झाली-जलकर सं० ज्वल, राजस्थान में आग की लपट (ज्वाला) को झाल या झल कहते हैं। तुट्टी, तुटवि-तूट (टूट, सं० त्रुट) कर। मुअउ-मृत (हुआ), ऐसे ही हुयउ-हुआ। किँ-क्यों। छार—मात्रा के लिये छर पढ़ो, छार और राख दोनों भस्म के अर्थ में एक ही देशी पद के व्यत्यय हैं. सं० क्षार (खारा) से केवल सादृश्य है, राख से संस्कृत रक्षा बनाया गया है। हिंडइ—

सं० हिंडति, घूमता है, पंजाबी हंडना = भटकना, जैसे गलियाँ दा हंडना छड्डि देहूँ कान्हा, हुण होया तू घरबारी (गीत—कान्ह ! तुम गलियों का भटकना छोड़ दो, अब तुम गृहस्थी हो गए हो, हुण = सं० अधुना) दोरी—देखो ऊपर (१) । मंकड-सं० मर्कट । पुराने लेखक द्वित्व वाला अक्षर बताने के लिये दुबारा अक्षर (युक्त) लिखने के परिश्रम से बचने के लिये अक्षर पर अनुस्वार के सदृश बिंदी लगा दिया करते थे, वही कई शब्दों में लेखक-भ्रम से 'न' श्रुति हो गई, जैसे, सं० मर्कट-प्रा० मक्कड (लिखा गया) मंकड-भ्रम से मङ्कड, सं० खड्ग-प्रा० खग्ग-खंग, हिंदी खड्ग, ऊपर (५) में पतिज्जइ का पंतिजइ, सं० अत्यद्भुत-प्रा० अच्चब्भुअ-अच्चंभुअ-हिं० अचम्भा, इत्यादि ।

[पूर्वकालिक क्रिया के रूपों पर टिप्पण—संस्कृत वैयाकरणों ने त्वा (गत्वा, कृत्वा) को पूर्वकालिक की प्रकृति और य (सत्कृत्य, संगत्य) को धातु के पहले उपसर्ग आने पर विकृति माना है, किंतु पुरानी संस्कृत में यह भेद नहीं है । 'अकृत्वा' और 'गृह्य' दोनों मिलते हैं । वेद में 'कृत्वाय' मिलता है और पाली में 'छिन्वान' और 'कातून' । अतएव पांच तरह के रूप हुए, कृत्वा, कृत्वाय, कृत्वान, कर्तून, कर्य (कृत्य) । सूक्ष्म विचार से ये अव्यय नहीं किंतु 'तु' अंतवाले धातुज शब्द के तृतीया और चतुर्थी के रूपों के से जान पड़ते हैं, कृत्वा = कृतु से, करने से = कर कर, इत्यादि । प्राकृत में 'त्वा' बिलकुल नहीं है, 'य' है या पाली वाला 'त्वान' 'तून' जो 'तूण' या 'ऊण' होता हुआ मराठी घेऊन, म्हणून तक पहुँच गया है और मारवाड़ी मे करीनें, लर्ग्यानें में रहा है । पुरानी हिंदी अर्थात् अपभ्रंश में 'पंक्खिवि' 'बोल्लिवि' आदि आते हैं । वहां भी य = इय = इ है । हिंदी में 'य' 'इ' के रूप में आया है (आइ, सुनि = आय्य, सुन्य = * सं० आयाय्य श्रुण्य (!), अब 'इ' भी उड़ गया है, और कर धातु के पूर्वकालिक का अनुप्रयोग होता है जैसे खा कर = (पु० हिं०) खाइ करि = पंजाबी, खाई करी = सं० * खाद्य कर्य (!) ।

(७)

गय गय रह गय तुरग गय पायकडा निभिच्च ।
सग्गट्ठिय करि मन्तण उम्मुहुं (ता ?) रुद्दाइच्च ॥

पाठांतर—पायकडा, ठकुर रुदाइच्च, उंमुऊ, मतणु महना ।

अर्थ— (जिसके) गज, रथ, घोड़े और पैदल चले गए हैं, जो बिना नौकर के है (ऐसे मुझ को) हे स्वर्गस्थित रुद्रादित्य ! बुला ले । मैं तुम्हारी ओर मुंह किए हुए हूँ ।

गय-गत, 'गए' । **गय**-गज । **रह**-रथ । **तुरय**-तुरग । **पायकडा**-डा के लिये (१) में संदेसडो की टिप्पणी देखो । **पायक**-पैदल, पदाति, पदग, पाजी (पुराना अर्थ), जाके हनूमान से पायक (तुलसीदास) । **निभिच**-निभृत्य । **सग्गठिय**-स्वर्गस्थित । **करि**-कर (आज्ञा) । **मन्तण**- (आ) मंत्रण, बात करना, बुलाना । **उम्मुह**-उन्मुख । **रुद्दाइच्च**-रुद्रादित्य ।

(८)

मुंज गलियों में मांगता फिरता था । पहले कैदियों का यों अपमान किया जाता था । हाथ में उसके पडुआ (पत्तों का दौना) था । किसी स्त्री ने छाछ पिला दी और घमंड से सिर मटका कर भीख न दी । मुंज बोला—

भोलि मुन्धि मा गव्वु करि पिक्खिवि पडुगुपांइ ।
चउदसइ सइं छहुत्तरइं मुञ्जह गयह गयाई ॥

पाठांतर-धनवन्ती म गव्व पंडुरुआइ, पट्टकरुपाणि, पडुरुयाणि, पडुरुपाणि, चउदसइ, छउत्तर ।

अर्थ—हे भोली, हे मुग्धे, (पाठांतर में—हे धनवंती) मत गर्व कर, मुझे हाथ में पडुग लिए देखकर, चौदह सौ छिहत्तर मुंज के हाथी (चले) गए ।

मुंधि-सं० मुग्धा, मारवाड़ी में भोला मूर्ख को कहते हैं । यह 'न' भी सं० मुग्ध, प्रा० मुध्ध के द्वित्वसूचक चिह्न से बना है, देखो (६) में संकुड की व्याख्या । **पिक्खिवि**—देखकर । **पडुगु**-पडुआ, पत्तों का दोना, या भीख मांगने का मिट्टी का पात्र । **पांइ**-पाणि, हाथ । **सइं**-सै, सौ । **चउदसइ, सइ, छहुत्तरइं, गयाइं**-में इं कर्ताकारक का नपुंसक का बहुवचन (म० नि) है और **मुंजह, गयह**-में ह संबंध कारक का है ।

(९)

जा मति पच्छइ संपजइ सा मति पहिली होइ ।
मुंज भणइ मुणालवइ विघन न वेढइ कोइ ॥

अर्थ—जो मति पीछे सँपजती (होती) है वह मति पहली होय तो मुंज कहता है कि हे मृणालवति ! कोई विघ्न नहीं घेरे।

जा सा-जो मो (स्त्रीलिंग)। **संपज्जइ**-सं० संपद्यते, स + पद् = सँपजना, उद् + पद् = उपजना, निस् + पद = निपजना। **वेढइ**-घेरता है, पंजाबी बेढा, घिरा हुआ मकान जनाना, बेढ़ी पूरी—बीच में कचौरी की तरह भरी हुई। शास्त्री का अर्थ है—विघ्न को कोई नहीं बढ़ता (उठाता), टानी का 'कोई (मेरे मार्ग में) विघ्न नहीं डालता'।

(१०)

सायर खाई लंक गढ़ गढवइ दससिरि राउ।
भग्गक्खय सो भज्जि गय मुंज म करि विसाउ॥

अर्थ—सागर खाई, लंका गढ़ और दससिर राजा (रावण) गढ़पति—भाग्य का क्षय होने पर वही तहस नहस हो गया, (तो) हे मुंज, विषाद मत कर।

गढवइ-गढपति, मिलाओ चक्रपति-चक्कवइ-चकवै। **भज्जिगय**-टूट गया, 'भाँज गई' वाला √ भंज धातु; संस्कृत में भग्न का अर्थ टूटा या हारा होता है, उसी से हिंदी √ भागना बना, आगे देखो 'अह भग्गा अम्हत्तणा' आदि।

[**राजा मुंज, पुरानी हिंदी का कवि**—धार के परमार राजा मुंज (वाक्पतिराज द्वितीय, उत्पलराज, अमोघवर्ष, पृथ्वी-वल्लभ अथवा श्रीवल्लभ) ने कल्याण के सोलंकी राजा तैलप दूसरे पर चढ़ाई की और तैलप ने उसे हराकर निर्दयता से मारा—यह तो ऐतिहासिक सत्य है क्योंकि चालुक्यों के दो लेखों में इस बात का साभिमान उल्लेख किया है। मुंज के मंत्री का नाम रुद्रादित्य था, यह उसी के वि० सं० १०३६ (सन ९७९ ई०) के दानपत्र से प्रकट है। मुंज का प्रथम दानपत्र सं० १०३१ का है और उसकी मृत्यु उसके राजकाल में अमितगति से सुभाषितरत्नसंदोह के पूर्ण होने के संवत् १०५० और तैलप की मृत्यु के संवत १०५४ के बीच में होनी चाहिए। यों राजा मुंज विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के दूसरे चरण में था। (मुंज तथा भोज के कालनिर्णय के लिये देखो ना० प्र० पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग १, अंक २, पृष्ठ १२१-५, और गौ०

हौ० ओझा, सोलंकियों का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ७६-८०)। प्रबंधचिंतामणि में लिखा है कि मारे जाने के समय मुंज से कहा गया कि अपने इष्ट देवता का स्मरण करो तो उसने कहा 'लक्ष्मी गोविंद के पास चली जायगी, वीरश्री वीरों के घर चली जायगी किंतु यशःपुंज मुंज के मरने पर सरस्वती निरालंब हो जायगी'। चाहे यह मुंज की रचना न होकर उस समय के किसी कवि की हो किंतु इसमें संदेह नहीं कि वह विद्या और विद्वानों का अवलंब था। उसके समय में जैसा ऊपर कहा जा चुका है अमितगति ने सुभाषितरत्नसंदोह बनाया। सिंधुराज के कीर्तिकाव्य नवसाहसांकचरित का कर्ता पद्मगुप्त, धनपाल, दशरूप का कर्ता धनंजय और उसका टीकाकार धनिक उसके आश्रित थे। पिंगलसूत्र का टीकाकार हलायुध उसीके समय में था। प्रबंधों में और सुभाषितावलियों में मुंज के बनाए कई श्लोक दिए हैं और क्षेमेंद्र ने, जो मुंज के ५० वर्ष ही पीछे हुआ, उसका एक श्लोक उद्धृत किया है। अब यह प्रश्न उठता है कि जिन दोहों की व्याख्या हम कर चुके हैं वे क्या स्वयं मुंज के बनाए हैं? हमारे दसवें दोहे की व्याख्या में शास्त्री कहते हैं कि यह 'रिपुनारी वाक्य' है, किंतु इसमें मुंज ने अपने ही को संबोधन किया हो तो क्या आश्चर्य है? प्रबंधचिंतामणिकार के समय (सं० १३६१) तक तो यह ऐतिह्य था कि ये दोहे मुंज के हैं। जो श्लोक दूसरे कवियों के बनाए जाने गए हैं और इन प्रबंधकारों ने दूसरे कवियों या राजाओं के सिर मढ़ दिए हैं उनके कारण ऐसे प्रसिद्ध दोहों पर संदेह नहीं किया जा सकता। ऐसे दोहे दंतकथाओं में रह जाते हैं और दंतकथाओं को छोड़कर उनकी रचना के बारे में कोई प्रमाण नहीं है। बीकानेर के पृथ्वीराज ने राणा प्रताप को सोरठे लिख भेजे, मानसिंह को अकबर ने 'सभी भूमि गोपाल की' वाला दोहा लिख भेजा, नरहरि कवि का 'अरिहु दंत तृन गहहिं' वाला छप्पय अकबर के सामने पेश किया गया, 'ब्रह्म भनै सुन शाह अकब्बर' आदि दोहे बीरबल ही के हैं, तुलसीवाली उक्ति प्रत्युक्ति

खानखाना और तुलसीदास के बीच में हुई थी, इत्यादि बातों का ऐतिह्य को छोड़कर और क्या प्रमाण है ? वही प्रमाण यह मानने को है कि ग्यारहवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में, प्रसिद्ध विद्याप्रेमी भोज का चाचा, परमार राजा मुंज पुरानी हिंदी का कवि भी था। एक प्रमाण और है—हेमचंद्र के व्याकरण में जो अपभ्रंश के उदाहरण दिए हैं उनमें एक दोहा यह है—

बाह विछोडवि जाहि तुहुं हउं तेवँइ को दोसु ।
हिअयट्ठिय जइ नीसरहि जाणउं मुंज सरोसु ॥

अर्थात् बाँह बिछुड़ा कर तू जाता है (या जाती है), मैं भी वैसे ही (जाता हूँ या जाती हूँ) (इसमें) क्या दोष है ? हृदय (में) स्थित यदि (तू) निकले तो, मुंज (कहता है कि, मैं) जानूँ (कि तू) सरोष है । चौथे चरण का यह अर्थ भी हो सकता है कि 'तो मैं जानूँ कि मुंज सरोष है'। दूसरा अर्थ सीधा जान पड़ता है किंतु मुंज की कविताओं में नाम देने की चाल देखकर पहला अर्थ भी असंभव नहीं है। यह दोहा हेमचंद्र के पहले का है। इससे दो ही परिणाम निकाल सकते हैं। एक तो यह कि सूरदास (?) के—

बाह छुड़ाए जात हो निबल जान के मोहि ।
हिरदे से जब जाहुगे तो मैं जानों तोहि ॥—

इस दोहे के पितामह 'बाह विछोडवि' आदि दोहे का कर्ता राजा मुंज था और यह मुंज के नाम से अंकित दोहा सं० ११९९ (कुमारपाल की गद्दीनशीनी का समय जिसके पहले तो हेमचंद्र का व्याकरण बन चुका था) से पहले प्रचलित था। दूसरा यह कि यदि दूसरा अर्थ मानें तो जिस नायिका ने फिसलनी भूमि वाला दोहा (ऊपर, संख्या ३) मुंज को लिखा था उसीकी कृति यह भी हो। दोनों अवस्थाओं में या तो मुंज को कवि मानना पड़ेगा या इन दोहों को उसके समय का बना मानना पड़ेगा। कम से कम यह तो मानना होगा कि यह दोहा सं० ११९९ (रासो के कल्पित समय से

५० साल पहले) से किसी समय पहले की रचना है जिसे उस समय या तो स्वयं मुंज का रचित या किसी से मुंज को प्रेषित माना जाता था।]

(११)

भोज के यहाँ एक सरस्वतीकुटुंब आया जिसकी सूचना भोज के सेवक ने एक संस्कृत-देशी की खिचड़ी का श्लोक बनाकर दी—

बापो विद्वान् बापपुत्रोऽपि विद्वान्
आइ विउषी आईधुआपि विउषी ।
काणी चेटी सापि विउषी वराकी
राजन् मन्ये विज्ञपुञ्जं कुटुम्बम् ॥

बाप भी विद्वान् है, बाप का पुत्र भी विद्वान् है, मा पंडिता है, मा की बेटी भी विदुषी है, बेचारी कानी दासी है वह भी विदुषी है, राजन् ! मानता हूँ यह कुटुंब विज्ञों का पुंज है ।

बाप-पिता, यह देशी है किंतु हेमकोश के शेषकांड में संस्कृत माना गया है। प्रबंधचिंतामणि में इसका संस्कृतीकृत रूप वप्तृ (वप्ता—बीज बोनेवाला) भी आया है (पृ० ३०१) (देखो पत्रिका, भाग १ अंक ३ पृष्ठ २४६ टिप्पण १६)। **आई**-माता (मराठी)। **धुआ**-बेटी, सं० दुहितृ, पंजाबी धी। **विज्ञ**-विज्ञ।

पाठांतर-बप्पो, विद्वां, विधी, विदुसी, विज्ञ, विद्व, केवल लेखप्रमाद हैं।

(१२)

राजा ने उनमें से ज्येष्ठ की पत्नी को समस्या दी—कवण पियावउ खीरु ? उसने यह पूर्ति की—

जइ यह रावणु जाईयउ दहमुह इक्कु सरीरु ।
जणणि वियम्भी चिन्तवइ कवणु पियावउ खीरु ॥

पाठांतर-जेइ ।

अर्थ—जब यह रावण दस मुँह और एक शरीर वाला जनमा तो माता अचंभे में आकर सोचती है कि कौन (से मुख) को दूध पिलाऊँ ?

जाईयउ-जाये । **वियम्भी**-विस्मिता । **चिंतवइ**-चिंतवै । **कवणु**-कौन । **पियावउ**-पियाऊँ । **खीर**-सं० क्षीर, दूध, सिंधी खीर अथि ? दूध है क्या ? ।

(१३)

दूसरी समस्या दी—कंठि विलुल्लइ काउ ? इसकी पूर्ति कानी चेटी ने यों की—

काण वि विरहकरालिइं पइ उड्डावियउ वराउ ।
सहि अच्चभूउ दिट्ठ मइं कण्ठि विलुल्लइ काउ ॥

पाठांतर-अच्चिभू । 'अच्चब्भुअ' ठीक होता ।

अर्थ-किसी विरह से दुखिया स्त्री ने खिझकर बिचारे पति को उड़ा दिया । हे सखि ! मैंने यह अति अचरज देखा कि अब किसके कंठ का सहारा लिया जाय ? कलहांतरिता पहले तो पति को भगा चुकी है, अब मान टूटने पर पछताती है कि हाय ! किसके गले से लिपटूँ ?

काण-किसीसे या कैसे । करालिइं-करालिता (कराल हुई) से । पइ-पति । उड्डावियउ-उडावियो (गुजराती) । वराउ-वराक । अच्चभूउ-अत्यद्भुत, देखो ऊपर (६) । दिट्ठ-दीठो । मइं-मैं, कर्मवाच्य में कर्ता कारक, 'ने' लगाने से (मैंने) दुहरा कारक चिह्न लगता है । कण्ठि-कंठ में । विलुल्लइ-लटका जाता है, विलमा जाता है । काउ-किसके ।

ये दोनों दोहे कुमारपाल प्रतिबोध में कुछ पाठांतरों के साथ दूसरे प्रसंग में हैं । अगला लेख देखो । पिछला हेमचंद्र में भी है ।

(१४)

एक समय भोज रात को नगर में घूम रहे थे कि एक दिगंबर को एक गाथा पढ़ते सुना । बेचारा दिगंबर तो हो गया था किंतु उसकी हविश पूरी नहीं हुई थी । दूसरे दिन भोज ने उसे बुलाया और उसके मनसूबे जानकर उसे अपना सेनापति बनाया । पीछे उसी कुलचंद्र ने अनहिलपट्टन जीतकर जयपत्र प्राप्त किया । वह गाथा या दोहा यह है—

एऊ जम्मु नग्गुहं गिउ भडसिरि खग्गु न भग्गु ।
तिक्खां तुरियां न माणियां गोरी गलि न लग्गु ॥

अर्थ—यह जन्म अकारथ गया, सुभटों के सिर पर (मेरी)

तलवार नहीं टूटी, तीखे (तेज़) घोड़ों का उपभोग नहीं किया, न गोरी (युवती) के गले लगा।

पाठांतर-आउ (= आयु), निग्गहं, नग्गहं।

शास्त्री ने 'भडसिरि खग्ग' को एक पद लेकर अर्थ किया है 'भटश्रीखड्गः' ! निक्खा का अर्थ 'तीक्ष्ण स्त्रीकटाक्ष' किया है और 'तुरिया' का अर्थ 'तूलिकादि शय्योपकरण' (रामायण की 'तुराई')। टानी 'तिक्खा तुरिया' का अर्थ कर्कश-स्वर-युक्त बाजे (सं० तूर्य) करते हैं।

पउ-यह, ये। **नग्गुहं**-निग्रह (सं.)निष्फल, शास्त्री कहते हैं 'नग्नोऽहं' मैं नंगा या दिगंबर हूँ या निगृहीत ! **भड**-मारवाड़ी में वीर को अब तक 'भड' कहते हैं, विशेष कर नाम में। **माणियां**-उपभोग किया, (सं.) मंडन किया, मिलाओ मारवाड़ी—सेजा माणीज्यो, गोरी ने माणज्यो ढोला (गीत)। **गोरी**-नायिका के लिये साधारण शब्द, अब भी हिंदी पंजाबी राजस्थानी गीतों में आता है। हेमचंद्र ने भी इस पद के इस अर्थ का उल्लेख किया है।

(१५)

प्रबंधचिंतामणि की एक प्रति में उसी हाँसिलेवाले कुलचंद्र का (जो कवि भी था और जिसे सुंदर कविता के लिए भोज ने एक सुंदर दासी दी थी) एक दोहा और दिया है—

नव जल भरीया मग्गड़ा गयणि धडक्कई मेहु।
इत्थन्तरि जरि आविसिइ तउ जाणीसिइ नेहु ॥

अर्थ—मार्ग नए (बरसाती) पानी से भरे हैं, गगन में मेघ धड़कता है, इस अंतर (अवसर) में जो (तू) आवेगा तो नेह जाना जायगा। मुंज की रसीली तो बरसात में आना असंभव जानकर 'गँवार' नायक को पहले ही बुलाती थी, किंतु कुलचंद्र उस समय आने ही को नेह की परीक्षा मानता है।

भरिया-भरे हुए। **मग्गडा**-देखो संदेसडो (१)। **जरि**-जब, यदि, मारवाड़ी में जर, जरां अब भी समयवाचक जब के लिये आता है। **जाणीसिइ**-जाना जायगा, सं. 'स्य' को 'सि' में पहचानो।

(१६)

भोज ने सभा में बैठकर गुजरातियों के भोलेपन की हँसी की। वहीं पर उस देश के एक आदमी ने कहा कि हमारे गोआले भी आपके पंडितों से बढ़कर हैं। यह समाचार सुनकर गुजरात के राजा भीम (सोलंकी) ने एक गोपाल भोज के पास भेजा। उसने राजा को एक दोहा सुनाया जिसपर राजा ने उसे सरस्वती-कंठाभरण गोप की उपाधि दी।

भोय एहु गलि कण्ठुलउ भण केहउ पडिहाइ।

उरि लच्छिहि मुहि सरमितिहि सीम निबद्धी काइ॥

पाठांतर-भोज एव हु कण्ठलउ, स्तंभलउ, कंचुल, लच्छिहिं, काइं, सीम विहली कोइ; पाठांतरों में अधिकरण-कारकवाले पद बिना 'इ' के भी हैं

अर्थ—भोज! कह तो सही, यह (तेरे) गले में कठला कैसा भाता है? उर में लक्ष्मी और मुँह में सरस्वती के बीच यह सीमा बाँधी है क्या? विद्वान राजा के मुँह में सरस्वती और प्रभु के उर में लक्ष्मी—बीच में कठला क्या हुआ मानो उन दोनों के राज्य की मर्यादा जतला रहा है।

कंठुलउ-कंठलो, कठलो, गले का गहना। **केहउ**-केहो, कैसो। **पडिहाइ** सं. प्रतिभाति। निबद्धी-नि + बांधी। **काइ**--क्यों, किस लिये, क्या।

(१७)

एक समय भोज वीरचर्या से रात को नगर में घूम रहे थे कि उन्होंने किसी दरिद्र की स्त्री को यह दोहा पढ़ते सुना—

माणुसड़ा दसदस दसा सुनियइ लोय पसिद्ध।

मह कन्तह इक्कज दसा अवरि ते चोरिहिं लिद्ध॥

पाठांतर-माणसडी, दस दस हवइ, माणसड़ा [दस दस] दसइं देवेहि निम्मवियाइं, मुज्झ, नवोरहिं हरियाइं, ते चोरहिं हरियाइं, नवो।हिं लिद्ध। पाठांतरों से जान पड़ता है कि इस दोहे के दो पाठ हैं, एक में तो सिद्ध लिद्ध की तुक है, दूसरे में निम्मवियाइं हरियाइं की तुक है।

अर्थ-मनुष्य की दस दस दशाएँ लोक प्रसिद्ध सुनी जाती हैं, या दस दस दशा देवताओं ने बनाई हैं। अर्थात् जन्म भर में दस

दशा बदलती हैं, किंतु मेरे कंत की एक ही दशा (दारिद्र्य) है और (जो थीं) वे चोरों ने हर लीं (या और नौ औरों ने ले लीं)।

मिलाओ, हस्तिनां दशवर्षप्रमाणा दश दशाः किल भवंति (हर्षचरित की संकेत टीका)।

माणुसडा-संबंध कारक के 'णा' औ 'डा' के लिये देखो (१) डी-दसा एकवचन के लिये स्त्रीलिंग है, डा-बहुवचन। **हुवइ**-होती हैं, हवै, है। **सुनियइ**-कर्मवाच्य। **निम्मवियाइं**-निर्मित की गईं [सं॰ * निर्मापितानि] प्रेरणार्थक में प (व) के लिये देखो ना॰ प्र॰ पत्रिका, भाग १ अंक ४ पृ॰ ५०७ टिप्पणी ११। **मुज्झ**-मेरे, संस्कृत में तुभ्यं, मह्यं चतुर्थी हैं, चतुर्थी और षष्ठी का प्रयोग वैदिक भाषा में विना भेद के होता था, वैदिक भाषा में तुभ्यं षष्ठी के अर्थ में भी आया है—मम तुभ्यं च संवननं तदग्निरनुमन्यताम्। **मह**, **कंतह**-ह संबंध कारक का चिह्न है। **इक्कज** में ज 'ही' या 'केवल' के अर्थ में हैं, मारवाड़ी में अबतक आता है, जैसे, आप रोज काम, एकज झूंपो (झोंपड़ा)। **अवरि**-दूसरी, अपरी, (सं॰ *) टानी के अनुसार उपरि (ऊपर, अधिक) नहीं। **नवोरहिं**-नव + ओरहिं, हिंदी 'और' अपर (= अवर) से बना है, संवत् १६२२ तक पुराने पंडित अवर लिखा करते थे-अवर जब अइसा होय। तब -- (एक पत्र से)। **लिद्ध**-लब्ध, मारवाड़ी गुजराती, लीधो। **हरियाइं**-हरी गईं।

(१८)

मरते समय भोज ने कहा था कि श्मशान यात्रा के समय मेरे हाथ अरथी के बाहर रक्खे जायँ। भोज का यह वचन लोगों से एक वेश्या ने कहा—

कसु करु रे पुत्र कलत्र धी कसु करु रे करसण वाडी।
एकला आइवो एकला जाइवो हाथपग बे झाडी॥

अर्थ—अरे, पुत्र, स्त्री, कन्या किसके हैं? खेती बाड़ी किसके (या साग बाग किसका?) अकेला आना है और दोनों हाथ पाँव झटकार कर अकेला जाना है।

'कसु करु' का अर्थ टानी ने 'किसका हाथ' किया है और शास्त्री ने 'क्या करूँ'; 'पुत्र कलत्र' को दोनों ने संबोधन माना है, धी को दोनों भूल गए। **कसु करु**-किसका (सं॰ * कस्य केरकः)। **धी**-बेटी, देखो ऊपर (११) **करसण**-खेती, सं॰ कृषण (शास्त्री)। **आइवो**, **जाइवो**-आना है, जाना है (टानी)। **बे**-दो।

(१९)

सिद्धराज जयसिंह समुद्र के किनारे टहल रहे थे। एक चारण ने उनकी स्तुति में कविता कही जिसमें से एक सोरठा (?) दिया है—

को जाणइ तुह नाह चित, तु हालेइ चकवइ लउ।

लंकहले वाहमग्गु निहालइ करणउत्तु॥

पाठांतर-कौ, हालंतु, लंकाले, चक्कवइ लहु।

अर्थ—सिद्धराज को समुद्र की ओर निहारते देखकर चारण कहता है कि नाथ! तुम्हारे चित्त (की बात) को कौन जानता है? तू चक्रवर्ती (पद) पाने की चेष्टा कर रहा है; कर्ण का पुत्र (सिद्धराज) लंका फल के (लेने के लिये) वाह का मार्ग देख रहा है।

हालेइ-चलता है (सं. जंघालयति, शास्त्री) लउ-पाने को (सं० लब्धुं, शास्त्री)। लंकहले-लंकाफल का। वाह-जहाज़ों का चलना। निहालइ-देखता है (सं· निभालयति) पंजाबी में निहालना = प्रतीक्षा करना। करणउत्तु-कर्ण + पुत्र, राजस्थानी करणोत। पिता के नाम के गौरव से पुत्र को संबोधन करना चारण कविता (डिंगल) का प्रसिद्ध लक्षण है।

(२०)

सिद्धराज जयसिंह ने वर्द्धमानपुर (वढवाण) के आभीर राणक (राना) नवघन[1] पर चढ़ाई की और किले की दीवाल तोड़ कर उसे द्रव्य की वासणियों (थैलियों) की मार से मार डाला। नवघन की रानी के शोकवाक्य ये हैं—

सइरू नहीं स राणइ कुलाईउ नकुलाइ इ।

सइ सउ षङ्गारिहि प्राणकइ वइसानरि होमीइ॥

पाठांतर-सबरू, नहिं, राण, न कुलाई न कुलाई, सई, पाण, किन वइसारि होमिया।

अर्थ—हे सखियो, वह राणा भी नहीं है, (हमारे) कुल भी अब

---

१ गिरनार के चूडासमा यादवों की राजावली में कई नवघण नामक राजाओं का उल्लेख है, संभव है यह चौथा नवघन हो और खेंगार उसका उपनाम हो। फार्बस ने रासमाला में खेंगार को नवघन का पुत्र कहा है, खेंगार और नवघन नाम इन राजाओं में कई बार आए हैं।

नकुल (=नीचकुल) हैं, (मैं) सती खेंगार के साथ प्राणों को वैश्वानर (अग्नि) में होमती हूँ ।

सईर-सखियो, र बहुवचन । सइ-सती । प्राणकइ-प्राण कैं = को । वइसानरि-वैश्वानर में, राजस्थानी बैंसादर । होमीइ-होमती हूँ । होमिया-होमे ।

(२१)

राणा सव्वे वाणिया जेसलु वड्डउ सेठि ।

काहूं वणिजडु माण्डीयउ अम्मीणा गढ हेठि ॥

अर्थ—सब राणा तो (छोटे) बनिये हैं, जैसल (सिद्धराज जयसिंह) बड़ा भारी सेठ है, क्या वणिज (व्यापार) मांडा (फैलाया) है (उसने) हमारे गढ़ के नीचे । (बड़े व्यापारी के सामने छोटे का दीवाला निकल जाता है)

[टानी का उत्तरार्द्ध का अर्थ बनिए के पेशे की कैसे शोभा हुई ! हमारा गढ़ नीचे पड़ गया !]

सव्वे—सं० सर्व । वड्डउ-बड़ा । वणिजडु —देखो संदेसडउ (१) । मांडीयउ—देखो माणिया (१४) । अम्मीणा—हमारा, देखो (१) । हेठि-नीचे, पंजाबी हेठ, और जेठ सब हेठ (रामकहानी) ।

(२२)

तइं गडुआ गिरनार काहूँ मणिमत्सरु धरिउ ।

मारीतां षङ्गार एक सिहरु न ढालिउं ॥

अर्थ—हे गुरु (भारी) गिरनार (पर्वत) ! तैंने मन में कैसा कुछ मत्सर धारण किया कि खंगार के मारे जाते समय (अपना) एक शिखर भी न गिराया (जिससे शत्रु कुचले जाते या अपने स्वामी के दुःख में तेरी सहानुभूति जानी जाती, जैसे कि शोक में भूषण उतार दिए जाते हैं)

तइं—तैं, तैंने । गडुआ—(सं-गुरुक), भारी । मारीतां—मारे जाते हुए (भाव लक्षण) । सिहर—शिखर । ढालिउं—ढाल्यौ, ढलकाया ।

(२३)

जैसल मोडि मवाह वलि वलि विरूप भावीयइ ।

नइ जिम नवा प्रवाह नवघण विणु आवइ नहि ॥

पाठांतर—चल्य भाजीयइ, नवघण विन आवै नहि ।

अर्थ—जैसल (जयसिंह) का मर्दन किया हुआ मेरा वास फिर फिर विरूप जान पड़ता है, जैसे नदी में नया प्रवाह बिना नवघन (नए मेघ, पक्ष में राणा नवघन) के नहीं आता ।

'जैसल मोडि मवाह' का अर्थ टानी ने किया है 'जैसल, आँसू मत बहाओ' । शास्त्री का अर्थ भी संतोषदायक नहीं । यह अर्थ भी हो सकता है कि जैसल का मोड़ा हुआ (हमारी राज्यरूपी नदी का) प्रवाह बुरा लगता है, क्योंकि कहां नवघन से होनेवाला नदी की बाढ का सुंदर प्रवाह और कहां दूसरे के पराक्रम से मोड़ा हुआ प्रवाह ? नवघन का अर्थ दोनों ओर लगता है ।

मोडि—मोड़ कर, मोंड √मद् । **मवाह**—मद् + वास, मेरा घर (शास्त्री), मेरे मत में यों पढना चाहिए जैसल-मोडिम-वाह, जैसल का मोड़ा हुआ वास या प्रवाह । **वलि वलि**—मुड़ मुड़ कर, फिर फिर । **नइ**—नदी, सुरवरनई (तुलसीदास) ।

(२४)

वाढी तो वढवाण वीसारतां न वीसरइ ।
सोना समा पराण भोगावह पइं भोगवीइ ॥

पाठांतर—वाटी तवउं वढमाण, सूना, तइं, भोगिव्या ।

अर्थ—हे वढवाण (वर्धमान) शहर ! तू (शत्रुओं से) काटा गया है तो भी भुलाने से भी नहीं भूला जाता, (मैं अपने) सोने के सदृश प्राणों को भोगावह (नदी) को भोग कराऊँगी (या हे भोगावह ! मैं तुम्हें उन्हें भुक्त कराऊँगी) ।

पूर्वार्द्ध का टानी का अनुवाद-उस (नवघन) का बढाया हुआ बढवाण (उसे) भुलाने से भी नहीं भूलेगा ।

वाढी-सं० √वृध के दोनों अर्थ हैं, बढना और काटना । **वीसारतां**-विसरना, सं० वि + √स्मर् । **समा**-बराबर । **भोगावह**-भोगावर्त नामक नदी (शास्त्री) । **पइं** = पै (को) या में ।

इन सोरठों में कहीं कहीं नवघन तथा खेंगार दोनों को एक ही मान लिया जान पड़ता है ।

(२५)

हेमचंद्र की माता के उत्तरकर्म के समय कुछ ढूंढियों ने विमान-

अंग का अपमान किया । इससे क्रुद्ध होकर हेमचंद्र मालवे में डेरा डाले हुए राजा कुमारपाल के पास आए और उदयन मंत्री ने राजा से उनका परिचय कराया । हेमचंद्र ने सोचा कि—

आपण पइ प्रभु होइअं कइ प्रभु कीजइ हाथि ।
कज्ज करिवा माणुसह बीजउ मागु न आत्थि ॥

पाठांतर—काज करेवा माणुसह ।

अर्थ—या तो आप समर्थ हो या (किसी) समर्थ को हाथ में कीजिए। मनुष्यों का कार्य (सिद्ध) करने के लिये दूसरा मार्ग नहीं है ।

आपण-अपने । पइ-पै, या । होइअ-होवे । कइ = कै = या । बीजउ-बीओ, दूसरा । मागु- मग्गु, मार्ग । आत्थि-अत्थि (सं० अस्ति) है, राजस्थानी त्यं आथ न साथ (= कुछ है ही नहीं)

(२६)

एक दिन हेमचंद्र कुमारपाल विहार-मंदिर में कपर्दी नामक पंडित के हाथ का सहारा लिए जा रहे थे । वहां पर नाचनेवाली के कंचुक की डोर पीछे से खैंचकर कसी जा रही थी । इसपर कपर्दी ने एक दोहे का पूर्वार्द्ध कहा और उसके ठहरते ही हेमचंद्र ने उसकी पूर्ति कर दी—

सोहग्गीउ सहि कञ्चुयउ जुत्त उत्ताणु करेइ ।
पुट्ठिहिं पच्छइ तरुणियणु जसु गुण गहण करेइ ॥

अर्थ—सुहागन को (या सुहाग को) भी सखियां कंचुक के युक्त (साथ) उत्तान (ऊँचा) करती हैं; जिसका तरुणिजन पीठ से पीछे से गुणग्रहण करती है । जिसके गुणों का पीछे से ग्रहण (वर्णन) किया जाय वह अवश्य ऊँचा (बड़ा) होता है ।

गुण = डोरी और सद्‌गुण दोनों । सोहग्गीउ-सौभाग्यवती भी (हिं० सुहागन) । पुट्ठिहिं-पीठ से, पुट्ठे (पूठ) से, (सं. पृष्ठ) ऋ की उ-श्रुति पर ध्यान दो, पीठ पीछे (हिं०) पूठपीछे (रा०) महाविरा है । पच्छइ-पाछे (मारवाड़ी) । करेइ-करै ।

(२७)

सोरठ के दो चारण 'दूहाविद्या' में स्पर्धा करते हुए अणहिल-

पुर पाटन में आए। शर्त यह थी कि जिसकी रचना की हेमचंद्र व्याख्या करें वह दूसरे को हरजाना देवे। एक ने हेमचंद्र से मिलने पर यह सोरठा पढ़ा—

लच्छिवाणिमुहकाणि एयइ भागी मुह भरउं।
हेमसूरि अच्छीणि जे ईसरते पण्डिया॥

अर्थ—इस भागी (भाग्यवान हेमचंद्र) के मुख में भरे (स्थित हेमचंद्र के नेत्र) लक्ष्मी और सरस्वती दोनों के मुखवाले (= युक्त) हैं, जिसपर वे कुछ भी प्रसन्न हो जाते हैं वे पंडित हो जाते हैं।

यह अर्थ कुछ खैंचकर किया गया है क्योंकि सोरठा स्पष्ट नहीं है। शास्त्री ने एक पाठांतर का दूसरा अर्थ दिया है जो बिलकुल ऊटपटांग है। "लक्ष्मी कहती है कि ये यति (ए यइ) वाणी को मुख में रखनेवाले हैं, इस लिये (सौत की ईर्ष्या से) मैं मरती हूँ। तो हेमसूरि से छिपे छिपे (हेमसूरि आ छाणि) वे भाग गए, इस लिये जो ईश्वर (समर्थ) हैं वे पंडित हैं, पंडित लक्ष्मीवान् नहीं"।

पाठांतर-एयइ, मरउ, सूरिआ छाणि।

लच्छिवाणिमुहकाणि-मुखक (सं०) = प्रभृति, आदि। एयई-यह, ऐसा। भरउं-भर्यो। ईसरते-ईषद्रते ? (सं.) कुछ भी प्रेम करते हुए। छाणि-(सं॰ छन्न छाद्य ?) छिपकर, राजस्थानी-छाने।

(२८)

वह चारण तो बैठ गया। इतने में कुमारपालविहार में आरती के समय महाराज कुमारपाल आए और उनके प्रणाम करने पर हेमचंद्र ने उनकी पीठ पर हाथ रक्खा। इतने में दूसरे चारण ने कहा—

हेम तुहाला कर भरउं जांह अच्चंपभू रिद्धि।
जेवं पह हिठा मुहा तांह ऊपहरी सिद्धि॥

पाठांतर-जिंह अब्भुयरिद्धि, जे चंपइ हिठा मुहा तीह ऊवहरी सिद्धी।

अर्थ—हे हेम, तुम्हारा हाथ जिन पर भरा (रक्खा) है उनके तो अचंभे की सी रिद्धि होती है और जिनका मुँह नीचा होता है (या जो नीचे मुख से [आपके पाँव] दबाते हैं) उन्हें आपने सिद्धि

उपहार में दी । यह अर्थ शास्त्री और टानी दोनों के अर्थ से भिन्न है, वे दोनों संतोषप्रदायक नहीं हैं। चारण कुमारपाल की अचंभे की सी संपत्ति को हेमचंद्र के पीठ पर हाथ रखने और सिद्धि के उपहार को नीचे मुँह से पैरों में प्रणाम करने के कारण मानता है। यह विरोधाभास भी हो सकता है कि मुँह नीचा और सिद्धि ऊँची (उपहरी)। कवि की इस अछूती उक्ति पर राजा प्रसन्न हुआ और उससे दोहा बार बार पढ़वाया। तीन बार पढ़कर चारण ने, शिवाजी के सामने भूषण की तरह, बे-सबरी से कहा कि क्या प्रति पाठ पर लाख दोगे? राजा ने तीन लाख दिए। कहानी अधूरी है, हेमचंद्र ने किसीको न सराहा। न मालूम उनकी होड़ाहोड़ी का क्या हुआ।

तुहाला-तुम्हारा. तुहाड़ा (पंजाबी) देखो (१) । जाँहि-जिसमें, जहां। अच्चंभ्भू-अत्यद्भुत, देखो (६), (१३)। जे चंपह-जो दबाते हैं (चरणों को), पगचंपी (राजस्थानी) पैर दबाना। जँव-जिनका। पह-पैरों पै। हिट्ठा-हेठा, देखो (२१)। ऊपहरी-उपहार दी गई (सं. उपहृता) या ऊपर की, ऊँची।

(२९)

जब कुमारपाल शत्रुंजय तीर्थ में गए तो वहां एक चारण को प्रतिमा के सामने यह सोरठा नौ बार पढ़ते देखकर उन्होंने नौ सहस्र दिए—

इकह फुल्लह माटि देअइ सामी सिद्धि सुहु ।
तिणि सिउं केही साटी भोलिम जिणवरह ॥

पाठांतर-देवइ सिद्धि सुदु...केहि साटि कटि (रि ?). रे मोलि(लि ?) म, तिखिसउं।

अर्थ—एक फूल के लिये, एक फूल की खातिर, स्वामी सिद्धिसुख (या सौ सिद्धि) देते हैं, इसी तरह हे जिनवर, आप किस लिये (इतने) भोले हैं? या जिनवर का इतना भोलापन क्यों है?। टानी ने तिखिसउं का अर्थ किया है 'यह निश्चित है (तन्निश्चितं !)। इस लिए जिनवर को कभी न भूलो' (भोलि म)।

माटि-लिये, खातिर। तिणि सिउं-उससे (इस कारण से), (सं. तस्मि-

अथवा, शास्त्री) इसी प्रकार से। केही साटी-किम लिये, देखो (४) किस बदले में। भोलिम-भोळापन।

(३०)

कुमारपाल का उत्तराधिकारी और भतीजा अजयपाल बड़ा निर्दयी था। उसने जैनों पर उतने ही अत्याचार किए जितनी उसके पूर्वज ने भलाइयाँ की थीं। उसने गिन गिनकर विद्वानों और प्रधानों को मारा। पंडित रामचंद्र ने सौ ग्रंथ बनाए थे, उसे तत्ते तांबे पर चढ़ा दिया। बेचारा यह दोहा पढ़कर दाँतों से अपनी जीभ काटकर वेदना से मर गया।

महिवीढह सचराचरह जिण सिरि दिह्ना पाय।
तसु अत्थमणु दिणे सरह होउत होइ चिराय॥

पाठांतर-जिणि सिरि दिन्ना, दिणमरसु, होइतु होहु, विराय।

अर्थ—पृथ्वी के पीठ पर जिसने सचराचर सब (भूमंडल) के सिर पर पाँव दिया उसी दिनेश्वर (सूर्य) का अस्त होता है, सच है, जो होना होता है वह देर से कभी न कभी भी होकर रहता है।

महिवीढह-महीपीठ (में या का), पीठ(सं०)-हिं० पीढा। सचराचरह—(में या का)। जिण सिरि दिह्ना पाय-का शास्त्री ने अर्थ किया है जिसने श्री दी प्रायः (!)। तसु-तासु। अत्थमणु-सं० अस्तमन, अँथवणो, आथणो (=अस्त), आथण (=सायंकाल), आंथूणी (=पश्चिम दिशा), राजस्थानी। होउत-भवितव्य।

चौथे चरण का टानी का अनुवाद—'होना पड़ता है और बहुत काल के लिये होगा'।

(३१)

सिद्धसेन दिवाकर को केतलासर ग्राम को जाते हुए एक वृद्धवादी मिला उसने रोककर कहा, विवाद करो। सिद्धसेन ने कहा, नगर में चलो, वहां पुरवासी मध्यस्थ होंगे। वृद्धवादी ने कहा, ये गोआले ही सभ्य हैं, येही निर्णय कर देंगे। सिद्धसेन ने संस्कृत में बहुत कुछ कहा, फिर वृद्धवादी ने एक गाथा पढ़ी जिसे सुन कर ग्वालों ने कहा तुम ही जीत गए, दूसरा कुछ नहीं जानता। वह गाथा यह है—

नवि मारीयए नवि चोरीयए परदारगमण निवारीयए ।
थोवा विहु थोवं दाइयए इम सग्गि टगमगु जाईयए ॥

अर्थ—न मारिए, न चोरिए, परदारगमन को छोड़िए, थोड़े से भी थोड़ा दान दीजिए, यों चटपट स्वर्ग जाइए ।

नवि–न + अपि । थोवा-थोड़ा (सं० स्तोक, हिंदी शब्द में वही 'ड' आया है, स्तोकक) । दाइयए-दीजिए । सग्गि-स्वर्ग में । टगमगु-चटपट, दगदगाते हुए ।

(२१ क)

प्रबंधचिंतामणि में जितनी पुरानी हिंदी की कविता थी उसका व्याख्यान हो चुका । दो प्रसंगों पर उसमें कुछ गद्य भी आया है और वहां की कथा रोचक है इस लिये उनका भी उल्लेख यहां किया जायगा । कुमारपाल के मंत्री साहू आंबड ने कुंकुण के राजा मल्लिकार्जुन को जीतकर उसके सिर के साथ और जो भेंट राजा के सामने रक्खी उसकी सूची में संस्कृत के साथ कुछ देशभाषा दी है । वह यह है—**शृंगारकोडी साडी** (शृंगारकोटि साड़ी), **माणिकउ पछेवडउ** (माणिक नाम पछेवड़ा = पक्षपट, दुपट्टा या ओढ़नी, राजस्थानी पछेवड़ा), **पापखउ हारु** (पापक्षय हार),…मौक्तिकानां **सेडउ** (सेडा ? = सेटक, सेर या लड़ी ?)[1]

[1] प्रबंधचिंतामणि की इबारत यह है–शृंगारकोडी साडी १ मणिकउ पछेवडउ २ पापखउ हारु ३ संयोगसिद्धि सिप्रा ४ तडा (मुडा ? = तथा ?) हेमकुंभा ३२ तथा मौक्तिकानां सेडउ ६ चतुर्दन्त हस्ति १ पात्राणि १२० कोडी सार्द्ध १४ द्रव्यस्य दंडः (पृ. २०३) । इसी प्रसंग के वर्णन में जिनमंडन के कुमारपाल प्रबंध (सं० १४९२) में तीन श्लोक दिए हैं जिनसे अर्थ स्पष्ट होता है—

शाटीं शृङ्गारकोटयाख्यां पटं माणिक्यनामकम् ।
पापक्षयकरं हारं मुक्ताशुक्तिं (= सेडउ ?) विषापहाम् ॥
हैमान् द्वात्रिंशतं कुम्भान् १४ मनुभारप्रमाणतः ।
षण् मूटकां (= सेडउ ?) स्तु मुक्तानां स्वर्णकोटीश्चतुर्दश ॥
विंशं शतं च पात्राणां चतुर्दन्तं च दन्तिनम् ।
श्वेतं सेतुकनामानं दत्वा नव्यं नवग्रहम् ॥
(आत्मानंद सभा, भावनगर का संस्करण पत्र ६१ पृ० १)

दूसरा प्रसंग यह है कि एक समय हेमचंद्र ने कपर्दि मंत्री से पूछा कि तेरे हाथ में क्या है ? उसने उत्तर दिया कि '**हरडइ**' (=हरडै, हर्र) । इसपर हेमचंद्र ने पूछा कि 'क्या अब भी ?' कपर्दी ने उनका आशय समझकर कहा कि नहीं अब क्यों ? अंत से आदि हो गया और मात्रा (धन) में अधिक हो गया । हेमचंद्र उसकी चातुरी पर बहुत प्रसन्न हुए । पीछे समझाया कि मैंने '**हरडइ**' का अर्थ 'ह रडइ' [= ह (कार) रडइ, रटति, रोता है] लेकर पूछा था कि क्या हकार अब भी रोता है ? कपर्दी ने उत्तर दिया कि पहले वह वर्णमाला में अंतिम था, अब आपके नाम में प्रथम वर्ण हो गया और कोरा 'ह' न रहकर ए कार की मात्रा से बढ़ गया, अब क्यों रोने लगा ?

समय-सूचक सारिणी ।

इस लेख में जिन ऐतिहासिक बातों का उल्लेख हुआ है उनका आगा पीछा समझाने के लिये उनके संवत् एक जगह लिख दिए जाते हैं—

विक्रम संवत्	घटना
९५० से १०००	राजशेखर का लिखा अपभ्रंश, भूतभाषा और शौरसेनी का देशविन्यास ।

पापक्षय किसी विशेष प्रकार के हार की संज्ञा थी क्योंकि सिद्धराज जयसिंह का पिता कर्ण (भोगी कर्ण) जब सोमनाथ के दर्शन करने गया तो उसने प्रतिज्ञा की थी कि पापक्षय हार, चंद्र, आदित्य नाम के कुंडल और श्रीतिलक नाम अंगद (बाजूबंद) पहनकर दर्शन करूं (वही प०४ पृ०२) 'सेड्ड' के अर्थ में संदेह रह जाता है किंतु कुमारपाल के राजतिलक के वर्णन में वहीं (पत्र ३४ पृ० १) में एक अस्पष्ट पंक्ति और है—'मुक्तानां सेतिका छिन्ना तस्य शीर्षे सफलिपका (?) संजाता राज्ञः समग्रैश्वर्यवृद्धिं सूचयति स्म' यहाँ सेतिका का अभिप्राय लड़ी से ही हो सकता है । संभव है कि यही अर्थ 'सेड्ड' का भी हो ।

कुंकुण की लड़ाई के लिये देखो ना०प्र०पत्रिका, भाग १ पृ० ३९९–४०१ ।

विक्रम संवत्	घटना
१०२९ से १०५० तक किसी समय	परमार राजा मुंज का राज्याभिषेक
१०५० से १०५४ तक किसी समय	मुंज की मृत्यु
,,	भोज का राज्याभिषेक
१०३६	मूलराज सोलंकी के हाथ कच्छ के राजा लाखा फूलानी का मारा जाना
११५०	सिद्धराज जयसिंह का गद्दी बैठना
११६२ (?) ११५० से ११९९ तक किसी समय	आभीर राणा नवघन की मृत्यु
११९९	सिद्धराज जयसिंह की मृत्यु
११९९	कुमारपाल का राज्याभिषेक
१२३०	कुमारपाल की मृत्यु
११९९ से १२३० तक किसी समय	हेमचंद्र के व्याकरण की रचना
१२४९	पृथ्वीराज की मृत्यु
१३६१	प्रबंधचिंतामणि की रचना

३—राष्ट्र का लक्षण तथा विचार।

[लेखक—पंडित प्राणनाथ विद्यालंकार, काशी।]

अंग्रेजी भाषा में राष्ट्र के स्थान पर स्टेट शब्द प्रचलित है। स्टेट् शब्द का व्यवहार अनेक अर्थों में होता है। स्वतंत्र रियासतों को स्टेट् नाम से पुकारा जाता है। प्रदेश या जनपद, जनसंख्या, एकता तथा संगठन इन चार अर्थों में स्टेट् शब्द का व्यवहार साधारणतया किया जाता है [१]।

महाशय वुड्रो विल्सन का विचार है कि 'किसी एक जनपद में रहनेवाले जन-समूह का नाम स्टेट् है, जो व्यवस्था तथा शांति के लिये संगठित हो [२]। थियोडोर वूल्जे का मत है कि स्टेट् राज्यनियमों के द्वारा संगठित उस जन-समाज का नाम है जो अपने अंगों के द्वारा एक विशेष भूमिभाग तक शासन करता हो [३]। महाशय हालैंड तो स्टेट् द्वारा उस जन-समूह का ग्रहण करते हैं जो किसी एक जनपद में रहता हो और बहुसम्मति के द्वारा राज्यकार्य चलाता हो [४]। प्रसिद्ध जर्मन राजनीतिज्ञ ब्लंट्श्ली राष्ट्र को सजीव मानता है और यही कारण है कि वह स्टेट् को मनुष्य समाज का विराट् रूप समझता है [५]। सारांश यह है कि योरुप के राजनीतिज्ञों के अनुसार स्टेट् शब्द प्रत्यक्ष तौर पर ऐसे मनुष्य-समूह का बोधक है जिसका प्रत्येक मनका राज्यनियम रूपी सूत में पिराया गया हो। प्राचीन आर्य्य लोग स्टेट् के स्थान पर राष्ट्र शब्द का व्यवहार करते थे। आश्चर्य्य का विषय है कि राष्ट्र शब्द भी स्टेट् शब्द के सदृश ही

---

१ एलीमेंट्स आफ पोलिटिकल साइंस, लीकाक, भाग १ अध्याय १।

२ वुड्रो विल्सन—दी स्टेट।

३ टी० वूल्जे—पोलिटिकल साइंस।

४ टी० ई० हालेंड—एलीमेंटस् आफ जुरिसप्रुडेंस।

५ ब्लंट्श्ली—दि थियोरी आफ दि स्टेट।

प्रदेश या जनपद, जनसंख्या, एकता तथा संगठन इन चार अर्थों को प्रगट करता है ।

जनसंख्या—ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है[१] कि 'राष्ट्राणि वै विशः' अर्थात् किसी एक जनपद में रहनेवाले, **राज्याधीन**, मनुष्य-समूह का नाम ही राष्ट्र है । **राज्याधीन** शब्द इस लिये लिखा कि 'विशः' शब्द प्रजा अर्थ में आता है प्रजा राजा की अपेक्षा रखती है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है । इसी प्रकार महर्षि व्यास ने 'जन-समूह' अर्थ में ही कई स्थानों में राष्ट्र शब्द का प्रयोग किया है । वे शांतिपर्व में लिखते हैं कि 'राजा का **राज्याभिषेक करना राष्ट्र का ही काम है**'[२] । 'सहायकों के साथ होते हुए या उनके बिना भी, राजा **राष्ट्र को यह कह दे** कि मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा'[३] । एक बार केकय प्रदेश के राजा ने एक राक्षस को कहा कि 'राष्ट्र सोता है तो भी मैं जागता रहता हूँ, तू मेरे यहां मत घुस'[४] ।

राज्याभिषेक करना राष्ट्र का ही काम है, राष्ट्र को यह कह दे, राष्ट्र के असावधान होने पर भी, इत्यादि वाक्यों में राष्ट्र का तात्पर्य एक मात्र भूमि नहीं हो सकता है । क्योंकि

---

१ 'तस्मै विशः स्वयमेवानमंत' इति राष्ट्राणि वै विशः राष्ट्राण्येवैनं तत्स्वय-मुपनमन्ति इति ।

——ऐतरेय ब्राह्मण, आनन्दाश्रम संस्करण, पृ० ९६ ।

२ राष्ट्रस्यैतत् कृत्यतमं यद्राज्ञोभिषेचनं । अनिन्द्रमबलं राष्ट्रं दस्यवो-भिभवंत्युत ।

——महाभारत, शान्तिपर्व, अ० ६५, श्लो० २ ।

३ ससहायोऽसहायो वा राष्ट्रमागम्य भूमिपः । ब्रूयादहं वो राजेति रक्षिष्यामि च वः सदा । महा., शान्ति., अ० ६५, श्लो० २५ ।

४ राष्ट्रे स्वपिति जागर्म्मि मा ममान्तरमाविश. ।

——महा. शान्ति. अ० ७७, श्लो० २३ ।

केकय राजा की यह कथा उपनिषदों में भी है । इसमें एक राक्षस उसके राष्ट्र में घुसना चाहता था । राजा ने कहा कि मेरे राज्य में न कोई चोर है, न कायर, न मद्यप, न अग्निहोत्र या यज्ञ न करनेवाला, न कोई व्यभिचारी है, व्यभिचारिणी तो कहां से हो ? मेरे यहां तू कैसे घुसेगा ?

भूमिसदृश जड़ वस्तु से क्या कोई कहेगा ? कैसे किसीका वह राज्याभिषेक करेगी ? सावधान तथा असावधान होना भी उसके लिये कुछ भी संभव नहीं। ये सब बातें मनुष्य-समाज में ही होती हैं। वही किसीका राज्याभिषेक कर सकता है, वही असावधान हो सकता है, और राजा भी उसीको कुछ कह सकता है। यदि मनुष्य-समाज में राष्ट्र शब्द का व्यवहार लाक्षणिक माना जाय और भूमि अर्थ में मुख्य, तो बड़ी गड़बड़ी मच सकती है। क्योंकि भूमि अर्थ में राष्ट्र शब्द का व्यवहार बहुत थोड़े स्थानों पर ही देखा गया है। उनमें भी कुछ न कुछ संदेह बना रहता है कि कहीं उसका दूसरा अर्थ न हो। सबसे बड़ी बात तो यह है कि ऋग्वेद, अथर्ववेद आदि अति प्राचीनतम ग्रंथों में राष्ट्र शब्द का व्यवहार मनुष्य-समाज के लिये ही प्रचलित था। 'मैं ही राष्ट्र हूँ'[1] 'सुवीर राष्ट्र'[2] आदि अथर्ववेद के वाक्यों में राष्ट्र का तात्पर्य मनुष्यों से ही है न कि भूमि से।

प्रदेश या जनपद—मनुष्य-समाज या जनसंख्या के सदृश ही राष्ट्र शब्द का प्रयोग कभी कभी प्रदेश या जनपद अर्थ में भी किया जाता था। शांतिपर्व में कुछ एक स्थानों में लिखा है कि 'कुरुप्रदेश का बड़ा जंगल तुम्हारा राष्ट्र है'[3] 'राष्ट्र में रहनेवाले नगर-निवासी समृद्ध हैं'[4] 'ग्राम, पुर तथा राष्ट्रों को जलाया'[5] उनके पुरों तथा राष्ट्रों को'[6] 'उपाय से राष्ट्र का भोग किया जा सकता

---

१ स अहमेषां राष्ट्रं स्यामि। अथर्ववेद। ३. १९. ४।

२ एषामहमायुधा संस्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि। अथर्व. ३. १९. ५।

३ हतशिष्टाश्च राजानः कृत्स्नं चैव समागतम्। चातुर्वर्ण्यं महाराज राष्ट्रं ते कुरुजांगलम्॥ महा. शांति अ ३७, श्लो. २३।

४ अगूढविभवा यस्य पौरा राष्ट्रनिवासिनः। महा. शां अ. ५७, श्लो. ३४।

५ ग्रामान् पुराणि राष्ट्राणि घोषांश्चैवानु वीर्यवान्। जज्वाल तस्य बाणाग्निश्चित्रभानुर्दिधिक्षया॥ महा. शांति. अ ४९. श्लो. ११।

६ तेषां पुराणि राष्ट्राणि गत्वा राजन्नुदुष्कृत। महा शां. अ ३९, श्लो० ४२—४३।

है'[1]। इन वाक्यों में आए हुए राष्ट्र शब्द के अर्थ का यदि पता लगाया जाय तो स्पष्ट हो सकता है कि राष्ट्र शब्द का तात्पर्य उस जनपद तथा प्रदेश से है जिसमें मनुष्य रहते हैं। एकमात्र भूमि अर्थ में राष्ट्र शब्द का प्रयोग कदाचित् ही कहीं पर हो। प्राचीन लेखक जनपद तथा जनसंख्या इन दो अर्थों को अकेले राष्ट्र शब्द से प्रगट करते थे।

एकता तथा संगठन—यदि राष्ट्र शब्द के भिन्न भिन्न प्रयोगों को देखा जाय तो स्पष्ट हो सकता है कि स्टेट् शब्द के सदृश ही राष्ट्र शब्द भी एकता तथा संगठन की अपेक्षा रखता है। अमरीका की छोटी छोटी रियासतें यदि एक दूसरे से अलग हो जायँ तो अमरीका एक स्टेट् नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार संगठन के छिन्न भिन्न होते ही राष्ट्र नाश को प्राप्त हो जाता है। प्राचीन काल में राज्य कर के अधिक बढ़ने पर,[2] राजा के प्रमादी होने पर,[3] प्रजा के उच्छृंखल हो जाने पर,[4] पुराने राजा के मर जाने और नये राजा के निश्चित न होने पर[5] राष्ट्र के नाश का भय लोगों को हो जाता था। इसीसे यह परिणाम निकलता है कि स्टेट् के सदृश ही राष्ट्र शब्द का व्यवहार भी संगठित व्यवस्थायुत समाज के लिये ही किया जाता था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि राष्ट्र शब्द का मुख्य प्रयोग राजनैतिक

---

१ अथ राष्ट्रमुपायेन भुज्यमानं सुरक्षितं। जनयत्यतुलां नित्यं कोषवृद्धिं युधिष्ठिर। महा-शां अ. ७१, श्लो० १६ १८।

२ ऊधश्छिन्द्यात्तु यो धेन्वाः क्षीरार्थी न लभेत् पयः। एवं राष्ट्रमयोगेन पीडितं न विवर्धते। महा. शां अ. ७१, श्लो० १६।

३ दुर्भिक्षमाविशेद्राष्ट्रं यदि राजा न पालयेत्। महा शां. अ. ६८, श्लो० २१।

४ अराजकानि राष्ट्राणि हतवीर्याणि वा पुनः। महा शां. अ. ६७, श्लो० ६।

५ इक्ष्वाकूणामिहाद्यैव कश्चिद्राजा विधीयताम्। अराजकं हि नो राष्ट्रं विनाशं समवाप्नुयात्। वाल्मीकिरामायण, अयोध्या० सर्ग ६७. श्लो ८।

अर्थ में ही रूढ़ था। किसी एक जनपद पर व्यवस्था के लिये संगठित, प्रभुत्वशक्तिसंपन्न, राजनैतिक तौर पर स्वतंत्र मनुष्य-समाज को ही प्राचीन काल में राष्ट्र नाम से पुकारा जाता था।

ऋग्वेद के ज़माने में जब प्रजा किसी एक व्यक्ति को राजा के तौर पर निर्वाचित कर शासन का काम उसके सुपुर्द करती थी, उस समय पुरोहित उसको यह कहकर आशीर्वाद देता था कि हे राजन् ऐसा काम करो जिससे सारी की सारी प्रजा तुमको ही चाहे और **तुमसे राष्ट्र च्युत न हो**[1]। तुम पर्वत की तरह स्थिर रहते हुए **राष्ट्र का धारण (शासन) करो**[2], **राष्ट्र के लिये ही काम करो**[3]। असत्य का परित्याग कर राष्ट्र का प्रबंध करो[4]। इसी प्रकार अन्य बहुत से स्थान हैं[5] जहाँ राष्ट्र शब्द का प्रयोग स्टेट् के ही अर्थ में किया गया है। अथर्ववेद में 'राष्ट्रभृत्य'[6] 'राष्ट्रभृत्'[7] 'बृहद्राष्ट्र' आदि शब्दों के प्रयोग के साथ साथ ऋग्वेद के सदृश ही लिखा है कि हे राजन्

---

१ आ त्वाहार्षमंतरेधि ध्रुवः तिष्ठ अविचाचलिः। विशस्त्वा सर्वाः वांछन्तु मा त्वद् राष्ट्रमधि भ्रशत्।

ऋ० म० १० अ० १२ सू० १७३ म० १।

२ इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वतः इव अविचाचलिः। इन्द्रः इव इह ध्रुवः तिष्ठ इह राष्ट्रं उ धारय। वहीं, म० २।

३ अभि राष्ट्राय वर्तय। ऋ० म० १० अ० १२ सू० १७४ म० १।

४ अनृतं वि विक्ष्वन् मम राष्ट्रस्य आधिपत्यं आ इहि। ऋ० म० १० अ० १२ सू० १२४ म० ५।

५ राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य। ऋग्वेद म० १० अ० ६ सू १०६ म० २। युवोः राष्ट्रं बृहत् इन्वति। ऋ० म० ७ अ० ५ सू० ८४ म० २। राष्ट्रं क्षत्रियस्य। ऋ० म० ४ अ० ४ सू० ४२ म० १।

६ ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा। अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय। अथर्व १९.३७.३।

७ अग्नं पश्ये राष्ट्रभृत्किल्बिषाणि। अथर्व १९८, २। दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते। महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति। अथर्व, ११०.१५। ये देवा राष्ट्रभृतः। अथर्व १३.१.३५।

८ बृहद्राष्ट्रं संवेश्यं दधातु। अथर्व ३.८.१।

तुम स्वस्थचित्त होकर **राष्ट्र का धारण करो**[1]। तुमको प्रजा राज्य के लिये चुने, तुम **राष्ट्र के शिरोमणि हो**[2], **राष्ट्र तुम्हारे साथ आवे**[3]। राष्ट्र शब्द का प्रयोग अंतर्जातीय शक्ति के राजनैतिक अर्थ में होता था और संगठन तथा एकतासंबंधी भाव उसके अंदर छिपा था। इसके बहुत से प्रमाण अथर्व वेद में विद्यमान हैं। दृष्टांत स्वरूप वहां लिखा है कि 'ब्राह्मण की गौ पकाने पर राष्ट्र की शक्ति तथा तेज नष्ट होता है,[4] जो राजा क्रोध में आकर ब्राह्मण को मारता है उसका राष्ट्र नष्ट होता है[5], और पानी में बही हुई नाव की तरह छिन्न भिन्न हो जाता है[6]।

यों स्टेट् तथा राष्ट्र शब्द के अर्थों में घनिष्ठ सादृश्य है। कदाचित् इसका मुख्य कारण यही हो कि प्राचीन आर्य्यों में अर्वाचीन युरोपियों के सदृश ही राष्ट्रीय जीवन विद्यमान हो और वे भी यूनानियों तथा रोमनों के सदृश ही राष्ट्र के उपासक हों।

---

१ राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः। अथर्व ३.१.३।

२ त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्चदेवीः। वर्ष्मराष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो विभजा वसूनि। अथर्व ३.४.२।

३ आ त्वागन्राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङ्विशां पतिः एकराट् त्वं विराज। अथर्व ३.४.१।

४ ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत्सा हि विजंगहे। तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा। अथर्व ५.१६.४।

५ उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति। परा तत्सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते। अथर्व ५.१६.१६॥

६ तद्वै राष्ट्रमास्रवति नावं भिन्नामिवोदकम्। ब्राह्मणं यत्र हिंसन्ति तद्राष्ट्रं दुच्छुनाः। अथर्व ५.१७.८।

४—कवि कलश ।

[लेखक—मुंशी देवीप्रसाद, जोधपुर ।]

"तुम्र तप तेज निहार कै, तखत तज्यो अवरंग"

—कवि कलश ।

हिंदी के किसी ग्रंथ में अब तक मैंने कवि कलश का हाल नहीं देखा है पर ख़ाफ़ीख़ां की फ़ारसी तवारीख़[1] और जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह के संस्कृत इतिहास अजितोदय[2] और राठौर दुर्गादास के पत्रों[3] में कवि कलश का कुछ हाल मिलता है, इन्हीं तीनों के आधार पर यह छोटा सा निबंध लिखा गया है। ख़ाफ़ीख़ां की तवारीख़ तो कवि कलश का उदय और अस्त बताती है। अजितोदय से मरहटा राज्य में उसके ओज और ऐश्वर्य की खबर मिलती है और दुर्गादास के पत्रों से इस असार संसार की उन्नतियों के परिणाम का पता लगता है। यों तो इस निबंध में बहुत सी त्रुटियां हैं परंतु बड़ी भारी त्रुटि यह है कि ऐसे बड़े कवि की कविता के उदाहरण इसमें नहीं हैं जो एक कवि के इतिहास में अवश्य होने चाहिएँ। उसके लिये मैंने दौड़ धूप तो बहुत की परंतु आधे दोहे और एक छंद को छोड़कर और कुछ न मिला। वह मिला तो सहज में ही मिल गया जैसा कि आगे लिखा जायगा।

ख़ाफ़ीख़ां की तवारीख़ से

मुहम्मद हाशिमख़ां ख़वाफ़ी ने जो ख़ाफ़ीख़ां के नाम से अधिक प्रसिद्ध है अपनी तवारीख़ के दूसरे भाग में लिखा है कि सेवा

१ यह तवारीख़ औरंगजेब के मरे पीछे हिजरी सन् ११२२ [संवत १७६७] में बनी है।

२ यह इतिहास भी महाराजा अजीतसिंह के पीछे उनके बेटे महाराजा अभयसिंह के राज्य में जगजीवन नामी मारवाड़ी पंडित ने बनाया है। ग्रंथ बड़ा है।

३ ये पत्र बीकानेर के दीवानों के दफ्तर में हैं।

(शिवाजी) जब कैद से भागा तो ऐसी फुरती और चालाकी से मथुरा में जा पहुँचा कि बादशाही हरकारों और गुर्ज़बरदारों में से जो उसके पकड़ने को हर तरफ़ दौड़ाए गए थे कोई भी उसके पास तक नहीं पहुँचा। मथुरा से वह भेस बदलकर और दाढ़ी मूँछ मुँडाकर अपने कम-उमर बेटे संभा और ४०।५० हरकारों और नौकरों के साथ जो सब मुँह पर राख लगाकर हिंदू फकीरों का रूप बनाए हुए थे इलाहाबाद के रास्ते से बनारस को रवाना हुआ। उसके पास जितने बढ़िया मोल के जवाहरात मुहरें और हून[1] थे उनमें से वह जो कुछ ले जा सका उनको उसने पोली की हुई लाठियों में भरकर बंद कर दिया और कुछ पुराने जूतों में सी लिया।

ये लोग अलग अलग रंग और रूप में गुसाँई और उदासी बनकर इलाहाबाद के रास्ते से बनारस जाते थे। एक एक कीमती हीरा और कई याक़ूत[2] मोम से लिपटे हुए हरकारों के कपड़ों में सी लिए गए थे और कुछ कई साथियों के मुँह में भी थे।

इस तरह चलते चलते वह एक मकान में पहुँचे जहाँ के फौजदार अलीकुली को गुर्ज़बरदारों और हुक्म के पहुँचने से पहले ही सेवा के भागने और गुर्ज़बरदारों के तैनात होने की ख़बर पहुँच गई थी। इस लिये उसने इन फ़कीरों की जमाअत के पहुँचते ही सबको कैद कर लिया और तफ़तीश[3] करने लगा।

एक दिन और एक रात वे सब लोग और बहुत से मुसाफ़िर भी कैद रहे। दूसरी रात आधी गुज़र चुकी थी कि सेवा अकेला थानेदार के पास जा पहुँचा और बोला कि "मैं सेवा हूँ, एक लाख से ज़ियादा कीमत के दो हीरे और याकूत मेरे पास हैं। जो तू यह जानता है कि मुझे जीता पकड़कर भेज दे या मेरा सिर काट कर

---

१ दक्खन का सुनहरी सिक्का जो ४। में चलता था [= हूणमुद्रा]

२ लाल।

३ खोज लगाने की कार्रवाई जो आज भी पुलिस करती है।

भेजे तो ये दोनों कीमती नग तेरे वास्ते नहीं रहेंगे। यह मैं हूँ और मेरा सिर है। नहीं तो हम सब मुसाफ़िरों को छोड़ दे।"

मुहम्मद कुली ने रोकड़ सौदे को इनाम की उधार उम्मेद से जो पूरी हो या न हो अच्छा समझकर वे दोनों अनमोल पत्थर ले लिए और सबेरे ही बहुत सी दबाने और धमकाने की 'तफ़तीश' के पीछे सब फ़क़ीरों और मुसाफ़िरों को छोड़ दिया जिसको सेवा ने नई ज़िंदगी पाना समझा।

जैसे कोई पँखेरू पिंजरे से छूटे वैसेही सेवा फ़ौजदार के जाल से छूटकर बनारस को चला और इलाहाबाद पहुँचा। पैदल चलने में वह सब जल्दी चलनेवालों से आगे निकलता था परंतु संभा के पाँव में छाले पड़ जाने से उसके पाँव में भी बेड़ी पड़ गई, इस लिये उसने कवि कलश को, जो पीढ़ियों से उसके बाप दादाओं का जो कभी बनारस में आए थे, पुरोहित कहलाता था और जिसके पास उनकी मुहर और दस्तख़त का लिखत था, ढूंढकर अपने बेटे को कुछ जवाहर और अशर्फ़ियों समेत सौंप दिया और कहा कि जो मैं जीता रहा और अपने मकान पर पहुँच गया तो अपने हाथ से तुझको ख़त लिखूँगा और तू मेरे लिखे हुए रास्ते और तरीके से संभा को लेकर मेरे पास आ जाना। नहीं तो मैं तुझे और इसे परमात्मा को सौंपता हूँ, पर लड़के के कहने और उसकी मा के लिखने से कभी अपनी जगह से मत हिलना। अपने भरोसे के पुराने ब्राह्मण को भी, जिसने कवि कलश का पता लगाया था, कई वर्ष का ख़र्च देकर संभा के पास छोड़ा और आप बनारस को चल दिया। जिस दिन वहाँ पहुँचा उसके दूसरे दिन तड़के ही दो घड़ी रात रहे नहाने और पिंडप्रदान करने के लिये गंगा के किनारे पर गया। अभी मूंडन और नहाने से निबटा भी नहीं था और कुछ अँधेरा भी था कि सेवा के भागने, हजूर से गुर्ज़बरदारों के पहुँचने और पकड़ धकड़ करने का गुल गपाड़ा हुआ। जब मैं (ख़ाफ़ीख़ां) सूरत बंदर में था तब बन्हा नामी एक ब्राह्मण ने,

जो यात्रियों की बंदगी करता था, कहा कि ज्योतिष वैद्यक और शास्त्र पढ़ने के लिये कंगाल ब्राह्मण, पास और दूर से, बनारस में जाकर वहाँ के किसी ब्राह्मण को गुरु बना लेते हैं, उससे विद्या पढ़ते हैं और सुबह शाम उसकी तरफ से गंगा किनारे जाकर दस्तूर के मुताबिक वहाँ आनेवालों की खिदमत करते हैं और उनसे जो कुछ मिलता है वह ज्यों का त्यों ले जाकर गुरु को दे देते हैं। चेलों को खुराक और पोशाक गुरु देता है। मैं भी बनारस में जाकर इसी तरह ३-४ बरस गुरु की खिदमत करता था और जो कुछ मिलता था गुरु को दे देता था। गुरु तंगी और तकलीफ में मेरी खबर लेता था। एक दिन जब कि कुछ अँधेरा था मैं गंगा पर गया तो एक आदमी ने मेरा हाथ पकड़कर मुट्ठी भर जवाहरात, अशरफियाँ और हून मेरे हाथ में दिए और कहा—मुट्ठी मत खोल और मुझे जल्दी स्नान करा दे। मैंने खुश होकर अपनी मुट्ठी कुछ खोली तो अशरफी और जवाहरात के सिवा और कुछ दिखाई न दिया। मैं जल्दी जल्दी उसको मुंडन और स्नान कराने लगा, अभी पूरा नहीं करा चुका था कि सेवा के वास्ते गुर्ज़बरदारों के पहुँचने और पकड़ धकड़ करने का कोलाहल मचा और जब तक मैं सँभलूँ वह आदमी जिसकी मैं खिदमत करता था फौरन मेरी आँखों के आगे से लोप हो गया। तब मैंने जाना कि वही सेवा था, मुट्ठी खोलकर गिने तो नौ जवाहरात, नौ अशरफियाँ और नौ हून निकले। मैंने फिर गुरु को सूरत दिखाना मसलहत न समझा और मैं सीधा सूरत में आ गया। यह मेरी हवेली उसी रकम से बनी है।

निदान सेवा बनारस से बिहार, पटना और चाँदा होता हुआ ज़मींदारों की विकट सरहदों में, जिनसे कौली[1] व्यापारियों और कासिदों के सिवाय हर किसीका निकलना मुश्किल है चला आता था और जहाँ कहीं पहुँचता था वहाँ अपने साथियों सहित नई सूरत बदल लेता था। इस तरह चलता चलता हैदराबाद

[1] वचन दिए हुए।

में पहुँचा और वहाँ के बादशाह अबदुल्लाह कुतुबुलमुल्क की मिलावट और फौज से उसके क़िलों को, जो बीजापुरवालों ने दबा रखे थे, उसके वास्ते जीतता हुआ राजधानी राजनगर में पहुँच गया[1] और कुछ दिनों पीछे एक ख़त कवि कलश की तरफ से लिखकर संभा का मरना मशहूर किया और बेटे के शोक में बैठ गया। आस पास के ज़मींदारों, कई अमीरों और राजपूतों ने जो दक्खन में तैनात थे और छिपे छिपे उससे लिखा पढ़ी किया करते थे, मातमपुरसी के ख़त भेजे। संभा की औरत जवान हो गई थी, उसने सती होना चाहा तो उसको बड़ी मिहनत और खुशामद से रोककर क्रिया कर्म की जो रीत रसमें होती हैं सब उसने अदा कीं। जब सूरत बंदर और उन तरफ़ों के हरकारों और अख़बार लिखनेवालों की लिखावटों से यह ख़बर बादशाह को पहुँची तो बादशाह ने फ़रमाया कि "खसकम जहां पाक" अर्थात् कूड़ा गुमा और जहान पाक हो गया। इस बात को ४-५ महीने भी नहीं गुज़रे थे कि संभा कवि कलश के साथ इलाहाबाद से आ पहुँचा और सेवा ने खुशी के ढोल दमामे खूब बुराये। उसकी औरत और पास के रहनेवालों ने उस बुरी ख़बर के मशहूर करने का सबब पूछा तो उसने कहा कि जो उस ख़बर के मशहूर करने से बादशाह को गाफ़िल और लड़के ढूँढने की तलाश से बेफ़िक्र नहीं कर देता तो दो महीनों की दूरी से रास्ते की पकड़ धकड़ देखते हुए लड़के का पहुँचना मुश्किल था। सन १०९१ हिजरी ता० २४ रबीउल-आख़िर (जेठ बदी १० वि० सं० १७३७) को सेवा मर गया। संभा ने उसकी जगह बैठकर कवि कलश ब्राह्मण को, जो उसके साथ इलाहाबाद से आया था, अपना दीवान और राज के कामों का मुख़्तार बनाया।

सन १०९१ हिजरी (वि० सं० १७३६-७) में शाहज़ादा

[1] शिवाजी दिल्ली से ता० २७ सफर सन् हिजरी १०७७ (भादों बदी १४ सं० १७२३) को भागा था और ६ महीने पीछे अपने घर पहुँचा।

अकबर, जो अपने बाप से बागी हो गया था, बादशाही फ़ौज से लड़ता भिड़ता भागता बगलाने के पहाड़ों और फ़रंगियों की सरहदों में होकर संभा के राज्य में राहेरी के पास आ पहुँचा[1]। संभा ने पेशवाई करके राहेरी के किले से तीन कोस पर अपने हाकिम के रहने की जगह में ठहराया और खर्च का बंदोबस्त कर दिया मगर उसमें शाहज़ादे का पूरा नहीं पड़ता था। इसपर एक दिन वहाँ के क़ाज़ी ने बेवकूफ़ी और खुशामद से शाहज़ादे के सामने संभा को कहा कि महाराज के दुश्मन पामाल हों। बादशाहज़ादे ने खफ़गी से क़ाज़ी को बेवकूफ़ कहकर संभा से कहा कि हमारे हजूर में ऐसी बातें कहना और सुनना तुमको अच्छा नहीं है। फिर इसके साथ ही बादशाही फ़ौज के आने की खबर मशहूर हुई इस लिये शाहज़ादा वहाँ ठहरना ठीक न समझकर जहाज में बैठकर ईरान को चला गया[2]।

सन् १०९५ (वि० संवत १७४०-१) में बादशाह ने संभा के मुल्कों में से बहादुरगढ़ गुलशनाबाद पर शाहज़ादे आज़मशाह को, राजगढ़ वगैरह पर खान फ़ीरोज़जंग को और खुद संभा पर मुकर्रबखां (शेख निज़ाम हैदराबादी) को भेजा। शेख निज़ाम ने परनाले का किला फतह करने के वास्ते कोल्हापुर के पास पहुँचकर संभा के पीछे जासूस लगाए। संभा ने उपद्रव करने में अपने बाप से आगे बढ़कर अपना नाम संभा सवाई रख लिया था और अब वह अपने असली मकान राहेरी को छोड़कर खेलने के किले में रसद वगैरह का बंदोबस्त करके बादशाही फौज से ग़ाफ़िल होकर मानगंगा के स्नान और सैल सपाटे के वास्ते संगमनेर की तरफ़ गया था। वहाँ कवि कलश ने बाग़ लगाया था और एक बड़ा मकान भी बनाया था जिसमें खूब चित्राम किया हुआ था। उसका जनाना

१ ता० ७ जादिउल अव्वल सन् १०९२, जेठ सुदी ९ सं० १७३८—मआसिर आलमगीरी, पृ. २०६।

२ ता० १८ मफर सन् १०९४, फाल्गुन बदी ४ संवत १७२९, ता० ६ फरवरी १६८२।

और कम उमर लड़का साहू और कवि कलश भी साथ था। स्नान के पीछे विकट जगह देखकर संभा वहीं उतर पड़ा और अपने बाप की चाल के खिलाफ़ शराब और भोग विलास में पड़ गया। मुकर्रबख़ाँ के हरकारों ने यह ख़बर उसको दी। वह कोल्हापुर से ४५ कोस जंगल झाड़ियां और आसाघाटे जैसे विकट घाटों में चलकर बड़ी मुश्किलों से २००० चुने हुए सवारों के साथ संभा तक जा पहुँचा। संभा के हरकारे दुश्मन के आने की ख़बर देते रहे पर उस ग़ाफ़िल और घमंडी ने ऐसे विकट रास्तों से दुश्मन के पहुँचने की ख़बरों को ग़लत समझकर उनकी ज़बानें काटने का हुक्म दे दिया, लश्कर तैयार करने और मोरचे बाँधने की कुछ फ़िक्र और तदबीर नहीं की।

जब मुकर्रबख़ां अपने भाई भतीजों, १०। १२ दूसरे रिश्तेदारों और २००। ३०० सवारों के साथ तलवारें खैंचे हुए संभा के सिर पर आ पहुँचा तब वक्त और काम हाथ से निकल चुका था। तो भी जितनी फ़ौज पास थी, और बहुत सी उसमें से छिप भी गई थी, उसीके साथ कमर और हथियार बाँधकर लड़ने को तैयार हुआ। उसका वज़ीर कवि कलश जो उसके सब मुसाहिबों में बड़ा बहादुर और नमकहलाल कहाता था, संभा को अपनी पीठ के पीछे रखकर कुछ नामी मरहठों के साथ लड़ने को आगे बढ़ा। लड़ाई शुरू होते ही एक तीर उसकी दाहिनी बांह में लगा जिससे हाथ बेकार हो गया और उसने घोड़े से गिर कर पुकारा कि मैं रहा। संभा जो भागने की फ़िक्र में था घोड़े से कूदकर बोला कि पानजी (पांडेजी) मैं भी रहा। ४। ५ मरहठे सरदारों के मारे जाने के पीछे संभा के बाकी आदमी भी भाग गए। कवि कलश पकड़ा गया। संभा मंदिर में जाकर छुप गया, ढूंढने से मिला और बेफ़ायदा हाथ पांव मारने लगा। आख़िर कई आदमियों को कटवाकर गिरफ़्तार हुआ। उसके साथ २६ मर्द, ८ बरस का बेटा साहू और २ औरतें, उसके रिश्तेदारों मुसाहबों समेत, पकड़े गए। सिर्फ़ उसका भाई रामराजा बचा जो किसी किले में कैद था।

सब कैदियों को बांधकर बाल खैंचते हुए मुकर्रबखां के हाथी के पास लाए। संभा ने उतनी सी ही फ़ुरसत में डाढ़ी मूँड़कर मुँह पर राख मलकर कपड़े बदल लिए थे। तो भी मोतियों की माला से जो कपड़ों में नज़र आई, और सवारी के घोड़े के पाँव में सोने की पायल होने से, वह पहिचान लिया गया और ख़ान ने उसको अपने हाथी पर बैठाया। बाकी को तौक़ और जंज़ीरें पहिनाकर हाथियों और घोड़ों पर सवार कराकर ख़ान बड़ी सावधानी से अपने डेरे पर लाया और उसने फ़तह का डंका बजाकर हजूर में हक़ीक़त लिखी, पर उसकी अरज़ी पहुँचने से पहले ही हरकारों ने यह खुशखबरी पहुँचा दी थी जिससे डेरे डेरे में खुशी होने लगी थी।

जब मुकर्रबखां अकलोज से दो कोस पर पहुँचा जहाँ बादशाह के डेरे थे तब बादशाह ने हमीरखां व कोतवाल को उसकी पेशवाई में भेजा। लाखों आदमी तमाशा देखने को जमा हो गए।

सब कैदियों को ईरान के दस्तूर के मुआफ़िक तख़्ता कुलाह[1] और हँसी ठट्ठ का लिबास[2] पहिनाकर बड़ी बड़ी तकलीफें देते हुए ऊँटों पर सवार करके बहुत ख्वारी और ख़राबी से लोगों को दिखाते हुए लशकर में लाये। नक्कारे बजने लगे और कई लाख हिंदू मुसलमान जो उस ज़ालिम के जुल्मों से जले हुए थे खुश हो गए।

कहते हैं कि उन ४।५ दिनों में जब कि मुकर्रबखां के पहुँचने की खबरें पहुँचती थीं, औरत क्या, मरद तक नहीं सोए थे और दो मंजिल तक खुश खुश पेशवाई को गए थे। रास्ते और आस पास के गाँव गाँव जहाँ कहीं खबर पहुँचती थी लोग खुशी से ढोल बजाते थे और जहाँ होकर ये लोग निकलते थे वहाँ के मर्द औरत छतों पर चढ़कर तमाशा देखते थे। लेने और पहुँचाने को भी जाते थे। कई दिनों तक दुनिया को रात शबेबरात की रात और दिन ईद का दिन हो गया था।

ग़रज इस ख्वारी और फ़ज़ीहती के साथ उन्हें दरगाह में (बाद-

१ कैदियों के पहिनने की टोपी। २ जिसको देखकर लोग हँसें।

शाह के सामने) लाए तो बादशाह दरबार किये बैठे थे, अमीर और सरदार सब जमा थे। उनको तख़्त के पास लाने का हुक्म हुआ। बादशाह देखते ही खुदा का शुक्र करते हुए तख़्त से उतर गए और नमाज पढ़ने लगे।

कवि कलश ने जो हिंदी शैर कहने में मौजूँ (तुली हुई) तबियत रखता था और उस वक्त जिसका तमाम बदन जख्मों से छिपा हुआ था और जिसकी आँखों और जीभ के सिवाय कोई अंग प्रत्यंग हिल भी नहीं सकता था, तो भी संभा की तरफ आँख का इशारा करके फौरन एक हिंदी शैर (दोहा) इस मज़मून का पढ़ा कि ऐ राजा ! तेरे देखते ही आलमगीर बादशाह को उतनी शौकत और हशमत के होते हुए भी तख़्त पर बैठे रहने की ताकत नहीं रही और बेअख़्तियार (अपने आपे में न रहकर) तेरी ताज़ीम के वास्ते तख़्त से उठ गया।[1]

बादशाह ने दोनों को कैदखाने में भेज दिया। कई खैरख्वाहों की यह राय थी कि उनको जान की अमानत देकर किलों की कुंजियाँ ले लें और फिर उनको किसी किले में कैद रखें। पर उनको तो यह यकीन था कि आखिर तो सूली होगी और कैद रहने में कुछ मज़ा नहीं है, तरह तरह की तकलीफें भुगतनी पड़ेंगी। इस वास्ते वे दोनों (संभा और कलश) जो चाहते थे बकते थे, बादशाह और बादशाही बंदों को बुरा भला कहते थे। इधर खुदा की मरज़ी भी ऐसी थी कि दक्खन का मुल्क उन लोगों (मरहठों) से पाक और साफ न होवे और बादशाह की बाकी उमर भी लड़ाइयों और किलों के लेने में पूरी हो जावे। इस लिये बादशाह अमानत देने और कुंजियाँ लेने पर राजी न हुए और फरमाने लगे कि किले तो जल्दी फ़तह हो जावेंगे। दोनों की बदज़बानी बंद करने के लिये उन्होंने उनकी ज़बानें

1 इस चमत्कारी दोहे के पिछले ही चरन कई बरस ढूँढते ढूँढते अकस्मात् एक दिन भट्ट नानूराम से मिले हैं—तुअ तप तेज निहार के तखत तज्यो अवरंग।

और आँखें निकालने का हुक्म दे दिया और वे इस तरह १०-११ आदमियों के साथ मारे गए[1]।

संभा और कवि कलश के कल्लों (चहरों) में भूसा भराकर दक्खन के सब शहरों और वस्तियों में बाजे गाजे से फिराने का हुक्म दिया और उसके आठ बरस के छोकरे और दूसरे आदमियों को जाँबख्शी करके गुलालबाड़ा[2] के भीतर रखने का हुक्म फरमाया और समझदार आदमी उसकी संभाल पर तैनात किए, उसको ७ हज़ारी मनसब बख्श कर उसके दीवान बख़शी भी अपने हजूर में मुकर्रर कर दिए। साँप को मारने सांप के बच्चे को पालने, आग को बुझाने और चिंगारी को रख छोड़ने का जो फल होता है वह बादशाह के मरे पीछे लगा। भेड़िये का बच्चा आदमियों में बड़ा होकर भी आखिर में भेड़िया ही होता है।

दूसरी कई औरतें जिनमें संभा की माँ और उसकी बेटी भी थीं कैद रहने के लिये दौलताबाद के किले में भेज दी गई।

अजितोदय से

जब दुर्गादास और शाहज़ादे अकबर के पहुँचने की खबर राजा शंभु को मिली तो उसने अपने दीवान कवि कलश से पूछा कि इन दोनों को जो आए हैं अपने देश में रखना ठीक है या नहीं। कवि कलश ने कहा कि महाराज एक तो दिल्ली के बादशाह का शाहज़ादा है दूसरा महाराजा अजीतसिंह का उमराव है, सो

---

१ मआसिर आलमगीरी में लिखा है कि जिस दिन संभा और कवि कलश को बादशाह के हजूर में लाये थे उसी रात को संभा की आँखें निकाली गई थीं, दूसरे दिन कवि कलश की जीभ काटी गई थी और वे दोनों २१ जमादिउल अव्वल सन् ११०० (चैत सुदी २ सं० १७४६ ता० ११ मार्च १६६० ई०) को कूरा गांव फतेहाबाद में तलवार से मारे गए थे जहाँ बादशाह का लशकर २१ जमादिउल अव्वल चैत बदी ८ सं० १७४५ ता० ४ मार्च सन् १६६० को पहुँचा था।

२ बादशाही डेरों के चारों तरफ की लाल कनात जो कई मील के घेरे में खड़ी की जाती थी और बड़े ईटार के कोट के समान होती थी।

इनको बहुत आदर सत्कार कर रखना चाहिए। इसमें आपका बड़ा यश होगा। महाराज ने कहा कि तुम अच्छी तरह से विचार करलो और जो तुमको अच्छा लगे वही करो। कवि कलश ने उनको बुलाकर झाड़ियों से छिपे हुए एक मकान में बड़े आदर सत्कार से रखा और खाने पीने कपड़े लत्ते का बंदोबस्त करके बहुत सा धन माल सोना रत्न और घोड़ा आदि दिया जिससे वे सुख पाकर कुछ समय तक वहाँ रहे (सर्ग १२, श्लोक २७। २८)।

फिर अकबर ने दुर्गादास से कहा कि इस राजा के राज में रहते बहुत दिन हो गए, अब तुम जाकर कहो कि हम मारवाड़ जाना चाहते हैं सो हमको विदा कर दें।

दुर्गादास ने जाकर कवि कलश से और कवि ने राजा शंभु से कहा। राजा ने शाहजादे को जवाहरात, बहुत घोड़े, दो हाथी, और रास्ते खर्च के वास्ते रुपये दिए और कवि कलश के बेटे गणपति की अफ़सरी में सेना भी साथ की।

दुर्गादास अच्छे ज्योतिषी से मुहूर्त्त पूछकर राजा से विदा हुआ। राजा कुछ दूर पहुँचाने को गया, फिर ये गणपति को साथ लेकर चले। मुकर्रबखां यह सुनकर अपनी और बादशाही फौज के साथ लड़ने को सामने आया। दुर्गादास ने अकबर से कहा कि अब आप मेरा लड़ना देखें कि मैं क्या करता हूँ। दक्खिनी लोग तो जो पहुँचाने को साथ आये थे बादशाही फौज को देखते ही लौट गए पर दुर्गादास अपने सरदारों के साथ मुसलमानी फौज पर जा पड़ा और उसको हथियारों से काटने छाँटने लगा। मुकर्रब खां अपने लोगों को मरा देखकर रण छोड़ भागा। दुर्गादास ने अपने खेत पड़े आदमियों को पहिचान पहिचान कर दाग़ दिया (दाह किया) और अकबर के पास जाकर कुल हाल अर्ज़ किया।

अकबर ने डरकर कहा कि इतने थोड़े आदमियों से मारवाड़ में नहीं पहुँच सकते, तुम जाकर फौज ले आओ तब तक मैं यहीं रहूँगा, जब तुम फौज ले आओगे तो मारवाड़ चलूँगा।

अकबर यह कहकर घोड़े पर सवार हुआ और राजा शंभु (संभा) के पास जाने लगा। दुर्गदास ने घोड़े को पकड़कर कहा कि हमसे ऐसा क्या दोष हुआ है कि आप हमको छोड़कर पीछे जाते हैं। आप हमारे मालिक हैं, हम आपके चाकर हैं जिन्हें आप बिना कसूर छोड़कर जाते हैं। हम लोगों में कुछ दोष निकालकर जाइए, यों इस परदेश में अपने चाकरों को छोड़ना वाजिब नहीं है। किंतु अकबर ने उन मुल्कों में बादशाही फौज ज़ियादा और अपने पास थोड़े आदमी होने से उसका कहना नहीं माना, दुर्गदास को खिलअत, घोड़े देकर बड़ी मेहरबानी से बिदा किया और आप शंभु (संभा) राजा के पास गया। उससे बिदा होकर जहाज में बैठा और हबशियां की विलायत में गया। दुर्गदास मारवाड़ में चला आया (सर्ग ११, श्लोक १ से १० तक)

मारवाड़ में कवि कलश के कुटुंबी और उनका पालन पोषण।

राठौड़ दुर्गदास के लिखे हुए कई पत्र दीवान बीलाड़े[1] के दफ़्तर में हैं। एक पत्र से ऐसा जाना जाता है कि संभा के पीछे जो आफ़त सेवा जी के घराने पर आई उसमें कवि कलश के घरवाले जो दक्खिन में थे किसी तरह जान बचाकर मारवाड़ में आ गए थे। मारवाड़ में भी (बादशाही) अमलदारी हो जाने से गड़बड़ मची हुई थी इस लिये दुर्गदास ने उन्हें उदयपुर में भेज दिया था। पर वहां भी नहीं बनी तो दुर्गदास ने उनके लिये १।।)रु० रोज मेड़ते के पर्गने पर करके बीलाड़े के उस समय के दीवान भगवानदास को सिफ़ारिश का ख़त मारवाड़ी भाषा में लिख दिया जिसका खुलासा यह है—

(अलक़ाब मामूली० के पीछे) अपरंच भट कवि कलश का

---

१ बीलाड़े में एक आईजी [माताजी] का मंदिर है वहां अखंड ज्योति की पूजा होती है। वहां के अधिष्ठाता महंत 'दीवान' कहलाते हैं। उनके यहां ऐतिहासिक पत्रों का बहुत बड़ा और उपयोगी संग्रह है जिसका हाल फिर कभी लिखा जायगा।

कबीला यहां आया था। यहां रखने का तो सबब (सुभीता) न हुआ उदयपुर भेज दिया था। वहां तो इनको हरामखोर[1] ठहराया सो किस्मत इनकी कि वहां नहीं बनी, जिससे १।।)रु० रोज़ीना मेड़ते[2] पर कर दिया है और ५०) की हुंडी यहां से व्यास नरोत्तम को भेजी है। इनके कबीलों को मेड़ते पहुँचा देना। जो इतने रुपये काफ़ी न हों और २५) तक खरच की ज़रूरत हो तो सरबरा (प्रबंध) करा देना। हम यहां से राज (आप) को भिजवा देंगे परंतु बहू बाई[3] उदयपुर में हैं, वहां से बुलाकर मेड़ते को गाड़ी कराकर साथी साथ देकर हर तरह से मेड़ते तक पहुँचती करना। लौटते हुए कागज से समाचार जल्दी देना। संवत् १७६२[4] असाढ़ सुदी १३।

कवि कलश की कविता।

मेरे पास २। ३ हजार कवियों की कविता संग्रह की हुई है। उसमें तो कवि कलश का एक भी छंद नहीं है। मिश्रबंधु-विनोद के दूसरे भाग के पृष्ठ १०१३ में एक कवित्त कवि कलश के नाम से दिया है। आधे दोहे का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

---

१ उस समय उदयपुर में राना अमरसिंह थे। इन लोगों को जो विपदा के मारे दक्खिन से शरणागत हुए थे हरामखोर क्यों ठहराया गया यह बात समझ में नहीं आती। वीरविनोद से भी इसका कुछ पता नहीं लगता।

२ मेड़ते की कचहरी या तहसील पर।

३ बहूबाई कौन थी यह भी समझ में नहीं आता। इसका अर्थ बहू और लड़की का भी होता है और जो बहूबाई एकही शब्द हो तो ऐसा अनुमान हो सकता है कि कवि कलश की बहू [स्त्री] ने शायद दुर्गादास को राखी बांधकर भाई बनाया हो जैसा कि राजपूताना में कायदा है और दुर्गादास ने भी इसी लिहाज़ से या कवि कलश की सहायता के बदले में उनके साथ यह सलूक किया हो।

४ यहां संवत् १७६२ मारवाड़ी है जो सावन बदी १ से लगता है और असाढ़ सुदी १५ को पूरा होता है और "टीपणे" अर्थात् पंचांग का संवत् चैत सुदी १ से ही लग जाता है। इस हिसाब से यह असाढ़ सुदि १३ संवत् १७६३ है।

अंग अरसोहैं छबि अधरन सोहैं,
चढ़ि आलस की भौंहैं धरे आभा रति रोज की ।
सुकवि कलश तैसे लोचन पगे हैं नेह,
जिनमें निकाई अरुणोदय सरोज की ॥
आछी छबि छाके मंद मंद मुसकान लागी,
बिचल बिलोकि तन भूषन के फौज की ॥
राजे रद मंडली कपोल मंडली में मानो,
रूप के खजाने पर मोहर मनोज की [1] ॥

---

१ संभा जी [नृप शंभू] की कविता भी कवि कलश की कविता से बहुत मिलती है । कदाचित् वह कवि कलश ने ही उनके नाम से की हो या उन्होंने कवि कलश से कविता करना सीखा हो जिससे मिलने की झलक आ गई है पर वह कविता अलग उनके हाल में ही लिखी जा सकती है । शिवसिंहसरोज में भूल से नृप शंभू को सोलंकी राजा लिख दिया है । वे राजपूत नहीं मरहठे थे ।

५—विदुषी स्त्रियाँ।

[लेखक—पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी, बी० ए०, अजमेर ।]

(१) अवंतिसुंदरी।

अवंतिसुंदरी राजशेखर की स्त्री थी। स्त्री के वर्णन में पति का वर्णन करना पड़ता है।

राजशेखर ने अपने को 'यायावरीय' अर्थात् यायावर ऋषि के कुल में उत्पन्न कहा है। जहां जहां काव्यमीमांसा में उसने अपना मत पुराने आचार्य्यों से भिन्न दिया है वहाँ अर्थशास्त्र के 'इति कौटिल्यः' 'नेति कौटिल्यः' के ढंग पर 'इति यायावरीयः' 'नेति यायावरीयः' आदि लिखा है। धनपाल ने तिलकमंजरी के आरंभ में उसे यायावर कवि कहा है। उदयसुंदरी के कर्त्ता सोड्ढल ने भी उसे यायावर कहा है। उसका प्रपितामह अकालजलद महाकवि था। मालूम होता है कि उसका नाम कुछ और था, 'भेकैःकोटरशायिभिः—' आदि चमत्कारी श्लोक पर से, जो सुभाषितावलियों में 'किसी दाक्षिणात्य' के नाम से दिया है और जिसमें अकालजलद पद आया है, उसका यह नाम पड़ा। ऐसे ही क्रीडाचंद्र, चंडालचंद्र, आदि कवियों के नाम पड़ गए हैं। चेदि देश का भूषण सुरानंद, तरल, कवि राज, आदि प्रसिद्ध कवि भी उसी यायावर कुल में हुए थे। राजशेखर का पिता दुर्दुक या दुहिक महामंत्री था और उसकी माता का नाम शीलवती था।

राजशेखर कन्नौज के राजा महेंद्रपाल का उपाध्याय था और उसके पुत्र महीपाल से भी सम्मानित था। सियोडोनी लेख के अनुसार महेंद्रपाल विक्रम संवत् ६६० और ६६४ में और महीपाल ६७४ में विद्यमान था। यही राजशेखर का समय है।

राजशेखर ने पहले बालरामायण और बालभारत की रचना की और बाल कवि उपनाम पाया। विद्धशालभंजिका (विंधी पुतली)

और कर्पूरमंजरी नाटिका (प्राकृत) भी उसकी रचना है। पीछे उसने काव्यमीमांसा नामक अपूर्व ग्रंथ बनाया जिसका संस्करण एक ही अधूरी प्रति पर से गायकवाड़-प्राच्य-पुस्तक-माला में निकला है[1]। ऐसे ग्रंथ को खोज निकालने और छापने का प्रभूत यश मि० दलाल, पं० अनंत कृष्ण शास्त्री और गायकवाड़ सयाजीराव महाराज को है। हेमचंद्र ने काव्यानुशासन विवेक में राजशेखर के हरविलास काव्य का उल्लेख करके उसमें से दो श्लोक उद्धृत किए हैं। उज्ज्वलदत्त ने उणादि सूत्र टीका में भी हरविलास का एक आधा श्लोक उद्धृत किया है। यह हरविलास महाकाव्य अभी नहीं मिला। संभव है कि सूक्तिमुक्तावली में जो कई कवियों की प्रशंसा के श्लोक दिए हैं वे इसी काव्य के उपक्रम के हों अथवा काव्य मीमांसा के अनुपलब्ध अंश में से हों।

काव्यमीमांसा में भुवनकोश नामक भूगोल विषयक बड़े ग्रंथ की रचना का भी उल्लेख है। उज्ज्वलदत्त ने एक आधा श्लोक राजशेखर के नाम से दिया है जिससे मान सकते हैं कि उसने कोई कोश भी बनाया हो।

चारण जाति के मंगन मोतीसर[2] जब चारणों को बढ़ावा देते हैं तो उन्हें 'अबरी का केड' अर्थात् अबरी (यायावर) के वंशज कहते हैं। यायावर एक प्रकार के वानप्रस्थ ऋषि या ब्रह्मज्ञानी गृहस्थ होते थे जो सदा चलते ही रहते थे, उनका नियत स्थान न था। संभव है कि चारण उन्हीं यायावरों में से हों। राजशेखर ने काव्य-मीमांसा में कवियों के दस दर्जे गिनाए हैं। काव्यविद्यास्नातक, हृदय-कवि, अन्यापदेशी, सेविता, घटमान, महाकवि, कविराज, आवेशिक, अविच्छेदी, और संक्रामयिता। जो सब भाषा, सब प्रबंध और सब

---

१ इस संस्करण की भूमिका में राजशेखर विषयक बातें अच्छी तरह संगृहीत हैं। टामस की कवींद्रवचनसमुच्चय की भूमिका में भी हैं।

२ ना. प्र. पत्रिका, भाग १ अंक २ पृष्ठ १३१, टिप्पण ४२।

रसों में स्वतंत्र हो वह कविराज कहलाता है। राजशेखर कर्पूरमंजरी में अपने को कविराज कहता है।

इस राजशेखर की स्त्री अवंतिसुंदरी थी। वह चाहुआण (चौहान) कुल की थी। ब्राह्मणों की क्षत्रिय स्त्री होना कोई विरल बात नहीं है। एक ही ब्राह्मण की ब्राह्मण स्त्री से संतान ब्राह्मण और क्षत्रिय स्त्री की संतान के क्षत्रिय होने के कई प्रमाण हैं, जैसे राजा बाउक के लेख में प्रतीहारों की उत्पत्ति। कर्पूरमंजरी नाटिका का पहला अभिनय उसीकी इच्छा से हुआ था[1]।

वह बड़ी विदुषी थी। काव्यमीमांसा में तीन जगह उसका मत पति ने उद्धृत किया है, जिससे मालूम होता है कि उसने काव्य-शास्त्र पर कोई ग्रंथ लिखा होगा।

(१) "कविता का 'पाक' क्या है? वामन के मतवाले कहते हैं कि कवि ऐसे पद बैठावे जो बदले न जा सकें, वही शब्दपाक है। इसपर अवंतिसुंदरी का मत है कि यह तो अशक्ति हुई, पाक नहीं। एक वस्तु पर महाकवियों के अनेक पाठ भी पाकवान् होते हैं, इस लिए रसोचित-सूक्ति होना ही पाक है। उसने कहा भी है—गुण, अलंकार, रीति, उक्ति, शब्द, अर्थ इनके गांठने का क्रम जैसे विद्वानों को अच्छा लगे वही मेरे मत में वाक्यपाक है। कहनेवाला भी हो, अर्थ भी हो, शब्द भी हो, रस भी हो, तो भी कुछ और चीज़ बाकी रह जाती है जिसके विना वाणी मधु नहीं टपकाती"। (पृष्ठ २०)

(२) "अर्थ चाहे रस के अनुगुण हो या विगुण, काव्य में कविवचन ही रस उपजाते या विगाड़ते हैं, अर्थ नहीं।...पाल्यकीर्ति का मत है कि वस्तु का रूप कैसा ही हो रसीलापन तो कहनेवाले के अधीन है। जिस अर्थ को रागी सराहेगा उसीको विरागी धिक्कारेगा और मध्यस्थ उससे उदासीन रहेगा।...अवंतिसुंदरी

---

१ चाहुआणकुलमोलिमालिआ राअसेहरकइन्दगेहिणी।
भत्तुणो कइमवंतिसुंदरी सा पउंजइदुमेअमिच्छइ॥
[कर्पूरमंजरी १-११]

कहती है कि वस्तु के रूप का स्वभाव नियत नहीं है, वह तो विदग्ध के कहने के ढंग के अधीन है, उससे जाना जाता है । वह कहती है कि काव्य में उक्ति के वश से गुण या अगुण होते हैं, वस्तुस्वभाव कवि के किसी काम का नहीं, चंद्रमा की स्तुति करनेवाला उसे 'अमृतांशु' कहता है और धूर्त उसकी निंदा करता हुआ उसे 'दोषाकर' (रात करनेवाला, और दोष + आकर) कह डालता है" । (पृष्ठ ४५–४६)

(३) काव्य की चोरी पर राजशेखर ने बहुत लिखा है । अंत में सिद्धांत किया है कि 'न तो बनियें अचोर हो सकते हैं और न कवि अचोर, वही बिना बदनामी के गुलछर्रे उड़ाता है जो छिपाना जाने'[१] ।

इस विचार में पूर्वपक्ष किया है कि चोरी न सिखानी चाहिए, क्योंकि समय बीत जाने पर मनुष्य की और चोरियाँ हट जाती हैं किंतु वाक्चौर्य पुत्र पौत्रों तक भी नहीं हटता[२] ।

इसपर अवंतिसुंदरी कहती है—'इस (दूसरे कवि) की प्रसिद्धि नहीं, मेरी है; इसकी प्रतिष्ठा नहीं, मेरी है; इसका संविधानक (प्लाट) अक्रम है, मेरा क्रमयुक्त है; इसके वचन गिलोय के जैसे, मेरे अंगूर के ऐसे; यह भाषा विशेष का आदर नहीं करता, मैं करता हूँ; इसके (रचना के) जाननेवाले मर गए, इसका कर्त्ता देशांतर में है; यह बीती बात को बाँधने या अशुद्ध अथवा क्रोधयुक्त रचना पर अवलंबित है, इत्यादि कारणों से शब्द या अर्थ के चुराने में मन लगावे' (पृ० ५७) ।

अवंतिसुंदरी ने प्राकृत कविता में आने वाले 'देशी' शब्दों का एक कोश बनाया और उसमें प्रत्येक शब्द के प्रयोग के स्वरचित उदाहरण दिए । हेमचंद्र ने अपनी देशी नाममाला

---

१ नास्त्यचौरः कविजनो नास्त्यचौरो वणिग्जनः । स नन्दति विना वाच्यं यो जानाति निगूहितुम् ॥

२ पुंसः कालातिपातेन चौर्यमन्यद् विशीर्यति । अपि पुत्रेषु पौत्रेषु वाक्चौर्यं न विशीर्यति ॥

में दो जगह (१।८१, १।१२५) अवंतिसुंदरी के मतभेद का उल्लेख करके उसकी उदाहरण कविता उद्धृत की है ।

(१) 'इंदमह'—हेमचंद्र का अर्थ—कँवारी का पुत्र । अवंति-सुंदरी का अर्थ—कुमार अवस्था, जैसा कि उसीने उदाहरण दिया है[1]

उवहसए एराणि इंदो इन्दीवरच्छि एताहे ।
इंदमहपेच्छिए तुह मुहस्स सोहं णिअच्छन्तो ॥[2]

(२) ओहुर=खिन्न (हेमचंद्र); झुका या लटका हुआ (अवंतिसुंदरी), जैसा कि उसीने उदाहरण दिया है ?

खणमित्तकलुसिआए लुलिआलयवल्लरीसमोत्थरिअं ।
भमरभरोहुरयं पङ्कयं व भरिमो मुहं तीए ॥[3]
किं तं पि हु वीसरिअं णिक्किव जं गुरुअणस्स मज्झम्मि ।
अहिधाविऊण गहिआ तं ओहुरउत्तरीआए ॥[4]

ऐसी प्रौढ़ नायिका के पति के स्त्रीशिक्षा के विषय में क्या विचार होने चाहिएँ ? "पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी कवि हों । संस्कार तो आत्मा में होता है, स्त्री या पुरुष के विभाग की अपेक्षा नहीं करता । राजाओं और मंत्रियों की बेटियाँ, वेश्याएँ, कौतुकियों की स्त्रियाँ, शास्त्रों में निष्णात बुद्धिवाली और कवि देखी और सुनी जाती हैं" । (काव्यमीमांसा, पृ० ५३) ।

---

१ यदुदाहरति स्म ।

२ हँसी करता है, इंद्राणी को (की) इंद्र, हे कमलनयनी, अब, हे जवानी से भरी हुई, तेरे, मुख की, शोभा को, देखता हुआ ।

३ क्षण मात्र में ही रूठी हुई (नायिका) का, बिखरे बालों की बेल से बिछा हुआ, भौंरों के बोझ से झुका हुआ, कमल सा, मानते हैं, मुख, उसका ।

४ क्या, वह, भी, ही, भूल गया, निर्दय !, जो, गुरुजनों के, मध्य में, दौड़कर, पकड़ा था, तू, (मुझ) लटकते हुए दुपट्टेवाली ने ?

६—अशोक की धर्मलिपियाँ।

[लेखक—रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा, बाबू श्यामसुंदरदास, बी० ए०, और पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी, बी० ए०।]

[क ५—पाँचवाँ प्रज्ञापन।]

[पत्रिका भाग १ पृष्ठ ४०७ के आगे।]

कालसी	१	देवानं	पिये	पियदसि	लाजा		अहा	कयाने
गिरनार	२	देवानं	प्रियो	पियदसि	राजा	एवं	आह	कलाणं
धौली	३	.वानं	पिये	पियदसी	लाजा	हेवं	आहा	कयाने
जौगड़	४	देवानं	पिये	पियद·	. .	. .	. .	. . .
शहबाज़गढ़ी	५	देवन	प्रियो	प्रियद्रशि	रय	एवं	अहति	कलणं
मानसेरा	६	देवनं	प्रिये	प्रियद्रशि	रज	एवं	अह	कलणं
संस्कृत-अनुवाद		देवानां	प्रियः	प्रियदर्शी	राजा	एवं	आह।	कल्याणं
हिंदी-अनुवाद		देवताओं के	प्रिय	प्रियदर्शी	राजा ने	ऐसा	कहा है।	कल्याण

कालसी	७	दुकले	ए	आदिकले	कयानसा	से	दुकलं
गिरनार	८	दुकरं	ये	आदिकरे	कलाणस	सो	दुकरं
धौली	९	दुकले	ए	. . . .	कयानस	से	दुकलं
जौगड़	१०	. . .	.	. . . .	. . . .	.	. . .
शहबाज़गढ़ी	११	दुकरं	यो	अ . . रो	कलणस	सो	दुकरं
मानसेरा	१२	दुकरं	ये	आदिकरे	कयणस	से	दुकरं
संस्कृत-अनुवाद		दुष्करम् ।	यः	यदि कुर्यात् आदि कुर्यात् आदिकरः	कल्याणस्य	सः	दुष्करं
हिंदी-अनुवाद		दुष्कर[है] ।	जो	यदि करे आरंभ करे आरंभ करनेवाला[होता है]	कल्याण का (=को)	सो	दुष्कर(काम) को

१८

कालसी	१३ कलेति	से	ममया	बहु	कयाने	कटे	ता		मम
गिरनार	१४ करोति (३८)	त	मया	बहु	कलाणं	कतं	त		मम
धौली	१५ कलेति	से	मे	बहुके	कयाने	कटे	तं	ये	मे
जौगड़	१६ . . .	.	.	. . .	. . .	. .	.	.	.
शहबाज़गढ़ी	१७ करोति	से	म्रय	बहु	कलं	किट्र	तं		मह
मानसेरा	१८ करोति	तं	मय	बहु	कयाणे	कटे	तं		मम
संस्कृत-अनुवाद	करोति ।	तत्	मया	बहु बहुकं	कल्याणं	कृतं ।	तत्	ये	मम
हिंदी-अनुवाद	करता है ।	सो	मैंने	बहुत	कल्याण	किया ।	सो	जो	मेरे

कालसी	१९	पुता	चा	नताले	चा[13]	पलं	छा	तेहि	ये	
गिरनार	२०	पुता	च	पोत्रा	च	परं	च	तेन	य	मे
धौली	२१	पुता	च[20]	नति	च	[illegible]लं	च	तेन	ये	
जौगड़	२२	. .	.(२२)	[illegible]ति	च	प[illegible]	[illegible]	ते[illegible]		
शहबाजगढ़ी	२३	पुत्र	च	[illegible]रा	च	[illegible]	च	तेन	य	[illegible]
मानसेरा	२४	पुत्र	[illegible]	नतरे		परं	च	तेन	ये	
संस्कृत-अनुवाद		पुत्राः	च	नप्तारः पौत्राः	च	परं	च	तेन तैः	यानि	मे
हिंदी-अनुवाद		पुत्र	और	नाती पौत्र	और	आगे	और	उनसे	जो	मेरे

कालसी	२५	अपतिये	मे		आवकपं	तथा		अनुवटिसंति
गिरनार	२६	अपचं			आवसंवटकपा			अनुवतिसरे
धौली	२७	अपतिये	मे		आवकपं	तथा		अनुवतिसंति
जौगड़	२८	....	.		....	..		......
शहबाज़गढ़ी	२९	अपच		अकंति	अवकपं	तथं	ये	अनुवतिशंति
मानसेरा	३०	अपतिये	मे		आवकपं	तथं		अनुवतिशति
संस्कृत-अनुवाद		अपत्यानि	{मे}	भविष्यंति	यावत्कल्पं यावत्संवर्तकल्पं	तथा	ये	अनुवर्तिष्यंते
हिंदी-अनुवाद		अपत्य	{मेरे}	होंगे	कल्पांत तक	वैसा	जो	अनुसरण करेंगे

कालसी	३१		से	सुकटं	कछंति	ए	चु	हेता	देसं
गिरनार	३२	तथा (४१)	सो	सुकतं	कासति	यो	तु	एत	देसं
धौली	३३		से	सुकटं	कछंति	ए		हेत	देसं
जौगड़	३४		.	. . .	. . .	.		. .	. .
शहबाज़गढ़ी	३५		ते	सुकिटं	कषंति	यो	चु	अतो	कं
मानसेरा	३६		से	सुकट	कषति	ये	चु	अत्र	देश
संस्कृत-अनुवाद		तथा	ते	सुकृतं	करिष्यंति।	यं यः	तु	अत्र अतः	देशं
हिंदी-अनुवाद		वैसा	वे	सुकृत	करेंगे।	जो	तो	यहाँ इसमें से	एक देश (अंश) को

कालसी	३७	पि	हापयिसंति	से	दुकटं	कछति		
गिरनार	३८	पि	हापेसति	सो	दुकतं	कासति	सुकरं	हि
धौली	३९	पि	हापयिसति	से	दुकटं	कछति		
जौगड़	४०	.	. . . . .	.	. . .	. .		
शहबाज़गढ़ी	४१	पि	हपेशति	सो	दुकटं	कषति		
मानसेरा	४२	पि	हपेशति	से	दुकट	कषति[२]		
संस्कृत-अनुवाद		अपि	हापयिष्यन्ति हापयिष्यति	ते स:	दुष्कृतं	करिष्यन्ति। करिष्यति।	{सुकरं	हि}
हिंदी-अनुवाद		भी	हानि पहुँचाएंगे हानि पहुँचाएगा	वे वह	दुष्कृत(को)	करेंगे। करेगा।	{सहज	ही

कालसी	४३	पापे	हि	नाम	सुपदालये	से	अतिकंतं	अंतलं
गिरनार	४४	पापं					अतिकातं	अंतरं(41)
धौली	४५	पापे	हि	नाम(21)	सुपदालये	से	अतिकंतं	अंतलं
जौगड़	४६	. .	.	. . (23)	सुपदालये	से	अ . . .	. . .
शाहबाज़गढ़ी	४७	पपं	हि		सुकरं	सो	अतिक्रंतं	अंतरं
मानसेरा	४८	पपे	हि	नम	सुपदरेव	से	अतिक्रतं	अंतरं
संस्कृत-अनुवाद		पापं	हि	नाम	सुप्रस्तारम्। सुकरम्। सुप्रस्तारमेव।	तत्	अतिक्रान्तं	अन्तरं
हिंदी-अनुवाद		पाप	ही	—	सहज में फैलता [है]। करना सहज [है]। सहज में ही फैलता [है]।	सो	बीत गया	(बहुत) काल

कालसी	४९	नो	हुतपुलुवा	धंममहामाता	नाम			तेदसवसाभिसितेना
गिरनार	५०	न	भूतप्रुवं	धंममहामाता	नाम	त	मया	त्रैदसवासाभिसितेन
धौली	५१	नो	हूतपुलुवा	धंममहामाता	नाम	से		तेदसवसाभिसितेन
जौगड़	५२	.	. . . . . .	. . . .	. .	.		. . . .
शहबाज़गढ़ी	५३	न	भुतप्रुव	ध्रममहमत्र	नम	सो		तिदशवषभिसितेन (११)
मानसेरा	५४	न	भुतप्रुव	ध्रममहमत्र	नम	से		त्रेडशवषभिसितेन
संस्कृत-अनुवाद		न	भूतपूर्वा:	धर्ममहामात्रा:	नाम।	तत्	{मया}	त्रयोदशवर्षाभिषिक्तेन
हिंदी-अनुवाद		नही	पहले हुए	धर्ममहामात्र।		सो	{मैंने}	तेरह वर्ष से अभिषिक्त (ने)

कालसी	५५	ममया	धंममहामाता		कटा	ते	सवपासंडेसु
गिरनार	५६		धंममहामाता		कता	ते	सवपासंडेसु
धौली	५७		धंममहामाता	नाम	कटा	ते	सवपासंडेसु(२१)
जौगड़	५८	.	. . . . . .	. .	. .	.	. . . .
शहबाज़गढ़ी	५९	मय	ध्रममहमत्र		किट्र	ते	सव्रपषंडेषु
मानसेरा	६०	मय	ध्रममहमत्र		कट	ते	सव्रपषडेषु(२१)
संस्कृत-अनुवाद		मया	धर्ममहामात्राः	नाम	कृताः।	ते	सर्वपाषंडेषु
हिंदी-अनुवाद		मैंने	धर्मम हामात्र		[नियत]किए।	वे	सब धर्मवालों में

कालसी	६१	वियापटा(१४)	धंमाधियानाये	चा	धंमवढिया	हिदसुखाये
गिरनार	६२	व्यापता	धामधिस्टानाय(४२)	.	. . . . .	. . . . .
धौली	६३	वियापटा	धंमाधियानाये		धंमवढिये	हितसुखाये
जौगड़	६४	. . . .(२४)	धंमाधियाना .		. . . . .	. . . . .
शहबाज़गढ़ी	६५	वपट	ध्रमधियनये	च	ध्रमवढिये	हिदसुखये
मानसेरा	६६	वपुट	ध्रमधियनये	च	ध्रमवध्रिय	हिदसुखये
संस्कृत-अनुवाद		व्यापृता:	धर्माधिष्ठानाय	च	धर्मवृद्ध्यै	हितसुखाय
हिंदी-अनुवाद		लगाए गए [हैं]	धर्म के अधिष्ठान के लिये	और	धर्म की वृद्धि के लिये	हित [और] सुख के लिये

कालसी	६७	चा	धंमयुतसा	तं	येनकंबोजगंधालानं	
गिरनार	६८	·	धंमयुतस	च	योणकंबोजगंधारानं	रिस्टिकपेतेणिकानं
धौली	६९	च	धंमयुतस		योनकंबोचगंधालेसु	लठिकपितेनिकेसु
जौगड़	७०	·	. . . . .		. . . .	. . . .
शहबाज़गढ़ी	७१	च	ध्रमयुतस		योनकंबोयगंधरनं	रस्टिकनं पितिनिकनं
मानसेरा	७२	च	ध्रमयुतस		योनकंबोजगंधरनं	रठ्ठकपितिनिकन
संस्कृत-अनुवाद		च	धर्मयुतस्य	{ तं च }	यवनकंबोजगांधाराणाम यवनकंबोजगांधारेषु	राष्ट्रिकप्रतिष्ठानिकानां राष्ट्रिकप्रतिष्ठानिकेषु राष्ट्रिकाणां प्रतिष्ठानिकानां
हिंदी-अनुवाद		और	धर्मयुक्त[लोगों]के	वे और	यवन[और]कंबोज[और]गांधारों के यवन[और]कंबोज[और]गांधारों में	राष्ट्रिक[और]पैठनिकों में राष्ट्रिक[और]पैठनिकों के

कालसी	७३	ए	वा	पि	अंने	अपलंता	भटमयेसु	
गिरनार	७४	ये	वा	पि	अंञे	अपराता	भतमयेसु	च[४३]
धौली	७५	ए	वा	पि	अंने	आपलंता	भटिमयेसु[२३]	
जौगड़	७६	.	.	.	. .	. . . .	. . . . . [२४]	
शहबाज़गढ़ी	७७	ये	व	पि		अपरंत	भटमयेषु	
मानसेरा	७८	ये	व	पि	अञे	अपरत	भटमये[२१]षु	
संस्कृत-अनुवाद		यं	वा	अपि	अन्यं	अपरांता:	भृतिमयेषु	{च}
हिंदी-अनुवाद		जो	अथवा	भी	दूसरं	पश्चिमी सीमा पर रहनेवाले[हैं]	भत्ते के(=वेतन पानेवाले)नौकरों (में)	{और}

कालसी	७९	बंभनिभेसु	अनथेसु	वुधेसु		
गिरनार	८०	. . . . . .	. . . .	. . .		हिदसुखाये
धौली	८१	बाभनिभियेसु	अनाथेसु	महालकेसु		. . सुखाय
जौगड़	८२	. भनिभि . .	. . . . .	. . . . . .	च	हितसुखाये
शहबाज़गढ़ी	८३	ब्रमणिभेषु	अनथेषु	वुढेषु	.	. . . . . .
मानसेरा	८४	ब्रमणिभ्येषु	अनथेषु	वुध्रेषु		हितसुखये
						हिदंसुखये
संस्कृत—अनुवाद		ब्राह्मणेभ्येषु	अनाथेषु	वृद्धेषु महालकेषु	{च}	हितसुखाय
हिंदी—अनुवाद		ब्राह्मणों और धनियों (में)	अनाथों (में)	बुड्ढों (में) बड़ों (में)	{और}	हित [और] सुख के लिये

कालसी	८५	धंमयुताये	अपलिबोधाये	वियापटा	ते	बंधनबधसा
गिरनार	८६	धंमयुतानं	अपरिगोधाय	व्यापता	ते	बधनबधस
धौली	८७	धंमयुताये	अपलिबोधाये	वियापटा	से	बंधनबधस
जौगड़	८८	. . . . .	. . . .	. . . .	.	. . . .
शहबाज़गढ़ी	८९	ध्रमयुतस	अपलिबोधे	वपट	ते(१२)	बंधनबधस
मानसेरा	९०	ध्रमयुत	अपलिबोधये	वियपुट	ते	बधनबधस
संस्कृत-अनुवाद		धर्मयुक्तानां धर्मयुक्तस्य धर्मयुक्ताय	अपरिबाधाय	व्यापृता:	ते	बंधनवधस्य
हिंदी-अनुवाद		धर्मयुक्तों के धर्मयुक्त के धर्मयुक्त के लिये	बाधा न पहुँचने के लिये	नियुक्त [हैं]	वे	बाँधने [और] वध के

कालसी	६१	पटिविधानाये	अपलिबोधाये	मोखाये	चा	एयं
गिरनार	६२	पटिविधानाय (४४)	. . . .	. . .	.	. .
धौली	६३	पटिविधानाये	अपलिबोधाये	मोखाये	च (२४)	इयं
जौगड़	६४	. . . .	. . . . (२६)	मोखाये	.	. .
शहबाज़गढ़ी	६५	पटिविधनये	अपलिबोधये	मोक्षये		इयं
मानसेरा	६६	पटिविधनये	अपलिबोधये	मोक्षये	च	इयं (२३)
संस्कृत-अनुवाद		प्रतिविधानाय	अपरिबाधाय	मोक्षाय	च ।	अयं इमं
हिंदी-अनुवाद		रोकने के लिये	बाधा दूर करने के लिये	मुक्ति के लिये	और ।	यह इस (को = पर)

कालसी	९७	अनुबधं	पजावति	वा(१२)	कटाभिकाले	ति
गिरनार	९८	....	प्रजा		कताभीकारेसु	
धौली	९९	अनुबंध	पजति	व	कटाभीकाले	ति
जौगड़	१००	....	...	.	.....	.
शहबाज़गढ़ी	१०१	अनुबधं	प्रजव		किटभिकरो	
मानसेरा	१०२	अनुबध	पजति	व	क्रटभिकर	ति
संस्कृत-अनुवाद		अनुबंधः अनुबंधं	प्रजावति प्रजावान् इति	वा	कृताधिकारं कृताधिकारेषु कृताधिकारः	इति
हिंदी-अनुवाद		अनुबंध(अधिकार) अनुबंध(अधिकार) को = पर	संतानवाले में संतानवाला ऐसा	या	(राज्य +)अधिकार किए हुए मे (राज्य +)अधिकार किए हुओं में (राज्य +)अधिकार किया हुआ	ऐसा

कालसी	१०३	वा	महालके	ति	वा	वियापटा	ते	हिदा
गिरनार	१०४	वा	थैरेसु		वा	व्यापता	ते	पाटलिपुते
धौली	१०५	व	महालके	ति	व	वियापटा	से	हिद
जौगड़	१०६	.	. . . . .		.	. . . .	.	. .
शहबाज़गढ़ी	१०७	व	महलक		व	वियपट्र		इश्र
मानसेरा	१०८	व	महलके	ति	व	वियप्रट	ते	हिद
संस्कृत-अनुवाद		वा	महालके स्थविरेषु महालकः	इति	वा	व्यापृतः। व्यापृताः।	ते	इह पाटलिपुत्रे
हिंदी-अनुवाद		या	बड़े में बूढ़ों में बड़ा	ऐसा	या	नियुक्त[है]। नियुक्त[हैं]।	वे	यहाँ पाटलिपुत्र में

कालसी	१०९		वाहिलेसु	चा	नगलेसु	सवेसु	
गिरनार	११०	च	वाहिरेसु	च (४१)	....	...	
धौली	१११	च	वाहिलेसु	च	नगलेसु	सवेसु	सवेसु
जौगड़	११२	.	....	.	....	...	...
शहबाज़गढ़ी	११३		वहिरेषु	च	नगरेषु	सव्रेषु	
मानसेरा	११४		वहिरेषु	च	नगरेषु	सव्रेषु	
संस्कृत-अनुवाद		च	बाह्येषु	च	न.,रेषु	सर्वेषु	{सर्वेषु}
हिंदी-अनुवाद		और	बाहरवालों (में)	और	नगरों में	सब(में)	{सब(में)}

कालसी	११५	ओलोधनेसु				भातिनं	च	ने	भगिनिना
गिरनार	११६	. . . . . .				. . .	.	.	. . . .
धौली	११७	ओलोधनेसु	मे	एवा	पि	भातिनं		मे	भगिनीनं
जौगड़	११८	. . . . . . (२१)	.	एवा	.	. . .		.	. . . .
शहबाज़गढ़ी	११९	ओरोधनेषु				भ्रतुनं	च	मे	स्पसुनं
मानसेरा	१२०	ओरोधनेषु				भ्रतन	च		स्पसुन
संस्कृत-अनुवाद		अवरोधनेषु	मे	एवं	अपि	भ्रातॄणां	च	मे	भगिनीनां स्वसॄणां
हिंदी-अनुवाद		अंतःपुरों में	मेरे	तथा	भी	भाइयों के	और	मेरी	बहिनों के

कालसी	१२१		एवा	पि		अंने		नातिक्ये
गिरनार	१२२		येवा	पि	मे	अञे		ञातिका
धौली	१२३		व(२२)			अंनेसु	वा	नातिसु
जौगड़	१२४		.			. . .	.	. . .
शहबाज़गढ़ी	१२५	च	येव	पि		अंञे		ञतिक
मानसेरा	१२६	च(२४)	येव	पि		अञे		ञतिके
संस्कृत-अनुवाद		च	एवं	अपि	{मे}	अन्येषु अन्येस्मिन	{वा}	ज्ञातिषु ज्ञातिके
हिंदी-अनुवाद		और	तथा	भी	{मेरे}	दूसरों (में) दूसरे (में)	{या}	संबंधियों में संबंधी में

कालसी	१२७	सवता	वियापटा		ए	इयंधंमनिस्रिते	ति
गिरनार	१२८	सर्वत	व्यापता	ते	यो	अयंधंमनिस्रितो	ति
धौली	१२९	सवत	वियापटा		ए	इयंधंमनिस्रिते	ति
जौगड़	१३०	...	....		.	......	
शहबाज़गढ़ी	१३१	सवत्र	वियपुट		यं	इयंध्रमनिश्रिते	ति
मानसेरा	१३२	सव्रत्र	वियपट		ए	इयंध्रमनिश्रिति	ति
संस्कृत-अनुवाद		सर्वत्र	व्यापृताः।	ते	यं यः	इदंधर्मनिःश्रिताः इदंधर्मनिःश्रितः	इति
हिंदी-अनुवाद		सब जगह	नियुक्त [हैं]।	वे	जो	इस धर्म में अधिकृत	ऐसे

कालसी	१३३	वा				दानसुयुते	ति
गिरनार	१३४	व[४६]				. . . . . .	.
धौली	१३५	व	धंमाधियाने	ति	व	दानसयुते	
जौगड़	१३६	.	. . . . . .	.	.	. . . . .	
शाहबाज़गढ़ी	१३७	व	ध्रमधियने	ति	व	दनसयुते	ति
मानसेरा	१३८	व	ध्रमधियने	ति	व	दनसंयुते	ति
संस्कृत-अनुवाद		वा	धर्माधिष्ठाना:	इति	वा	दानसंयुता:	इति
हिंदी-अनुवाद		अथवा	धर्म में अधिष्ठित	ऐसे	अथवा	(अधीनस्थ) दानाधिकारी	ऐसा

कालसी	१३९	वा	सवता	विजितसि	ममा	धंमयुतसि
गिरनार	१४०	.	. . .			. . . . . .
धौली	१४१	व	सवपुठवियं			धंमयुतसि
जौगड़	१४२	.	. . . . (२८			. . . . . .
शहबाज़गढ़ी	१४३	व	सवत्र	विजिते	मह	ध्रमयुतसि
मानसेरा	१४४	व	सव्रत्र	विजितसि	मभ्र	ध्रमयुतसि
संस्कृत-अनुवाद		वा	सर्वत्र सर्वपृथिव्यां	विजितं	मम	धर्मयुक्ते
हिंदी-अनुवाद		अथवा	सब जगह सारी पृथ्वी पर	जीते हुए[देश] मे	मेरे	(अधीनस्थ) धर्माधिकारियों पर

कालसी	१४५	वियापटा	ते	धंममहामाता	एतायें	अठाये(१६)
गिरनार	१४६	. . . .	.	धंममहामाता	एताय	अथाय
धौली	१४७	वियापटा	इमे	धंममहामाता	इमाये	अठाये(२१)
जौगड़	१४८	. . . .	. .	. . . .	. . .	. . .
शहबाज़गढ़ी	१४९	वियपट	ते	ध्रममहमत्र	एतये	अठये
मानसेरा	१५०	विपुट	ते(२४)	ध्रममहमत्र	एतये	अथ्रये
संस्कृत-अनुवाद		व्यापृताः	ते इमे	धर्ममहामात्राः।	एतस्मै अस्मै	अर्थाय
हिंदी-अनुवाद		लगाए हुए [हैं]।	वे	धर्ममहामात्र [हैं]।	इस(के लिये)	प्रयोजन के लिये

कालसी	१५१	इयं	धंमलिपि	लेखिता	चिलथितिक्या	होतु
गिरनार	१५२	अयं	धंमलिपी	लिखिता(४७)	. . . . .	. .
धौली	१५३	इयं	धंमलिपी	लिखिता	चिलथितीका	होतु
जौगड़	१५४	. .	. . . .	. . .	. . . . .	. .
शहबाज़गढ़ी	१५५	अयं	ध्रमदिपि	दिपिस्त	चिरथितिक	भोतु
मानसेरा	१५६	अयि	ध्रमदिपि	लिखित	चिरठितिक	होतु
संस्कृत-अनुवाद		इयं	धर्मलिपिः	लेखिता ।	चिरस्थितिका	भवतु ।
हिंदी-अनुवाद		यह	धर्मलिपि	लिखाई ।	चिरस्थायिनी	होवे ।

काळसी	१५७	तथा	च	मे	पजा	अनुवतंतु
गिरनार	१५८	..	.	.	..	..... (४८)
धौली	१५९	तथा	च	मे	पजा	अनुवततु (२७)
जौगड़	१६०	..	.	.	..	..... (२१)
शहबाज़गढ़ी	१६१	तथ	च		प्रज	अनुवततु (१३)
मानसेरा	१६२	तथं	च	मे	प्रज	अनुवटतु
संस्कृत-अनुवाद		तथा	च	मे	प्रजाः	अनुवर्तन्ताम्।
हिंदी-अनुवाद		वैसे	और	मेरी	प्रजा	अनुसरण करे।

[हिंदी अनुवाद।]

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा है[1]। कल्याण [करना] कठिन है। जो कल्याण (या, कल्याण का आरंभ) करता है (या, कल्याण का आरंभकर्त्ता होता है) वह कठिन काम करता है। सो मैंने बहुत कल्याण किया। इस लिये [यदि] मेरे पुत्र, पौत्र तथा उनसे आगे जो मेरे वंशज होंगे वे कल्पांत तक वैसा

---

(१) एवं आह—राजा के लेख-व्यवहार को शासन कहते हैं। पिछले समय में शासन शब्द दान के आज्ञालेख में रूढ़ हो गया, जैसा कि अब भी राजपूताने में व्यवहार है या ताम्रपत्रों में मिलता है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र (प्रकरण २८) में शासन को बहुत प्रधान माना है क्योंकि संधि विग्रह उसीके अधीन हैं। लेख, लेखक आदि पर बहुत कुछ लिखा है। शासनों के इतने भेद गिनाए हैं—प्रज्ञापन, आज्ञा, आधि या परिदान में उपग्रह, परिहार (= छूट), निसृष्टि, प्रवृत्ति, प्रतिलेख और सर्वत्रग। प्रज्ञापन के विषय में कहा है कि उसके कई ढंग हैं, उसका आरंभ यों हो—इससे विज्ञापित किया जाता है, (एवं आह =) महाराज यों कहते हैं, यदि सच हो तो, यह दे दो, या राजा के पास दूसरे (शत्रु) का पक्ष यों कहता है। इस विचार से 'एवं आह' से आरंभ होनेवाली इन धर्मलिपियों को प्रज्ञापन या प्रज्ञापना कहना उस समय के राज्यव्यवहार के अनुकूल होगा। तीसरे प्रज्ञापन के भीतर ही प्रादेशिकों, रज्जुकों और परिषद् के नाम आज्ञा है। छठे में भी परिषद् के नाम आज्ञा है (यों मैंने आज्ञा दी, एवं मया आज्ञप्तम्)। इन दोनों स्थलों में कौटिल्य के आज्ञालेख का लक्षण मिल जाता है; इन्हें आज्ञालेख कहना चाहिए, किंतु ये पृथक् नहीं हैं, प्रज्ञापन के भीतर ही हैं। वस्तुतः सर्वत्रग शासन का लक्षण ही इनमें ठीक ठीक घट जाता है, यदि कौटिल्य की परिभाषा का ठीक ठीक अनुसरण करें तो इन धर्मलिपियों को सर्वत्रग शासन कहना चाहिए। वह परिभाषा यह है—जिस शासन में राजा समर्थों तथा अधिकारियों को रक्षा, उपकार या उपाय साधन के लिये कहे और जो मार्ग में, देश में, सर्वत्र, विदित कराया जाय, वह शासन सर्वत्रग होता है। पारस के दारा के लेखों का आरंभ भी 'ऐसे कहा है' से ही होता है।

अनुसरण करेंगे [तो] वे सुकृत करेंगे। जो इस आज्ञा के अंशमात्र[२] में भी हानि पहुँचावेंगे वे बुरा काम करेंगे, क्योंकि पाप सहज में फैलता है (या, पाप करना सहज है)। बहुत काल बीता कि धर्म-महामात्र[३] नहीं नियत हुए। इसलिये मैंने अभिषिक्त होने के तेरहवें वर्ष धर्ममहामात्र नियत किए। वे सब धर्मों[४] के लिये नियुक्त हैं। वे धर्म के अधिष्ठान (= ऊपर देखभाल) और धर्म की वृद्धि तथा धर्मानुयायी[५]

---

(२) देश—एक देश, कुछ अंश भी; इसका अर्थ 'संदेश' जँचता नहीं।

(३) धर्ममहामात्र—किसी भी राज्यविभाग के प्रधान अधिकारी को महामात्र कहते हैं। इसका अर्थ मंत्री नहीं, किंतु अपने विभाग का प्रधान है। विनयपिटक में वोहारिक महामात्त, गणक महामात्त, सेनानायक महामात्त, उपचारक महामात्त, सब्बत्थक महामात्त पद स्थान स्थान पर आए हैं जिनका अर्थ क्रमशः कानून, हिसाब, फौज, तथा दरबार के व्यवहार के अधिकारी और प्रधान मंत्री हैं। अशोक का कहना है कि पहले और विभागों की तरह धर्म का सीगा न था और न इसके महामात्र थे, मैंने ये नियत किए। धर्मलिपियों में जिन जिन महामात्रों का उल्लेख है उनपर यथास्थान लिखा जायगा।

(४) पाषंड—धर्म, संप्रदाय, मतभेद। पीछे से इस पद का अर्थ दंभ, दिखावट, पाखंड हो गया है। यहां पर अभिप्राय केवल धर्म के संप्रदायमात्र से है। सभी धर्मसंप्रदाय समय पाकर बाह्य चिह्नों और आडंबरों पर जोर देते और तत्व की उपेक्षा करने लग जाते हैं इससे 'पाखंड' का बुरा अर्थ हो गया है। 'बौद्ध धर्मानुयायियों को छोड़कर और' 'मत' भी इसका अर्थ हो सकता है।

(५) धर्मयुत—इस प्रज्ञापन में यह पद चार जगह आया है। पहले स्थान पर इसका व्यापक अर्थ धर्म में लगे हुए, धर्मानुयायी ही है। वहां युक्त नामक छोटे अधिकारियों से तात्पर्य नहीं हो सकता क्योंकि उनके हित सुख की चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं। दूसरी जगह दोनों अर्थ हो सकते हैं,—'धर्मानुयायियों को बाधा न पहुँचे इस लिये' और 'धर्मयुक्त नामक छोटे अधिकारियों को अपने कार्य में बाधा न पहुँचे इस लिये' अथवा 'धर्मयुक्त अधिकारियों के द्वारा प्रजा को बाधा न पहुँचे इस लिये'। तीसरी जगह 'दानसंयुत' में अधिकारी ही अर्थ है, दान में लगा हुआ नहीं। चौथी जगह 'धर्मयुत में व्यापृत' में दोनों अर्थ हो सकते हैं, धर्मानुयायी और युक्त नामक धर्माधिकारी। व्यापक अर्थ में 'धर्मयुत' सभी 'पाषंडों' के लिये है, केवल बौद्धों के लिये नहीं। धर्ममहामात्रों का काम धर्मानुयायी प्रजा-वर्ग को सुख पहुँचाना तथा युक्त नामक अधीनस्थ अधिकारियों को अत्याचार न करने देना था। 'हिदसुख' का अर्थ 'इधर अर्थात् इस लोक में सुख' भी किया जाता है।

कर चुके हैं, या बूढ़ों [ही] के लिये नियत है [ऐसे मनुष्य ही इस पर नियत किए गए हैं]। ये लोग यहाँ पाटलिपुत्र में[11] तथा बाहर के सब नगरों में, मेरे तथा मेरे भाई और बहिनों के महलों[12] तथा दूसरे संबंधियों के लिये सब जगह

पृथक् वाक्य है, जिसमें उनकी नियुक्ति के लक्षण कहे हैं, अधिकार नहीं। 'अनुबध' से यह अर्थ निकालना कि प्राण दंड के प्रति अवसर पर प्रजा में कृताधिकार और बूढ़े नियत हैं यहाँ पर बेमेल है।

यहाँ वध (= वध) का अर्थ सता कर मारना है क्योंकि बिना पीड़ा पहुँचाए झटपट प्राणदंड को कौटिल्य ने 'शुद्ध वध' कहा है। पीड़ा देकर मारने के दंड में धर्ममहामात्र अपना दयायुक्त काम दिखा सकते हैं। अनुबंध का अर्थ अपराधी की 'नीयत' या 'मनशा' है (मनु ८।१२६, ७।१६)। अपलिबोधाय = दंड घटाना, यह पद ऊपर भी आया है जहाँ गिरनार का पाठ 'अपरिगोधाय' है, जिसका अर्थ मर्दा या बोझ को हटाना है। वही मूल पाठ हो सकता है। कताभिकार-किसी के बहकाने या साजिश से अपराध करनेवाला (जायसवाल और स्मिथ)। गिरनार के पाठ पंक्ति ४९ में 'अ' तथा 'रे' छूट रहे हैं, बीच के दो अक्षर टूट गए हैं उनका कुछ अंश ही दीखता है। यहाँ के 'कताभिकार' की पुष्टि के लिये वहाँ के दूसरे अक्षर को भी 'भि' पढ़कर 'अभिकरे' का अर्थ 'अधम कर्ता' किया जाता है किंतु वह 'भि' नहीं हो सकता, 'दि' ही है। अस्तु। अपराधी की मनशा या नीयत का विचार कर, उसके बालबच्चे हैं यह विचार कर, उसने किसी के बहकाने या साजिश से काम किया है यह विचार कर, या वह बूढ़ा है यह विचार कर भी महामात्र उन्हीं तीन प्रकारों से उसको सुख पहुँचा सकते हैं।

(११) गिरनार के पाठ में ही 'यहाँ' के स्थान पर 'पाटलिपुत्र में' लिखा है जो उस सुदूर देश में 'यहाँ' का अर्थ स्पष्ट करने के लिये है। और जगह राजधानी से आई हुई मूल प्रति में जैसा (यहाँ) लिखा था वैसा ही खोद दिया है।

(१२) अवरोधन का अर्थ घेरा या घिरा भाग (पंजाबी—बेढ़ा) अर्थात् अंतःपुर या ज़नाना है। इसका यह अर्थ नहीं है कि उस समय मुसलमानी या राजस्थानी ढंग का कठिन पर्दा था। स्त्रियों की निवास-भूमि सभी देशों और जातियों में कुछ न कुछ तो पृथक् होती है। कुछ कुछ पर्दा उस समय अवश्य था—देखो कौटिल्य १।१२, और भास के एक श्लोक की व्याख्या (पत्रिका भाग १ पृ० १८)।

नियुक्त हैं । जो यों धर्म के काम में अधिकृत अथवा अधिष्ठित अथवा दान के काम में अधिकार[१] पर [रहते हुए] मेरे सब विजित देशों में, सारी पृथ्वी में, धर्म के अधिकारियों[२] पर नियुक्त हैं वे धर्ममहामात्र हैं । इसलिये यह धर्मलिपि लिखवाई"[३] ।

(१३) दिपिस्त (शहबाज़गढ़ी) । हुल्श लिखते हैं कि दिपि और दिपिस्त में 'दि' नहीं है, 'नि' है और वे 'निपिस्त' का अर्थ निविष्ट' पीसा गया या फ़ारसी (ईरानी) नविश्त, लिखा गया, करते हैं । इसपर जायसवाल ने प्रौढ़ कल्पना की है कि यदि 'नि' है तो 'निपि' = नीवी, निपिस्त = नीविस्थ मान लो और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'नीवी' के प्रयोगों का अर्थ फ़ाइल, मिसल, रेकार्ड करके कहा है कि अशोक ने ये धर्मलिपियाँ भी 'नीवीस्थ' कराई होंगी जैसे कि कौटिल्य ने धर्माधर्मव्यवहारसंस्थान, मित्रामित्र, संधिविग्रहप्रदान आदि को निबंधपुस्तकस्थ कराने का नियम किया है । नीवी का अर्थ कमरबंद या नीचे का वस्त्र बाँधने का नाड़ा होता है । काम के काग़ज़ों की फ़ाइल भी सूत्र (नाड़े) से बँधी होती हैं। इस उपचार से जायसवाल महाशय नीवी का यह अर्थ (अंगरेज़ी Red Tape की छाया पर) करते हैं । यह ठीक नहीं । नीवी का अर्थ मूलधन या रोकड़ बाक़ी ही है । आश्चर्य है कि यह अर्थ भी उसी नाड़े या इज़ारबंद के उपचार से हुआ है । कमर में धन की थैली बाँधने की चाल है, मोरी या अंटी (टेंट) में भी रुपया रक्खा जाता है । कुबेर की पुरानी मूर्तियों में उसके गले में वैसी ही गुँथी हुई धन की थैली बनाई जाती है जैसी नौली या वासणी गाँववाले बाँधते हैं । इस नीवी के उपचार से मूल धन या जमा पूँजी 'नीवी' कहलाई और जिस धन का केवल ब्याज ही काम में लिया जाय, मूल न छेड़ा जाय, वह 'अक्षय-नीवी' हुआ (मराठी गंगाजळी, न खर्चने के भाव से) । एक ऐसा ही उपचार और है । मारवाड़ी में पोतिया कपड़े सिर पर लपेटने के रूमाल पल्ले, या रूमाल मात्र को कहते हैं । प्रबंधचिंतामणि में पोत वस्त्र के अर्थ में आया है । 'पोते बाक़ी' का अर्थ है पल्ले में जो बाक़ी बचे । वह पल्ला का पोत वस्त्र का वाचक होकर जमा या 'नीवी' का वाचक हो गया, जैसे, पोतदार, पोतेदार में । कई लोग पोतेदार को फ़ारसी फ़ोते से मिलाते हैं जो संस्कृत के कोष की तरह दो अर्थों में आता है—ख़ज़ाना और वृषण । आश्चर्य यह है कि हेमचंद्र की देशीनाममाला में 'पोत्तओ' का अर्थ वृषण दिया है (६।६२) । संभव है कि देशी' 'पोत' भी वस्त्र, उसकी गाँठ अर्थात् धनकोश और वृषण तीनों का वाचक रहा हो । अस्तु । कौटिल्य में नीवी का अर्थ पूँजी या बचत स्पष्ट है—आय व्यय और नीवी (पृ. ६१), जब गणना के

[वह] चिरस्थायी रहे तथा मेरी प्रजा'' इसका अनुसरण करे।

अधिकारी मोहरबंद बहियाँ, माल और नीवी लेकर आवें तो उनका पृथक् बातचीत करना रोक दे; आय, व्यय और नीवी के अग्र (जोड़) सुनकर नीवी का अवहरण करे (पृ. ६४), इन इन उपायों से आय को जाँचे, मिलावे (समानयेत्), इन इन से व्यय को मिलावे, इन इन से नीवी को मिलावे (पृ. ६४) जो नीवी को घटाकर लिखे उसे दूना दंड, खा जावे उसे अठगुना, नष्ट कर दे उसे पँचगुना दंड और खोई रकम की वापसी का दंड (पृ. ६२) दे।

शिलालेखों में भी जहाँ अक्षय नीवी पद आया है वहाँ उसका अर्थ स्थायी मांड ही है जिसकी बढ़ोतरी ही काम आवे। शक उषवदात (ऋषभदत्त) के नासिक गुहा लेख में उषवदात ने "अक्षयनीवी काहापण (कार्षापण, एक सिक्का) सहस्राणि त्रीणि" दी थी जो वस्त्र बुननेवालों के दो संघों में धरोहर रक्खी थी, मूल कभी न लिया जाय (अपडिदातवा) और केवल लाभ काम में लिया जाय (वढिभोजा = वृद्धिभोग)। सांची के शिलालेख में उपासिका हरिस्वामिनी ने कानादबोट के संघ को "अक्षयनीवी दत्ता दीनारा द्वादश" और "एष दीनाराणां या वृद्धिरुपजायते तया दिवसे दिवसे संघमध्यप्रविष्टकभिक्षुरेकैको भोजयितव्यः"। स्कंदगुप्त के बिहार शिलालेख में भी एक ब्राह्मण की अक्षयनीवी दान की गई पाई जाती है। (इं. ऐं. १९१९, पृ. १३,१४)। दिपिस्त को नीवीस्थ मानने से धर्मदिपि (प्रज्ञापन १, शाहबाज़गढ़ी और मानसेरा) को धर्मनीवी मानना होगा। वह पद धर्मलिपि के जोड़ का है। तो क्या लिपि का अर्थ भी नीवी हुआ? जायसवाल महाशय ने तो नीवी की बुरी खैंचतान की है,—मातः किमिवः कान्नाम्नीं तेन क एष कथंति मुहुर्नीवीमपश्यन्निव ? (गणरत्न महोदधि में उद्धृत पृ. १३)। हमें तो 'दि' के 'नि' होने में संदेह ही है। खरोष्ठी में द और न का बहुत साम्य है, इस लिये दिपिर और दृपीर वाला दिप धातु मानना ही होगा (दे० प्रज्ञापन ४, टिप्पण. १४)।

(१४) यहाँ संतति से भी अभिप्राय है, ऊपर अनुवाद की पंक्ति ३ देखो।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

का

कार्य विवरण

संवत ११७८

प्रबन्ध समिति।

शनिवार मि० ३ वैशाख १९७८ (१६ अप्रैल १९२१) सन्ध्या के ५॥ बजे

स्थान-सभाभवन।

उपस्थित

बा श्यामसुन्दर दासजी बी.ए.(सभापति), बा. गौरीशंकरप्रसाद बी.ए.एल एल.बी., बाबू हरिप्रसाद पालधि बी. ए., बाबू बेणी प्रसादजी, बाबू ब्रजरत्न दासजी

(१) फाल्गुन और चैत्र १९७७ के आयव्यय का निम्नलिखित हिसाब उपस्थित किया गया—

आय का ब्योरा	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग	व्यय का ब्योरा	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
गत मासकी बचत	२२५१६॥=)१०		कार्य कर्ताओं का वेतन	२७०≡)।	११७।~)॥
सभासदोंकाचन्दा	१६८।=)		छपाई	५०५=)	
नागरी प्रचार	॥।=)॥		नागरी प्रचार	१६॥।)	
फुटकर आय	३८=)।		डाकव्यय	१६॥।≡)॥।	
पुस्तकालय	१३१॥।)		पुस्तकालय	७७≡)।	
स्थायी कोश	१॥)२				

आय का ब्योरा	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग	व्यय का ब्योरा	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
भवन निर्माण	१॥=)२		पुस्तकों की खोज	९४।)	
अमानत	२२९॥≈)।		फुटकर व्यय	११।~)	
पुस्तकोंकी बिक्री		५८५≈)॥	अमानत	३९५॥=)॥।	
पृथ्वीराज रासो		१४६॥)	मनोरंजन पुस्तक माला		१०३०।≈)॥
हिन्दी कोश		११०६॥=)५	हिन्दी कोश		३०९९)॥
मनोरंजन पुस्तक माला		९०८॥~)॥	देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तक माला		॥=)
भारतेन्दु ग्रंथावली		९०॥≈)।	छपाई		५९३।)॥।
देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तक माला		३७॥=)॥।	विज्ञापन		५४~)
हिन्दी पुस्तकों की खोज	५००)			१३८७॥)	४८९४॥।~)।
	२३४९६॥≈)२	२८७५॥~)५	बचत	६२८२।~)। २००८९॥।≈)४	
	२६३७२।)७			२६३७२।)७	

(२) निश्चय हुआ कि सभा के नए भवन का नकशा तयार कराने के लिये निम्न लिखित सज्जनों की एक उपसमिति बना दी जाय:—

बाबू हरिप्रसाद पालधि, बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी. ए. एल एल. बी., पंडित रामनारायण मिश्र बी. ए., बाबू श्यामसुन्दर दास बी. ए. तथा राय ज्वाला प्रसाद जी।

(३) वेतन वृद्धि के लिये क्लार्कों का प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि मंत्री की सम्मति के सहित यह आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

(४) ग्वालियर तथा संयुक्त प्रदेश की हिन्दी हस्तलिपि परीक्षा के पर्चे उपस्थित किए गए।

निश्चय हुआ कि इन पर विचार करने के लिये निम्न लिखित सज्जनों की उपसमिति बना दी जाय:—बाबू शिवकुमार सिंह, बाबू वेणीप्रसाद तथा पं० रामचन्द्र शुक्ल।

(५) आगामी वर्ष के लिये निम्न लिखित बजेट तयार किया गया—

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा का संवत १९७८ का बजेट ।

आय का ब्योरा	सं० १९७७ का बजेट	संवत् १९७७ की वास्तविक आय	संवत् १९७८ का बजेट	व्यय का ब्योरा	संवत् १९७७ का बजट	संवत् १९७७ का वास्तविक व्यय	संवत् १९७८ का बजेट
गत वर्ष की बचत	६९५॥=)७	२२१९५॥-)२	७१०॥।)२	कार्यकर्ताओं का वेतन	१६००)	१५५१॥)	१८००)
सभासदों का चन्दा	१५००)	१८६३॥≈)॥	२०००)	छपाई	१८००)	१९७८॥।-)॥	५१००)
हिन्दी पुस्तकोंकी खोज	१०००)	१०००)	१५००)	डाक व्यय	३५०)	४५८≈)॥	५००)
नागरी प्रचार	१५)	१८॥=)॥	२०)	नागरी प्रचार	११०)	१००॥=)	१५०)
फुटकर आय	१००)	६७।=)॥	६०)	पारितोषिक	६४)	९२॥=)	६४)
पुस्तकालय	६००)	६६२।-)॥	७००)	पुस्तकालय	६००)	३८३।-)॥।	५००)
विशेष आय	१५००)	८०४॥=)॥।	१९५६)	पुस्तकों की खोज	१०००)	९०९॥-)।	१५००)
जोधसिंह पुरस्कार	६५)	६३॥-)॥	६०)	फुटकर व्यय	२००)	१७६≈)॥	२०१)
अमानत	६५१=)॥	२०३९॥=)।	७८०-)॥।	मरम्मत	५०)	१०७॥।≈)॥	५०)
भवन निर्माण	...	२४॥=)१०	......	अमानत	२३७।≈)॥	२४३७)	...
स्थायी कोश	११६)	३८४।)७	१००)	सभाभवन पर टिकस	१०६।)	...	२१२।)
				स्थायी कोश के लिये	११६)	...	९३।)
				वार्षिकोत्सव	...	१६८॥)	१००)
				टैक्स	...	८४।-)॥	...
				जोधसिंह पुरस्कार	२००)	२२७॥।)	१३२॥।)

पुस्तक विभाग।

पुस्तकों की बिक्री	१२००)	१६६३॥।=)।	२०००)
पृथ्वीराजरासो	७००)	६४४।)॥	७००)
हिन्दी कोश	६०००)	४५६४॥।)८	७३००)
पुस्तकोंकेलिये पुरस्कार	१००)	५०।)॥	५०)
मनोरंजन पुस्तकमाला	७०००)	५६५६।-)॥।	७५००)
भारतेन्दु ग्रन्थावली	७००)	३६७।)१	१९००)
देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला	२०५०)	३१८७॥=)॥।	१८००)
सूर्यकुमारीपुस्तकमाला	५०००)	२६५०)	८०००)
	३१९९२॥।)८	४८२३७॥।)१	३६२३६॥-)११

कार्यकर्ताओंका वेतन	१४२५)	२५६॥।=)	[illegible]
मनोरंजन पुस्तकमाला	७४००)	५४४६-)।	[illegible]
हिन्दी कोश	१०२९३।=)३	६८८३॥=)।	[illegible]
भारतेन्दु ग्रन्थावली	५००)	३२४-)॥	[illegible]
विज्ञापन	५००)	८६॥-)	[illegible]
देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला	१६४१)	३४००)	[illegible]
छपाई	...	१०५०॥=)	[illegible]
सूर्यकुमारीपुस्तकमाला	५०००)	२०१७॥।=)	[illegible]
	३३२०३-)३३	२८१४७॥।)॥।	[illegible]

बचत का ब्योरा।

३६॥=)॥ रोकड़ जमा
६०४॥।)। बनारस बङ्क चलता खाता
६३।-)५ बनारस बङ्क सेविंग बङ्क
७१०॥।)२

१०५००) इम्पीरियल बङ्कके ७ शेयर
१०००) बनारस बङ्क फिक्सड डिपाजिट (जोधसिंह पुरस्कार)
७५००) " "
३७५॥।=)८ पोस्टल सेविंग बङ्क
३।)॥ बनारस बंक (भवन निर्माण)
१९३७९=)२

कुल जोड़ २००८९॥=)४

आय का व्योरा।

मनोरंजन पुस्तकमाला

६ नई संख्याओं की बिक्री	२५००)
फुटकर बिक्री	५०००)
	७५००)

देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला

पुस्तकों की बिक्री	११००)
इम्पीरियल बंक से डिविडेण्ट	७००)
	१८००)

हिन्दी कोश

चार संख्याओं की बिक्री	४४००)
पुराने अंकों की बिक्री	२६००)
ब्याज	३००)
	७३००)

पुस्तकालय

बनारस म्युनिसिपपेलिटी की सहायता	३६०)
सहायकों का चन्दा	३४०)
	७००)

व्यय का व्योरा।

छपाई

ना० प्र० पत्रिका ६ संख्याएँ	३९९६-)
वार्षिक रिपोर्ट	१५०)
पिछले बिल	८५३।=)॥।
फुटकर	१३६॥-)।
	५१००)

जोधसिंह पुरस्कार

प्रशंसा पत्र की छपाई	१३२॥।)

हिन्दी कोश

चार संख्याओं की छपाई	३२००)
वेतन तथा पुरस्कार	२४००)
फुटकर	१०३२॥।)
बचत	५६७।)
	७२००)

देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला

सुंगयुन् की छपाई	११०७।≈)॥।
बचत	७१।≈)
	११७८॥≈)॥।

मनोरंजन पुस्तकमाला

६ संख्याओं की छपाई ग्रन्थकारों के पुरस्कार सहित	४०५०)
फुटकर	११४८।)॥।
पिछले बिल	१३०१॥≈)।
	६५००)

पुस्तक विभाग के कार्यकर्त्ता

सहायक मंत्री	६००)
दफ्तरी	११४)
चपरासी	९६)
	८१०)

कार्यकर्त्ताओं का वेतन

सहायक मंत्री	७८०)
क्लार्क १	२७६)
क्लार्क २	२१६)
क्लार्क ३	१४४)
चपरासी	९६)
पंखा कुली	३६)
मेहतर	१२)
माली	३६)
फुटकर	२०४)
	१८००)

(६) गंगा पुस्तकमाला कार्यालय का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लखनऊ के लिये सभा की पुस्तकों की एजेन्सी मांगी थी और लिखा था कि वर्ष में वे कम से कम एक हजार की बिक्री करेंगे।

निश्चय हुआ कि जिन नियमों पर हिन्दी पुस्तक एजेन्सी को एजेन्सी दी गई है उन्हीं नियमों पर उन्हें भी दी जाय परन्तु पुस्तकें उधार न दी जा सकेंगी।

(७) मुं० बटुक प्रसाद का प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने एक मास के लिये आधे वेतन पर छुट्टी की प्रार्थना की थी।

निश्चय हुआ कि विशेष अवस्था में इन्हें आधे वेतन पर छुट्टी दी जाती है।

(८) निश्चय हुआ कि गोभिलीय गृहकर्म प्रकाशिका की सब प्रतियां कोई सज्जन एक साथ ले लें तो वे उन्हें अर्द्ध मूल्य पर दे दी जांय।

(९) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

---

(२) प्रबन्ध समिति

सोमवार मि० २ ज्येष्ठ १९७८ (१६ मई १९२१) सन्ध्या के ५॥ बजे

स्थान—सभाभवन

उपस्थित

बाबू श्यामसुन्दरदास जी बी. ए., बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी. ए. एल.एल. बी. ठाकुर शिवकुमारसिंह, बाबू ब्रजरत्नदास।

कोरम पूरा न होने के कारण अधिवेशन न हो सका और निश्चय हुआ कि कल मि. ३ ज्येष्ठ १९७८ को सन्ध्या के ५ बजे अधिवेशन किया जाय।

---

(३) प्रबन्ध समिति

मंगलवार मि० ३ ज्येष्ठ १९७८ (१७ मई १९२१) सन्ध्या के ५॥ बजे

स्थान-सभाभवन

उपस्थित

बा. श्यामसुन्दरदासजी बी.ए.(सभापति ,बा. गौरीशंकरप्रसाद बी.ए.,एल.एल.बी. ठाकुर शिवकुमार सिंह, बाबू वेणीप्रसाद, बाबू ब्रजरत्न दास।

(१) ३ वैशाख १९७८ का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) सभा का अट्ठाइसवां वार्षिक विवरण पढ़ा गया और उसमें आवश्यक संशोधन किया गया।

निश्चय हुआ कि यह रिपोर्ट स्वीकार की जाय पर इसमें समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं का जो उल्लेख किया गया है उसके स्थान पर केवल उन समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं की नामावली दी जाय जो इस वर्ष नए निकलने लगे

अथवा जो बन्द हो गए। इसे तथा इस विवरण की अन्य त्रुटियों को दूर करने के लिये निम्न लिखित सज्जनों की उपसमिति बना दी जाय:—बाबू श्याम सुन्दरदासजी बी. ए., बाबू बेणीप्रसाद तथा पंडित रामनारायण मिश्र बी.ए.।

(३) वेतन वृद्धि के लिये क्लार्कों का प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि यह मंत्री की सम्मति के सहित आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

(४) एक मास की छुट्टी के लिए पं० विश्वेश्वरनाथ तिवारी का प्रार्थना पत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि मंत्रीजी इस सम्बन्ध में जैसा उचित समझें करें।

(५) मंत्री ने सूचना दी कि हिन्दी हस्तलिपि परीक्षा के लिये जिन सज्जनों को सभा ने नियत किया था उनमें से पण्डित रामचन्द्र शुक्ल बाहर चले गए हैं अतः हस्तलिपि के पर्चों पर विचार नहीं हो सका।

निश्चय हुआ कि इस कार्य के लिये पंडित रामचन्द्र शुक्ल के स्थान पर पंडित रामनारायण मिश्रजी चुने जांय।

(६) पंडित प्यारेलाल गौड़ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि (क) सभा के साधारण अधिवेशनों की सूचना बाहरी सभासदों को भी भेजी जाया करे और (ख) हिन्दी वर्नाक्युलर मिडिल परीक्षा में आनर्स प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों तथा उनके अध्यापकों को कुछ पुरस्कार दिया जाय।

निश्चय हुआ कि (क) साधारण सभा के सब अधिवेशनों की तिथियां सभा की पत्रिका में छाप दी जांय और (ख) यह आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

(७) रायपुर के श्रीयुत बी० पी० पुरोहित का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने पूछा था कि क्या सभा उनकी "अंक चन्द्रिका" को प्रकाशित कर सकेगी ?

निश्चय हुआ कि सभा इसे इस समय प्रकाशित नहीं कर सकती।

(८) बुलन्दशहर के बाबू बंशीधर मारवाड़ी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने प्रस्ताव किया था कि संयुक्त प्रदेश के गवर्न्मेंट गजट का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कराने के लिये सभा उचित उद्योग करे और प्रान्तीय रिपोर्टों का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित कराने का उद्योग किया जाय।

निश्चय हुआ कि सभा इस सम्बन्ध में उद्योग कर चुकी है पर उसे सफलता नहीं हुई।

(९) डाक्टर गंगानाथ झा का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने न्याय प्रकाश तथा वैशेषिक दर्शन की कुछ प्रतियां मांगी थीं।

निश्चय हुआ कि उक्त पुस्तकों की दस दस प्रतियां उन्हें भेंट की जांय।

(१०) निश्चय हुआ कि हिन्दी पुस्तकों की खोज की कार्य प्रणाली निश्चित करने तथा सूर्यकुमारी पुस्तकमाला का कार्यक्रम बनाने के लिये निम्न लिखित सज्जनों की एक उपसमिति बनाई जाय।

पण्डित रामनारायण मिश्र बी. ए., बाबू श्यामसुन्दर दास बी. ए., बाबू गौरीशङ्कर प्रसाद बी. ए. एल. एल. बी.।

(११) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

वार्षिक अधिवेशन

रविवार मिती ८ ज्येष्ठ सं० १९७८ (२२ मई १९२१) सन्ध्या के ६ बजे

स्थान-सभाभवन

उपस्थित

बाबू श्यामसुन्दर दास बी. ए. (सभापति), बाबू गौरीशङ्कर प्रसाद बी. ए. एल. एल. बी., पंडित रामनारायण मिश्र बी. ए., ठाकुर शिवकुमार सिंह जी, बाबू लक्ष्मीनारायण गुप्त, बाबू सत्यनारायण प्रसाद, बाबू माधव प्रसाद, बा. बेणी प्रसाद, बाबू चन्द्रिका प्रसाद, बाबू गोपाल दास, बाबू सूर्यनारायण सिंह, बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा, पंडित केदारनाथ पाठक, बाबू केदारनाथ, पंडित मदनमोहन शास्त्री, पंडित इन्द्रदेव तिवारी, बाबू जगन्मोहन वर्म्मा, बाबू कवीन्द्रनारायणसिंह, पंडित रामचन्द्र नायक कालिया, बाबू शिवप्रसाद गुप्त, बाबू रामचन्द्र वर्म्मा।

राय बहादुर बाबू हीरालाल—प्रतिनिधि बाबू श्यामसुन्दर दास द्वारा।

बाबू रामधन सिंह, बांदा—प्रतिनिधि पंडित रामनारायण मिश्र द्वारा।

बा. लालमणि गुप्त, फर्रुखाबाद-प्रतिनिधि बा. शिवप्रसाद गुप्त द्वारा।

सैयदअमीरअली, धर्म्मजयगढ़-प्रतिनिधि बाबू बेणीप्रसाद द्वारा।

बाबू जगन्नाथ झुंभनूवाले, रानीगञ्ज
बाबू दामोदरदास खंडेलवाल, कलकत्ता } प्रतिनिधि बा. गौरीशङ्कर प्रसाद द्वारा

बाबू चन्डी प्रसाद नायक गोरखपुर-प्रतिनिधि बाबू जगन्मोहन वर्म्मा द्वारा।

(१) कार्याधिकारियों और प्रबन्ध समिति तथा बोर्ड के सभासदों के चुनाव के लिये उपस्थित सभासदों में निर्वाचनपत्र वितरित किए गए, सभासदों ने इन पत्रों को भरा और इनका परिणाम आँकने के लिये सभापति महोदय ने ठाकुर शिवकुमार सिंह, बाबू सत्यनारायण प्रसाद और बाबू माधव प्रसाद को नियत किया।

(२) सभा का अट्ठाइसवां वार्षिक विवरण पढ़ा गया।

बाबू शिवप्रसाद गुप्त के प्रस्ताव पर काशी विद्यापीठ का और बाबू रामचन्द्र वर्म्मा के प्रस्ताव पर सभा भवन में ठाकुर बैजनाथ सिंह जी के पधारने का उल्लेख इसमें बढ़ाया गया।

बाबू गौरीशङ्कर प्रसादजी के प्रस्ताव तथा पंडित रामनारायण मिश्र के अनुमोदन पर निश्चय हुआ कि यह विवरण स्वीकार किया जाय।

(३) सम्वत् १९७७ के आय व्यय का हिसाब उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ।

(४) सम्वत् १९७८ के लिये निम्न लिखित बजेट उपस्थित किया गया।

बाबू रामचन्द्र वर्म्मा के प्रस्ताव तथा बाबू केदारनाथ के अनुमोदन पर निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(५) वार्षिक चुनाव का निम्नलिखित परिणाम उपस्थित किया गया।

सभापति—रायबहादुर पंडित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा

उप सभापति—बाबू गौरीशङ्कर प्रसाद बी. ए., एल. एल. बी.

,, —पंडित रामनारायण मिश्र बी. ए.

मंत्री—बाबू श्यामसुन्दर दास बी. ए., उपमंत्री—बाबू ब्रजरत्न दास

प्रबंध समिति के सदस्य
- बाबू कवीन्द्रनारायण सिंह
- बाबू बेणी प्रसाद
- पंडित आत्माराम हरी खांडीलकर
- पंडित देवीप्रसाद उपाध्याय
- पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र बी. ए.
- रायबहादुर बाबू हीरालाल
- ठाकुर रामकृष्ण गोपाल भंडारकर

बोर्ड आफ ट्रस्टीज़ के सदस्य
- रायबहादुर बाबू हीरालाल
- बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी. ए., एल. एल. बी.
- सर आसुतोष मुकर्जी
- बाबू बेणीप्रसाद

(६) बोर्ड आफ ट्रस्टीज तथा प्रबन्धसमिति का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि नियम ४८ के अनुसार बोर्ड आफ ट्रस्टीज़ में जिन सदस्यों के स्थान रिक्त हुए हैं उनमें से माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय, बाबू भगवानदास एम. ए., राजा मोतीचन्द और राय शिवप्रसाद पुनः उक्त बोर्ड के सदस्य चुने जांय।

पंडित रामनारायण मिश्र के प्रस्ताव तथा बाबू गौरीशंकर प्रसादजी के अनुमोदन पर निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाय।

(७) प्रबन्ध समिति का यह प्रस्ताव, जो साधारण सभा से अनुमोदित हो चुका था, उपस्थित किया गया कि राजाधिराज सर नाहरसिंह जी. के. सी. आई. ई. शाहपुराधीश, जिनके राजकुमार ने सूर्यकुमारी पुस्तकमाला के लिये एक लाख रुपए का दान दिया है, सभा के संरक्षक चुने जांय।

सर्व सम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

(८) बाबू गौरीशंकर प्रसादजी के प्रस्ताव तथा बाबू रामचन्द्र वर्म्मा के अनुमोदन पर निश्चय हुआ कि बाबू बेणीप्रसादजी ने गत वर्ष मंत्री रह कर सभा का कार्य्य जिस योग्यता और उत्तमता से चलाया है उसके लिये उन्हें धन्यवाद दिया जाय।

(९) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

साधारण सभा ।

शनिवार मि० २८ ज्येष्ठ १९७८ (११ जून १९२१) सन्ध्या के ६ बजे

स्थान–सभाभवन ।

उपस्थित

बाबू बेणी प्रसाद (सभापति) बाबू श्यामसुन्दरदास बी. ए. पंडित रामचन्द्र नायक कालिया, पंडित देवीप्रसाद उपाध्याय, बाबू व्रजरत्नदास, पंडित केदारनाथ नाथ पाठक, बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा ।

(१) बाबू श्यामसुन्दर दासजी के प्रस्ताव तथा बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा के अनुमोदन पर बाबू बेणी प्रसाद जी सभापति चुने गए ।

(२) प्रबन्ध समिति का ३ वैशाख १९७८ का कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़ा गया ।

(३) सभासद होने के लिये निम्न-लिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किए गए–

१ बाबू व्रजभूषण, कस्बो दरवाजा, मेरठ ... ... ३)
२ द्विवेदी नाथूरामात्मज धनलाल शर्मा, रायजीकी ब्रह्मपुरी, सिरोयोंका घाट, उदयपुर ... ... ३)
३ पंडित रोशनलालझा, पोलिटिकल सुपरेण्टेण्डेन्सी, हिली ट्रैक्ट्स, खैरवाड़ा, मेवाड़ ... ... ३)
४ पंडित रघुनन्दनलाल शर्म्मा, टिंबर मर्चेंट, अनूपशहर, बुलंदशहर ३)
५ पंडित परमेश्वरानन्द शर्म्मा, सनातन धर्म संस्कृत कालेज अनारकली, लाहौर ... ... ३)
६ बाबू शारदा प्रसाद गुप्त, अहरौरा, जि० मिर्जापुर ... ३)
७ बाबू पूरनचन्द, सबओवरसियर, शङ्करगढ़, प्रयाग ... ३)
८ बाबू किशनदास अरोड़ा, ढुंढिराज गणेश, काशी ... ३)
९ श्रीयुत रतीलाल मगन लाल अन्ताणी, अड़ज, झालावाड़, झालरापाटन .. .. ३)
१० बाबू रामशरण वकील, सहायक मंत्री, ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन, मुरादाबाद ... ... ३)
११ श्रीयुत बाबू शिवजी, मेयोकालेज, अजमेर ... ३)
१२ बाबू मोड़ीराम, सहायक खज़ानची, मसुदा, वाया नसीराबाद ५)
१३ बाबू द्वारिका प्रसाद बी. ए., सब इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स, राजपुर, जि० चम्पारन ... ... ६)
१४ बाबू अतीन्द्र मोहन चट्टोपाध्याय, सब डिप्टी कलेक्टर पो० सादसपुर, जिला बांकुड़ा ... ... ३)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जांय ।

(४) निम्न लिखित सभासदों के त्यागपत्र उपस्थित किए गए —

१ बाबू रामारामजी, छोटी कुञ्जगली, काशी।

२ पं० लक्ष्मीनारायण शर्म्मा, टेढ़ी बाजार, गाजीपुर।

३ बाबू नवरत्न लाल मुख्तार।

निश्चय हुआ कि इनके त्यागपत्र स्वीकार किए जांय।

(५) मंत्री ने सूचना दी कि बुलन्दशहर के पंडित टीकाराम गणेशदत्त वैद्य के यहां जो पत्रिका भेजी जाती है उसे वे अस्वीकार करके लौटा देते हैं।

निश्चय हुआ कि इनका नाम सभासदों की नामावली से काट दिया जाय।

(६) मंत्री ने सूचना दी कि प्रबन्धसमिति के अधिवेशनों में उपस्थित न होने अथवा उनमें अपनी सम्मति न भेजने के कारण निम्नलिखित सदस्यों के स्थान उस समिति में रिक्त होते हैं (१) पंडित गोविन्दराव ओगलेकर (२) सेन्गुप्त पी० सी० दास (३) बाबू हरिप्रसाद पालधि (४) पंडित गोविन्द नारायण मिश्र (५) ठाकुर राजेन्द्र सिंह (६) बाबू बलदेव दास (७) बाबू शिवप्रसाद गुप्त (८) पं० रामचन्द्र नायक कालिया (९) बाबू जगन्नाथ झुन-झुनवाले (१०) बाबू काशी प्रसाद जायसवाल और (११) राय रामशरणदास। इनके अतिरिक्त मध्यप्रदेश से पं० शुकदेव बिहारी मिश्र के चले जाने के कारण उनका स्थान भी रिक्त हो गया।

निश्चय हुआ कि इनके स्थान पर क्रमात् निम्नलिखित सज्जन चुने जांय (१) पंडित रामचन्द्र शुक्ल (२) पंडित प्राणनाथ विद्यालङ्कार (३) बाबू दुर्गाप्रसाद (४) बाबू माधव प्रसाद (५) पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी (६) गोस्वामी रामपुरी (७) बाबू बलदेव दास (८) पंडित रामचन्द्र नायक कालिया (९) राय पूरणचन्द्र नाहर (१०) रायसाहब बाबू रामगोपाल चौधरी (११) पंडित जगन्नाथ निरुक्तरत्न तथा (१२) रायबहादुर डा० सरयूप्रसादजी।

(७) निम्नलिखित पुस्तकें उपस्थित की गईं और स्वीकृत हुईं—

१ इंडियन प्रेस, प्रयाग—

Bate's Hindi-English Dictionary.

२ बनारस म्युनिसिपल बोर्ड—

Administration Report of 1920-21.

३ ज्ञानमंडल कार्यालय, काशी—

बिहारी सतसई, अब्राहम लिंकन, प्राचीन भारत, इटली के विधायक महात्मागण, यूरप के प्रसिद्ध शिक्षा सुधारक, वैज्ञानिक अद्वैतवाद।

४ हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।

ज्ञान और कर्म, सरल मनोविज्ञान

५ श्रीयुत श्री० पी० श्रीवास्तव बी. ए., एल. एल. बी., गोंडा-

मर्दानी औरत, अकामसिंह शर्म्मा, नोक झोंक।

... शर्मा, आढ़वा, पो० रसूलाबाद, कन्नाव –
मेघदूत ।

७ पंडित माधवराव सप्रे बी. ए., जबलपुर—
महाभारत मीमांसा ।

८ जैन पुस्तक प्रकाशक कार्यालय, ब्यावर—
उपदेश रत्नकोश, वैराग्य शतक, मार्गानुसारी के ३५ गुण, जैन दर्शन और जैन धर्म्म ।

९ पण्डित परमेश्वर मिश्र, नई बस्ती, काशी–
पंडित दामोदर शास्त्री ।

१० बाबू रामचन्द्र वर्म्मा, काशी–
सुभाषित और विनोद ।

११ बाबू माधव प्रसाद खत्री, धर्मकूप, काशी—
मेजिनी ।

१२ पंडित भोलानाथ पांडे, गायघाट, काशी—
नराधम ।

१३ नाथ खत्री ब्रह्मचर्याश्रम, काशी–
कौशल किशोर कल्पतरु (हस्तलिखित)

(४) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई ।

---

(४) प्रबन्ध समिति ।

शनिवार वि० ११ आषाढ़ १९७८ (२५ जून ९२१) सन्ध्या के ६ बजे

स्थान--सभाभवन ।

उपस्थित

बाबू माधवप्रसाद (सभापति), बाबू बेणीप्रसाद, बाबू श्यामसुन्दर दास बी०ए० पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, बाबू ब्रजरत्नदास, पण्डित देवीप्रसाद उपाध्याय ।

सम्मति भेजने वाले

राय बहादुर बाबू हीरालाल, वर्धा

(१) बाबू श्यामसुन्दर दास जी के प्रस्ताव तथा बाबू बेणीप्रसाद जी के अनुमोदन पर बाबू माधव प्रसाद जी सभापति चुने गए ।

(२) गत अधिवेशन (३ ज्येष्ठ १९७८) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ ।

(३) वैशाख और ज्येष्ठ १९७८ के आयव्यय का निम्नलिखित हिसाब खुलासा उपस्थित किया गयाः–

वैशाख १९७८

आय का ब्योरा	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग	व्यय का ब्योरा	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
गत मासकी बचत	२००८१॥≡)४		कार्य कर्ताओं का वेतन	१३१।≡)॥	६७॥)
सभासदोंका चंदा	११=)		डाक व्यय	२७॥=)॥	
नागरी प्रचार	१॥=)॥।		नागरी प्रचार	८।=)	
फुटकर आय	३≡)।		पुस्तकालय	३०॥-)	
पुस्तकालय	४६)		हिन्दी पुस्तकों की खोज	१२०≡)	
अमानत	७०।≡)		फुटकर व्यय	१२॥≡)॥।	
पुस्तकों की बिक्री		१२५॥≡)।।	अमानत	३६१ -)	
पृथ्वीराजरासो		५२॥)	हिन्दी कोश		१५२।≡)
हिन्दीकोश		११८॥≡)॥	भारतेन्दुग्रंथावली		१)
मनोरञ्जन पुस्तक माला		२३२॥=)	विज्ञापन		१६)
भारतेन्दु ग्रन्थावली		३७-)॥।	देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तक माला		८॥।=)
देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तक माला		३५६८≡)॥	सूर्यकुमारी पुस्तक माला		२००)
				७२४॥।)॥।	४४६-)
				११७०॥।-)॥।	
	२ २२२।=)७	४१४१=)॥	बचत	२३१९२॥≡)१	
	२४३६३॥)१०			२४३६३॥)१०	

ज्येष्ठ १९७८

आय का ब्योरा	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग	व्यय का ब्योरा	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
गत मासकी बचत	२३१९२॥≡)१		कार्य कर्ताओं का वेतन	१२६)॥।	६६)
सभासदोंका चन्दा	३)		छपाई	१५०२॥-)॥	
नागरी प्रचार	-)				

आय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग	व्यय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
फुटकर आय	३)॥		डाकव्यय	१३४=)।	
पुस्तकालय	३२।)		नागरी प्रचार	८।=)	
विशेष आय	६४०॥≡)॥।		पुस्तकालय	३५॥।=)॥	
अमानत	३०८॥-)॥		पुस्तकों की खोज	७४॥।-)।	
स्थायी कोश	६६।-)॥।		फुटकर व्यय	४६॥।-)।	
पुस्तकोंकी बिक्री		७२।=)।	भवन का टिकस	१०६।)	
पृथ्वीराज रासो		३७॥)	स्थायी कोष के लिये	६६।-)॥	
हिन्दी कोश		१३१)	जोधसिंह पुरस्कार	१३२॥।)	
मनोरंजन पुस्तक माला		१५०।=)	अमानत	१८२।≡)॥।	
भारतेन्दु ग्रंथावली		४८॥।=)	मनोरंजन पुस्तक माला		१११।॥≡
देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तक माला		१०)	हिन्दी कोश		४५०॥।=
			देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तक माला		१२०३≡)।
			सूर्यकुमारी पुस्तक माला		७८≡)
			पुस्तकों के लिये पुरस्कार		१६-)।
				२४५२॥।-)॥	२९२६-)॥।
				५३७८॥।≡)।	
	२४५७७≡)८	४५०=)।	बचत	१९६४८।=)४	
	२५०२७।-)७			२५०२७।-)७	

बचत का ब्योरा

३०॥=)॥ रोकड़ जमा
६२२।≡) बनारस बैङ्क चलता खाता
।-)१ बनारस बैङ्क सेविंग बैङ्क
६५४≡)२

१०५०) इम्पीरियल बैंक के शेयर
१०००) बनारस बैङ्क, फिक्स डिपाज़िट, (जोधसिंह पुरस्कार)
७५००) बनारस बैङ्क, फिक्सडिपाज़िट
।॥=)८ पोस्टल सेविंग बैङ्क
३)॥ बनारस बैङ्क, भवन निर्माण
१८९९४≡)२

कुल जोड़ १९६४८।=)४

(४) वेतन वृद्धि के लिये क्लार्कों तथा चपरासियों का प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि १ आषाढ़ १६७८ से पण्डित विश्वेश्वरनाथ, पंडित केदारनाथ पाठक, बाबू देवनन्दन सिंह, बाबू शंकरसिंह और बाबू बटुक प्रसाद के मासिक वेतन में दो दो रुपए की शिवप्रसाद तथा गौरशंकर के वेतन में एक एक रुपये की तथा मेहतर के वेतन में आठ आने की वृद्धि की जाय।

(५) पंडित प्यारेलाल गौड़ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि हिन्दी वर्नाक्युलर मिडिल परीक्षा में जो विद्यार्थी ओनर्स प्राप्त करें उन्हें तथा उनके अध्यापकों को सभा से कुछ पारितोषिक दिया जाय।

निश्चय हुआ कि सभा अभी इसके करने में असमर्थ है।

(६) बाबू सूरज नारायण सिंह का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे एक इतिहास लिख रहे हैं और उसके लिये सभा के पुस्तकालय से अंग्रेजी की कुछ पुस्तकें लेना चाहते हैं।

निश्चय हुआ कि इन पुस्तकों को वे सभा के पुस्तकालय में पढ़ सकते हैं।

(७) मुंशी देवीप्रसाद जी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अपनी पुस्तकों का संग्रह सभा को देने के लिये मंत्री को बुलाया था।

निश्चय हुआ कि इस कार्य के लिये जब रा० ब० पंडित गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा तथा पंडित चन्द्रधर शर्म्मा जी जोधपुर आ सकें उस समय काशी से मंत्री जी भी वहां जांय।

(८) निश्चय हुआ कि हुवेन्त्सांग की यात्रा का अनुवाद चार भागों में प्रकाशित किया जाय और प्रत्येक भाग को रायबहादुर पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा जी देखकर अपनी स्वीकृति दे दें तब अनुवादक को उस भाग का पुरस्कार दे दिया जाय।

(९) पण्डित श्याम बिहारी मिश्र जी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने हिंदी पुस्तकों की खोज के लिये निरीक्षक के पद से मुक्त किए जाने की प्रार्थना की थी।

निश्चय हुआ कि पण्डित श्याम बिहारी मिश्र जी का त्यागपत्र स्वीकार किया जाय और जिस योग्यता से उन्होंने इतने वर्षों तक खोज का काम किया है उसके लिये उन्हें विशेष धन्यवाद दिया जाय।

(१०) पण्डित शुकदेव बिहारी मिश्र का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने हिन्दीपुस्तकों की खोज का निरीक्षक होना स्वीकार किया था और लिखा था कि प्राचीन पुस्तकों के संस्करण निकालने के स्थान पर सभा प्राचीन साहित्य के संग्रह प्रकाशित करे। यदि सभा चाहे तो Gold n Treasury Series की भांति करीब २००० पृष्ठों में चार भागों में वे एक बहुत अच्छा संग्रह तैयार करदेंगे।

निश्चय हुआ कि पण्डित शुकदेव बिहारी मिश्रजी हिंदी पुस्तकों की खोज के निरीक्षक चुने जांय। उनसे प्रार्थना कीजाय कि वे कृपापूर्वक प्राचीन साहित्य

का एक सर्वोत्तम संग्रह अपने प्रस्ताव के अनुसार तयार करदें और इस कार्य के लिये उन्हें एक लेखक तथा जिन पुस्तकों की आवश्यकता हो वे पुस्तकें भी सभा से दी जांय।

(११) हिन्दी हस्त लिपि परीक्षा के सम्बन्ध में उपसमिति की रिपोर्ट उपस्थित की गई।

निश्चय हुआ कि उपसमिति की सम्मति के अनुसार निम्नलिखित बालकों को पारितोषिक और प्रशंसापत्र दिए जांय—

हाई और मिडिल विभाग

१ राम स्वरूपशर्म्मा, सेकेण्ड इयर स्पेशल क्लास, धर्म समाज हाई स्कूल अलीगढ़ १०)
२ कृष्णसिंह राजपूत, कक्षा ७, टाउन स्कूल, अलमोड़ा ८)
३ महीलाल शर्म्मा, सेकेंडइयर स्पेशलक्लास, धर्मसमाज हाईस्कूल अलीगढ़ ६)

प्रशंसा पत्र—
४ पानसिंह राजपूत कक्षा ७, टाउन स्कूल, अलमोड़ा
५ राम भरोसे, कक्षा ७, टाउन स्कूल, ललितपुर, झांसी
६ भगवान दीन, कक्षा ६, तहसीली स्कूल, कर्वी, जि० बांदा
७ कुन्दनसिंह, कक्षा १०, गवर्नमेंट हाईस्कूल, श्रीनगर, गढ़वाल
८ जगदीशप्रसाद थपलियाल, कक्षा १०, गवर्नमेंट हाईस्कूल कानपुर
९ मनोहरलाल, कक्षा ६, हिन्दी मिडिल स्कूल, रायबरेली

प्राइमरी विभाग

१ दुर्गादत्त लोहुमी, कक्षा ४, पाठशाला गंगोली हाट, तहसील चम्पावत, जि० अलमोड़ा ८)
२ चिन्तामणि राव, कक्षा ४, यु० प्रा० टाउन स्कूल, कर्वी जि० बांदा ६)
३ ब्रजभूषण लाल, कक्षा ३, टाउन स्कूल, कर्वी, जि० बांदा, ४)

प्रशंसा पत्र—
४ कल्यान, कक्षा ४, मिडल स्कूल, तहसील, अलमोड़ा
५ शिवदयालराम, कक्षा ४, पाठशाला बैरिया, जि० बलिया
६ ठाकुर राम, कक्षा ४, पाठशाला बैरिया, जि० बलिया
७ राधाकृष्ण राय, कक्षा ३, पाठशाला बैरिया, जि० बलिया
८ धूप नारायण राय, कक्षा ३, पाठशाला बैरिया, जि० बलिया

प्रिपरेटरी विभाग

इस विभाग में किसी की लिपि पारितोषिक या प्रशंसापत्र के योग्य नहीं समझी गई।

(१२) निश्चय हुआ कि सूर्यकुमारी पुस्तकमाला में निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित की जांय और यह सूची श्रीमान् महाराजकुमार उम्मेदसिंह जी की सेवा में स्वीकृति के लिये भेज दी जाय।

(१) आईने अकबरी, चार भागों में चित्रों सहित
(२) Light of Asia का पद्यमय अनुवाद

(३) The atmosphere.	(४) Weather Science.
(५) Town planning.	(६) Journalism.
(७) World Geography.	(८) Heredity.
(९) Boy scouting	(१०) Egypt
(११) Babylon	(१२) Persia (Ancient)
(१३) Assyria	(१४) China
(१५) Partha	(१६) Phenicia
(१७) Kindergaten System	(१८) Montessorian System.

(१९) The Universe based on "Miracles of Science", "Marvels of the Universe" and "the nature and purpose of the Universe"

(२०) Machanism of Exchange

(२१) कृषि और पशुपालन।

(१३) निश्चय हुआ कि निम्न लिखित प्राचीन हिन्दी पुस्तकें इस संस्था द्वारा प्रकाशित की जांय—

१ प्राचीन हिन्दी कविता—अपभ्रंश तथा प्राकृत कविताओं का संग्रह जिसमें हिन्दी के प्रारम्भिक रूप का परिचय हो।
२ चन्द्रावती और रानी केतकी की कहानी।
३ प्रेमसागर-फोर्ट विलियम कालेज के संस्करण के आधार पर।
४ बीसलदेव रासो और ढोला मारवणी।
५ जायसी की पद्मावत।
६ सूरदास—नोट्स के सहित।
७ तुलसी के अन्य ११ ग्रन्थ (रामायण को छोड़ कर)
८ बिहारी।
९ केशव—रामचन्द्र चन्द्रिका, कविप्रिया, रसिक प्रिया, विज्ञान गीता, वीरसिंह देव चरित्र।
१० देव—समस्त प्राप्त ग्रन्थ।
११ नाभादास का भक्तमाल।
१२ प्रताप सिंह (ब्रज निधि) के ग्रन्थ।

(१४) पुस्तकालय के प्रस्तावित नियम उपस्थित किए गए।

निश्चय हुआ कि ये आगामी अधिवेशन में उपस्थित किए जांय और गत वर्ष प्रकाशकों के यहां कितने मूल्य की कितनी पुस्तकें रह गई हैं इसका ब्योरा भी उपस्थित किया जाय।

(१५) निश्चय हुआ कि संशोधित हिन्दी व्याकरण कई भागों में प्रकाशित किया जाय, प्रत्येक भाग डिमाई अठपेजी आकार के ९६ पृष्ठों का हो और उसका मूल्य बारह आना रक्खा जाय।

(१६) निश्चय हुआ कि इस वर्ष पुस्तकालय के निरीक्षण का भार सभा के उपमंत्री जी को सौंपा जाय और मागधी प्रचार के निरीक्षक बाबू गौरीशङ्कर प्रसाद जी चुने जांय।

(१७) मध्य प्रदेश की गवर्न्मेंट का ८ जून का पत्र सूचनार्थ उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि इस समय धनाभाव से वे अपने प्रान्त में हिन्दी पुस्तकों की खोज के लिये आर्थिक सहायता न दे सकेंगे।

(१८) पंडित राधाकृष्ण झा का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि बिहार में एम० ए० तक की पढ़ाई में हिन्दी भी रक्खी जायगी और इस पढ़ाई के लिये उन्होंने उपयुक्त पाठ्य पुस्तकों के नाम मांगे थे।

निश्चय हुआ कि पाठ्य पुस्तकों की सूची तयार करने के लिये निम्न लिखित सज्जनों की उपसमिति बना दी जाय—

बाबू श्याम सुन्दर दास जी बी० ए०, पण्डित रामचन्द्र शुक्ल और बाबू रामचन्द्र वर्म्मा।

(१९) बाबू श्यामसुन्दर दास, पंडित रामनारायण मिश्र तथा ठाकुर शिव कुमार सिंह का तैलचित्र देखने के उपरान्त निश्चय हुआ कि यह चित्र बाबू दुर्गा प्रसाद बी० ए०, को दिखलाया जाय और उनके बतलाने के अनुसार इसकी त्रुटियां ठीक करली जांय। तब इसका पुरस्कार दिया जाय।

(२०) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

---

(५) प्रबन्ध समिति का विशेष अधिवेशन.

बुधवार मि० २२ आषाढ़ सं. १९७८ (६ जुलाई १९२१) सन्ध्या के ६ बजे स्थान-सभा भवन।

उपस्थित

पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०, (सभापति) पं. देवी प्रसाद उपाध्याय, बाबू कवीन्द्र नारायण सिंह बाबू ब्रजरत्न दास, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, बाबू दुर्गा प्रसाद, और बाबू बलदेव दास।

बाबू गौरीशङ्कर प्रसाद जी का २७ जून का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सभा के उप-प्रधान तथा बोर्ड आफ ट्रस्टीज़ के सदस्य के पद से इस्तीफा दिया था और सभापति महोदय ने सूचना दी कि कौन्सिल के निर्वाचन सम्बन्धी मुकदमे के फैसले के अनुसार वे इन पदों पर नहीं रह सकते और इसी कारण उन्होंने यह त्यागपत्र दिया है।

निश्चय हुआ कि सभा की ओर से संयुक्त प्रदेश के गवर्नर की सेवा में एक प्रार्थनापत्र भेजा जाय जिसमें उनसे प्रार्थना की जाय कि सन् १८२० के एक्ट सं० ३६ की १३ वीं धारा के प्रोविज़ो के अनुसार वे इस आपत्ति से मुक्त किए जांय जिसके कारण वे इस सभा के ट्रस्टी आदि नहीं रह सकते। यह भी निश्चय हुआ कि इसी आशय का एक तार आज ही श्रीमान् गवर्नर महोदय को भेजा जाय।

(२) साधारण सभा

शनिवार ३२ आषाढ़ १९७८ (१६ जुलाई १९२१) सन्ध्या के ६ बजे

स्थान—सभाभवन ।

उपस्थित

बाबू शिवकुमार सिंह जी (सभापति), बाबू श्यामसुन्दरदास बी॰ ए॰, बाबू ब्रजरत्नदास, पं. पद्माकर द्विवेदी, बाबू कवीन्द्र नारायण सिंह, पं. मदन मोहन शास्त्री, बाबू बालमुकुन्द वर्मा, बाबू रामचन्द्र वर्म्मा, बाबू गौरीशङ्कर प्रसाद ।

(१) बाबू रामचन्द्र वर्म्मा के प्रस्ताव तथा बाबू ब्रजरत्न दास के अनुमोदन पर बाबू शिवकुमार सिंह जी सभापति चुने गए ।

(२) प्रबन्ध समिति के ३ ज्येष्ठ तथा ११ आषाढ़ १९७८ के साधारण अधिवेशनों तथा २१ आषाढ़ के विशेष अधिवेशन के कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़े गए ।

(३) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किए गए:—

१ बाबू जोरावर सिंह, नगला डागुर, पो॰ बेसवां, जि॰ अलीगढ़ ३)

२ पंडित जयचन्द्र विद्यालङ्कार, अध्यापक, राष्ट्रीय महाविद्यालय, पाटीदार आश्रम, सूरत । ३)

३ पंडित जगद्धर गुलेरी एम॰ ए॰, एल॰ एल॰ बी॰, पञ्जाब एग्रिकलचरल कालेज, लायलपुर ३)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जांय ।

(४) निम्नलिखित सभासदों के त्यागपत्र उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए:—

१ बाबू मथुरा प्रसाद बी॰ ए॰, टीकमगढ़ ।

२ पं॰ मुन्नालाल मिश्र, लश्कर ।

३ पं॰ सोमदेव शर्म्मा गुलेरी, कांगड़ा ।

४ बाबू इन्द्रदमन प्रसाद वकील, मुजफ्फरपुर ।

५ बाबू भगवान स्वरूप भटनागर, हाथरस ।

(५) मंत्री ने सूचना दी कि कलकत्ते के बाबू कन्हैयालाल चौखानी के यहां सभा के वार्षिक चन्दे के लिये जो कार्ड भेजा गया था वह फिरता आया और उस पर पोस्टआफिस की यह सूचना लिखी है कि उक्त महोदय का देहान्त हो गया ।

सभा ने इनकी मृत्यु पर शोक प्रगट किया ।

(६) निम्न लिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं:—

१ भारत की गवर्नमेंट—Linguistic Survey of India Vol. X

२ बङ्गाल की गवर्नमेंट—Grammar of Colloquial Tibetan. English Tibetan Colloquial Dictionary

३ बाबू शिवप्रसाद गुप्त, नगवा, काशी—Local Government in Ancient India.

४ स्मिथ सोनियन इन्स्टीट्यूशन, वाशिंगटन—Reports upon two

collections of mosses from British East Africa.
Bureau of American Ethnology. Native cemetries and forms of burial east of the Mississipi.

५ एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता—Journal and Proceedings Vol. XVI of 1920 No. 6

६ बाबू श्यामसुन्दर दास जी द्वारा—सूरसागर (हस्त लिखित)

७ राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, सूर्यपुरा—तरंग।

८ बाबू रामचन्द्र वर्म्मा, काशी—असहयोग का इतिहास।

९ बाबू श्रीकृष्ण दास धूत, इन्दौर—योग भक्तिसार, साधु जीवन।

१० बाबू माधव प्रसाद, काशी—जर्मन जासूस

११ खरीदी गई—
तिलक दर्शन, असहयोगदर्शन, नागपुर की कांग्रेस, गांधीजी कौन हैं, कविता कौमुदी, अभागिनी, अकबर, कालिदास और भवभूति, शांजहां, देव और बिहारी, भारतवर्ष का इतिहास प्रथम खण्ड, परिणाम, देशी उपन्यास, देवी चौधरानी, दयावती, सरोज सुन्दरी, सम्राट अशोक, A Dictionary of Scientific terms, Dynasties of the Kali age और नाटकावली।

१२ Indian Antiquary for March, April and May 1921 and Index to Vol. XLIX of the Antiquary.

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

(६) प्रबन्ध समिति।

शनिवार १४ श्रावण १९७८ (३० जुलाई १९२१) सन्ध्या के ६ बजे
स्थान--सभाभवन

उपस्थित

बाबू माधोप्रसाद (सभापति), बा. वेणीप्रसाद, पं० प्राणनाथ विद्यालङ्कार, बा. दुर्गाप्रसाद बा. ब्रजरत्नदास, बा. श्यामसुन्दरदास बी.ए. और पं० रामचन्द्र शुक्ल।

सम्मति दाता।

बाबू पूर्णचन्द्र नाहर, कलकत्ता। पं० चन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी बी.ए. अजमेर रायबहादुर बाबू हीरालाल, वर्धा। पं० रामनारायण मिश्र बी० ए०, देवरिया, गोरखपुर। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, दौलतपुर, कानपुर। बाबू रामगोपाल सिंह चौधरी, पटना।

(१) बाबू माधवप्रसादजी सभापति चुने गए।

(२) मि० ११ आषाढ़ १९७८ के साधारण अधिवेशन और २२ आषाढ़ १९७८ के विशेष अधिवेशन के कार्यविवरण पढ़े गए और स्वीकृत हुए।

(३) आषाढ़ १९७८ के आयव्यय का निम्नलिखित हिसाब सूचनार्थ उपस्थित किया गया।-

आय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग	व्यय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
गतमास की बचत	१८६४८।=)४		कार्य कर्ताओं का वेतन	१२८।।।≈)।	६५।।।≈)।।
सभासदों का चन्दा	१७२)		छपाई	६३)।।	
नागरी प्रचार	२।≈)।।		डाकव्यय	७४।-)	
फुटकर आय	२७≈)।		पुस्तकालय	२५≈)	
पुस्तकालय	३४।।।-)		पुस्तकों की खोज	३५=)।	
ओधसिंह पुरस्कार	३०।।≈)१		फुटकर व्यय	२१२)७	
अमानत	३३।-)		अमानत	१८३)	
स्थायी कोश	११।)८		मनोरंजन पुस्तक माला		७६८।=)।।।
भवन निर्माण	४।।।-)।।।		हिन्दी कोश		१३६५-)१
पुस्तकों की बिक्री		२४३=)।।।	सूर्यकुमारी पुस्तक माला		९६।-)
पृथ्वीराज रासो		७५)	हिन्दी व्याकरण		५७)
हिन्दी कोश		७७२।।।=)७			
मनोरंजन पुस्तक माला		१८५=)।।।			
भारतेन्दु ग्रंथावली		३४≈)।।			
देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तक माला		३६।।-)।।।			
				७२२।।=)७	२३५२।।।)५
				३०७५।=)११	
	१९९६५)७	१३४७-)४	बचत	१८२३६।।≈)	
	२१३१२-)११			२१३१२-)११	

बचत का व्योरा

१४४।=)।। रोकड़ सभा
३१)।। बनारस बङ्क, सेविंग बङ्क

१७५।≈)

१०५००) इम्पीरियल बंक के ७ शेयर
१०००) बनारस बङ्क, फिक्स डिपाज़िट, (ओधसिंह पुरस्कार)
७५००) बनारस बङ्क, फिक्सडिपाज़िट
७।।)७ पोस्टल सेविंग बङ्क
३।)।। बनारस बङ्क, भवन निर्माण

१९०१०।।-)१

कुल जोड़ १९१८६।)१

बनारस बैंक से अधिक लिया गया ९३९६-)१

१८२३६।।≈)

(४) बनारस म्युनिसिपल बोर्ड के एकज़िक्युटिव आफिसर का २७ जून का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सभाभवन के सन् १९२०-२१ के भेजे हुए टिकस को सन् १९१७-१८ के टिकस में काटने की सूचना दी थी। साथ ही मंत्री ने सूचना दी कि उन्होंने इस पत्र के उत्तर में लिखा है कि सन् १९१७-१८ में सभाभवन पर टिकस नहीं लगता था और इस कारण यह सभा उस वर्ष के टिकस की देनदार नहीं है। अतः सभा ने सन् १९२०-२१ के टिकस का जो रुपया भेजा है वह इसी वर्ष के टिकस में जमा होना चाहिये और रसीद ठीक हो जानी चाहिए।

निश्चय हुआ कि मंत्री जी ने जो उत्तर दिया है वह बहुत ठीक है। इस विषय में म्युनिसिपल बोर्ड को भी लिखा जाय।

(५) छत्रपुर के दीवान का २४ जून का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि मध्य भारत में हिन्दी पुस्तकों की खोज का कार्य प्रारंभ होने पर वे २५०) रु० सभा को सहायतार्थ देंगे।

निश्चय हुआ कि उनको इसके लिये धन्यवाद दिया जाय और लिखा जाय कि यह कार्य इतनी सहायता से नहीं चलाया जा सकता। साथ ही मध्यप्रदेश के अन्य नृपतिगण से भी सहायता की प्रार्थना की जाय।

(६) पंडित जयदेव शर्म्मा विद्यालंकार का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने पुस्तकालय के अँग्रेज़ी विभाग से पुस्तकें लेने की आज्ञा माँगी थी।

निश्चय हुआ कि अँग्रेज़ी विभाग की पुस्तकों की सूची बन जाने पर उन्हें पुस्तकें दी जा सकेंगी।

(७) संयुक्त प्रदेश की गवर्नमेंट का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सूचना दी थी कि सन् १९१२-१४ की हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की रिपोर्ट छपने के लिये गवर्नमेंट प्रेस को भेज दी गई है। साथ ही मंत्री ने सूचना दी कि उन्होंने गवर्नमेंट से प्रार्थना की है कि पूर्व रिपोर्टों की नाई इस रिपोर्ट की छपाई का व्यय भी गवर्नमेंट प्रेस के अनुमान के अनुसार सभा को दिया जाय और सभा इसे छपवा लेगी।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(८) पुस्तकों की बिक्री के सम्बन्ध में बाबू गौरीशंकर प्रसाद जी के अनेक प्रश्न उत्तर के सहित उपस्थित किए गए।

निश्चय हुआ कि बाबू गौरीशंकर प्रसाद जी आज उपस्थित नहीं हैं। अतः प्रश्न उत्तर सहित आगामी अधिवेशन में उपस्थित किए जांय।

(९) गत वर्ष पुस्तकालय के सहायकों के यहां जो पुस्तकें रह गई हैं उनकी नामावली के सहित पुस्तकालय के प्रस्तावित नियम उपस्थित किए गए।

बाबू श्यामसुन्दर दास जी के प्रस्ताव पर अधिक सम्मति से निश्चय हुआ कि पुस्तकालय के सब सहायकों से ५) रु० अमानत की भाँति जमा करा लिया जाय और पुस्तकालय से सम्बन्ध छोड़ने पर यह रुपया उन्हें लौटा दिया जाय।

अधिक सम्मति से यह निश्चय हुआ कि सब सहायकों से, चाहे वे सभा के सदस्य हों वा नहीं, आठ आना मासिक लिया जाय और उनसे एक बार में एक पुस्तक के लिये ३), दो पुस्तकों के लिये ६) और पांच पुस्तकें एक साथ लेने के लिये १२) रु० वार्षिक चन्दा लिया जाय।

(१०) संयुक्त प्रदेश की गवर्न्मेंट का मिसेलेनियस डिपार्टमेण्ट का ता० १० जुलाई १९२१ का पत्र नं० ८५ सी १२-२९८ उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सूचना दी थी कि सन् १९२२-२३ से अभी तीन वर्ष के लिये हिन्दी पुस्तकों की खोज के निमित्त अपनी वार्षिक सहायता १०००) रु० से बढ़ाकर २०००) रु० देने का उनका विचार है। इसके उपरान्त २०००) की इस सहायता का बना रहना कार्य की सफलता पर निर्भर होगा।

निश्चय हुआ कि इस के लिये गवर्न्मेंट को धन्यवाद दिया जाय।

(११) प्राचीन पुस्तकों के प्रकाशित करने के सम्बन्ध में बाबू श्यामसुन्दर दास जी का प्रस्ताव उपस्थित किया गया।

(१२) ग्वालियर की हस्तलिपि परीक्षा के पर्चों के सम्बन्ध में ठाकुर शिवकुमार सिंह की यह सम्मति उपस्थित की गई कि इस वर्ष इन पर्चों में कोई भी पारितोषिक या प्रशंसापत्र के योग्य नहीं है।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(१३) इण्डियन प्रेस का २० जुलाई का पत्र सूचनार्थ उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि उन्होंने विशेषतः सभा के कार्य के लिये अपने प्रेस की एक शाखा काशी में खोली है।

(१४) बाबू गौरीशंकर प्रसाद जी तथा बाबू शिव प्रसादजी के पत्र उपस्थित किए गए जिनमें इन सज्जनों ने सभा के पुराने बिलों का क्रमात् ४) रु० तथा ।॥) देना इस कारण अस्वीकार किया था कि यह हिसाब बहुत दिनों का हो गया और उनसे पहले तगादा नहीं किया गया।

निश्चय हुआ कि सभा के बिल इन सज्जनों के यहां यथासमय भेज दिए गए थे अतः इन्हें स्वयम् ही यह रुपया भेज देना चाहिए था। तगादा न होने पर भी बिल ठीक समय पर मिल जाने के कारण यह रुपया उन्हें सभा को दे देना उचित है।

(१५) निश्चय हुआ कि बाबू गुलाब राय से प्रार्थना की जाय कि वे कृपा पूर्वक यूरोपीय दर्शन को नवीन संस्करण के लिये ठीक करदें और मनोविज्ञान पर एक उत्तम पुस्तक सभा के लिये लिख दें। यूरोपीय दर्शन के लिये उन्हें ७५) रु० पुरस्कार दिया जाय और मनोविज्ञान के लिये १००) रु०

(१६) मंत्री ने सूचना दी कि हिन्दी शब्दसागर के अंक १-९ की केवल ८५ प्रतियां सभा के स्टाक में रह गई हैं।

निश्चय हुआ कि ये अंक केवल उन्हीं सज्जनों को दिए जांय जो अब तक के प्रकाशित सब अंक एक साथ खरीदें।

(१७) निश्चय हुआ कि नागरी प्रचारिणी पत्रिका के प्रथम भाग की उत्तम जिल्दें बंधवा ली जांय और सजिल्द प्रति का मूल्य ५) रु० रक्खा जाय।

(१८) निश्चय हुआ कि देवी प्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला में सुलेमान यात्री के यात्रावृत्तान्त का जो अनुवाद बाबू महेश प्रसाद जी ने किया है वह प्रकाशित किया जाय और उन्हें डबल क्राउन सोलह पेजी आकार के प्रत्येक पृष्ठ पर १) रु० के हिसाब से पुरस्कार दिया जाय।

(१९) निश्चय हुआ कि सभा के लिये १२ नई कुर्सियां और पुस्तकालय के लिये दो नई अलमारियां खरीद ली जांय।

(२०) मंत्री के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि ११ आषाढ़ १९७८ के अधिवेशन में जिन क्लार्कों आदि का जितना वेतन बढ़ाया गया है वह वैशाख १९७८ से दिया जाय।

(२१) निश्चय हुआ कि राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मण सिंह और बाबू गदाधर सिंह के तैल चित्र सभा भवन में लगवाए जांय और प्रथम दो सज्जनों के वंशधरों से प्रार्थना की जाय कि वे उन्हें सभा के लिये अपनी ओर से बनवा दें।

(२२) निश्चय हुआ कि भारत गवर्मेंट के पास पत्रिका के पहिले भाग की एक प्रति भेज कर प्रार्थना की जाय कि सभा को इस पत्रिका के प्रकाशित करने में आर्थिक सहायता तथा पुरातत्व विभाग की सब पुस्तकें तथा रिपोर्टें बिना मूल्य दी जांय।

(२३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

शम्भू प्रिंटिंग वर्क्स, मोचीबाग, काशी में छपा।

समालोचना ।

[रायल एशियाटिक सुसाइटी आफ ग्रेट ब्रिटेन ऐंड आयर्लैंड की अप्रैल सन् १९२१ की पत्रिका (पृष्ठ २८६-८७) से अनुवादित ।]

रायल एशियाटिक सुसाइटी के सभासदों का ध्यान नागरीप्रचारिणी सभा की मुख-पत्रिका "नागरीप्रचारिणी पत्रिका" के नए संदर्भ पर दिलाना चाहिए । पत्रिका का पहला अंक सन १८९७ में प्रकाशित हुआ था और एक या दो बेर आकार में परिवर्तन के साथ उत्तर भारत के प्राचीन और माध्यमिक साहित्य पर प्रकाश डालने के अपने उद्देश्य पर यह निरंतर दृढ़ रही है । कभी कभी इसके पृष्ठों में हिंदी के प्रधान लेखकों पर उत्तम कोटि के लेख प्रकाशित हुए हैं, परंतु प्रायः उसके लेख भिन्न भिन्न विषयों पर हुए हैं । कभी कभी स्वास्थ्य तथा भैषज शास्त्र संबंधी विषयों पर सुबोध (और अपने ढंग के अच्छे) लेख भी विद्वत्तापूर्ण निबंधों के साथ ही साथ प्रकाशित होते रहे हैं । अब सभा ने पत्रिका का नया संदर्भ शुद्ध वैज्ञानिक रीति पर प्रकाशित करने का निश्चय किया है और इसके पहले दो अंक सभा के कार्य की विशेष उन्नति के सूचक हैं । इनसे एक ऐसी पत्रिका का प्रारंभ होता है जो, हम आशा करते हैं, एक भारतीय विद्वत् सभा के सर्वथा उपयुक्त होगी ।

इस संदर्भ के पहले अंक (वैशाख १९७७) में अन्य मनोरंजक लेखों के साथ प्रसिद्ध विद्वान् पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा की लेखनी से निकला "डूँगरपुर राज्य की स्थापना" का लेख, तथा पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी की लिखी पटना-मूर्तियों संबंधी विवादग्रस्त विषय पर पर्यालोचना हैं । अन्य भारतीय विद्वानों के समान यह लेखक भी मानता है कि वे शिशुनाक वंश के दो राजाओं की प्रतिमाएँ हैं । इस लेख के साथ मूर्तियों तथा अभिलेखों के उत्तम फोटो चित्र भी दिए हैं । वही लेखक देवकुल पर जिसमें बाण के हर्षचरित में भास संबंधी उल्लेख तथा भास के प्रतिमा नाटक में देवकुल की चर्चा का वर्णन है, तथा बेसनगर के गरुड़ध्वज के लेख पर, छोटे छोटे मनोरंजक लेख देता है । लेखक का सिद्धांत है कि गरुड़ध्वजवाले लेख की भाषा किसी पारस देशवासी की लिखी मिश्रित प्राकृत है । राजपुताने के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक मुंशी देवीप्रसाद २१४ प्रसिद्ध भारतीयों की जिनमें राजपूत अधिक हैं, जन्मपत्रियों की सूची संवतों के साथ देते हैं । सब से प्राचीन जन्मपत्री संवत् १५७२ (सन् १५१५) की लिखी है । अंत में बाबू श्यामसुंदर दास, जिनका इस सभा से उसकी स्थापना के समय से घनिष्ठ संबंध रहा है और जो अनेक वर्षों तक उसके अवैतनिक मंत्री रहे हैं, तुलसीदास की विनयपत्रिका की एक पुरानी और अब तक अज्ञात प्रति का

वर्णन करते हैं। यह आजकल की प्रचलित प्रतियों से बहुत भिन्न है। यह विषय केवल पाठांतरों का नहीं है क्योंकि कोई दूसरा ग्रंथ उत्तर भारत के अल प्रसिद्ध महात्मा के ईश्वर प्रति भावों को इतनी अच्छी तरह नहीं प्रगट करता है जितना कि हृदय से कहे हुए इन पदों का अद्भुत संग्रह।

दूसरे अंक (श्रावण १९७७) में भी मनोरंजक तथा बहुमूल्य लेखों का संग्रह है। हम वास्तव में एक गम्भीरतापूर्ण पत्रिका के प्रकाशित करने पर सभा का अभिवादन करते हैं। इसका संपादन उस ढंग पर हो रहा है जो पश्चिमीय विद्वानों को प्रिय होगा। सब लेख हिंदी में लिखे हैं। यह सभा भारतीय संस्था है और अपने पाठकों को भारतीय भाषा द्वारा ही संबोधन करती है। इसके लेख युरोपीय विद्वानों की सम्मतियों या अनुसंधानों की गुगालो मात्र नहीं हैं, वरन स्वतंत्र शोध से लिखे गए हैं। इसलिये उनमें स्थिर किए गए सिद्धांतो से हम चाहे सहमत न हों, पर पश्चिम में इनका अति सम्मानपूर्वक स्वागत होना चाहिए।

[जी. ए. ग्रियर्सन]

Printed by Bishweshwar Prasad at the Indian Press, Ld.,
Benares—Branch.

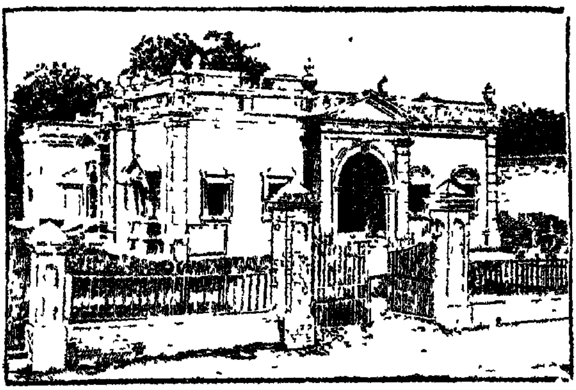
नागरीप्रचारिणी पत्रिका

अर्थात्

प्राचीन शोधसंबंधी त्रैमासिक पत्रिका

[नवीन संस्करण]

भाग २—अंक २



संपादक

रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा

चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी, बी० ए०

—:*:—

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

श्रावण, संवत् १९७८] [मूल्य प्रति संख्या — एक रुपया

लेख-सूची ।

प्रकाशित होने के लिये स्वीकृत लेख ।

[१] अशोक की धर्मलिपियाँ ।

[२] पुरानी हिंदी (३) ।

[३] विविध विषय ।

[४] राजपुताने के भिन्न भिन्न विभागों के प्राचीन नाम ।

[५] राजाओं की नीयत से बरकत ।

[६] बूंदी का सुलहनामा ।

[७] खुसरो की हिंदी कविता ।

[८] बोर्निया के संस्कृत शिलालेख ।

[९] कच्छवंश महाकाव्य ।

[१०] बृहस्पति के सूत्र ।

[११] इब्न बतूटा के समय का भारतवर्ष ।

७—पुरानी हिंदी—(२)।

[लेखक—पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी बी० ए०, अजमेर]

(पत्रिका भाग २ पृष्ठ ५९ के आगे)

सोमप्रभाचार्य के कुमारपालप्रतिबोध से।

मेरुतुंगाचार्य ने प्रबंधचिंतामणि ग्रंथ सं० १३६१ में बनाया। उसमें कोई कविता उसकी अपनी नहीं है। पुरानी कविता जो उसने उद्धृत की है उसका निम्नतम समय तो उसका समय है, ऊर्ध्वतम समय का पता नहीं। वह कविता पहले लेख में उद्धृत और व्याख्यात की जा चुकी है। अब और पीछे चलिए। सं० १२४१ की आषाढ़ शुक्ल अष्टमी रविवार को अनहिल-पट्टन में सोमप्रभसूरि ने जिनधर्मप्रतिबोध अर्थात् कुमारपाल-प्रतिबोध की रचना समाप्त की[१]। उसमें जो पुरानी हिंदी-कविता है वह इस लेख का विषय है।

सोमप्रभसूरि का कुमारपालप्रतिबोध गायकवाड़ ओरिएंटल सिरीज़ की चौदहवीं संख्या में छपा है। इसके पांच प्रस्ताव हैं जिनमें लगभग आठ हजार आठ सौ श्लोक हैं[२]। ग्रंथ प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश गद्य तथा पद्य में है, किंतु ३२ अक्षर का एक अनुष्टुप् श्लोक मानकर श्लोकों मे गणना करने की पुरानी चाल है। इसकी एक प्रति सं० १४५८ की ताड़पत्र पर लिखी हुई संपूर्ण तथा एक उससे पुरानी बिना मिति की खंडित मिली थी। उन्हींपर से मुनि जिनविजय जी ने इस महत्वपूर्ण ग्रंथ का

(१) शशिजलधिसूर्यवर्षे शुचिमासे रविदिने सिताष्टम्याम्।
जिनधर्मप्रतिबोधः क्लृप्तोऽयं गूर्जरेंद्रपुरे॥ (पृ० ४७८)

(२) प्रस्तावपंचकेऽप्यत्राष्टौ सहस्राण्यनुष्टुभाम्।
एकैकाक्षरसंख्यातान्यधिकान्यष्टभिः शतैः॥ (पृ० ४७८)

संपादन [३] किया है और भूमिका में कई बहुत उपयोगी बातें बताई हैं जिनमें से कुछ का यहां आधार लिया जाता है।

सोमप्रभ आचार्य वृद्धगच्छ की पट्टावलियों में महावीर स्वामी से तियालीसवें गिने जाते हैं [४]। इनके शिष्य जगच्चंद्र सूरि ने तपागच्छ की स्थापना की। सोमप्रभाचार्य का बनाया हुआ एक सुमतिनाथ चरित्र प्राकृत में है जिसमें पांचवें जैन तीर्थंकर की कथा और प्रसंग से जैन धर्म का उपदेश है। इसकी संख्या साढ़े नौ हजार ग्रंथ (श्लोक) है। दूसरा ग्रंथ सूक्तिमुक्तावली है जो प्रथम श्लोक के आरंभ के शब्दों से 'सिंदूरप्रकर' या कवि के नाम से सोमशतक भी कहलाता है। इसमें भी सदाचार और जैन धर्म का उपदेश है। ग्रंथ बहुत ही अद्भुत है—वह केवल एक श्लोक है [५]। किंतु कवि ने इस एक श्लोक के सौ अर्थ किए हैं जिनसे कवि का नाम ही शतार्थी हो गया है। यह एक ही श्लोक व्याख्या के प्रभाव से चौबीसों तीर्थंकर, कई जैन आचार्य, शिव, विष्णु आदि अजैन देवों से लेकर स्वर्ण, समुद्र, सिंह, हाथी, घोड़े आदि का वर्णन करता है और जैन आचार्य वादिदेवसूरि, प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचंद्र, गुजरात के चार क्रमागत सोलंकी राजा जयसिंह (सिद्धराज), कुमारपाल, अजयदेव, मूलराज, कवि सिद्धपाल, सोमप्रभ के गुरु अजितदेव और विजयसिंह तथा स्वयं कवि सोमप्रभ का वर्णन करके अपने १०० अर्थ पूरे करता है। पदच्छेदों से, समासों से, अनेकार्थों से इसे एक श्लोक के भागवत के

---

(३) इतनी अपूर्ण सामग्री पर से भी संपादन बड़ी योग्यता से किया गया है। इतना कहकर यह लिखना कि पृष्ठ १० में पांच गाथाएँ भी गद्य में विलमिल छप गई हैं दोषदर्शिता नहीं कहलाना चाहिए।

(४) क्लाट, इं० एं०, जिल्द ११, पृ० २५४।

(५) कल्याणसारसवितानहरेक्षमोह
कांतारवारणसमानजयाद्यदेव।
धर्मार्थकामदमहोदयवीरधीर
सोमप्रभावपरमागमसिद्धसूरे॥

पहले श्लोक 'जन्माद्यस्य यतः' की तरह सौ अर्थ करना बड़े पांडित्य की बात है । चौथा ग्रंथ यह हमारा कुमारपालप्रतिबोध है । शतार्थ काव्य में कुमारपाल विषयक व्याख्या में दो श्लोक "यदवोचाम =जैसा हमने (अन्यत्र) कहा है" कहकर लिखे हैं जो इनके बाक़ी काव्यों में नहीं है, इससे संभव है कि सोमप्रभ ने और भी रचना की हो । इसी शतार्थ काव्य की प्रशस्ति से जाना जाता है कि सोमप्रभ दीक्षा लेने के पूर्व पोरवाड़ जाति के वैश्य थे, पिता का नाम सर्वदेव और दादा का नाम जिनदेव था । दादा किसी राजा का मंत्री था ।

सुमतिनाथचरित की रचना कुमारपाल के राज्यकाल में हुई । उस समय कवि अणहिलपाटन में सिद्धराज जयसिंह के धर्म-भाई पोरवाड़ वैश्य सुकवि श्रीपाल के पुत्र, कुमारपाल के प्रीतिपात्र, कवि सिद्धपाल की पौषधशाला में रहता था । श्रीपाल का उल्लेख प्रबंधचिंतामणिवाले लेख में आ गया है । यह श्रीपाल सोमप्रभ की आचार्य-परंपरा में गुरु देवसूरि का शिष्य था और सोमप्रभ के सतीर्थ्य हेमचंद्र (प्रसिद्ध वैयाकरण से भिन्न) के बनाए 'नाभेयनेमि' काव्य को उसने संशोधित किया था, उस काव्य की प्रशस्ति में श्रीपाल को 'एक दिन में महाप्रबंध बनानेवाला' कहा है[६] । कुमारपाल की मृत्यु सं० १२३० में हुई । उसके पीछे अजयदेव राजा हुआ जिसने सं० १२३४ तक राज्य किया । उसके पीछे मूलराज ने दो ही वर्ष राज्य किया । शतार्थी काव्य में उस तक का उल्लेख है, इस लिये उस श्लोक और उसकी सौ व्याख्याओं की रचना सं० १२३६ तक हुई । कुमारपालप्रतिबोध सं० १२४१

(६) मिलाओ वि० सं० १२०८ की आनंदपुर के वप्र की प्रशस्ति (काव्य-माला, प्राचीन लेखमाला, नं० ४५) का अंतिम श्लोक—

एकाहनिष्पन्नमहाप्रबंधः श्रीसिद्धराजप्रतिपन्नबन्धुः ।

श्रीपालनामा कविचक्रवर्ती प्रशस्तिमेतामकरोत् प्रशस्ताम् ॥

में, अर्थात् कुमारपाल की मृत्यु के ग्यारह वर्ष पीछे, संपूर्ण हुआ। उस समय भी कवि उसी कवि सिद्धपाल की वसति में रहता था। वहाँ रहने का कारण नेमिनाग के पुत्र श्रेष्ठि अभयकुमार के पुत्र हरिश्चंद्र आदि और कन्या श्रीदेवी आदि की प्रीति थी। संभवतः हरिश्चंद्र ने इस ग्रंथ की कई प्रतियाँ लिखाई, किंतु प्रशस्ति का वह श्लोक, जिसके आधार पर हम यह कह रहे हैं, त्रुटित है। सेठ अभयकुमार कुमारपाल के राज्य में धर्मस्थानों का सर्वेश्वर अर्थात् अधिकारी था। कुमारपालप्रतिबोध की प्रशस्ति में सोमप्रभ ने अपने वृहद्गच्छ (वृद्धगच्छ, बड्डगच्छ) के इन आचार्यों का यथाक्रम उल्लेख किया है—मुनिचंद्रसूरि और मानदेव (साथ साथ), अजितदेवसूरि (साथ ही देवसूरि आदि), विजयसिंह-सूरि, फिर स्वयं सोमप्रभ। रचना के पीछे हेमचंद्र के शिष्य महेंद्र मुनिराज ने वर्धमान गणि[७] और गुणचंद्रगणि के साथ यह ग्रंथ सुना। इन सब बातों को लिखकर यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सोमप्रभ सूरि ने सिद्धराज जयसिंह का, कुमारपाल का और हेमचंद्र का समय देखा था।

कुमारपालप्रतिबोध में ऐतिहासिक विषय इतना ही है कि अणहिल्लपुर में सोलंकी राजा मूलराज के पीछे क्रम से चामुंडराज, वल्लभराज (जगझंपण), दुर्लभराज, भीमराज, कर्णदेव और

---

(७) यह वर्धमान गणरत्नमहोदधि का कर्ता वर्धमान नहीं हो सकता क्योंकि गणरत्नमहोदधि की रचना संवत् ११९७ (ई० ११४०) में हो चुकी थी—

सप्तनवत्यधिकेष्वेकादशसु शतेष्वतीतेषु।

वर्षाणां विक्रमतो गणरत्नमहोदधिर्विहितः॥

वह भी सिद्धराज जयसिंह के यहाँ, संभवतः हेमचंद्र के पहले, था और इसने सिद्धराजवर्णन नामक काव्य भी बनाया था। चालीस वर्ष से कम अवस्था में गणरत्नमहोदधि के से ग्रंथ की कोई क्या रचना करेगा और सं० १२४१ में वह ८४ वर्ष का होना चाहिए।

(सिद्धराज) जयसिंह हुए। उसके संतानरहित मरने पर मंत्रियों ने कुमारपाल को, जो भीमराज के पुत्र क्षेमराज के पुत्र देवप्रसाद के पुत्र त्रिभुवनपाल का पुत्र, यों जयसिंह का भतीजा, था, गद्दी पर बिठाया। उसे धर्मजिज्ञासा हुई तो ब्राह्मणों के पशुवधमय यज्ञों के वर्णन से वह शांत न हुई। तब बाहड़ मंत्री ने हेमचंद्र का परिचय कराया कि गुरु दत्तसूरि ने रायणपुर (बागड़) के राजा यशोभद्र को उपदेश दिया, राजा गृहस्थाश्रम छोड़कर यशोभद्रसूरि बन गया, उसके पीछे प्रद्युम्नसूरि और देवचंद्रसूरि क्रम से हुए। देवचंद्रसूरि को मोढ जाति के वैश्य चाच और चाहिनी का पुत्र चंगदेव शिष्य मिला जो माता पिता की अनिच्छा पर भी अपने मामा स्तंभतीर्थ (खंभात) के नेमि के समझाने पर दीक्षित हुआ और सोमचंद कहलाया। यही सोमचंद विद्वान होकर आचार्य हेमचंद्र बना, सिद्धराज जयसिंह के यहाँ मान्य हुआ। उसीके कहने से सिद्धराज ने पाटन में रायविहार और सिद्धपुर में सिद्धविहार मंदिर बनवाए और उसीने 'निःशेषशब्दलक्षणनिधान' सिद्धहैमव्याकरण जयसिंह देव के वचन से बनाया। (पृ० २२) उसके अमृतोपमेय वाणी-विलास को सुनने से जयसिंह को क्षण भर भी तृप्ति नहीं होती थी। यदि आप भी यथास्थित धर्मस्वरूप जानना चाहें तो उसी मुनिवर से पूछें। बस। हेमचंद्र आए और राजा ने उपदेश सुना। यहाँ बाहड़ मंत्री द्वारा हेमचंद्र का परिचय कराए जाने का उल्लेख केवल "पूजार्थ" ही है क्योंकि राजा होने के पहले की दुर्गत अवस्था में ही कुमारपाल हेमचंद्र का कृपापात्र था, हेमचंद्र ने उसके प्राण बचाए, राजा होने की भविष्यवाणी कही इत्यादि, बातें कई प्रबंधों से प्रकट हैं। अस्तु। हेमचंद्र ने एक एक धर्म की बात ली, उसपर कोई इतिहास या कथा कही, राजा ने कहा कि मैं यह करूँगा और यह छोड़ूँगा। फिर राजा ने उस विषय में क्या क्या किया यह भी इस ग्रंथ में वर्णित है। गुरुशिष्य संवाद रूप से कथा के द्वारा धर्म कहना सनातन रीति है। पुराणों में 'अत्राप्यु-

दाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्'—'हन्त ते कथयिष्यामि' की धारा बहती जाती है। जैन सूत्रों में, बौद्ध ग्रंथों में सब जगह है। उपदेश की कथाएँ भी सर्वसाधारण हैं। मद्यपान निंदा में द्वारका-दाह और यादवों के नाश की कथा, द्यूत के विषय में नल की कथा, (सुवर्ण) चोरी में वरुण की कथा, तपस्या में रुक्मिणी की कथा आदि वे ही हैं जो हिंदू पुराणों में हैं। विशेष जैन धर्मों पर प्रसिद्ध जैन आख्यानों की कथाएँ हैं। कुछ स्थूलिभद्र की सी अर्ध-ऐतिहासिक कथाएँ भी हैं। पंचतंत्र की सी सिंह व्याघ्र की कथा भी है। कुल ५७ कथाएँ हैं जिनमें एक 'जीव, मन और इंद्रियों की बात-चीत' पूर्व लिखित कवि सिद्धपाल की बनाई है। इन सब में सामा-जिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, कथानक, अलंकारिक आदि कई चमत्कार हैं।

जिन कथाओं को "हिंदू कथाएँ" कहा कहते हैं उनमें कुछ भेद है। कृष्ण को अरिष्टनेमि ने उपदेश और यदुवंश के नाश की चिता-वनी दी थी। दमयंती की रक्षा किसी जैन साधु के आशीर्वाद से हुई। रुक्मिणी का सौभाग्य किसी जिनप्रतिमा के अर्चन से हुआ इत्यादि। जैनों के यहाँ रामायण महाभारत पुराण पृथक् हैं जिनमें कथाएँ भिन्न हैं। जैनों ने हमारी कथाओं को बदलकर अपने धर्म की प्रभावना बढ़ाने के लिये रूपांतर दे दिया यह कहना कुछ साहस की बात है। नदी का जल लाल भूमि पर बहता है तो लाल हो जाता है, काली पर काला। कथाएँ पुरानी आर्य-कथाएँ हैं, जैन, बौद्ध, वैदिक सब की समान संपत्ति हैं। पुराणों में ही कथाओं में भेद पाया जाता है। एक ही निर्दिष्ट राजा की पुत्रप्राप्ति एक जगह एकादशी व्रत से कही गई है, दूसरी जगह किसी और व्रत से। हिमवत् की बेटी उमा ने शिव का सा पति, कोई कहता है कि घोर योग और तपस्या से पाया, कोई कहता है कि **पिता से असहयोग करके**, अर्थात् हरितालिका व्रत से, पाया। यदि बौद्धों के दसरथ-जातक में सीता, राम की बहन है तो

यजुर्वेद में अंबिका रुद्र की स्वसा है[८]। योंही इन कथाओं के पाठांतरों को समझना चाहिए। हेमचंद्र बड़े दूरदर्शी और सर्वमित्र थे। जिनमंडन रचित कुमारपालप्रबंध (सं० १४९२) से दो कथाएँ उद्धृत कर दिखाया जाता है कि इन कथाओं पर उनका क्या मत था। सिद्धराज जयसिंह से मिलते ही उन्होंने 'पुराणोक्त' सर्वदर्शनाविसंवादिनी यह कथा कही—शंख नामक सेठ की स्त्री ने सौतिन के दुःख से किसी बंगाली जादूगर की औषध खिलाकर पति को बैल बना दिया। पीछे बहुत रोई पीटी और बैल (पति) को जंगल में चराने ले जाती। शिवपार्वती घूमते हुए आ गए, पार्वती ने कथा सुनी और उसके अत्याग्रह से शिव ने बताया कि इसी वृक्ष की छाया में पशु को पुरुष बनाने की ओषधि है। स्त्री ने यह सुनकर सारी छाया रेखांकित करके उसके नीचे का सब घासपात बैल को खिलाया, वह पुरुष हो गया। यों ही सब धर्मों की सेवा करने से सत्य धर्म मिल जाता है, दया सत्य आदि को मानकर सभी धर्मों का पालन करना चाहिए, घास में जड़ी भी मिल जाती है। दूसरी बात यह है कि ब्राह्मणों ने हेमचंद्र पर यह आक्षेप किया कि पांडव आदि हमारे थे, जैन झूठे ही कहते हैं कि वे मुक्ति के लिये

---

(८) कुछ बंगला रामायणों तथा कश्मीर की कथाओं में अद्भुत रामायण के आधार पर यह कथा है कि सीता रावण की स्त्री मंदोदरी की पुत्री थी। नारद ने लक्ष्मी को शाप दिया था कि तू राक्षसी के गर्भ से जन्म ले। इधर गृत्समद ऋषि की स्त्री ने कामना की कि मेरे गर्भ में लक्ष्मी कन्यारूप से उत्पन्न हो। ऋषि ने एक मंत्रित कुशा इसी लिये घड़े में रक्खी। रावण ने जब ऋषियों को सता कर उनका रुधिर कर की तरह लिया तो इसी घड़े में भरा और मंदोदरी को यह कहकर सुरक्षित रखने को दिया कि यह विष से भी भयंकर है। रावण के देवकन्याओं आदि से विलास करने से जलकर मंदोदरी ने आत्मघात करना चाहा और उसी 'विष से भी भयंकर' घट के रुधिर का पान किया। उसके गर्भ रह गया और रावण की अनुपस्थिति में ऐसा होने की लज्जा से बचने के लिये वह सरस्वती तीर पर गर्भ को गिरा आई। वहीं पर हल चलाते हुए जनक ने वह गर्भ कन्यारूप में पाया और उसका नाम सीता रक्खा। (ग्रियर्सन ज. रा. ए. सो- जुलाई १९२१, पृ. ४२२—४)

हिमालय नहीं गए इत्यादि । हेमचंद्र ने कहा "हमारे पूर्वसूरियों के वर्णनानुसार उनकी हिमालय में मुक्ति नहीं हुई, किंतु यह पता नहीं है कि हमारे शास्त्रों में जो पांडव वर्णित हैं वे वेही हैं जिनका व्यास ने वर्णन किया है, या दूसरे । क्योंकि महाभारत में भीष्म ने पांडवों से कहा था कि मेरा संस्कार वहाँ करना जहाँ कोई पहले न जलाया गया हो । वे उसका देह पहाड़ की चोटी पर ले गए और उस स्थान को अछूता समझकर दाह करनेवाले ही थे कि आकाशवाणी हुई–'यहाँ सौ भीष्म जल चुके हैं, तीन सौ पांडव, हजार दुर्योधन; और कर्णों की तो गिनती ही नहीं'[९] । इस भारत की उक्ति से ही हम कहते हैं कि कोई पांडव जैन भी रहे होंगे" बस ऐसे मौकों पर हमारे यहाँ जो गड़बड़ मिटानेवाला महास्त्र है, चाहे ऐतिहासिक दृष्टि से उसमें भोंदापन और जंग हो, वही यहाँ काम देगा कि—

कल्प[१०]भेदेन व्याख्येयम् ।

सोमप्रभ की रचना मुख्यतः प्राकृत में है, अंत में एक दो कथाएँ बिलकुल संस्कृत में और एक आध अधिकतर अपभ्रंश में है । यों प्रसंग प्रसंग पर बीच बीच में संस्कृत श्लोक और पुरानी हिंदी के दोहे भी आ गए हैं, किंतु ग्रंथ प्राकृत का ही है । प्राकृत बहुत सरस, स्फीत और शुद्ध है, कहीं कहीं श्लेष बहुत अच्छी तरह लाए गए हैं । एक जगह प्राकृत लिखते लिखते कवि गद्य में ही उस समय की हिंदी पर उतर गया है, पर झटपट सँभल गया है— '**भो आयन्नह मह वयणु, तणु-लक्खणिहिं** मुणामि । **इहु बालक एयह घरह** कमिण भविस्सइ सामी[११] । इसे ऐतिहा-

(९) अत्र भीष्मशतं दग्धं पाण्डवानां शतत्रयम् । दुर्योधनसहस्रं तु कर्णसंख्या न विद्यते ।

(१०) अर्थात भिन्न भिन्न कल्पों में भिन्न भिन्न घटनाएं हुई यह मान कर व्याख्या करो । कल्प का अर्थ कल्पना भी होता है ।

(११) भो सुनो मेरे वचन को, तनुलक्षणों से जानता हूँ । यह बालक इस घर का क्रम से होगा स्वामी । **आयन्नह मह वयणु**=आकनो मो बैन, गुसाईं जी के 'अवनिप अकनि राम पगु धारे' में अकन्=आकर्ण्, सुनना ।

सिक विकास को न माननेवाले भले ही महाराष्ट्री प्राकृत कहें किंतु है यह देशभाषा।

कुमारपालप्रतिबोध में पुरानी हिंदी-कविता दो तरह की है,—एक तो वह जो स्वयं सोमप्रभ की और कवि सिद्धिपाल की रचित है। वह डिंगल कविता से बहुत मिलती है और हमने उसके अवतरण अधिक नहीं दिए हैं। जब पुस्तक छप गई है तब उनका फिर प्रकाशित करना अनावश्यक है। इस लेख के दूसरे भाग में इन दोनों की अपनी रचनाओं की कविताओं की संख्या और पृष्ठांक दे दिए हैं और कुछ चुने हुए नमूने। प्रथम भाग में वह पुरानी कविता संगृहीत है जो सोमप्रभ से पुरानी है और उसने स्थान स्थान पर उद्धृत की है। प्राकृत रचना में कहीं कहीं ऐसा एक आधा दोहा आ गया है। सोमप्रभ ने ग्रामोफोन की तरह हेमचंद्र की उक्ति नहीं लिखी है। उसने किसी विशेष धर्म के उपदेश में कोई पुरानी विशेष कथा जो लोक में प्रचलित थी हेमचंद्र के मुँह से अपने शब्दों में कहलवा दी है। कथाएँ उसने गढ़ी नहीं हैं, प्रचलित तथा पुरानी ली हैं जो उस समय देशभाषा, गद्य पद्य, में प्रचलित होंगी। फिर क्या कारण है कि सारी कथा प्राकृत में कहकर वह कोई बीजश्लोक, या कथा का संग्रह श्लोक, या नल ने जो दमयंती से कहा, या नल को खोजनेवाले ब्राह्मण का 'क नु त्वं कितव छित्वा' के ढंग का दोहा, प्राकृत में ही न कहकर अपभ्रंश में कह रहा है? जहाँ उसने इतिहास या कुमारपाल का धर्मपालन स्वयं लिखा है वहाँ तो वह, ग्रंथ की समाप्ति के पास बारह भावनाओं के वर्णन को छोड़कर, अपभ्रंश काम में नहीं लाता। वह कथाओं को रोचक बनाने के लिये, उन्हें सामयिक और स्थानिक रंग देने के लिये, अज्ञात और अप्रसिद्ध कवियों के दोहे बीच बीच में रख रहा है जो सर्व साधारण में प्रचलित थे। इन दोहों में कई हेमचंद्र के व्याकरण के उदाहरणों में हैं, कई प्रबंधचिंतामणि में हैं, कई जिनमंडन के कुमारपालप्रबंध तक चले आए हैं। जो दोहे सं०

११९९ (सिद्धराज जयसिंह की मृत्यु—हैमव्याकरण की रचना का संभावित अंतिम समय) में मिलते हैं, जो सं० १२४१ (सोमप्रभ का रचनाकाल) तक मिलते हैं, जो सं० १३६१ में (प्रबंधचिंतामणि) उपलब्ध होते हैं, जो सं० १४९२ (जिनमंडन का कुमारपाल प्रबंध) तक कथाओं में परंपरा से चले जाते हैं, यों जिनकी आयु इधर तीन सौ वर्ष है, क्या वे उधर सौ सवा सौ वर्ष के न होंगे ? इनमें कथाओं के बीजश्लोक हैं, प्रचलित उक्तियां हैं, नायिकाओं के चोचले हैं, वियोगियों और वियोगिनियों के विलाप हैं, कहावतें हैं, ऋतुवर्णन हैं, समस्यापूर्तियाँ हैं जिन्हें कोई किसीकी राजसभा में रखता है कोई किसीकी में—अर्थात् वह सामग्री है जो अलिखित दंतकथाओं में सुरक्षित रहती है और सदा और सर्वत्र कथा कहनेवाले के दिल को प्यारी है। आज भी राजपूताने में कहानी कहनेवाला जहां सुंदरी का वर्णन आता है वहीं बीच में यह दोहा जोड़ देता है—

कद तैं नाग विसासिया नैण दिया मृग भल्ल ।
गोरी सरवर कद गई हंसां सीखण हल्ल[१२] ॥

जहाँ मित्रता का वर्णन आता है वहां वह यह दोहा घुसेड़ता है—

मो मन लग्गा तो मना तो मन मो मन लग्ग ।
दूध विलग्गा पाणियां (जिमि) पाणिय दूध विलग्ग ॥[१३]

जहां किसी वीर नारी का प्रसंग आया तो चट ये दोहे आ जायँगे—

ढोल सुणंतां मंगली मूछां भौंह चढंत ।
चँवरी ही पहिचाणियो कँवरी मरणो कंत ॥

---

(१२) कब तैंने नागों को विश्वासयुक्त किया (कि वे तेरे केशों के रूप में आ गए) ? मृगों ने तुझे नयन कब सौंप दिए ? गोरी ! हंसों से चाल सीखने तू सरोवर कब गई थी ?

(१३) मेरा मन तेरे मन से लगा और तेरा मन मेरे मन से लगा, जैसे दूध पानी से लगा और पानी दूध से ।

ढोल बजंता हे सखी पति आयो मोहि लैण ।
वागां ढोलां मैं चली पति को बदलो लैण ॥
मैं परणंती परक्खियो तोरण री तणियांह ।
मो चूडल्लो उतरसी जद उतरसी घणियांह[१४] ॥

अवश्य ही ये दोहे कहानी कहनेवाले के नहीं हैं, प्राचीन हैं ।

वस्तुतः इन गाथाओं का कुमारपालप्रतिबोध में वही पद है जो विशेष राजाओं के यज्ञ और दान की प्रशंसा की अभियज्ञ गाथाओं का ब्राह्मणों में । ऐतरेय और शतपथ ब्राह्मण में ऐंद्र-महाभिषेक और अश्वमेध आदि के प्रसंग पर ऐसी नाराशंसी गाथाएँ दी गई हैं जो अवश्य ही ब्राह्मणों की रचना के समय लोक में प्रचलित थीं, और जिन्हें "तदेषा ऽभियज्ञगाथा गीयते" कहकर ब्राह्मणों में इसी तरह उद्धृत किया है[१५] । वे या वैसी ही कई

---

(१४) विवाह के समय में मंगल के ढोल सुनते ही नायक की मूछें भौंह तक चढ़ जाती थीं तो नायिका ने चँवरी (विवाह मंडप) में ही पति का (युद्ध में) मरना पहचान लिया ।

हे सखि ! पति मुझे लेने को ढोल बजाकर आया था, मैं भी युद्ध के बागे (वस्त्र) पहनकर और ढोल बजाकर पति का बदला लेने चली हूँ ।

मैंने तोरण के पास विवाह के समय पहचान लिया (नायक की वीरता को देखकर) कि जब मेरा चूड़ा उतरेगा (मैं विधवा होऊँगी) तब बहुतों का उतरेगा । (वह बहुतों को मार कर मरेगा) ।

(१५) ऐसी कुछ ऐतिहासिक गाथाओं का अनुवाद मैंने मर्यादा के राज्याभिषेक अंक में कर दिया था (मर्यादा, दिसंबर १९११—जनवरी १९१२) । ऐसी गाथाओं का एक नमूना यह है—

मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे ।
आविक्षितस्याग्निः क्षत्ता विश्वेदेवाः सभासदः ॥ (शतपथ १३।५।४।६)

गाथाएँ महाभारत आदि पुराणों में उद्धृत की हैं[१६] । ये पुराणों और ब्राह्मणों के पहले की गाथाएँ पुराणों की बीजस्वरूप हैं और वैसे ही मौकों पर उद्धृत की गई हैं जैसे सोमप्रभ की रचना में अपभ्रंश कविता । भाषा विचार से देखा जाय तो जैसे ब्राह्मणों की रचना से ये गाथाएँ सरल मालूम देती हैं, जैसे भारत आदि की रचना से इन उद्धृत गाथाओं में अधिक सरलता है, वैसे ही सोमप्रभ की कृत्रिम प्राकृत के नए टकसाली सिक्कों से ये घिसे हुए लोकप्रचलित सिक्के अधिक परिचित और प्रिय मालूम देते हैं ।

कृत्रिम प्राकृत की चर्चा आने से कुछ उसकी बात भी कर लेनी चाहिए । यह कोई न समझे कि जैसी प्राकृत पोथियों में मिलती है वह कभी या कहीं की देशभाषा थी । महाराष्ट्री, मागधी और शौरसेनी नामों से उन्हें वहाँ की देशभाषा नहीं मानना चाहिए । संस्कृत के नए पुराने नाटकों में भिन्न भिन्न पात्रों के मुँह से जो भिन्न भिन्न प्राकृत कहलवाने की चाल है, उससे भी यह न जानना चाहिए कि उस समय वह जाति या वर्ग वैसी भाषा बोलता था । यह केवल साहित्य का संप्रदाय है कि अमुक से अमुक भाषा या विभाषा कहलानी चाहिए । प्राकृत भी एक तरह की संस्कृत की सी रूढ़ किताबी भाषा हो गई थी । पुराने से पुराने पत्थर और धातु

---

(१६) जैसे महाभारत में शकुंतला की दुष्यंत से बात चीत—

माता भस्त्रा पितुः पुत्रो यस्माज्जातः स एव सः ।
भरस्व पुत्रं दौष्यन्तिं सत्यमाह शकुंतला ॥
रेतोधाः पुत्र उन्नयति नृदेव महतः क्षयात् ।
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुंतला ॥

या कर्णपर्व में शल्य और कर्ण की बातचीत में कई विनोदात्मक गाथाएँ तथा कई जो "गाथामप्यत्र गायंति ये पुराणविदो जनाः" कहकर उद्धृत की गई हैं । यथा विष्णुपुराण में—

शनैर्यास्यबला रम्या हेमंते चंद्रभूषिता ।
अलंकृता त्रिभिर्भावैस्त्रिशंकुग्रहमंडिता ॥

ऐसी गाथाओं का पूरा तथा तुलनात्मक संग्रह बहुत उपादेय होगा ।

पर के लेख संस्कृत के नहीं मिलते, वे प्राकृत या गड़बड़ संस्कृत के मिलते हैं। उस प्राकृत को किसी देशभेद में आप बाँध नहीं सकते। मागधी का मुख्य लक्षण 'र' की जगह 'ल' और अकारांत शब्दों के कर्ता कारक के एकवचन में संस्कृत स् (:) या शौरसेनी 'ओ' की जगह 'ए' का आना गिरनार आदि पश्चिमी लेखों में मिलता है और महाराष्ट्री के कई चिह्न पूर्वतट के लेखों में मिलते हैं। शौरसेनी के कई माने हुए लक्षण दक्षिण की कन्हेरी आदि गुफाओं के अभिलेखों में मिलते हैं। साहित्य की भाषा तो व्याकरण की जानकारी, महाविरों की बदल और कविसंप्रदाय के प्रभाव से बदल जाती है, पोथियों में प्राचीन भाषा की शैली समयानुसार बदलती रहती है, किंतु पत्थर की लीक पत्थर की लीक ही है। पुराने से पुराने लेख इस अनिर्वचनीय प्राकृत में मिलते हैं। फिर कुछ काल तक प्राकृत, संस्कृत और मिश्रित संस्कृत साथ ही साथ सर्वत्र मिलती है। फिर प्रौढ़ संस्कृत आती है जिसके आते ही लेखों से प्राकृत गायब हो जाती है। इधर साहित्यिक प्राकृत के उदय से तांबे पत्थर की प्राकृत गायब हो जाती है। साहित्य की प्राकृत लेखों में कभी नहीं मिलती और लेखों की प्राकृत साहित्य में कभी नहीं पाई जाती। साहित्य की प्राकृत जो खुदी मिलती है वह भोज के कूर्मशतक के से काव्य हैं। जो लिखित प्राकृत साहित्य के जमे हुए नियम हैं—कहाँ 'न' और कहाँ 'ण', कहाँ 'ख' का 'क्ख' और कहाँ 'घ', कहाँ 'त, ग' की जगह 'य' और कहाँ 'अ'—सब का भंग, सब का विकल्प, खुदाई की प्राकृत में मिलता है। जब प्राकृतों के मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री आदि देश नाम रक्खे गए तब उनमें कुछ तो उस देश की प्राकृत भाषा का सहारा लिया गया, कुछ विशेष लक्षण वहाँ की चलित बोली के लिए गए, किंतु ढचर संस्कृत का ही गढ़ा गया। यह मान सकते हैं कि मगध, उड़ीसा, मद्रास आदि के पूर्वी लेखों की विशेषताएँ मागधी में, गुजरात, काठियावाड़, कन्हेरी गुफा आदि के पश्चिमी दक्षिणी लेखों की रीतियाँ महाराष्ट्री में और मध्य देश अर्थात् मथुरा, कुशनों

तथा चत्रपों के संस्कृत और मिश्र लेखों की बातें संस्कृतप्राय शौरसेनी में मिल जाती हैं; किंतु यह कहना कि सातवाहन (हाल) की सप्तशती और वाक्पति के गौडवहो की महाराष्ट्री महाराष्ट्र की देशभाषा थी, ठीक नहीं। वस्तुतः शब्दों के बोधगम्य रूप अपभ्रंश और पैशाची आदि "घटिया प्राकृतों" में अधिक रह गए हैं। ऊँची प्राकृतों में 'र' उड़कर मूर्ख का भी मुक्ख और मोच का भी मुक्ख, उष्ट्र का उट्ठ, हो जाता है किंतु अपभ्रंश और पैशाची में मूरुख, और उष्ट या उष्ट्र भी बच गया है। प्राकृत कविता व्याकरण के सहारे समझने लायक हो चली, या यों कहो कि जैसे पहले गंगाप्रवाह में से संस्कृत का नरौने का बाँध बाँधकर नपे कटे किनारों की नहर बना ली गई थी वैसे फिर मागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री की नहरें छांट ली गई, जिनके किनारे भी **संस्कृत की प्रकृति की तरह** काटे तराशे गए, किंतु भाषाप्रवाह—सची गंगा—अपभ्रंश और पुरानी हिंदी के रूप में बहता गया। अपभ्रंश कई नहीं थे, अपभ्रंश एक देश की भाषा नहीं थी, कहीं कहीं नहरों का पड़ोस होने से उसे नहर के नाम से भले ही पुकारते हों किंतु वह देशभर की भाषा थी जो **नहरों के समानांतर** बहती चली जाती थी। वैदिक भाषा, सची संस्कृत, सची प्राकृत, अपभ्रंश, पुरानी हिंदी, हिंदी—देश की एक ही भाषा रही है; पंडितों की संस्कृत, वैयाकरणों या नाटकों की प्राकृत, महाराष्ट्री या ऐसे ही नाम के अपभ्रंश, पश्चिमी राजस्थानी या पुरानी गुजराती, या बंगला, गुजराती आदि सब इसकी Side-shows हैं, नट की न्यारी न्यारी भूमिकाएँ हैं।

हेमचंद्र कहते हैं—प्रकृतिः संस्कृतं, **तत्र भवं, तत आगतं वा** प्राकृतम्। यह **भव** या **आगत** कहना ठीक नहीं। वररुचि संस्कृत को शौरसेनी की प्रकृति और शौरसेनी को महाराष्ट्री और पैशाची की प्रकृति कहते हैं। षट् भाषा यह नाम हमारे यहाँ पुराना चला आया है। एक प्राकृत व्याकरण षट्-भाषा-चंद्रिका कहलाता है। लोष्टदेव कवि की प्रशंसा में मंख कहता है कि वे

भाषाएँ उसके मुँह में सदा विराजती हैं[१७]। जयानक सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज की बड़ाई करता है कि छै भाषाओं में उसकी शक्ति थी[१८]। पृथ्वीराजरासे का कर्ता हिंदी के इतिहास लेखकों को यह कहकर चक्कर में डाल गया है कि—

षट भाषा पुरानं च कुरानं कथितं मया[१९]।

और वे इसमें पंजाबी, बैसवाड़ी, राजस्थानी खोजते फिरते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के बूँदी के कवि, वंशभास्कर के कर्ता, मीषण चारण सूरजमल भी षट् भाषाओं की मुहारनी पढ़ गए हैं। यह षट् भाषाओं की खटपट क्या है?—

संस्कृतं प्राकृतं चैव शूरसेनी तदुद्भवा।
ततोऽपि मागधी प्राग्वत् पैशाची देशजापि च[२०]॥

संस्कृत, **उससे** प्राकृत, **उससे उत्पन्न** शौरसेनी, **उससे** मागधी, पहले की तरह पैशाची, और देशजा—ये छै हुईं।

मालूम होता है कि प्रकृति शब्द के अर्थ में भ्रम होने से **तत आगतं, तदुद्भवा** और **ततः** आदि की कल्पना हुई। प्रकृति का अर्थ यहाँ उपादान कारण नहीं है। जैसे भाष्यकार ने बहुत सुंदर उदाहरण दिया है कि सोने से रुचक बनता है, रुचक की आकृति को मोड़ तोड़कर कटक बनते हैं, कटकों से फिर खैर की लकड़ी के अंगारे के से कुंडल बनाए जाते हैं, सोने का सोना रह जाता है, वैसे भाषा से भाषा कभी नहीं गढ़ी गई। यहाँ प्रकृति शब्द मीमांसा के रूढ़ अर्थ में लिया जाना चाहिए। वहाँ पर **प्रकृति** और **विकृति** शब्द विशेष अर्थों में लिए गए हैं। साधारण,

---

(१७) ··· मुखे ऽस्य भाषाः षडधिशेरते। ··· लोष्टदेवस्य ··· (श्रीकंठचरित, अंतिम सर्ग)।

(१८) बाल्येऽपि लीलाजिततारकाणि गीर्वाणवाहिन्युपकारकाणि।
जयंति सोमेश्वरनंदनस्य षण्णां गिरां शक्तिमतो यशांसि॥
(पृथ्वीराजविजय, प्रथम सर्ग)

(१९) देखो प्रतिभा, जिल्द ३, पृष्ठ २६४-७ में मेरा लेख।

(२०) मंख के श्रीकंठचरित की टीका से उद्धृत।

नियम, नमूना, माडल, उत्सर्ग इस अर्थ में प्रकृति आता है, विशेष, अलौकिक, भिन्न, अंतरित, अपवाद के अर्थ में विकृति आता है। अग्निष्टोम यज्ञ प्रकृति है, दूसरे सोमयाग उसकी विकृति हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि और सोमयाग अग्निष्टोम से निकले हैं या उससे आए हैं। अग्निष्टोम की जो रीति है उससे दूसरे सोमयागों की रीति बहुत कुछ मिलती और कुछ कुछ भिन्न है, साधारण रीति प्रकृति में दिखाकर भेदों को विकृति में गिन दिया है। पाणिनि ने भाषा (व्यवहार) की संस्कृत को प्रकृति मानकर वैदिक संस्कृत को उसकी विकृति माना है, साधारण या उत्सर्ग नियम संस्कृत के मानकर वैदिक भाषा को अपवाद बना दिया है। वहां प्रकृति का उपादान कारण अर्थ मानकर क्या वैदिक भाषा को 'तत आगत' या 'तदुद्भव' कह सकते हैं, उलटी गंगा बहा सकते हैं? शौर-सेनी की प्रकृति संस्कृत और महाराष्ट्री की प्रकृति शौरसेनी कहने का यही आशय है कि साधारण नियम उनके संस्कृत या शौरसेनी के से और विशेष नियम अपने अपने भिन्न हैं। प्रकृति से जहाँ समानता है, उसका विचार व्याकरणों में नहीं है, जहाँ भेद है वहीं दरसाया गया है। हेमचंद्र ने पहले (महाराष्ट्री) प्राकृत का व्याकरण लिखी। आगे शौरसेनी के विशेष नियम लिखकर कहा, शेषं प्राकृतवत् (८। ४। २८६), फिर मागधी के विशेष नियम लिखकर कहा, शेषं शौरसेनीवत् (८। ४। ३०२), अर्द्ध-मागधी को आर्ष मानकर उसका विवेचन नहीं किया। फिर पैशाची का विवेचन करके कहा शेषं शौरसेनीवत् (८। ४। ३२३) यों ही चूलिका पैशाची के नियम-विशेष बतलाकर कहा, शेषं प्रागवत् अर्थात् पैशाचीवत् (८। ४। ३२८)। अपभ्रंश के विशेष नियम लिखकर लिखा शौरसेनीवत् (८। ४। ४४६) और उपसंहार में सभी प्राकृतों को लक्ष्य करके लिखा शेषं संस्कृतवत्सिद्धम् (८।४। ४४८)। तो क्या इसका अर्थ यह किया जाय कि यह इन भाषाओं का कुर्सीनामा हुआ? क्या पहली पहली भाषा जनक हुई और

अगली अगली उससे आगत या उससे उद्भूत ? नहीं, साधारण नियम 'प्रकृति' में समझाए गए, विशेष नियम 'विकृति' में । यही प्रकृति और विकृति का प्रकृत अर्थ है ।

मार्कंडेय के व्याकरण में प्राकृत के इतने भेद दिए हैं—

१. भाषा—महाराष्ट्री, शौरसेनी, प्राच्या, आवंती, मागधी, अर्द्धमागधी ।

२. विभाषा—शाकारी, चांडाली, शाबरी, आभीरी, टाक्की, औड्री, द्राविडी ।

३. अपभ्रंश ।

४. पैशाची ।

यह विभाग परिसंख्या मात्र है, तर्कानुसार विभाग नहीं है। कुछ नाम देशों से बने और कुछ जातियों से बने हैं। प्राच्या पूर्वी बोली है, जो शूरसेन और अवंती की प्राकृतों से बनी कही जाती है। अवंती की भाषा में कहते हैं कि 'र' का लोप नहीं होता और लोकोक्ति और देशभाषा के प्रयोग अधिक होते हैं। तो वह अपभ्रंश की बहनेली हुई। उसे महाराष्ट्री और शौरसेनी का संकर भी कहा है। अवंती (मालवा) महाराष्ट्र और शूरसेन देशों के बीच में है ही। अर्द्धमागधी तो यहाँ गिन ली, पर चूलिका पैशाची (छोटी पैशाची) नहीं गिनी। शकार की कोई अलग भाषा नहीं है; जैसे किसी नाटक का कोई पात्र 'है सो ने' या 'जो है शो' अधिक बोलता हो तो उसकी बोली में वही तकिया-कलाम अधिक आवेगा, वैसी गढ़ी हुई बोली शाकारी है। चंडाल, शबर जातियाँ हैं। आभीर जाति भी, देश भी। टक्क पंजाब का दक्षिण पश्चिमी भाग है जिसकी चर्चा पहले लेख में हो चुकी है और जहाँ की लिपि टाकरी कहलाई। उड्र उड़ीसा या उत्कल है, द्राविड़ी द्रविड़ की अनार्य भाषा तामिल नहीं, किंतु एक गढ़ी हुई अपभ्रंश है। राजशेखर ने कर्पूरमंजरी में कविता में महाराष्ट्री और गद्य में शौरसेनी काम में ली है। नाटकों में पात्रानुसार भाषाविशेष का प्रयोग न दैशिक तत्व पर है, न जातिक पर; केवल रूढ़ संप्रदाय

है । वररुचि की महाराष्ट्री और हेमचंद्र की जैन महाराष्ट्री में भी दो मुख्य अंतर हैं—वररुचि कहता है कि वर्ण लोप होने पर दो स्वरों के बीच में 'य' श्रुति नहीं होती, जैन 'य' श्रुति मानते हैं, जैसे कविता की महाराष्ट्री में सरित् का सरिश्रा, जैन महाराष्ट्री में ईषत्स्पृष्टतर 'य' श्रुति से सरिया । यह हमारे चिरपरिचित 'गये, गए' के झगड़े का पुराना रूप है । दूसरा यह है कि कविता की महाराष्ट्री में संस्कृत 'ण' का सदा 'न' होता है, जैन दोनों काम में लाते हैं, पदादि में 'ण' कभी नहीं लाते । साहित्य की प्राकृत को जब आवश्यकता पड़ी तब उसने देशी शब्द लिए और संस्कृत भी जब चाहती है तब उन्हें सुधार सँवार कर ले लिया करती है । साहित्य की प्राकृत में यह बात भी है कि प्रत्येक संस्कृत शब्द को वह अपने ही नियमों से तत्सम या तद्भव रूप बनाकर काम नहीं ले सकती, जो शब्द आ गए हैं उन्हींका विवेचन उसके नियम करते हैं; उन्हीं नियमों से नए शब्द बनाए नहीं जा सकते । हेमचंद्र कह गए हैं (८ । २ । १७४) "इसी लिये कृष्ट, घृष्ट, वाक्य, विद्वस्, वाचस्पति, विष्टरश्रवस्, प्रचेतस्, प्रोक्त, प्रोत आदि शब्दों का, या जिनके अंत में क्विप् आदि प्रत्यय हों उन अग्निचित्, सोमसुत्, सुग्ल, सुम्न आदि शब्दों का, जिन्हें पहले कवियों ने प्रयोग नहीं किया, प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि वैसा करने से प्रतीति में विषमता आती है, दूसरे शब्दों से ही उनका अर्थ कहा जाय जैसे कृष्ट के लिये कुशल, वाचस्पति, के लिये गुरु, विष्टरश्रवा के लिये हरि इत्यादि" ॥

आगे इस लेख के उदाहरणांश के दो भाग हैं—पहले में सोमप्रभ की उद्धृत कविता है, दूसरे में उसकी तथा सिद्धपाल की रचना के नमूने । विस्तारभय से अर्थ देने की यह रीति रक्खी है कि प्रत्येक पद का मिलता हुआ हिंदी अर्थ क्रम से रख दिया है, फिर स्वतंत्र अनुवाद नहीं किया, उसीको मिलाकर पढ़ने और पढ़ती बार मन में अन्वय कर लेने से अर्थ प्रतीत हो जायगा ।

पहला भाग ।

प्राचीन ।

(१)

माणि पणट्ठइ जइ न तणु तो देसडा चइज्ज ।
मा दुज्जनकरपल्लविहिं दंसिज्जंतु भमिज्ज ॥

मान, प्रनष्ट हो, यदि, न, शरीर, वह, कुदेश, तजिए; मत, दुर्जन-कर-पल्लवों से, दिखाए जाते हुए, घूमिए। मान प्रनष्ट हो (तो शरीर छोड़ना चाहिए), यदि शरीर न (छोड़ा जाय) तो देश को (तो अवश्य) तज दीजिए। पूर्वार्द्ध का यह अर्थ और भी अच्छा है। जइ न तणु-देह न जावे तो भी मान जावे तो। देसडा-देखो प्रबं०-(१) में 'संदेसडो' की टिप्पणी। चइज्ज, भमिज्ज-तजीजै, भ्रमीजै। दंस-दिखाने के अर्थ का प्राकृत धातु [दश से]। पंजाबी दस्स, देखो (४६)। यह दोहा हेमचंद्र में भी है।

(२)

एक मनुष्य यज्ञ के लिये बकरे को ले जा रहा था और बकरा मिमियाता था। एक साधु ने उसे यह दोहा कहा तो बकरा चुप हुआ। साधु ने समझाया कि यह इसी पुरुष का बाप रुद्रशर्मा है, इसने यह तालाब खुदवाया, पाल पर पेड़ लगाए, प्रति वर्ष यहाँ बकरे मारने का यज्ञ चलाया। वही रुद्रशर्मा पांच वार बकरे की योनि में जन्म लेकर अपने पुत्र से मारा जा चुका है। यह छठा भव है। बकरा अपनी भाषा में कह रहा है कि बेटा, मत मार, मैं तेरा बाप हूँ, यदि विश्वास न हो तो यह सहिँदानी बताता हूँ कि घर के अंदर तुझसे छिपाकर निधान गाड़ रक्खा है, दिखा दूँ। मुनि के कहने पर बकरे ने घर में निधान दिखा दिया और फिर बकरे और उसके मनुष्य पुत्र को स्वर्ग मिल गया।

खड्डु खणाविय सइं छगल सइं आरोविय रुक्ख ।
पइं जि पवत्तिय जन्न सइं किं बुब्बुयहि मुरुक्ख ॥

खड्डु (= ताल), खनाया, स्वयं, हे छागल!, स्वयं, आरोपित किए, रूख, पै (या तैंने), जो, प्रवर्तित किया, यज्ञ, स्वयं, क्यों, बुबुआता है? मूर्ख!

खणाविय-खणाव्युं, आरोविय-आरोप्यो, पई-तैं के लिये देखो हेमचंद्र ८।४।३७० । कुरुयहि-अनुकरण, कलकलाना ।

(३)

एक नगर में अशुभ की शांति पशुवध से की जानेवाली थी, तब देवता ने कहा—

वसइ कमलि कलहंसि जिँम्वँ जीवदया जसु चित्ति ।

तसु पय-पक्खालण-जलिण होसइ असिव निवित्ति ।।

बसती है, कमल में, कलहंसी, जिमि, जीवदया, जिसके, चित्त में, उसके, पद (पैर) पखाबने (धोने) के जल से, होगी, अशिव (की) निवृत्ति॥ होसइ—होसै देखो। (२३)।

(४)

एक विवाह के बधावे (वर्धापन-वद्धावण-बधाई) का वर्णन—

आभरण-किरण-दिप्पंत- देह अहरीकिय-सुरवहू-रूपरेह ।

घण-कुंकुम-कद्दम घर-दुवारि खुप्पंत-चलण नच्चंति नारि ।।

स्पष्ट है। दिप्पंत-दीप्यमान, अहरीकिय-अधरीकृत, नीची दिखाई, रेह-रेखा, घणकुंकुम-कद्दम-विशेषण के आगे विभक्ति नहीं है, घरदुवारि-घर द्वार में या पर, खुप्पंत-चलण-पैर फिसलते हैं (कर्दम में) जिनके ऐसी नारियां ।

(५)

तीयह तिन्नि पियाराइं कलि कज्जल सिंदूरु ।

अन्नइ तिन्नि पियाराइं दुद्धुँ जम्वाइ उ तूरु ।।

स्त्रियों के(या को), तीन, प्यारे (हैं), झगड़ा, कजल (और) सिंदूर, अन्य (भी) तीन प्यारे हैं, दूध, जँवाई और बाजा ॥ तूर-तूर्य ।

(६)

एक राजा अपनी रानी से अपनी गद्दी का भविष्य कह रहा है—

नरवइ आण जु लंघिहइ वसि करिहइ जु करिंदु ।

हरिहइ कुमरि जु कणगवइ होसइ इह सु नरिंदु ।।

नरपति (की) आन जो उलांघेगा वस में करेगा जो करींद्र को, हरेगा जो कुमारी कनकवती (को) होगा यहां वह नरेंद्र । अभयसिंह कुमार ने तीनों बातें पूरी की हैं। यहां 'आण' को संस्कृत 'आज्ञा' से मिलाते हैं किंतु इसका

अर्थ सपथ या दुहाई है जैसे राजपूताने में 'दरबार की आन' (मोहि राम रावरि आन [=रावकी आन] दसरथ सपथ—तुलसी रामायण में विषाद का वाक्य)। आगे कथा में स्पष्ट होता है कि 'आन' का अर्थ यहाँ कोई आज्ञा नहीं है। आधी रात को अभयसिंह चल जा रहा था कि नगर रक्षक ने टोका और न ठहरने पर राजा की 'आन' दी। 'अपने बाप को राजा की आन दे' यों कहकर अभयसिंह चल दिया[21]। इसी कथा में आगे चलकर एक अद्भुत महाविरा है। राजकुमारी कनकवती पर हाथी ने मोहरा कर दिया है। उसका परिजन पुकारता है—'है कोई 'चउद्दसीजाओ' जो हमारी स्वामिनी को इस कृतांत के से हाथी से बचावे ?' यहां चउद्दसीजाओ =चौदस का जाया=चतुर्दशी के दिन जनमा हुआ, बड़े भाग्यवान् या पराक्रमी के अर्थ में आया है, जैसे जिसकी छाती पर बाल हों वह यह काम करे, जिसने मा का दूध पिया है, कोई चाँदनी (शुक्लपक्ष की) चौदस का जाया जो...इत्यादि।

(७)

वसंत वर्णन—

अह कोइल-कुल-रव-मुहलु भुवणि वसंतु पयट्टु।

भट्टु व मयण-महा-निवह पयडिअ-विजय-मरट्टु ॥

अथ कोयल-कुल-रव-मुखर भुवन (में) वसंत पैठा।

भट इव मदन महा नृप का प्रकटित-विजय-पुरुषार्थ ॥

मरट्टु ॥ वीरता, मराठापन ?

(८)

सूरु पलोइवि कंत-करु उत्तर-दिसि-आसत्तु।

नीसासु व दाहिण-दिसय मलय-समीर पवत्तु ॥

सूर्य (को, के ?) देखकर कंत (के) कर उत्तर-दिशा-आसक्त।

निःश्वास इव दक्षिण दिशा के मलय समीर प्रवृत्त (हुए) ॥

कुमारसंभव के "कुवेरगुप्तां दिशमुष्णरश्मौ गन्तुं प्रवृत्ते समयं विलंघ्य। दिग्दक्षिणा गन्धवहं मुखेन व्यलीकनिःश्वासमिवोत्ससर्ज" का भाव है। कर—में श्लेष है। पलोइवि-प्रलोक्य, देखकर। विभक्तियों की बेकदरी होने से यह बीच में आ गया है और सूर और कंत दूर पड़ गए हैं।

---

२१ नयरारक्खेण दिन्ना रन्नो आणा। देसु निअपिउणो रन्नो आणं ति भणंतो अभयसीहो चलइ। (पृ० ३८)

(९)

काणण-सिरि सोहइ अरुण-नव-पल्लव-परिणद्ध ।
नं रत्तंसुय-पावरिय महु-पिययम-संबद्ध ॥

कानन (की) श्री सोहै अरुण नव पल्लवों से ढकी ।

माने रक्तांशुक (लाल कपड़े) से लिपटी मधु (चैत्र, वसंत) (रूपी) प्रियतम से संबद्ध ॥

विवाह में 'सूहा सालू' पहनते ही हैं । पावरिय = प्रावृत, ढकी हुई ।

(१०)

सहयारिहि मंजरि सहहि भमर-समूह-सणाह ।
जालाउ व मयणानलह पसरिय-धूम-पवाह ॥

सहकार (आम) की मंजरी सोहती हैं भ्रमर-समूह (से) सनाथ ।

ज्वालाएँ इव मदनानल की प्रसरित-धूम-प्रवाह ॥

यहाँ सहहि का अर्थ सहती हैं नहीं हो सकता, सोहहिं का अर्थ बैठता है । सो के ओ की एक मात्रा मानने से काम चलता है । देखो (२२), (४१) ।

(११)

दमयंती के वस्त्र पर नल उसे छोड़ते समय अपने रुधिर से लिख गया था—

वड-रुक्खह दाहिण-दिसिहि जाइ विदब्भहि मग्गु ।
वाम-दिसिहि पुण कोसलिहि जाह रुचइ तहिं लग्गु ॥

बड (के) रूख की, दक्षिण दिशा में, जाय, विदर्भ को, मार्ग ।

वाम दिशा में, पुनः, कोसल को, जहाँ, रुचै, तहाँ, लग (जिधर चाहे उधर जा) ॥ जहिं तहिं = जिसमें, तिसमें ।

(१२)

कुसल नामक विप्र (महाभारत के नलोपाख्यान का पर्णाद) खुद्दक को (क्षुद्रक, महाभारत का बाहुक—नल, विकृत रूप में) देख कर यह दोहा (दुहयं) गाता है—

निट्ठुर निक्किवु काउरिसु एकुजि नलु न हु भंति ।
मुक्कि महासइ जेण विणि निसि सुत्ती दमयंति ॥

निठुर, निष्कृप (कृपारहित) । कापुरुष, एक, जी, नल (है) नहीं

ही, भ्रांति (इस बात में), छोड़ी, महासती, जिसने, वन में, निशा में, सूती दमयंती ॥

मुक्विव-मुक्का, महासइ-देखो पत्रिका भाग १ पृ० १०४ ।

(१३)

परदारगमन के विषय में उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की कथा लिखी है, उसीमें प्रसंग से उदयन वत्सराज, वासवदत्ता, यौगंधरायण आदि की कथाएँ भी आ गई हैं जो बौद्ध जातकों में, बृहत्कथा (कथासरित्सागर) और भास के नाटक में है। इस कथा में भास के नाटक प्रतिज्ञायौगंधरायण की कथा से कुछ भेद है किंतु दो श्लोक उसी नाटक के उद्धृत किए हैं। अस्तु। राजगृह के राजा श्रेणिक के पुत्र अभय को प्रद्योत ने छल से बाँधकर अपने यहाँ रख छोड़ा था। उसने कई मार्के के काम किए, प्रद्योत ने उससे वर मांगने के लिये कहा तो उसने यह ऊटपटांग वर मांगा जिसका अभिप्राय यह था कि मुझे अपने यहाँ से विदा कर दो—

नलगिरि हत्थिहिंमि ठितइं सिवदेविहि उच्छंगि ।
अग्गिभीरु रह दारुइहि अग्गि देहि मह श्रंगि ॥

प्रद्योत के यहाँ नलागिरि प्रसिद्ध हाथी था, शिवा देवी थी और अग्निभीरु रथ था जो आग में नहीं जलता था। अभय कहता है कि नलागिरि हाथी में (पर) बैठे हुए, शिवदेवी की गोद में, अग्निभीरु रथ की लकड़ियों से, आग, दे, मेरे, अंग में। उच्छंग-तुलसीदासजी का उछंग, सं० उत्संग। हत्थिहिंमि-दोहरी विभक्ति।

(१४)

जाते समय अभय बदला लेने की यह प्रतिज्ञा कर गया और पीछे आकर परदार-गमन-रसिक प्रद्योत को दो स्त्रियां से बिलमा कर बाँध ले गया।

करिवि पईवु सहस्सकरु नगरी मज्झिण सामि ।
जइ न रडंतु तइं हरउं [तइ] अग्गिहिं पविसामि ॥

करके, प्रदीप, सहस्रकर (=सूर्य्य) को, अर्थात् दिन दहाड़े, नगरी के मध्य से, हे स्वामी, यदि न चिल्लाते हुए को, तुझे, हरूँ, तो, अग्नि में, प्रवेश करूँ ॥ रडंतु—पंजाबी रडचांदा, हिं० रहता।

(१५)

वेस विसिट्ठह वारियइ जइ वि मणोहर-गत्त।
गंगाजलपक्खालिय वि सुणिहि किं होइ पवित्त॥

वेश-विशिष्टों को, वारिये (= इन से बचिए), यदि, भी, मनोहर-गात्र-(वे हों), गंगाजल-प्रक्षालित, भी, कुत्तियां, क्या, होयं, पवित्र ? वेस-विसिट्ठह—वेश-विशिष्टा, अच्छे वेशवाली, वेश्या, वेश का अर्थ 'वेश्याओं का बाडा' भी होता है उस अर्थ में 'वेश्याओं के बाड़े में घुसी हुई' देखो (१६)। सुणि-सं० शुनी।

(१६)

नयणिहि रोयइ मणि हसइ जणु जाणइ सउ तत्तु।
वेस विसिट्ठह तं करइ जं कट्ठह करवत्तु॥

नयनों से, रोवै, मन में, हँसै, जानो, जानै, सब (या सौ), तत्व, वेश-विशिष्टा, वह (वैसे), करै, जो (जैसे) काठ का (= को), करौती॥ इन दोनों दोहों में 'वेस विसिट्ठह' अलग अलग पद मानें तो पहले में अर्थ होगा 'वेश्या विशिष्टों (अच्छे लोगों) से वारित की जाती है', और दूसरे में 'वेश्या विशिष्टों का (= को) वह करै' इत्यादि। करवत्तु = सं० करपत्र, हिं० करौती।

(१७)

पिय हउं थक्किय सयलु दिणु तुह विरहग्गि किलंत।
थोडइ जल जिम मच्छलिय तल्लोविल्लि करंत॥

पिया!, मैं, रही, सकल, दिन, तेरी, विरहाग्नि में, उबलती, थोड़े, जल में, ज्यों, मछली तड़फड़ाहट, करती (हुई)। थक्किय-थकना = रहना (बंगला थाक्) तल्लोविल्लि-तले ऊपरी, छटपटाना।

(१८)

मइं जाणियउं पिय विरहियह क वि धर होइ वियालि।
नवरि मयंकु वि तह तवइ जह दिणयरु खयकालि॥

मैं, जान्यो, पिय-विरहित का, (= को), कोई, भी, सहारा, होवै, रात में, नहीं पर (= यह पता नहीं कि यह तो दूर रहा, उलटा) मयंक, भी, वैसे, तपै, जैसे, दिनकर (= सूर्य), क्षयकाल में। धर-धरनेवाली बात, आधार, सहारा। वियालि = विकाल में, वि = द्वि, दूसरी वेळा अर्थात् रात। मयंक =

मृगांक, चंद्र। खयकाल-प्रलय। नवरि-इस देशी का ठीक भाव प्राकृत की संस्कृत छाया बनानेवाले नहीं ला सकते। ऊपर अर्थ दिया है। यह दोहा हेमचंद्र के व्याकरण में भी है।

(१९)

अज्जु विहाणउं अज्जु दिणु अज्जु सुवाउ पवत्तु।
अज्जु गलत्थिउ सयलु दुहु जं तुहुं मह घरि पत्तु॥

आज, विहान (हुआ), आज, दिन, आज, सुवायु, प्रवृत्त (हुआ), आज, गलहत्था दिया (=निकाल दिया), सकल दुःख, जो, तू, मेरे, घर में, प्राप्त (हुआ)। विहाणउं-नामधातु, विहान्यो, हिंदी विहान, सं०, विभात, विभान। गलत्थिउ-सं० गलहस्तित, गले में हाथ देकर निकाल दिया (अर्द्धचंद्र दिया, गलहस्तेन माधवः)।

(२०)

पडिवज्जिवि दय देव गुरु देवि सुपत्तिहि दाणु।
विरइवि दीणजणुद्धरणु 'करि सफलउं अप्पाणु'॥

चौथे चरण की समस्यापूर्ति। दया, देव और गुरु को प्राप्त होकर (स्वीकार करके), देकर, सुपात्र को दान, रच करके, दीनजनोद्धरण, कर, सफल, अपने को। पडिवज्जिवि-प्रतिपद्य, अंगीकार करके। विरइवि-विरचय्य, विरच कर। अप्पाण-आत्मानं, तुलसीदास जी का 'अपान'। पडिवज्जिवि, देवि, विरइवि पूर्वकालिक क्रियाएँ।

(२१)

पुत्तु जु रंजइ जणयमणु थी आराहइ कंतु।
भिच्चु पसन्नु करइ पहु 'इहु भल्लिम पज्जंतु'॥

समस्यापूर्ति। पूत, जो, रंजावे, जनक (का) मन, स्त्री, आराधै, कंत (को), भृत्य, प्रसन्न, करै, प्रभु (को), ये (या यहाँ) भलेपन को, पाते हैं॥ रंजइ, रंजयति, रंजै, प्रसन्न करै। आराहइ-आराधना करे। इहु-ये, अथवा यहां। भल्लिम-भलाई, (संस्कृत का इमनिच्)। पज्जंतु-पाईजते हैं, पाते हैं, या इह भल्लिमपज्जंतु=' यह भलाई की पर्यंत (=सीमा) है' यह भी अर्थ हो सकता है।

(२२)

मरगय वन्नह पियह उरि पिय चंपयपह देह। (समस्या)
कसवट्टइ दिन्निय सहइ नाइ सुवन्नह रेह॥ (पूर्ति)

मरकत वर्ण के (साँवरे), पिया के, उर पर, प्रिया, चंपक (की सी) प्रभा (वाले) देह की, कसौटी पर, दीनी, सोहती है, नाईं, सुवर्ण की, रेखा॥ हेमचंद्र के व्याकरण में इससे बहुत मिलती हुई एक दूसरी कविता है उसका व्याख्यान आगे देखो। क्या यह कहने की आवश्यकता है कि यह किस अवस्था का वर्णन है? सहइ, देखो ऊप॰ (१०) (४१)।

(२३)

चूडउ चुन्नी होइसइ मुद्धि कवोलि निहित्तु। (समस्या)

सासानलिण झलक्कियउ वाहसलिलसंसित्तु॥ (पूर्ति)

चूड़ा, चूर्ण (चूरा चूरा), हो जायगा, हे मुग्धे! कपोल पर, रक्खा हुआ, श्वास (की) अनल (अग्नि) से, झलकाया, वाष्प सलिल से सींचा (हुआ)। पहले तो जलते साँस चूड़े को तपा देंगे फिर उसपर आँसू पड़ेंगे, क्या वह चूरा चूरा न हो जायगा? **मुद्धि कवोलि**—को समास भी मान सकते हैं, मुग्धा के कपोल पर। **चूडउ**—चूडो, संभवतः दाँत का। **चुन्नी होइसइ**—अभूततद्भाव का इ पहचान लो,। **मुद्धि**, देखो प्रबंध॰ 'मुंधि' (दू॰ ८)। **झलक्कियउ**—झल = ज्वाला, देखो प्रबंध (दू॰ ६) 'झाळी'। यह हेमचंद्र में भी है।

(२४)

हउं तुह तुट्ठउ निच्छइण मग्गि मणिच्छिउ अज्जु।

तो गोवालिण वज्जरिउ पहु महु वियरहि रज्जु॥

मैं, तेरे (या तुझपर), तूठा हूँ, निश्चय से, मांग, मन इच्छित, आज (देवता के ऐसा कहने पर) तब, गोपाल ने, कहा, प्रभु! मुझे, दे, राज॥ **वज्जरिउ**—देसी, उचरा, कहा। वियरहि-वितर [+ हि] सं॰। संभव है यह सोमप्रभ की ही रचना हो, किंतु अधिक संभव है कि यह कहानी का संग्रहश्लोक हो।

(२५)

एक कोहल नामक कबाड़ी था जो काठ की कावड़ कंधे पर लिए लिए फिरता था। उसकी सिंहला नामक स्त्री थी। उसने पति से कहा कि देवाधिदेव युगादिदेव की पूजा करो जिससे जन्मांतर में दारिद्र्य-दुःख न पावें। पति ने कहा तू धर्म-गहली (पागल) हुई है, परसेवक मैं क्या कर सकता हूँ? तब स्त्री ने नदीजल और

फूल से पूजा की। उसी दिन वह विषूचिका से मर गई और जन्मांतर में राजकन्या और राजपत्नी हुई। अपने नए पति के साथ कभी उसी जिन मंदिर में आई तो उसी पूर्व पति दरिद्र कबाड़िये को वहाँ देखकर मूर्छित हो गई। उसी समय जातिस्मर होकर उसने यह दोहा पढ़ा। कबाड़ी ने स्वीकार करके जन्मांतर कथा की पुष्टि की—

अडविहि पत्ती नइहि जलु तो वि न वूहा हत्थ।
अव्वो तह कव्वाडियह अज्ज विसज्जिय वत्थ॥

अटवी (जंगल) की, पत्ती, नदी का, जल (सुलभ था) तो, भी, (तैंने) न, हिलाए, हाथ, हाय!, उसके, कबाड़िए के, आज, विसर्जित हैं, वस्त्र (तन पर कपड़ा भी नहीं, और मैं रानी हो गई)। वूहा—व्यूहित किए। अव्वो-आश्चर्य और खेद में।

(२६)

जे परदार-परम्मुहा ते वुच्चहिं नरसीह।
जे परिरंभहिं पररमणि ताहं फुसिज्जइ लीह॥

जो, परदारा (से) पराङ्मुख (हैं), वे, कहे जाते हैं, नरसिंह, जो, आलिंगन करते हैं, पर रमणी (को), उनकी, पुँछ जाती है, रेखा (सज्जनों की पंक्ति से)। वुच्चहि—सं. वच्यन्ते। फुसिज्जइ-पोंछ दी जाती है, मिटाई जाती है, संस्कृत में पोंछने के लिये उत् + पुंस् धातु कश्मीरी कवियों ने प्रयोग किया है। लीह—रेह, लीक।

(२७)

एक बहू पशुपक्षियों की भाषा जानती थी। आधी रात को शृगाल को यह कहता सुनकर कि नदी का मुर्दा मुझे दे दे और उसके गहने ले ले, नदी पर वैसा करने गई। लौटती वार श्वसुर ने देख लिया। जाना कि यह अ-सती है। पीहर पहुँचाने ले चला। मार्ग में करीर के पेड़ के पास से कौआ कहने लगा कि इस पेड़ के नीचे दस लाख का निधि है, निकाल ले और मुझे दही सत्तू खिला। अपनी विद्या से दुख पाई हुई कहती है—

एक्कों दुन्नय जे कया तेहिं नीहरिय घरस्स ।
बीजा दुन्नय जइ करउं तो न मिलउ पियरस्स ॥

एक, दुर्नय, जो, क्रिया, उससे, निसरी (निकली), घर से, दूसरा, दुर्नय, यदि, करूं, तो, न, मिलूं (कभी भी), पियारे से। घरस्स, पियरस्स—संस्कृत षष्ठी 'स्स' से हिंदी पंचमी और तृतीया दोनों का काम सरा है। पियरस्स, प्रिय से तो हिंदी पिय या पिया बना है और प्रियकर, पियर, से पियारा, प्यारा।

(२८)

रुक्मिणी हरण के समय कण्ह (कान्ह, कृष्ण) रुक्मिणी से कहता है—

अम्हे थोडा रिउ बहुय इउ कायर चिंतंति ।
मुद्धि निहालहि गयणयलु कइ उज्जोउ करंति ॥

हेमचंद्र में भी है। हम, थोड़े (हैं), रिपु, बहुत (हैं), यों, कायर, चींतते हैं, भोली !, देख, गगन तल में, कै (कितने), उद्योत (प्रकाश). करते हैं ? बहुत से तारे या एक चंद्र ? अम्हे—राजस्थानी म्हे। मुद्धि-मुग्धे ! (देखो २३)। निहालहि-आज्ञा, उपनिषदों का निभालयति। उज्जोउ-उद्योत।

(२९)

सो जि वियक्खणु अक्खियइ छज्जइ सोज्जि छइल्लु ।
उप्पह पट्ठिओ पहि ठवइ चित्तु जु नेह-गहिल्लु ॥

वह, जी, विचक्षण, कहा आता है, छाजता है (शोभित होता है), वही जी, छैल, उत्पथ-प्रस्थित (कुमार्ग पर चले हुए) को, पथ पर, टिकाता है, चित्त को, जो नेह-गहले (प्रेम से मतवाले) को। अक्खियइ—आखा जाय, आखना = आ + ख्या, पंजाबी आखना = कहना। छज्जइ-छाजै। सोज्जि-सोउ + जि, वही, जी, (पादपूरण)। छइल्लु—संस्कृत छेक = विदग्ध, चतुर, प्राकृत कविता में छइल्ल का अर्थ चतुर है, पंजाबी छैल = अच्छा। इस छइल्ल तथा बनावट के प्रेमी छैला (छविल, छबीला) का भेद तुलसीदास ने दिखाया है 'छरे छबीले छैल सब'। ठवइ-थापै, स्थापयति (सं०)। गहिल्लु-(सं०) ग्रहिल, आग्रही, इससे गहला या घेला = हठी या पागल।

(३०)

रिद्धि विहूणह माणुसह न कुणइ कुवि सम्माणु ।
सउणिहि मुच्चहि फलरहिउ तरुवरु इत्थु पमाणु ॥

रिद्धिविहीन (का), मनुष्य (का), न, करता है, कोई भी, संमान, पक्षियों से, छोड़ा जाता है, फल रहित, तरुवर, यहाँ, प्रमाण (यह है) ॥ रिद्धि = ऋद्धि (सं०) । विहूण-विहीन, डिंगल कविता में आता है, निष्ठा के रूप में है और ड की बहु उ के लिये मिलाओ जीर्ण = जूर्ण = जूना । सउणि = शकुनि (सं०) । हत्थु-प्राकृत पुत्थ, सं० अत्र, पंजाबी इत्थं ॥

(३१)

जइवि हु सूरु सुरूवु विअक्खणु
तहवि न सेवइ लच्छि पइक्खणु ।
पुरिस-गुणागुण-मुणण-परम्मुह
महिलह बुद्धि पयंपहिं जं बुह ॥

यद्यपि, हो, शूर, सुरूप, विचक्षण, तथापि, नहीं, सेती है, लक्ष्मी (उस मनुष्य को) प्रति । क्षण (क्योंकि) पुरुषों (के) गुण अगुण (के) विचार (से) पराङ्मुख, महिलाओं की, बुद्धि (होती है), कहते हैं, जो, बुध ॥ मुणण-विचारना । पयंपहिं—सं० प्र + जल्प । जं-जिसे, या ज्यों (यथा) ।

(३२)

जेण कुलक्कमु लंघियइ अवजसु पसरइ लोइ ।
तं गुरु-रिद्धि-निबंधणु वि न कुणइ पंडिओ कोइ ॥

जिससे, कुलक्रम, उलांघा जाता है, (और) अपजस, पसरता है, लोक में, उस (को), बहुत संपत्ति उपजानेवाले (काम) को, भी, न, करता है, पंडित, कोई । गुरु-रिद्धि-निबंधणु = गुरु + ऋद्धि + निबंधन (का बाँधनेवाला) ।

(३३)

जं मणु मूढह माणुसह वंछइ दुल्लह वत्थु ।
तं ससि- मंडल- गहण किहिं गयणि पसारइ हत्थु ॥

जो, मन, मूढ (का), मनुष्य का, वांछा करता है, दुर्लभ, वस्तु को, तो शशिमंडल-ग्रहण (के लिये) क्या, गगन में, पसारता है, हाथ ॥

(३४)

रावण जायउ जहिं दियहि दह मुह एक सरीरु ।
चिंताविय तइयहि जणणि कवणु पियावउं खीरु ॥

शंखपुर के राजा पुरंदर के यहां एक सरस्वती कुटुंब आया, राजा ने इस दोहे का चौथा चरण 'पुत्र माता' से समस्या की तरह पूछा। उसने पूर्ति की। प्रबंधचिंतामणि में सरस्वती कुटुंब भोज के यहाँ आया है वहाँ भी यह समस्या गृहपत्नी ने यों ही पूर्ण की है। इसका अर्थ यही है कि दोहा पुराना है, कथा-लेखक इसकी रचना किसी भी राजा की सभा पर चिपका देते हैं। प्रबंध चिंता-मणिवाले लेख में इसका और अगले दोहे का अर्थ और पाठांतर देखो (पत्रिका भाग २ पृ० ४१ सं० १२)।

रावण, जाया (जन्मा), जिन (में), दिन में, दस-मुख, एक-शरीर। चिंतित किया, तभी, जननी (को), किस (को) पियाऊं, क्षीर (=दूध)? चिंताविय-चिंतापिता (!) सं० 'प' 'व' के लिये देखो पत्रिका, भाग १ पृ० २०७।

(३५)

पुत्र की घरवाली ने यह समस्या पूर्ति की—

इउ अब्भुउ दिट्ठु मइं 'कंठि व लुल्लइ काउ'।

कीइवि विरह-करालियहे उड्डावियउ वराउ॥

यह दोहा हेमचंद्र में भी है। यह, अत्यद्भुत, दीठा (देखा), मैं (ने), कंठ में, लगा जाय, किसके, किसी भी, विरहकरालिता ने, उड़ा दिया, वराक (बेचारा) (पति)॥ इउ=यो।

(३६)

सीहु दमेवि जु वाहिहइ इक्कु वि जिणिहइ सत्तु।

कुमरि पियंकरि देवि तसु अप्पहु रज्जु समत्तु॥

गजपुर के राजा खेमंकर के सुतारा देवी से एक कन्या उत्पन्न हुई, राजा रानी के मरने पर मंत्रियों ने उसे पियंकर नाम देकर पुरुष कहकर गद्दी पर बैठाया। फिर कुलदेवी अच्युता की पूजा करके पूछा कि इसका पति किसे करें। देवी ने उत्तर दिया—सिंह को, दमन करके, जो, वाहैगा (सवारी करेगा), एक (अकेला), भी, जीतेगा, शत्रुओं को, कुमारी, प्रियंकरी, देकर, उसे, अर्पण करो, राज, समस्त। ऐसा ही एक मिल गया और कहानी कहानियों की तरह चली॥

दूसरा भाग ।

सोमप्रभ और सिद्धपाल की रचित कविता ।

(१) कुमारपालप्रतिबोध, गायकवाड़ संस्कृत सिरीज़ पृष्ठ ७७, एक छंद ॥

(३७)

कुलु कलंकिउ मलिउ माहप्पु
मलिणीकय सयणमुह
दिन्नु हत्थु नियगुण कडप्पह
जगु झंपियो अवजसिण
वसण विहिय सन्निहिय अप्पह ।
दूरह वारिउ भद्दु तिणि ढक्किउ सुगइदुवारु ।
उभयभवुब्भडदुक्खकरु कामिउ जिण परदारु ॥

यह सप्तपद छंद उस समय की रचना में बहुत मिलता है । अंत के दो चरण छप्पय के हैं । परदार गमन की निंदा में कवि कहता है—कुल, कलंकित (किया), मल दिया, माहात्म्य, मलिन किया, सज्जनों का मुँह, दीना, हाथ, निज गुण समूह को, (=धक्का देकर निकाल दिया), जग, झंप (गल+)हस्था (ढक दिया), अपजस से, व्यसन, विहित (किए) सन्निहित, अपने, दूर से, निवारण किया, भद्र, उसने, ढँक दिया, सुगति का द्वार, दोनों भव (यह लोक और परलोक) में उद्भट दुःखों की करनेवाली, कामित की (=चाही), जिसने, परदारा । सयण—सजन, मित्र हिं० साजन । दिन्नु हत्थु-हाथ दिया, गलहस्त दिया, अर्धचंद्र दिया, निकाल बाहर किया, देखो ऊपर (१६) । कडप्प=? समूह, झंप=घूमना, ढकना, या जीतना॥ इसीसे मिलता हुआ एक श्लोक सोमप्रभ की सूक्तिमुक्तावली (सिंदूरप्रकर-स्तोत्र) में है—

दत्तस्तेन जगत्यकीर्तिपटहो गोत्रे मषीकूर्चकं
चारित्रस्य जलांजलिर्गुणगणारामस्य दावानलः ।
संकेतः सकलापदां शिवपुरद्वारे कपाटो दृढः
शीलं येन निजं विलुप्तमखिलं त्रैलोक्यचिंतामणिः ॥[२१]

(२) पृष्ठ ३११, १४ छंद, बारह भावनाएं, नमूने—(३८–४०)

---

२१ काव्यमाला गुच्छक ७ पृ० ३७ ।

पिइ[१] माय भाय सुकलत्तु[२] पुत्तु
पहु[३] परियणु[४] मित्तु सणेहजुत्तु[५]।
पहवंतु[६] न रक्खइ[७] कोवि मरणु
विणु धम्मह[८] अन्नु[९] न अत्थि[१०] सरणु ॥
राया[११] वि रंकु सयणो[१२] वि सत्तु[१३]
जणओ[१४] वि तणउ[१५] जणणि वि कलत्तु[२]।
इह होइ नड[१६] व्व कुकम्मवंतु
संसाररंगि[१७] बहुरूवु[१८] जंतु ॥
एक्कलउ[१८] पावइ जीवु जम्मु
एक्कलउ मरइ विढत[१९] कम्म।
एक्कलउ परभवि[२०] सहइ दुक्खु
एक्कलउ धम्मिण[२१] लहइ मुक्खु[२२] ॥

स्पष्ट है। कठिन शब्दों पर टिप्पणी दी है। [१]पिता [२]सुकलत्र (स्त्री) [३]प्रभु [४]परिजन [५]स्नेहयुक्त [६]समर्थ होता हुआ (प्रभवन्) [७]रक्षा करता है, बचाता है [८]धर्म के [९]अन्य [१०]है [११]राजा [१२]स्वजन [१३]शत्रु [१४]जनक (पिता) [१५]तनय (पुत्र) [१६]नट इव [१७]रंग पर, नाटक भूमि पर [१८]बहुरूप [१८]अकेला [१९]अर्जित [२०]परलोक में [२१]धर्म से [२२]मोक्ष।

(३) पृष्ट ३५०-५१, वसंतवर्णन, छंद ५,—नमूना—

(४१)

जहिं रत्त सहहि कुसुमिय पलास नं फुट्टए पहियगण हिययमास।
सहयारिहि रेहहि मंजरीओ नं मयण जलण जालावलीओ ॥

जहां, रक्त, सोहते हैं, कुसुमित, पलाश, मानो, फूटे हैं, पथिक गण (के) हृदय के मांस, सहकारों (आमों) में, विराजती हैं, मंजरियां, मानों, मदन (रूपी) ज्वलन (अग्नि) की ज्वालावलियां ॥ सहहि—देखो (१०) (२२)।

(४) पृष्ट १७८, ग्रीष्मवर्णन, चार छंद, नमूना—

(४२)

जहिं दुट्ठ नरिंदु व सयलु भुवणु परिपीडइ तिव्वकरेहिं तवणु।
जहिं दूहव महिलय जण समग्ग संतावइ सूय सरीर लग्गु ॥

* जहां, दुष्ट, नरेंद्र, इव, सकल, भुवन को, परिपीडित करता है, तीव्र करों से, तपन (=सूर्य), जहां, दुभंगा (वियोगिनी), महिला, जन, समग्र (को), सतावै, सूर्य (?), शरीर में, लगा। कर-किरण, राज देय।

(५) पृष्ठ ४२३ से ४३७, जीवमनःकरण संलाप, छंद १-२, ४-२७, २६-३०, ४७, ५१-५२, ५४-५६, ६१, ६४-६५, ६७-१०४ (बाकी प्राकृत हैं)। कवि सिद्धपाल ने जीव, मन और इंद्रियों की बातचीत राजा कुमारपाल को सुनाई है। देहनामक पट्टण (नगर) में आत्मा राजा, बुद्धि महादेवी, मन महामंत्री, और फरिसण (स्पर्श), रसण (रस), घाण (घ्राण), लोयण (लोचन), सवण (श्रवण) ये पांच प्रधान—यों कथा चलती है। नमूने—

(४३)

जं तिलुत्तम-रूव-वक्खित्तु
खणु बंभु चउमुहु हुउ
धरइ गोरि अद्धंगि संकरु
कंदप्पपरवसु चलणु
जं पियाइ पणमइ पुरंदरु
जं केसवु नच्चावियउ गोठंगणि गोवीहिं।
इंदियवग्गह विप्फुरिओ तं वन्नियइ कईहिं ॥ ६१ ॥

जो, तिलोत्तमारूप (से) व्याक्षिप्त (व्याकुल), क्षण में, ब्रह्मा, चतुर्मुख, हुआ; धरै, गौरी को, अर्द्धांग में, शंकर; कंदर्प (के) परवश, चरण, जो, प्रिया के, प्रणाम करता है, पुरंदर; जो, केशव, नचाया गया, गोष्ठ आँगन में, गोपियों से, इंद्रियवर्ग का, विस्फुरित, वह, वर्णन किया जाता है, कवियों से ॥

(४४)

बालत्तणु असुइ-विलित्त-देहु
दुहकर दंसणुग्गम कन्नवेहु।
चिंतंतह सव्वविवेय रहिउ
मह हियउं होइ उक्कंपसहिउ ॥ ८५ ॥

बालकपन, अशुचि (पदार्थों से) विलिप्त देह, दुःखकारक, दशनों (दांतों) का उद्गम (निकलना), कर्णावेध, (इनको) सोचते हुए का, सर्वविवेक-रहित, मेरा, हृदय, होता है, उत्कंपसहित।

(४५)

ईसा-विसाय-भय-मोह-माय।
मय-कोह-लोह-वम्मह-पमाय॥
मह सग्गगयस्स वि पिट्ठि लग्ग।
ववहरय जेव रिणिअह समग्ग॥ ९७॥

ईर्षा, विषाद, भय, मोह, माया, मद, क्रोध, लोभ, मन्मथ, प्रमाद (ये सब) मेरे, स्वर्गगत के, भी, पीठ पर, लगे, वौहरे (लेनदार) जैसे ऋणी (कर्जदार) के, सब॥

(६) पृष्ठ ४४३- ४६१ स्थूलिभद्र कथ छंद १-४, १-१४, २३-२५, ३१-३२, ३४-३८, ४०-४५, ४६-६२, ६४-६६, ६८-८२, ८४। ९४, ९७-९८, १००, १०१- १०५ (बाकी प्राकृत हैं) पाडलिपुत्त के राज नवम नंद के मंत्री सगडाल (शकटार) ने किस प्रकार अपनी श्रुतधर कन्याओं की सहायता से वररुचि का नई कविताएं सुनाकर नंद से धन पाना बंद किया, वररुचि का गंगा से दीनार पाने का चेटक, नंद का सगडाल पर क्रोध, सगडाल के पुत्र सिरिय का पिता को मारना, सिरिय के बड़े भाई स्थूलिभद्र का कोसा नामक वेश्या से प्रेम, कोशा के उपदेश से श्रमण का वहां भी संयम से रहना, आदि वर्णन बहुत ही अच्छा है। नमूने—

(४६)

जसु वयण विणिज्जिउ नं ससंकु अप्पाण निसिहि दंसइ ससंकु।
जसु नयणकंति जिय लज्जभरिय वणवासु पवन्नय नाइ हरिण।८।

जिसके, वदन से विनिर्जित, मानो, शशांक, अपने को, निशा में, दिखाता है, सशंक, जिसकी नयन कांति (से) जित, लज्जाभर से, वनवास (को) प्रपन्न हुए, मानो, हरिण। कुंसइ-देसी (?)

(४७)

नंदु जंपइ पढइ वरकव्व
कह एस वररुइ सुकइ

कहइ मंति मह धूय सत्त वि
एआइं कव्वाइं
पहु पढइं बालाउ हुंत वि
तत्थ तुम्ह नरनाह जइ मणि वट्टइ संदेहु ।
ताउ पढंतिय कोउगेण ता तुम्हें निसुणेहु ॥ ३२ ॥

नंद, कहता है, " पढ़ै, परकाव्य, कैसे, यह, वररुचि, सुकवि ? " कहै, मंत्री, "मेरी, बेटियाँ, सातों, ही, इन्हीं (को), काव्यों को, प्रभु ! पढ़ै, बाला होती हुई भी; वहां तुम्हें, नरनाथ, यदि, मन में, वर्तता है (है) संदेह, वे, पढ़ती हुई, कौतुक से, उन्हें, तुम, सुनो । कन्याओं में पहली एक वार सुनकर दूसरी दो वार यों सातवीं सात वार सुनकर श्लोक कंठस्थ कर लेती थीं । वररुचि ने नया श्लोक पढ़ा कि पहली ने पढ़ दिया । यों दो वार सुनकर दूसरी ने इत्यादि । फिर नंद ने कुपित होकर वररुचि को निकाल दिया ।

(४८)

खिविवि संझिहिं सलिल दीणार
गोसग्गि सुरसरि थुणइ
हणइ जंतसंचारु पाइण
उच्छलिवि ते वि वररुइहिं
चडहिं हत्थि तेण घाइण
लोउ पइंपइ वररुइहु गंग पसन्निय देइ ।
मुणिवि नंदु वुत्तंतु इहु सयडालस्स कहेइ ॥ ३५ ॥

फेंककर, संध्या को, जल में, दीनार, सवेरे, (वररुचि) गंगा को (= की) स्तुति करता है (और) हनता है (दबाता है) यंत्र संचार को, पांव से; उछल-कर, वे, भी, वररुचि के, चढ़ते हैं, हाथ में, उससे, घात से; लोग, कहते हैं (कि) वररुचि को, गंगा, प्रसन्न होकर, देती है; जानकर, नंद, वृत्तांत, यह, शकटाल को, कहता है । खिविवि—सं० क्षिप् । खिविवि, उच्छलिवि, मुणिवि पूर्वकालिक । गोसग्ग—सं० गोसर्ग सवेरा, थुणइ—स्तु (स्तुति करना) हु (होम करना) धातु 'नु' वाले अर्थात् पांचवें गण के भी माने जाने चाहिएँ, प्राकृत थुणइ = स्तुति करता है, पुराणों तथा पद्धतियों में हुनेत् और हुनुयात् आता है (राम चरितमानस में , हुने अनल मँह वार बहु), कृ का कृणोति वेद में तथा कुणइ प्राकृत में । पइंपइ—प्रजल्प (सं०), पसन्निय-प्रसन्निता (!)

सं० । फिर शकटार ने मिलाए आदमी भेजकर वररुचि को सायंकाल नदी में दीनार रखते पा लिया, स्वयं निकलवा लिए, सवेरे नंद के सामने वररुचि ने बहुत स्तुति की और यंत्र चलाया, पर कुछ न मिला।

(४९)

कोसा ने सोचा कि श्रमण मेरे अनुराग में इतना पगा है इसे सुमार्ग में लगाऊँ। कहा कि मुझे 'धम्मलाभु' से क्या, 'दम्मु लाभु' (दाम-लाभ) चाहिये। उसने पूछा 'कितना ?' कोसा ने लाख मांगा।

तीइ वुत्तइ सो सनिव्वेउ
मा खिज्जसि किंचि तुहं
झत्ति वच्च नेवाल मंडलु
तहं देइ सावउ निवइ
लक्खु मुल्लु साहुस्स कंबलु
सो तहिं पत्तउ दिठ्ठु निवु दिन्नइ कंवल तेण
तं गोविव दंडय तलइ तो वाहुडिउ जवेण ॥ ८९ ॥

उस (कोसा) से, कहा गया, वह, सनिर्वेद, मत, दुखी हो, कुछ, तू, झट, जा, नेपालमंडल, वहां, देवे, श्रावक, नृपति, लाख (के) मोल का, साधु को, कंबल, वह, वहाँ, प्राप्त हुआ, देखा, नृप, दीने, कंबल, उसने, उसे, गुप्त करके, दंड के, तले में, वह, लौटा, वेग से। वुत्त-सं० उक्त, वच्च—सं० व्रज, वाहुडिउ-सं० व्याघुटित (पत्रिका भाग २, पृ० २७)। मार्ग में चोर मिले जिन्हें लाख दीनारों के मिलने के शकुन हुए थे। श्रमण जान उन्होंने छोड़ दिया, किंतु फिर सगुन हुए तो अभय देकर पूछा कि कहीं तैंने लाख दीनार छिपा रक्खे हैं ? श्रमण ने कंबल दिखाया जो संभवतः पोली लकड़ी में समेटकर छिपाया था। दुशाले की इतनी बारीकी से ही लाख का मोल होगा।

(५०)

तो मुक्कउ गउ दिन्नु तिण कंवलु कोसहि हत्थ।
सो पेच्छंतह तीइ तसु खित्तु खालि अपसत्थि ॥ ९१ ॥

तब, मुक्त किया (चोरों ने), (वह) गया; दिया, उसने, कंबल, कोसा के, हाथ; वह, देखते, हुए, उसने, उसके, फेंका, खाला में, अप्रशस्त में। तिण-पंजाबी तिनी, पेच्छंत-सं० प्रेक्षत्, हिं० पेखन्त, खाला = खेली, गंदे पानी, की मोरी ॥

(५१)

समणु दुम्मणु भणइ तो एउ
बहुमुल्लु कंबलरयणु
कीस कोसि पइं क्खालि खित्तउ
देसंतरि परिभमिवि
मइं महंत दुक्खेण पत्तउं
कोस भणइ महापुरिस तुहुं कंबलु सोएसि ।
जं दुल्लहु संजम-रयणु हारिस तं न मुणेसि ॥ ६२ ॥

श्रमण, दुर्मना (होकर), कहता है, तब, "यह, बहुमूल्य, कंबल रत्न, कैसे, कोसा !, तैंने, खाली में, फेंका, देशांतर में, परिभ्रमण कर, मैं (ने) बहुत दुःख से, प्राप्त किया" कोसा, कहती है, "महापुरुष ! तू, कंबल को, सोचता है, जो, दुर्लभ, संयम (का) रत्न, हारा (खोया) है, उसे नहीं जानता" ॥ खित्तउ, पत्तउ = खित्तो, पत्तो ; क्षिप्त, प्राप्त । मुण = जानना, देखो (३५) ।

(७) पृष्ठ ४७१-७२, आठ छप्पय, मागधों के गाए, जिन्हें सुनकर प्रातःकाल कुमारपाल जागता था । इनमें से एक नमूने की तरह यहाँ देकर उसका वर्त्तमान हिंदी के अनुसार अक्षरांतर कर दिया जाता है । यह पहले कहा जा चुका है कि पुरानी कविता से सोमप्रभ की अपनी कविता क्लिष्ट है तथा नमूनों से पाठकों ने भी यह जान लिया होगा । यह कविता डिंगल कविता के ढंग की है और पृथ्वीराज रायसे के कल्पित समय से कुछ वर्ष पहले की है । इसका वर्तमान हिंदी में परिवर्तन चाहे कुछ कठिन दीखे पर खड़ी बोली के प्रसिद्ध वर्तमान कवियों की रचना से, जिसमें कभी कभी 'था' 'है' के सिवाय कोई पद हिंदी का नहीं मिलता, सभी संस्कृत के तत्सम होते हैं, अधिक कठिन नहीं है—

(५२)

गयणमग्गसंलग्गलोलकल्लोलपरंपरु
निक्कलणुक्कडनक्कचक्कचंकमणदुहंकरु

उच्छलंतगुरुपुच्छमच्छरिंछोलिनिरंतरु
विलसमाणजालाजडालवडवानलदुत्तरु ॥
आवत्तसयायलु जलहि लहु गोपउ जिम्ब ते नित्थरहिं।
नीसेसवसनगणनिट्ठवणु पासनाहु जे संभरहिं ॥

गगन-मार्ग-संलग्न-लोल-कल्लोल-परंपर।
निठकठोत्कट-नक्र-चक्र-चंक्रमण-दुर्ध (!) कर ॥
उच्छलत गुरु-पुच्छ-मत्स्य-रिंछोलि-निरंतर।
विलसमान-ज्वाला-जटाल-वडवानल-दुस्तर ॥
आवर्त-शताकुल जलधि लघु गोपद जिमि ते निस्तरैं।
निःशेष-व्यसन-गण-निःस्थापन पार्श्वनाथ जो संभरैं ॥

रिंछोलि = पंक्ति(देशी)। **निट्ठवन**-मिटानेवाला, समाप्त करनेवाला, नीठ जाना = बीतना(मारवाड़ी)। **संभरहिं**—संभरना, सांभरना, संभारना संभालना (मराठी), सुम्भालणा (पंजाबी) = याद करना, संस्मरण करना।

८—नंदिवर्द्धन।

[लेखक—बाबू जगन्मोहन वर्मा, काशी]

गिरिव्रज मगध के राजाओं की राजधानी थी। शैशुनागवंशी राजा बिंबिसार को सिंहासन से उतार कर उसका पुत्र अजात-शत्रु गिरिव्रज का राजा बन बैठा। उसके इस अशिष्ट व्यवहार से उसके पड़ोसी वैशाली के लिच्छिवी लोग, जो बिंबिसार के समय में गिरिव्रज के राज्य को बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे, उसके राज्य पर गंगा पारकर अनेक उत्पात मचाने लगे। कभी किसी सामंत को अजातशत्रु के विरुद्ध उभाड़ते, कभी स्वयं अधिकार जमा बैठते थे। लिच्छिवियों में प्राचीन आर्यों की गण-राज्य की प्रथा प्रचलित थी, अतः उनमें भेद कराना सहज काम न था। अजातशत्रु इतना लोलुप और उद्दंड प्रकृति का था कि वह किसीकी अच्छी सम्मति को भी नहीं मानता था; कहां तक कहा जाय, लोगों के बार बार समझाने पर भी अपने पिता को उसने कारागार से मुक्त नहीं किया। उसने लिच्छिवियों से वैर ठान लिया और उनके दमन करने के लिये पाटलिग्राम में, जो गंगा और सोन के संगम पर था, अपनी सेना रक्खी। पहले तो उसने यह सोचा था कि थोड़े दिनों में लिच्छिवी लोगों का दमन हो जायगा और सेना राजधानी में लौट आवेगी, पर यह काम सहज न था। उसे वहाँ कई वर्ष सेना रखने पर भी लिच्छिवियों का उपद्रव दबता नहीं देख पड़ा। निदान उसको वहां स्थायी रूप से अपनी सेना की छावनी बनवानी पड़ी। इसी बीच में उसका पिता बिंबिसार बंदीघर ही में परलोक को सिधारा। यह समाचार पा श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित (पसेनदी) ने उसपर चढ़ाई की और वह घोर संग्राम कर अजातशत्रु को बंदी कर श्रावस्ती ले आया। श्रावस्ती में दोनों में संधि हो गई, अजातशत्रु ने अपने किए पर

पश्चात्ताप किया और प्रसेनजित ने अपनी राजकुमारी को उसके साथ ब्याह दिया।

श्रावस्ती से तो संधि हो गई पर लिच्छिवी लोग न माने। वे बराबर अजातशत्रु के विरुद्ध लोगों को उसकाते रहे। जान पड़ता है कि लिच्छिवियों को उभाड़नेवाला उसका भाई जीवक था जो *अंबपाली वेश्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।* वह बिंबिसार के बंदी-गृह में पड़ने पर अपने प्राण लेकर अपनी माता के पास वैशाली भाग आया था और चिकित्सा करके अपनी जीविका निर्वाह करता था। निदान लिच्छिवी लोगों से तंग आकर अजातशत्रु ने पाटलिग्राम के शिविर में दुर्ग बनवाना आरंभ किया। गोतम बुद्ध अंत समय में पाटलिग्राम होकर गए थे और वहीं वर्षकार नामक अजातशत्रु के सेनापति से लिच्छिवी लोगों के संबंध में बात चीत हुई थी। फिर वे राजगृह भी गए थे और वहां अजातशत्रु ने अपने पिता के साथ दुर्व्यवहार करने पर बड़ा पश्चाताप किया था और भगवान बुद्धदेव ने उसे शांति दी थी।

पाटलिग्राम में दुर्ग बन गया और वहाँ की सेना के बल से अजातशत्रु ने लिच्छिवियों का ध्वंस कर हिमालय तक विजय का डंका बजाया। धीरे धीरे वैशाली राज्य अजातशत्रु के अधीन हो जाने के कारण पाटलिग्राम का दुर्गप्रधान स्थान हो गया। अजातशत्रु का पुत्र दर्शक ग्रीष्म ऋतु में आकर पाटलिग्राम के दुर्ग में रहा करता था। जान पड़ता है कि पुत्रवत् प्रिय होने के कारण ही पाटलिग्राम का नाम पाटलिपुत्र पड़ा। दर्शक के अनंतर उसका पुत्र उदायी मगध का राजा हुआ। उसे पाटलिपुत्र इतना भाया कि उसने वहां नगर बसाया और अपने राजसिंहासनारूढ़ होने के चौथे वर्ष वह अपनी राजधानी राजगृह को छोड़कर पाटलिपुत्र चला आया। उदायी के अनंतर नंदिवर्द्धन मगध का राजा हुआ। पर पुराणों के देखने और उनकी वर्णनशैली पर विचार करने से जान पड़ता है कि यह नंदिवर्द्धन, जैसा कि और इतिहासवित् लोग समझते

हैं, उदायी का पुत्र न था। पुराणकारों की शैली है कि यदि कोई राजा अपने पूर्ववर्ती का पुत्र होता है तो वे प्रायः उसके लिये 'तत्सुतः' 'भविता तस्मात्' इत्यादि शब्द लिखा करते हैं[1]। इसमें संदेह नहीं कि नंदिवर्द्धन था शिशुनाग वंशी ही। अब यह विचारणीय है कि यह नंदिवर्द्धन कौन था? इसके पिता का नाम क्या था? और वह पाटलिपुत्र का राजा कैसे बन गया?

वायु आदि पुराणों में शिशुनाग वंश का वर्णन इस प्रकार है कि "उन (बार्हद्रथों) के यश को नाशकर शिशुनाग राजा होगा। वह अपने पुत्र को काशी में राजसिंहासन पर बैठाकर आप गिरिव्रज (राजगृह) चला आवेगा। शिशुनाग वहाँ चालीस वर्ष राज करेगा। उसका पुत्र काकवर्ण छत्तीस वर्ष पृथ्वी का राज्य भोगेगा। उसके अनंतर क्षेमधर्म्मा बीस वर्ष राजा होगा। दर्शक भी पैंतीस वर्ष राज करेगा। उदायी तेंतीस वर्ष राज भोगेगा। उसके अनंतर क्षत्रौजा चालीस वर्ष राज करेगा। बिंबिसार अट्ठतीस वर्ष राजा होगा। अजातशत्रु पैंतीस वर्ष राजा होगा। वह संसार में कुसुमपुर नामक नगर गंगा के दाहिने किनारे अपने शासन काल के चौथे वर्ष में बसाएगा। नंदिवर्द्धन चालीस वर्ष राजा होगा। महानंदी तेंतालीस साल राज करेगा। ये दस शिशुनागवंशी राजा होंगे। क्षत्रिय नामधारी शिशुनागवंशी राजा तीन सौ साठ वर्ष राज्य करेंगे।"[2]

---

(१) यह कोई व्यापक नियम नहीं कि तत्सुतः, ततः, तस्मात् आदि जिस राजा के नाम के साथ न हो वह पूर्ववर्ती का पुत्र न माना जाय। इन पदों का रहना न रहना छंद के सुभीते पर निर्भर है। यदि यह नियम नित्य हो तो टिप्पण (२) के अवतरण में बिंबिसार, अजातशत्रु और दर्शक भी अपने अपने पूर्ववर्ती के पुत्र न हो सकेंगे। [सं०]

(२) हत्वा तेषां (बार्हद्रथानां) यशः कृत्स्नं शिशुनागो भविष्यति।
वाराणस्यां सुतं स्थाप्य स यास्यति गिरिव्रजम्॥
शिशुनागश्च वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति।
काकवर्णः सुतस्तस्य षट्त्रिंशत् प्राप्स्यते महीम्॥

नंदिवर्द्धन का वास्तविक नाम वर्तिनंदी होगा। जैसा कि आगे उल्लेख किया जायगा, उसकी मूर्ति पर 'वटनंदि' या 'वेटनंदि' लेख है जो 'वर्तिनंदि' का प्राकृत रूप है। पुराणवालों ने उसके नाम के दो खंड कर एक एक के साथ वर्द्धन शब्द जोड़कर नंदिवर्द्धन और वर्तिवर्द्धन दो तरह के नाम बनाए हैं। अधिक संभव है कि उन लोगों ने ऐसा केवल छंद के लिये किया हो[३]।

अब विचारना यह है कि क्या यह नंदिवर्द्धन उदायी का पुत्र था? पत्रिका, भाग १, अंक १, पृ० ४०-८२ में पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी का एक लेख शैशुनाक मूर्तियों के विषय में निकला है। उसमें दो ऐसी मूर्तियों की बात है जो पाटलिपुत्र के देवकुल की अनुमान की जाती हैं। उनमें एक का सिर टूटा है और दूसरी का सिर

ततस्तु विंशतिं राजा क्षेमधर्म्मा भविष्यति।
चत्वारिंशत्समा राज्यं क्षत्रौजाः प्राप्स्यते ततः॥
अष्टत्रिंशतिवर्षाणि बिंबिसारो भविष्यति।
अजातशत्रुर्भविता पंचत्रिंशत्समा नृपः॥
पंचत्रिंशत्समा राजा दर्शकस्तु भविष्यति।
उदायी भविता तस्मात्त्रयस्त्रिंशत्समा नृपः॥
स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयम्।
गंगाया दक्षिणे कूले चतुर्थेऽब्दे करिष्यति॥
चत्वारिंशत्समा भाव्यो राजा वै नन्दिवर्द्धनः।
चत्वारिंशत्त्रयश्चैव महानन्दी भविष्यति॥
इत्येते भवितारो वै शैशुनागा नृपा दश।
शतानि त्रीणि वर्षाणि षष्टिवर्षशतानि तु॥
शिशुनागा भविष्यंति राजानः क्षत्रबन्धवः॥
मत्स्य, अ० २७२ श्लो० ६-१३। वायु, अ० ९९ श्लो० ३१५-३२२

(३) एकत्रिंशत्समा राज्यमजकस्य भविष्यति।
भविष्यति समा विंशत्तत्सुतो वर्तिवर्द्धनः॥
वायुपुराण अ० ९९ श्लो० ३१३।

पुनः—चत्वारिंशत्समा भाव्यो राजा वै नंदिवर्द्धनः।
तथा—एकविंशत्समा राज्यमजकस्य भविष्यति॥
भविष्यति समा विंशत्तत्सुतो नंदिवर्द्धनः॥ (मत्स्य)

बचा है । दोनों मूर्तियों पर अभिलेख हैं । दोनों के अभिलेखों को हमारे मित्र बाबू काशीप्रसाद जायसवाल ने नई तरह पढ़ा है और यह निश्चय किया है कि ये दोनों मूर्तियां शिशुनाग वंश के दो महाराजाओं की हैं। जिसमें सिर है उसपर उन्होंने पढ़ा है **'भगे अचो छोनीधीशे'** और दूसरी पर **'सपखते वटनंदि'** या **'सप खेते वेटनंदि'** । उन्होंने भागवत के आधार पर उदायी का नाम अज मान कर पहली को उदायी की मूर्ति और दूसरी को नंदिवर्द्धन की माना है और लिखा है कि—

"जैन लेखों में अवंती के इतिहास के वर्णन करते समय पालक वंश के पीछे उदयिन् का राज्य करना लिखा है। पुराणों के अनुसार नंदि अवंती का विजेता मान लिया गया था, इसलिये पौराणिक और जैन लेखों में विसंवाद प्रतीत होता था, अब अज और उदयिन् की एकता स्थापित हो जाने से और पुराणों में शैशुनाक अज का अवंती की वंशावली के अंत में नाम होने से यह भेद मिट गया। उदयिन् (अज) ने ही अवंती को जीत कर मगध का राज्य बंगाल की खाड़ी से अरब सागर तक फैलाया और अवंती का जो आतंक शताब्दी भर से मगध के सिर पर था उसे दूर किया।

"प्रद्योत वंश का अंत विशाखयूप नामक राजा से हुआ। विशाखयूप को ही आर्यक गोपालक मानना चाहिए। भास तथा कथा-सरित्सागर (अर्थात् बृहत्कथा) के अनुसार वह प्रद्योत का पुत्र था और मृच्छकटिक के अनुसार वह पालक के प्रजा-पीड़न से विप्लव होने पर राजा हुआ।

"पुराणों में अवंती में अज का राज्यकाल २१ वर्ष और मगध में उदयिन् का राज्य ३३ वर्ष लिखा है। उदयिन् के राज्यकाल के बारहवें वर्ष (ई० पू० ४७१ के लगभग) अवंती के राज-वंश का अंत हुआ होगा। जैन वंशावलियों के अनुसार अजातशत्रु के राज्य के छठे वर्ष में पालक (अवंती की) गद्दी पर बैठा। अजातशत्रु के छठे वर्ष तथा उदयिन् के बारहवें वर्ष का अंतर ७४ वर्ष होता है। अर्थात् पालक और विशाखयूप ने ७४ वर्ष राज्य किया। पुराणों में इन दोनों का राज्यकाल भी २४ और ५० अर्थात् ठीक ७४ वर्ष ही दिया है। किंतु जैन वंशावलियों में इन दोनों के ६० या ६४ ही वर्ष दिए हैं जिसका समाधान यह हो सकता है कि मृत्यु के पहले दस वर्ष तक विशाखयूप मगध के उदयिन् राजा के अधीन रहा हो, अर्थात् उसका अस्तित्व पराधीन होकर भी बना रहा हो। या उदयिन् के अवंती में राजा होने के समय से उसका राजकाल न गिनकर मगध में गद्दी पर बैठने के समय

से गिन लिया गया हो और पालक के पीछे उसीका समय गिनने से प्रद्योत वंश के वर्ष कम रह गए हों ।' इत्यादि । (पृष्ठ ५५, ५६)

अब हम यहाँ पुराणों से प्रद्योत वंश के राजाओं की नामावली देकर यह बतलाने की चेष्टा करेंगे कि अज और उदयिन् दोनों एक नहीं थे । लिखा है कि "जब बृहद्रथ के वंशवाले न रह जायँगे तब वीतहोत्र (अग्नि ?) वंशी राजाओं की राजधानी अवंती में पुलिक अपने स्वामी को मार कर अपने पुत्र प्रद्योत को सिंहासन पर बैठालेगा । वह (प्रद्योत) बड़ा अन्यायी और कामासक्त होकर तेईस वर्ष राज्य करेगा । फिर पालक चौबीस वर्ष राजा होगा । विशाखयूप पचास वर्ष राज्य करेगा । अजक इक्कीस वर्ष राज्य करेगा, फिर उसका पुत्र नंदिवर्द्धन बीस वर्ष राज्य करेगा । यह पांच प्रद्योत-वंशी राजा अवंती में एक सौ छत्तीस वर्ष राज्य करेंगे ।"[४] यह बात विशेष स्मरण रखने योग्य है कि अंतिम श्लोक में "तत्सुतो नंदिवर्द्धनः" शब्द हैं जिनसे स्पष्ट है कि नंदिवर्द्धन 'अजक' का पुत्र था ।

अब यह विचारना है कि यहाँ नंदिवर्द्धन को प्रद्योत-वंशी क्यों कहा और वहाँ शिशुनागवंश में उसे क्यों गिनाया ? यहाँ उसका शासनकाल २० वर्ष क्यों लिखा और शिशुनाग वंश के संबंध में उसका शासनकाल ४० वर्ष क्यों लिखा ?

---

(४) बृहद्रथेष्वतीतेषु वीतिहोत्रेष्ववंतिषु ।
पुलिकः स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रमभिषेक्ष्यति ॥
मिषतां क्षत्रियाणां च प्रद्योतं पुलको बलात् ।
स वै प्रणतसामन्तो भविष्यो नयवर्जितः ॥
त्रयोविंशत्समा राजा भविता मन्मथातुरः ।
चतुर्विंशत्समा राजा पालको भविता ततः ॥
विशाखयूपो भविता नृपः पंचाशतं समाः ।
एकविंशत्समा राज्यमजकस्य भविष्यति ॥
भविष्यति समा विंशत्तत्सुतो नंदिवर्द्धनः ।
अष्टत्रिंशच्छतं भाव्या प्रद्योताः पंच ते नृपाः ॥
मत्स्य०, अ० २७२, श्लो० १—५। वायु०, अ० ६६, श्लो० ३०६—१४ ।

इसका समाधान यही है कि यह अधिक संभव जान पड़ता है कि **प्रद्योत-वंश शिशुनाग वंश की एक शाखा रहा होगा।** इसी लिये तो पुराणकार ने जब नंदिवर्द्धन अवंती से जाकर उदयिन् के मरने पर मगध का राजा हुआ तब उसे शिशुनाग वंश के राजाओं में गिना और उसीसे प्रद्योत वंश का अंत लिख दिया। यह हो सकता है कि नंदिवर्द्धन को जब उदयिन् के अनंतर मगध का राज्य मिला तब उसने दोनों राज्यों को मिलाकर एक कर दिया और वह स्वयं पाटलिपुत्र आकर रहने लगा। अवंती मौर्य्य काल तक मगध के राज्य में संमिलित थी। एक राजकुमार अवंती में रहा करता था। वहां नंदिवर्द्धन ने देवकुल स्थापन किया और अपने पिता अजक वा अज की मूर्ति उसमें प्रतिष्ठित की, जिसे पत्रिका के लेख में अज उदयिन् की एकता मानकर उदायी की मूर्ति माना है। दूसरी मूर्ति स्वयं नंदिवर्द्धन की है जिसे उसके पुत्र महानंदी ने देवकुल में रखा होगा। अधिक संभव है कि प्रद्योत का पिता पुलिक जिसको शुनिक भी कहते थे शिशुनाग के उस पुत्र के वंश में रहा हो जिसे वह राजगृह आते समय काशी में छोड़ आया हो।

बौद्ध ग्रंथों में चार राजाओं को महात्मा गौतम बुद्ध का समकालीन लिखा गया है। श्रावस्ती के महाराज प्रसेनजित्, राजगृह के महाराज बिंबिसार, कोशांबी के महाराज उदयन और अवंती के प्रद्योतकुमार। इसी प्रद्योतकुमार को पुराणों में प्रद्योत लिखा है और उसके वंशवालों को प्रद्योतवंशी कहा है। समानकालिक बिंबिसार और प्रद्योत से लगाकर शिशुनाग और प्रद्योत वंश के राजाओं का राज्यकाल पुराणों के अनुसार यह है—

शिशुनागवंश		प्रद्योतवंश	
१ बिंबिसार	३८ वर्ष	१ प्रद्योत	२३ वर्ष
२ अजातशत्रु	३५ ,,	२ पालक	२४ ,,
३ दर्शक	३५ ,,	३ विशाखयूप	५० ,,

शिशुनागवंश		प्रद्योतवंश	
		४ अजक	२१ वर्ष
४ उदायी	३३ वर्ष	५ नंदिवर्द्धन	२० ,,
	१४१ वर्ष		१३८ वर्ष

इसे देखने से स्पष्ट है कि जब प्रद्योत अवंती के राजसिंहासन पर बैठा था तब बिंबिसार को राजगृह में राज करते ३ वर्ष बीत चुके थे *अतः जब उदायी पाटलिपुत्र में राज करता था तब अवंती में* नंदिवर्द्धन राजा था और विशाखयूप उदायी के सिंहासनारूढ़ होने से ८ वर्ष पहले परलोक सिधार गया था। फिर उसके उदायी के अधीन होकर रहने की तो कथा ही क्या, वह कुछ समय अजातशत्रु का समकालीन भले ही रहा हो। नंदिवर्द्धन के पिता अजक का देहांत उदायी के काल ही में हो चुका था, अजक और उदयिन् को एक मानना तो दूर की बात रही।

इसकी सत्यता की परीक्षा की एक और रीति है जिससे एक निगूढ़ ऐतिहासिक रहस्य का उद्घाटन होता है। वह यह है कि प्रियदर्शी महाराज अशोक के रूपनाथ और ब्रह्मगिरि के अभिलेखों में निर्वाण संवत् २५६ दिया हुआ है[५]।

---

(५) ब्रह्मगिरि प्रज्ञापन में, पंक्ति ८,—

इयं च सावणे सावपते व्युथेन २५६

जातिंग रामेश्वर के पाठ में, पंक्ति ११—

ठेन २५६

सहसराम के पाठ में—

(पंक्ति ६) इयं च सावने विवुठेन दुवे सपंनालाति (पंक्ति ७) सता विवुथा ति २५६

रूपनाथ के पाठ में—

(पंक्ति ५) व्युठेन सावने कटे २५६ स (पंक्ति ६) त विवासात

बैराठ और सिद्धापुर के पाठों में ये पद नहीं हैं। मास्की के नए मिले हुए खंड में भी नहीं दीख पड़ता। यहां पर इयं च सावणे सावपते = यह श्रावण श्रावित किया गया (सुनाया गया), सावने कटे = श्रावण (सुनाना)

अब उससे ही इसकी सत्यता की परीक्षा कीजिए—

बिंबिसार से उदायी तक	१४१	वर्ष
नंदिवर्द्धन	४०	,,
महानंदिन्	४३	,,
महापद्म	२८	,,
महापद्म के ८ पुत्र	१२	,,
चंद्रगुप्त	२४	,,
बिंदुसार	२५	,,
	३१३	वर्ष

कृत (हुआ, किया गया) इसमें कोई संदेह नहीं। सहसराम और रूपनाथ के अंकों को कोई कोई सु, छ, फु अक्षर पढ़ते हैं। ये अक्षर नहीं हैं, ये अंकों के चिह्न हैं। वे कहते हैं कि जैमिनि आदि ज्योतिष शास्त्रकारों ने क ट प य आदि गिनती का क्रम माना है स (य से छठा) = ६, छ (क से पांचवां) = ५, फ (प से दूसरा) = २, अंकानां वामतो गतिः, स्वरों का अर्थ नहीं होता = २५६। किंतु यह क्रम इतना पुराना है इसमें कोई प्रमाण नहीं है। ब्रह्मगिरि और जतिंग रामेश्वर के पाठों में अंक ही है, इसलिये 'सु छ फु' कुछ और हो नहीं सकता। सहसराम के पाठ में दुवे ।(लुवे नहीं) सपंना सा (ला नहीं) ति सता = द्वे सपंचाशत् षट् शते = दो सौ छप्पन, शब्दों में, भी है। बूलर ने व्युथेन, ठेन, विवुठेन, विवुथा का अर्थ व्युष्ट, व्युषित या व्यूढ अर्थात् पधारे हुए, उठ गए हुए, निर्वाण अर्थात् मृत (भगवान् बुद्ध) करके इस संख्या को उस समय का बुद्ध निर्वाणसंवत् माना है। कई व्युथेन का अर्थ ही बुद्धेन करते हैं। विवासात (रूपनाथ) का अर्थ 'छोड़ने से' करके यह भी कहा जा सकता है कि यह गणना बुद्ध के निर्वाण से नहीं, गृहत्याग से है। इससे सहसराम का विवुथाति = विवुथात् = बुद्धात् भी मिल गया। ये दोनों पंचमी के प्रयोग हुए, व्युथेन में तृतीया पंचमी के व्यत्यय से हैं या अपवर्गे तृतीया (पाणिनि २।३।६) है। सहसराम में तृतीया और पंचमी दोनों हैं। इसपर बहुत वादविवाद है। व्युथ का अर्थ धर्मप्रचार के लिये 'प्रेरितों' का समूह मानकर 'व्युथ' ने श्रावण किया', 'व्युथ ने सुनाया', '२५६ विवुथ थे,' '२५६ सत(सत्व = मनुष्य) विवास (प्रेषित) थे' यही अर्थ सेनार्ट आदि कई विद्वान् मानते हैं। अधिक लोग २५६ को संवत् नहीं मानते, प्रचारकों की संख्या ही कहते हैं। [सं०]

अब अशोक के काल को लीजिए। विंसेंट स्मिथ अपने भारत के प्राचीन इतिहास के परिशिष्ट (Appendix C) में लिखते हैं कि खुतन में यह परंपरा से इतिवृत्ति चली आती है कि धर्माशोक निर्वाण संवत् २५० में राजसिंहासनासीन हुआ। उसे चीन के सम्राट् शेह्वांगती का समकालीन मानते हैं जो सन् २४६ ईसा के पूर्व राजसिंहासन पर बैठा था और सन् २२१ ई० पू० में चीन भर का सम्राट् हो गया था। उसने चीन की प्रसिद्ध दीवार बनवाई थी और वह सन् २१० ई० पू० तक शासन करता रहा था।[६]

३१३ में से २५० निकाल दीजिए तो (३१३–२५०=) ६३ रह जाता है, अब इसमें से विंबिसार का शासन काल ३८ निकालिए तो (६३–३८=) २५ रहा। इससे अजातशत्रु के शासन काल के २५वें वर्ष भगवान् बुद्धदेव का निर्वाण हुआ जो सर्वथा युक्तिसंगत है। अतः यह भी जाना गया कि अशोक ने उन शिलालेखों को अपने शासनकाल के छठे वा सातवें वर्ष में खुदवाया हो।[७]

इस प्रकार जांच करने का फल यह है कि इस कथन का खंडन किसी प्रकार हो नहीं सकता कि **नंदिवर्द्धन अवश्य २० वर्ष अवंती में राज करने पर पाटलिपुत्र आया और वहाँ ४० वर्ष तक शासन करता रहा**। अतः यदि कोई यह माने कि उसके पाटलिपुत्र के शासन काल में अवंती के २० वर्ष का शासन काल भी *संमिलित है तो यह कभी मान्य नहीं हो सकता।*

हमने इसमें महापद्म का शासन काल २८ और उसके आठ पुत्रों का काल १२ लिया है जो **सर्वथा ठीक है**। हम इसपर पृथक् विचार 'पौराणिक राजवंशों' पर लिखते हुए करेंगे। उस समय यह दिखलाया जायगा कि राजाओं के शासन-काल में कितने शोधन की आवश्यकता और कौन सा पाठ युक्तिसंगत है।

---

(६) शरचंद्र दास, ज. ए. सो. बंगा. भाग 1, १८८६, पृष्ठ १९३–२०३

(७) यह बहुत चिन्त्य है। [सं०]

अतः अज और उदयिन् एक नहीं सिद्ध होते और नंदिवर्द्धन उदयिन् का नहीं अपितु अज का पुत्र था और अवंती से आकर उदयिन् के पश्चात् पाटलिपुत्र का राजा हुआ । उदयिन् ने कभी अवंती को विजय करके मगध के राज्य में नहीं मिलाया अपितु नंदिवर्द्धन के मगध के राजा होने पर दोनों एक में मिल गए ।

६—प्राचीन जैन हिंदी साहित्य ।

[लेखक—बाबू पूर्णचंद्र नाहर, एम. ए., बी.-एल., कलकत्ता]

जैनियों के साहित्य का भंडार पूर्ण है । मैं केवल प्राचीन शिलालेख आदि की खोज में ही लगा रहता हूँ । साहित्य के विषय में एक प्रकार से अज्ञ हूँ, इस विषय पर लिखने के लिये जैन साहित्य का ज्ञान पूरा पूरा चाहिए । अतएव प्राचीन साहित्य के ज्ञान की अपूर्णता और तत्सामयिक इतिहास के ज्ञान की संकीर्णता के कारण मेरे विचारों में भ्रम होना संभव है । मैं हिंदी को और जैन साहित्य को पृथक् पृथक् नहीं समझता हूँ । हिंदी साहित्य में जैन साहित्य का स्थान उच्च है । सबको विदित है कि प्राकृत में ही जैनियों के मूल सूत्र सिद्धांत रचे हुए हैं । प्राकृत और हिंदी के संबंध में इतना ही कहना यथेष्ट है कि प्राकृत का रूपांतर ही हिंदी है अर्थात् हिंदी की प्राकृत ही जन्मदाता है । सब विद्वानों को ज्ञात है कि भारत में विदेशी राजाओं के आने से देश की भाषा पर भी पूरा असर पहुँचा । फ़ारसी अरबी का प्रभाव बढ़कर उस समय की प्राकृत और अपभ्रंश भाषाएँ ही हिंदी बन गईं । क्रमशः प्राकृत शब्दों का व्यवहार घटते घटते प्राकृत का अस्तित्व लोप होने लगा। पुनः उर्दू के आविर्भाव के साथ हिंदी की दशा और भी बिगड़ने लगी । उस समय हिंदी प्रेमी सुधार की चेष्टा करने लगे और लुप्तप्राय प्राकृत के स्थान में संस्कृत शब्दों के तत्सम रूपों का यथायथ हिंदी में अधिक होना आरंभ हुआ। प्राचीन जैन साहित्य से हिंदी का क्रमवार अत्युत्तम इतिहास बन सकता है ।

हिंदी साहित्य संमेलन के सप्तम अधिवेशन पर 'जैन हितैषी' के सुयोग्य संपादक, सुप्रसिद्ध लेखक और ऐतिहासिक विद्वान् पंडित नाथूराम जी प्रेमी ने 'हिंदी जैन साहित्य का इतिहास' नामक एक

गवेषणापूर्ण लेख लिखा है। उस निबंध से मुझे बहुत कुछ सहायता मिली है। उन्होंने जैन भाषा साहित्य का प्राचीन काल से वर्तमान समय तक इतिहास बड़ी योग्यता से लिखा है[1]। मिश्रबंधु महोदयों ने जो हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा है, उसमें हिंदी की उत्पत्ति सं० ७०० से मानी है। वे पुष्य नामक हिंदी के पहले कवि का समय सं० ७०० कहते हैं और लिखते हैं कि इसका न तो कोई ठीक हाल हीं विदित है और न इसकी कविता ही हस्तगत होती है। तदनंतर सं० ८६० के लगभग 'खुमान रासा' के कर्त्ता भाट कवि का होना लिखा है, परंतु यह ग्रंथ भी अलभ्य है। वर्त्तमान खुमानरासा बहुत पीछे का है। सं० १००० में गीता के अनुवादकर्त्ता भुवाल कवि का समय लिखकर उनकी कविता का जो उदाहरण प्रकाशित किया है, उस कविता से कवि के सं० १००० में होने में संदेह होता है। कविता की भाषा ब्रजभाषा है और उसकी परिपाटी गोस्वामी तुलसीदास जी की कविता की सी प्रतीत होती है। अनुमान से इस कविता की रचना वि० सं० १६०० के लगभग की होनी चाहिए। ग्रंथ के अंत में "संवत् कर अब करौं बखाना। सहस्र से संपूरण जाना" है, इससे इतिहासकारों ने सं० १००० निर्णय कर लिया है परंतु इसके दूसरे चरण के छंद में गड़बड़ है। 'सहस्र' की जगह 'सोलह' हो तो छंद और समय दोनों के सामंजस्य का संभव है। और प्रथम चरण में षष्ठी के अर्थ में जो 'कर' शब्द दिया है वह पिछली परिपाटी को द्योतित करता है। मिश्रबंधु सं० ११३७ में नंद कवि का होना लिखते हैं, परंतु उन्होंने उसके किसी ग्रंथ का उल्लेख नहीं किया है। प्रसिद्ध चंदबरदाई से पूर्व

---

(१) प्रेमी जी के 'जैन हितैषी' में कई ऐतिहासिक लेख निरंतर छपते रहते हैं जो जैन आचार्यों, इतिहास और साहित्य पर सच्चा प्रकाश डालते हैं। धार्मिक दुराग्रह के कारण कुछ जैन इन लेखों की कद्र भले ही न करें, किंतु वे सत्य ऐतिहासिक खोज और पक्षपातरहित विवेचन से पूर्ण होते हैं। हिंदी साहित्य के लिये वे गौरव की वस्तु हैं। [सं०]

२-३ मुसलमान कवि और एक चारण कवि का उल्लेख किया है परंतु लिखा है कि उनके ग्रंथ देखने में नहीं आए। कवि चंदबरदाई की कविता का समय सं० १२२५ से १२४९ तक माना जाना चाहिए और हिंदी की उत्पत्ति का समय सं० ७०० से अनुमान किया गया है, तब से चंदवरदाई पर्यंत, साढ़े पांच सौ वर्ष के लगभग, एक बड़ा विस्तृत काल है। न तो इस समय का पूर्ण इतिहास और न कोई विशेष उल्लेख योग्य हिंदी ग्रंथ उपलब्ध है। यदि निष्पक्ष होकर सोचा जाय तो सं० सात सौ आठ सौ में हिंदी के ग्रंथों की रचना होना असंभव ज्ञात होता है, एकाएक किसी भाषा की उन्नति न हुई है और न हो सकती है।

एकादश शताब्दी में जब विदेशी लोगों के आगमन का प्रारंभ हुआ और देश जय के पश्चात् यवन लोगों की यहां स्थिति हुई तब से ही भाषा के बदलने और संस्कृत की चर्चा का ह्रास होने से कवियों को प्राचीन हिंदी में रचना करने के उत्साह का आरंभ हुआ। जहां तक इतिहास और ग्रंथ उपलब्ध होते हैं उनसे द्वादश शताब्दी से ही हिंदी की उत्पत्ति का समय मान लेना अनुचित न होगा। प्राचीन हिंदी साहित्य की वही बाल्यावस्था है। जैसे अपने को उस अवस्था की केवल दो चार बड़ी बड़ी घटनाओं का स्मरण रहता है, उसी प्रकार उस समय में न तो अधिक ग्रंथों की रचना का ही संभव है और न अधिक उपलब्ध हैं; इस कारण उस अवस्था का अर्थात् द्वादश से चतुर्दश शताब्दी तक का इतिहास संक्षेप में सूचित कर प्राचीन जैन साहित्य में हिंदी के स्थान का समय पंद्रहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक मान लेना उचित समझता हूँ। तत्पश्चात् देश की राष्ट्रीय दशा के साथ साथ साहित्य की भी अवनत अवस्था हुई। पुनः उन्नीसवीं शताब्दी के शेष भाग में ब्रिटिश सरकार की कृपा से देश में शांति के साथ अपनी हिंदी भाषा की भी उन्नति होने लगी। परंतु वह पुष्टि नव्य ढंग से हुई और आज हिंदी में उत्तमोत्तम काव्य, इतिहास और उपन्यास आदि

रचे जाकर सब विषयों के ग्रंथों की पूर्ति हो रही है। नवीन जैन साहित्य भी धीरे धीरे समय के साथ अग्रसर है। हिंदी साहित्य के विषय में स्वनामख्यात बाबू श्यामसुंदर दास जी ई० सं० १९०० की खोज की रिपोर्ट में लिखते हैं कि ई० १२ वीं सदी के प्रारंभ से १६ वीं सदी के मध्य तक का समय हिंदी साहित्य की परीक्षा का काल है। उसी समय में राजस्थान के चारणों, भाटों आदि ने बहुत से ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे हैं और उनमें प्राकृत और प्राचीन हिंदी मिली हुई है। तत्पश्चात् हिंदी साहित्य की पूर्णावस्था का आरंभ होता है। और ई० १६-१७ वीं सदी में ही हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि और विद्वान् हुए हैं, इत्यादि। इसका भावार्थ मेरे पूर्वोक्त कथन की पुष्टि करता है। भाषा की दृष्टि से प्राकृत और हिंदी का संबंध अविच्छिन्न है।

हमारे श्वेतांबरी जैनों की अपेक्षा दिगंबरी भाई आज कल हिंदी साहित्य की अधिक सेवा कर रहे हैं। प्राचीन हिंदी जैन साहित्य की पुस्तकें दिगंबर सम्प्रदाय की ही अधिक संख्या में प्रकाशित हुई हैं। और इसी कारण प्रेमी जी ने अपने जैन हिंदी साहित्य के इतिहास में उस संप्रदाय के ही हिंदी ग्रंथों का विवरण बाहुल्य से किया है। उनका यह लिखना यथार्थ है कि "श्वेतांबरों का हिंदी साहित्य अभी तक प्रकाशित ही नहीं हुआ।" और उनको भी पूर्ण विश्वास है कि खोज करने से हिंदी के प्राचीन जैन ग्रंथ बहुत मिलेंगे। अद्यावधि विद्वानों की इस ओर दृष्टि आकर्षित नहीं हुई है और जब तक ऐतिहासिक और भाषा की मुख्य दृष्टि से अच्छी तरह कुछ समय तक प्राचीन भंडारों की तथा आचार्य साधुओं के संग्रहों की खोज नहीं होगी तब तक प्राचीन साहित्य रूपी रत्नों का प्रकट होना संभव नहीं है। भारत के सभी प्रधान स्थानों में जैनियों का किसी न किसी समय, कहीं अल्प और कहीं विस्तृत, प्रभाव था। दक्षिण का प्राचीन साहित्य भी जैन साहित्य से पूर्ण संबंध रखता है, यहां तक कि कनड़ी आदि भाषाओं का सबसे प्राचीन साहित्य जैन साहित्य ही सिद्ध

हुआ है। गुजरात और सौराष्ट्र भी जैनियों का प्रधान स्थान रहा है। गुजराती भाषा साहित्य के प्राचीन ग्रंथ प्राचीन जैन साहित्य ही हैं। वर्त्तमान हिंदी और गुजराती में क्रम क्रम से बहुत सा अंतर पड़ गया है और कुछ समय से गुजराती भाषा स्वतंत्र सी हो गई है, परंतु प्राचीन जैन साहित्य के बहुत से ग्रंथों को गुजराती जैन साहित्य समझकर हिंदी जैन साहित्य से अलग करना मैं अनुचित समझता हूं। **आदि में स्थानीय कारण से सामान्य अंतर के सिवाय भारत की उत्तर प्रांत की भाषाओं में कोई भेद नहीं था।** विशेषतया जैनियों की अधिक संख्या के व्यापार वाणिज्य में फँसे रहने के कारण साहित्य चर्चा का काम आचार्य साधु करते रहे और गृहस्थ लोग अवकाश पर उसीका रसास्वादन करते थे। संस्कृत तथा प्राकृत ग्रंथों के अतिरिक्त प्राचीन जैन भाषा साहित्य में शुद्ध हिंदी वा शुद्ध गुजराती ग्रंथों की संख्या अल्प है। जैन साधु शिष्य-परंपरा से होते थे, उनमें देशविशेष का बंधन न था, कोई मारवाड़ी साधु गुजरात में शिष्य या आचार्य बना, या मालवे का साधु दिल्ली में, तो उन्होंने अपनी रचना में एक साधारण भाषा का आश्रय लिया जिसमें कुछ न कुछ प्रादेशिक छींटों के होने पर भी भाषा पुरानी हिंदी ही थी। जो गुजराती साधु राजपूताने में गए उनकी रचना में कुछ कुछ गुजरात प्रांत के अपभ्रंश शब्दों का संमिश्रण होता रहा और विपरीत में इससे विपरीत भी हुआ। तीसरी गुजराती साहित्य परिषद् की लेखमाला में श्रीयुत मनसुखलाल कीरतचंद मेहता जी जैन साहित्य के निबंध में लिखते हैं कि "सं० १४१३ मां बनेली 'मयण रेहा' रासमां कई कई मरुभूमिनी भाषानी छाया आवै छै, पण सामान्य वलण गुजरातीनुं छै।" ऐसे ग्रंथों को हिंदी में ही स्थान देना उचित होगा। चाहे डिंगल चाहे पिंगल, चाहे गुजराती चाहे ब्रजभाषा, सभी एकही हिंदी की संतति हैं। देशभेद से अल्पविस्तर भाषा और शब्दों का भेद होता गया है। मैं प्राचीन हिंदी जैन साहित्य में प्रांतिक विभाग करना उचित नहीं समझता।

वर्त्तमान में जो प्राचीन हिंदी जैन साहित्य उपलब्ध हैं उसमें गद्य साहित्य की अपेक्षा पद्य साहित्य की संख्या बहुत अधिक है। जो कुछ हिंदी में रचना होती थी सभी पद्यमय थी। मूल सूत्रों की व्याख्या, तथा टिप्पणी (जिसको 'टब्बा' भी कहते हैं) और संस्कृत प्राकृत धर्मशास्त्र के ग्रंथों की भाषा, वृत्ति, वचनिका और क्लिष्ट दार्शनिक विषयों पर छोटे छोटे लेखों के सिवा कोई साहित्य के गद्य ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आए हैं; परंतु पद्य साहित्य की भरमार श्वेतांबरी दिगंबरी दोनों सम्प्रदायों में पाई जाती है। पद्य साहित्य में चरित्र, रास, चतुष्पदी (चौपाई) प्रधान हैं। इनके सिवा चौढालिया, ढाल, सिज्झाय, वार्त्ता, विनती, वंदना, लावनी आदि भी हैं, स्तवनों की भी संख्या बाहुल्य से मिलती है; उनमें बड़े छोटे कवित्त, छंद, दोहा, आदि दोनों संप्रदायों के उच्च कोटि के कवियों के रचे हुए सैंकड़ों हैं। मूर्तिपूजन से भी भाषा साहित्य में बहुत कुछ सहारा लगा है। खास करके सत्रहवीं शताब्दी से इस विषय पर नाना प्रकार की पूजाओं की रचना दोनों संप्रदायों में मिलती है और साहित्य की दृष्टि से इसका भी स्थान उच्च है।[२]

(२) जैन विद्वानों को सदा से इतिहास से अधिक प्रीति रही और गुरुभक्ति की मात्रा श्वेतांबर जैनों में अधिक थी, इसलिये गुरुओं की 'प्रभावना' के वर्णन के चरित्र, ऐतिहासिक घटनाओं से पूर्ण, उनके यहां अधिक मिलते हैं। अब गुजरात के श्वेतांबर जैनों में ऐतिहासिक प्राचीन साहित्य की खोज और प्रकाशन की रुचि बढ़ी है, जिसका श्रेय मुख्यतः श्री विजयधर्म सूरि जी और उनके योग्य शिष्य श्री इंद्रविजय जी आदि को है। आचार्य्य जी ने ऐतिहासिक रासमाला, ऐतिहासिक सिज्झायमाला आदि का विवेचनपूर्ण प्रकाशन आरंभ किया है। जैनों के यहां यह आग्रह नहीं रहा कि स्तुति, पूजन आदि प्राचीन भाषा में ही हों। मंत्र तथा धर्मग्रंथ प्राकृत में रहते आए, किंतु स्तुति, गीत तथा प्रवचन देश भाषा में होता रहा। ब्रज की नई कृष्णपूजा में यदि ब्रजभाषा के गीत संस्कृत मंत्रों की तरह न चल जाते तो अष्टछाप के कवियों की मधुर कविता-वली का विकास या प्रचार न होता। जैन स्तवनों तथा गीतों के पुराने संग्रहों में यह भी लिखा रहता है कि अमुक गीत किस प्रचलित गीत की ढाल या लय पर गाया जाय, इससे बस उस समय के "अधार्मिक" अर्थात् लौकिक

बौद्धों की तरह जैन लोग क्रम क्रम से वैदिक धर्मवालों से द्वेष न बढ़ाते हुए परस्पर का संबंध दूर नहीं करते रहे, बल्कि बहुत से श्रावक नाममात्र जैनी कहलाने के सिवा सांसारिक आचार व्यवहार आदि वैदिक हिंदुओं की तरह करते और अद्यावधि करते चले आते हैं। बौद्ध विद्वानों ने वैदिक विद्वानों के ग्रंथों की मर्यादा नहीं रक्खी। परंतु प्राचीन जैन विद्वान जैनेतर कवियों के साहित्य का बहुत कुछ आदर करते रहे। प्रायः हिंदुओं के प्रसिद्ध प्रसिद्ध साहित्य ग्रंथों की अच्छी अच्छी टीकाएँ जैन विद्वान् लोग बड़े प्रेम और पांडित्य से लिख गए हैं, इसका यही कारण है कि साहित्य की दृष्टि से जैनेतर विद्वानों के रचे हुए ग्रंथों को वे लोग अपना ही समझते थे। जैन विद्वानों की बनाई हुई साहित्य के सिवा व्याकरण, न्याय, अलंकार, वैद्यक, ज्योतिष आदि के जैनेतर ग्रंथों की टीकाएं, वृत्ति आदि या उनपर स्वतंत्र ग्रंथ बहुत से हैं। अजैन प्राचीन ग्रंथों की रक्षा भी प्रायः जैन भांडारों में ही हुई जैसा कि उपलब्ध

गीतों का भी पता चलता है। जैन साहित्य के सुरक्षित और उपलब्ध होने के मुख्य कारण ये हैं,—प्रधान मंदिरों में भांडारों का आवश्यक होना और उनपर सुगठित पंचायत का अधिकार होना; जैनों के यहां पुस्तक लिखवाकर साधुओं तथा वाचकों को बांटने को अतिपुण्य कर्म मानना (कई पोथियों की पुष्पिका में लिखा मिलता है कि अमुक सेठ या सेठानी ने अपने या किसी और के पुण्य के लिये यह लिखवाई); निःसंग साधुओं की अधिकता जो भिक्षामात्र पर निर्वाह करते, किसी प्रकार का प्रतिग्रह न लेते, दिन रात पुस्तकें लिखते और स्वयं उन्हें उठाए फिरते; श्रद्धालु श्रावकों का गुरुओं को कांचन न भेट करके (जिसका उन्हें कोई उपयोग न था) अपने श्रद्धावित्त का ग्रंथ लिखवाने में व्यय करना (छापाखाने का प्रचार होने पर "श्राद्ध" लोग गुरुनिदेश से पुस्तकों को अति-सुंदरता से छपवाकर बांटने का समयानुसार परिवर्तन दिखा रहे हैं); गुरुओं को पुस्तकों के अतिरिक्त और प्रकार की संपत्ति न होने से उनकी सम्हाल में विक्षेप न होना, आदि। जैसे आदि प्राकृत साहित्य जैनों का है वैसे आदि अपभ्रंश या आदि हिंदी साहित्य पर भी जैनों की छाप है। [सं०]

पोथियों का इतिहास कहता है। ब्राह्मणों के पहले दो कर्मों, अध्यापन और अध्ययन, का प्रकृत अनुसरण जैन आचार्यों तथा साधुओं ने बहुत पूर्ण रीति से किया।

सत्रहवीं शताब्दी को प्राचीन हिंदी जैन साहित्य की मध्यावस्था समझना चाहिए। विक्रम सं० १६११ में अकबर सम्राट् के गद्दी पर बैठने के पश्चात् बराबर ही भाषा साहित्य ग्रंथों की संख्या बढ़ती गई। अच्छे अच्छे कवि, विद्वान् इसी समय में हुए। हिंदू और जैन आदि सभी संप्रदायों के लोगों को इस समय शांति से धर्म और साहित्य की सेवा का अवसर प्राप्त हुआ, और जो कुछ प्राचीन साहित्य के अच्छे अच्छे ग्रंथ वर्त्तमान हैं वे सब इसी समय के रचे हुए हैं।

हमारे कवियों को भाषा साहित्य में कहांतक उत्साह था यह एक ही दृष्टांत से प्रकट होगा कि जैनियों के नवपद की, जिसको सिद्धचक्र भी कहते हैं, महिमा पर उज्जैन के श्रीपाल नृपति की कथा संस्कृत-प्राकृत में है। उसीपर भाषा में पृथक् पृथक् कवियों की रचित नौ रचनाएं तो मेरे तुच्छ संग्रह में हैं और दूसरे भंडारों की खोज करने से और भी मिलना संभव है। इससे यह स्पष्ट है कि भाषा साहित्य पर जैन विद्वानों का पूरा प्रेम था। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में रचे हुए श्रीपाल जी के भिन्न भिन्न चरित्रों के आदि और अंत के कुछ काव्य यहां उद्धृत करता हूँ—

(१) सं० १५३१ में उपाध्याय ज्ञानसागर कृत—

प्रारंभ—कर कंमल जोड़ेवि कर सिद्ध सयल पणमेव।
श्री श्रीपाल नरेंद्र नो रास बंध पभणेव॥

....

अंत—भविया भावे नित नमो श्रीगुणदेव सूरिपाय।
तास सीस ए रास रच्यो ज्ञान सागर उवझाय॥
पनर एकत्रिसे मिगसिरे उजली बीज गुरुवार।
रास रच्यो सिद्ध चक्र नो गावो श्री नवकार॥

सिद्ध चक्र महिमा सुणौ भविया कर्ण धरेवि।
मन वंछित फल दायक ए जे सुणै नितमेव॥
एक मना जे नित जपै ते घर मंगल माल।
ऋद्धि अनंती भोगवै जिम भूपति श्रीपाल॥

(२) सं० १७२६ कवि ज्ञानसागरकृत—

प्रारंभ—सकल सुरासुर जेहना पूजइ भावे पाय।
पुरी सादाणी पासजी ते प्रणमूं चित लाय॥

....

अंत—सत्तर छवीसानी आसो वदी आठम दिन सार।
सिद्धि योग कीधो रास संपूरण पुष्यनक्षत्र गुरुवार॥

....

शेषपुर में सरस संबंध ए ज्ञानसागर कहियो रंगे।
धन्यासिरि में ढाल चालिसमी सुणज्यो सहू चित चंगे॥

(३) चार खंड की श्रीपाल चौपाई में से, जिसकी ७५० गाथा रचने के अनंतर श्री विनयविजय जी का स्वर्गवास हो गया और जिसे श्री यशोविजय जी ने सं० १७३८ में १८२५ गाथाओं में पूर्ण किया था। बम्बई के जैन पुस्तक प्रकाशक श्रा० भीमसिंह माणिक ने इसे छपाया है।

आदि—कल्पवेलि कवियण तणी सरसति करि सुपसाय।
सिद्ध चक्र गुण गावतां पूर मनोरथ माय॥

....

गुरु परंपरा के विवरण के पश्चात्—

अंत—संवत सतर अड़तीस बरसे रही रानेर चौमासे जी।
संघ तण आग्रह थी मांड्यो रास अधिक उल्लासे जी॥

(४) सं० १७४० में श्री जिनहर्षसूरिजी कृत श्रीपालरास भी बहुत मनोज्ञ है। यद्यपि इसमें कुछ गुजराती अपभ्रंश शब्द हैं तथापि संस्कृत शब्द इसमें ऐसे चुने चुने गुंथे हुए हैं कि यह ग्रंथ लालित्य में उच्च कोटि का हिंदी साहित्य है।

प्रारंभ—श्री अरिहंत अनंत गुण धरिये हियडै ध्यान।
केवल ज्ञान प्रकाश कर दूरि हटै अज्ञान॥

अंत— संवत सतरे सै चालिसे, चैत्रादिक सुजगीसै रे।
सातम सोमवार सुभदिवसै पाटण विसवा वीसै रे ॥
श्री खरतरगच्छ महिमाधारी जिनचंदसूरि पटधारी रे ।
शांतिहर्ष वाचक सुखकारी तास सीस सुविचारी रे ॥
कहै जिनहर्ष भविक नर सुणिज्यो नवपद महिमा थुणिज्यो रे ।
उनपचासे ढाले गुणिज्यो निज पानिक वन लुणिज्यो रे ॥

(५) उक्त ग्रंथकर्त्ता ने पुनः सं० १७४२ में अर्थात् दो ही वर्ष के पश्चात् और एक श्रीपाल नृपरास बनाया। इसकी एक प्रति कलकत्ता संस्कृत कालेज लाईब्रेरी में भी मौजूद है (नं० १७२) ।

प्रारंभ—चौविसे प्रणमुं जिन राय, तास पसाये नवनिधि थाय ।
सुय देवी धरि हृदय मंझार, कहिसुं नवपद नो अधिकार ॥

अंत—श्री खरतरगछ पति प्रगट, श्री जिनचंद्र सूरीस ।
गणि शांति हरष वाचक तणौ, कहै जिन हर्ष सुरीस ॥

(६) सं० १८३७ में कवि लालचंद जी रचित श्रीपाल चौपाई ।

आदि—स्वस्ति श्री दायक सदा, चोतिस अतिशयवंत ।
प्रणमुं बे कर जोड़िने, जगनायक अरिहंत ॥

अंत की कविता—
बरस अठारे सै सैंतीसे, सुदि आसाढ़ कहीसै जी ।
द्वितीया मंगलवार सुदीसै, मिथुन संक्रांति जगीसै जी ॥
लालचंद निज हित संभाली, विकथा दूरै टाली जी ।
हेमचंद्र कृत चरित्र निहाली, चौपइ कीधी रसाली जी ॥

(७) कवि चेतनविजयजी कृत श्रीपाल चौपाई, सं० १८५३ की रची हुई ।

प्रारंभ—देवधरम गुरु सेवके, नवपद महिमा धार ।
अरिहंत सिद्ध आचारज, पाठक साध अपार ॥

अंत—वाचक रिद्धविजय गुरुज्ञानी, तास शिष्य सुध चेतन आनी ।
रास रच्यो श्रीपाल नो भावे, जे भणसै सुणसै सुख पावे ॥
अठारसे ेपन विक्रम शाषा ।
फागुन सुदि दुतिये शुभ भाषा ॥

(८) सं० १८५६ में रूपमुनि कृत श्रीपाल चौपाई के आरंभ का पद—

प्रथम नमो गुरु चरण कुं पावो ज्ञान अंकूर।
जसु प्रसाद उपगार थी, सुख पावे भरपूर॥

अंत—संवत अठारा छप्पने कहवाया, फागुन मास सवाया जी।
कृष्ण सप्तमी अति हितकारी, सूर्य वार जयकारी जी।
एकतालीसमी ढाल वखाणी, रूपमुनि हितकारी जी।
सुनै सुनावै रहै हितकारी, लहै मंगल जयकारी जी॥

(९) वीं चौपाई में संवत् नहीं है। इसके कर्त्ता मुनि तत्वकुमार हैं।

आदि का पद—आदि पुरुष आदीसरू, आदिराय आदेय।
परमात्मा परमेसरू, नमो नमो नाभेय॥

अंत का पद—तासि सीस मुनि तत्वकुमार, तिन ए गायो चरित रसाल।

जैन भाषा साहित्य के जो प्राचीन ग्रंथ मिलते हैं वे आचार्य्य साधुओं के रचे हुए ही अधिक उपलब्ध हैं। श्रावक लोग व्यापार में फँसे रहते थे, और साधु लोग साहित्य चर्चा के प्रेम से उन श्रावक लोगों के उपयोगी विषयों पर ग्रंथ रचकर अपना पांडित्य दिखाते थे। जैनों के यति आचार्य आदि चातुर्मास, अर्थात् श्रावण से कार्तिक तक, अपने धर्म के नियमानुसार एक ही स्थान में रहने के कारण जिस समय और जिस स्थान में ठहरते थे उसी समय की और जिस नगर में श्रावकों की संख्या अधिक रहती थी उसी स्थान की ग्रंथ रचना अधिकतया मिलती है। ऐसे नगरों में बनारस, आगरा, दिल्ली, मुर्शिदाबाद, जैसलमेर, जोधपुर, मेड़ता, नागोर, अहमदाबाद, पाटन, सूरत आदि मुख्य हैं।

खेद का विषय है कि भाषा साहित्य की ऐसी बहुलता रहने पर भी हमारे प्राचीन हिंदी जैन-साहित्य का अभी तक बहुत ही कम ज्ञान है। इस विषय का जितना ही प्रकाश बढ़ेगा उतनी ही हिंदी साहित्य की पुष्टि होगी और जैन साहित्य की प्रतिभा दिन दिन बढ़ेगी। प्राचीन जैन हिंदी साहित्य के द्वादश शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक के कुछ उपलब्ध ग्रंथों का दिग्दर्शन यहां कराया जाता है।

बारहवीं शताब्दी ।

विक्रम संवत् ११६७ में जैन श्वेतांबराचार्य श्री अभयदेव सूरि जी के स्वर्गवास के पश्चात् उनके पट्ट पर श्री जिनवल्लभ सूरि आचार्य हुए और उसी संवत् में थोड़े ही समय बाद इनका देहांत हुआ । आप भी बड़े विद्वान् और प्रभावशाली हुए थे । इनके रचे हुए 'संघपट्टक' आदि सूत्र और कई संस्कृत के ग्रंथ वर्त्तमान हैं । जहां तक मुझको उपलब्ध हुआ है हिंदी जैन साहित्य में इनका 'वृद्धनवकार' सब से प्राचीन मालूम होता है । इस स्तुति के अंत में केवल इनका नाम है । संवत् का उल्लेख नहीं है । परंतु सं० ११६७ में इनके स्वर्गवास होने के कारण उक्त ग्रंथ की रचना का समय सं० ११६७ से पूर्व निश्चित किया जा सकता है । इस संवत् के पूर्व की कोई जैन हिंदी रचना मुझे नहीं मिली है । इसकी प्रारंभ की और अंत की कविता इस प्रकार है—

वृद्धनवकार ।

किं कप्पतरु रे अयाण चिंतउ मण भिंतरि ।
किं चिंतामणि कामधेनु आराहौ बहुपरि ॥१॥
चित्रावेली काज किसै देसंतर लंघउ ।
रयण रासि कारण किसै सायर उल्लंघउ ॥
चवदह पूरब सार युगे एक नवकार ।
सयल काज महियल सरै दुत्तर तरै संसार ॥२॥

....

अंत के पद—

एक जीह इण मंत्र तणा गुण किता बखाणुं ।
नाण हीन छउ मत्थ एह गुण पारन आणुं ॥३४॥
जिम सेत्रुंजे तित्थ राउ महिमा उदयवंतौ ।
तिम मंत्रह धुरि एह मंत्र राजा जयवंतौ ॥३५॥
अड़संपय नव पय सहित इगसठ लघु अक्खर ।
गुरु अक्खर सत्तेव एह जाणो परमाक्खर ॥ ३६ ॥
गुरु जिनवल्लह सूरि भणै सिव सुर के कारण ।
नरय तिरिय गइ रोग सोग बहु दुक्ख निवारण ॥ ३७ ॥

जल थल पव्वय वन गहन समरण हुवे इक चित्त।
पंच परमेष्ठि मंत्रह तणी सेवा देज्यो नित्त ॥ ३८ ॥

तेरहवीं शताब्दी।

इस शताब्दी में प्रसिद्ध हेमचंद्राचार्य जी के बनाए हुए संस्कृत प्राकृत बहुत से ग्रंथ हैं परंतु उनका बनाया हिंदी ग्रंथ कोई नहीं मिला है। केवल उनके व्याकरण में अपभ्रंश और उस समय के प्रचलित ग्रंथों में से उद्धृत उदाहरण मिलते हैं[१]। पंडित नाथूरामजी ने इस समय के निम्न लिखित चार ग्रंथों का उल्लेख किया है—

(१)–जम्बूस्वामी रासा—सं० १२६६, धर्मसूरि कृत।

(२)–रेवंतगिरि रासा—सं० १२८८ के लगभग, विजयसेन-सूरि कृत।

(३) और (४)–विनयचंदसूरि कृत—'नेमिनाथ चउपई' और 'उवएस माला कहाणय छप्पय'।

चौदहवीं शताब्दी।

पंडित नाथूराम जी ने इस शताब्दी के ५ ग्रंथों का उल्लेख किया है। देश में घोर राजनैतिक विप्लव के कारण इस समय में अधिक ग्रंथ रचना होने की संभावना नहीं थी तथा अभी तक और ग्रंथ उपलब्ध भी नहीं हुए हैं—

(१) सं० १३२७ में 'सप्तक्षेत्रि रास', कर्त्ता का नाम नहीं है।

(२) संघपति समरा रास।

(३) थूलिभद्र फागु।

(४) प्रबंधचिंतामणि के भाषा कथानक (?)

(५) कच्छुलि रासा।

पंद्रहवीं शताब्दी।

पंडित नाथूराम जी प्रेमी ने इस शताब्दी के केवल तीन ही

---

(१) उनके बनाए हुए कुमारपालचरित (प्राकृतद्व्याश्रय काव्य) का कुछ अंश अपभ्रंश अर्थात् उस समय की हिंदी में है, देखो ना. प्र. पत्रिका में आगे पुरानी हिंदी, चौथा लेख। [सं०]

ग्रंथों का उल्लेख किया है परंतु इस शताब्दी के और भी निम्न लिखित ग्रंथ उपलब्ध हैं। इसी समय से भाषा साहित्य उन्नति के सोपान में चढ़ने लगा और सत्रहवीं अठारहवीं शताब्दी में उच्च शिखर पर पहुँचा।

(१) सं० १४१२ में उपाध्याय विनयप्रभ कृत 'गौतम रासा,' इसमें चरम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी के प्रधान शिष्य गौतम स्वामी का संक्षिप्त चरित्र है। इस स्तुति को लाभदायक और मांगलिक समझकर श्रावक लोग इसका नित्य पाठ करते हैं। यह छोटा ग्रंथ है और अंत में संवत् तथा उ० विनयप्रभ का नाम है। प्रेमी जी तथा और लेखक किस कारण से 'विनयप्रभ' के स्थान में इनका 'उदयवंत' या 'विजयभद्र' नाम लिखते हैं यह समझ में नहीं आता। स्तुति के अंत में नाम स्पष्ट है।

"विनय पहु उवज्झाय थुणीजै"

(२) सं० १४२३, 'ज्ञान पंचमी चउपई,' विद्धणु कृत।

(३) सं० १४८६, 'धर्मदत्त चरित्र', दयासागर सूरि कृत।

इस समय के निम्न लिखित ग्रंथ और भी मिले हैं।

(४) हंस वच्छ रास।

(५) शीलरास।

दोनों के कर्त्ता विनयप्रभ उपाध्याय हैं।

(६) सं० १४१३, मयणरेहा रास, हरसेवक मुनि कृत।

(७) सं० १४५०, आराधना रास सोमसुंदर सूरि कृत।

(८) सं०१४५५, शांतरस रास, मुनि सुंदर कृत।

पंडित मनःसुखलाल कीरतचंद मेहता ने अपने जैन साहित्य के निबंध में निम्नलिखित तीन ग्रंथों का उल्लेख किया है।

(९) सं० १४२३, शिवदत्तरास सिद्धसूरि कृत (पाटण काभांडार)

(१०) सं० १४२६, कलिकालरास, हीरानंदसूरि कृत (जेसलमेर भांडार)

(११) सं० १४८५, विद्याविलास रास, भड़ोच नगर भांडार।

इनके सिवा मुझे (१२) सं० १४८१ का उपाध्याय जयसागर कृत 'कुशलसूरि स्तोत्र' मिला है। इसके आदि और अंत की कविता इस प्रकार है।

प्रारंभ—रिसह जिणेसर सो जयो, मंगल केलि निवास।
वासव वंदिय पय कमल, जग सहु पूरे आस॥

....

अंत—संवत् चौदह इक्यासी वरसे मुलक वाहणपुर में मन हरषै अजिय जिनेसर वर भवणे।
कीधो कवित्त ए मंगल कारण विघन हरण सहु पाप निवारण कोई मत संशौं धरो मनै॥ १॥
जिम जिम सेवै सुरनर राया श्री जिनकुशल मुनीसर पाया जय सायर उवझाय थुयौं।
इम जो सद गुरु गुण अभिनंदे ऋद्धि समृद्धै सो चिर नंदै मन वंछित फल मुझ हुवो ए॥ २॥

सोलहवीं शताब्दी।

प्रेमी जी ने इस शताब्दी के केवल पांच ग्रंथों का उल्लेख किया है।

बाबू ज्ञानचंद जैनी ने 'दिगंबर भाषा ग्रंथावली' में दो ग्रंथों का उल्लेख किया है।

वकील मोहन दलीचंद जी ने 'जैनरासमाला पुरवणी' में इसी समय के २२ ग्रंथों की टीप लिखी है।

कलकत्ता गवर्नमेंट संस्कृत कालेज लाइब्रेरी के हस्तलिखित जैन ग्रंथों की सूची में उक्त शताब्दी के कई भाषा ग्रंथ हैं। उनमें से कुछ ग्रंथों का विवरण यहां दिया जाता है।

(१) सं० १५८५, पंडित धर्मदास गणि रचित उपदेशमाला ग्रंथ का बालबोध, यह गद्य है।

(२) सं० १५५०, रामचंद्र सूरि कृत 'मुनिपति राजर्षि चरित।' इसके अंत का पद है—

संवत् पनर पचासो जाणि वदि वैसाख मास मन आणि।
दिन सतमी रचिउ रविवार भणइ सुणइ तिह हर्ष अपार॥

(३) सं० १५६२ में मुनि आनंद का रचा हुआ 'विक्रम षापर चरित'। इनके सिवा उक्त समय के उल्लेख योग्य कुछ ग्रंथ मेरे संग्रह में हैं, जैसे,—

(१) पंडित लावण्यसमय गणि कृत सं० १५६८ का विमल मंत्री रास और

(२) सं० १५७५ का कर संवाद रास है।

(३) सं० १५७२ का कवि सहज सुंदर कृत गुणरत्नाकर छंद है। इसके प्रारंभ की कविता इस प्रकार है—

प्रारंभ—शशिकर निकर समुज्ज्वल मराल मारूढ़ सरस्वती देवी।
विचरति कविजन हृदये सदये संसार भय हरणी॥
हस्ते कमंडल पुस्तक वीणा सोहै नाण झाण गुण लीणा।
अप्पइ लील विलासं सा देवी सरसई जयउ॥

इसी प्रकार शारदा की स्तुति संस्कृत प्राकृत हिंदी मिली हुई है। स्तुति के अंत के पद—

पय पणमुं सरसत्ती माता सुणि एक विण्णत्ती।
मांगू अविरल वाणी दियो वरदान गुण जाणी॥
आणी नव नव बंध नव नव छंदेन नवनवाभावा।
गुण रयणा यच्छंदं वणिणसु गुण थूलभद्दस्स॥
अंधारे दीपक जिम कीजै उजवाले परमारथ लीजै।
थूलभद्द तिम ध्यान धरंता नाम जपै फल होई अनंता॥

अंत में रचयिता का नाम और संवत्—

जल भरियां सायर तपै दिवायर तेज करैं जा चंद।
सहि गुरुपय वंदौं तां लगि नंदौं गुण रत्नाकर छंद॥
उवएसगणा मंडण दुरिय विहंडन गिरुया रयण समुद्द।
ववकाय पुरंदर महिमा सुंदर मंगल करौं सुभद्द॥
संवत पनर बहुत्तरि वरसै ए मैं छंद रच्यो मन हरखै।
गिरुयो गणहर नय नय छंदै सहज सुंदर बोलौ आणंदै॥

सत्रहवीं शताब्दी।

भारत के साहित्य की उन्नति के लिये यह शताब्दी सर्व प्रकार से एक अतुलनीय समय है। इस समय के साहित्य का पूरा इतिहास लिखने से एक बड़ा ग्रंथ हो सकता है। पंडित नाथूरामजी

ने नौ कवियों और उनके मुख्य ग्रंथों का वर्णन किया है, और 'मिश्रबंधु' ने और पांच कवियों का उल्लेख किया है।

इस शताब्दी के और भी उल्लेख योग्य कवियों के नाम और कुछ उपलब्ध ग्रंथ इस प्रकार हैं—

कवि ऋषभदासजी ने कई अच्छे अच्छे ऐतिहासिक रास रचे हैं जिनमें सं० १६६२ का राजा श्रेणिक रास और सं० १६७० का कुमारपाल रास और रोहिणीय रास प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

उपाध्याय समयसुंदरजी भी श्वेतांबर साधुओं में एक श्रेष्ठ कवि हो गए हैं। इनकी रचना बहुत सरल है, छोटे बड़े सैंकड़ों ग्रंथ इनके बनाए हुए मिलते हैं। उनमें से शत्रुंजय रास, शांब प्रद्युम्न रास, प्रियमेलक चौपाई, पोषह विधि चौपाई, जिनदत्तर्षि कथा, प्रत्येकबुद्ध चौपाई, करकंडू चौपाई, नल दमयंती चौपाई, वल्कल चीरी चौपाई आदि विशेष प्रचलित हैं। रास चरित्र चौपाई आदि बड़े ग्रंथों के सिवा श्रावकों के प्रतिक्रमण के समय पाठ योग्य धर्म नीति चरित्रादि पर इनके रचे हुए छोटे छोटे बहुत ग्रंथ हैं।

सं० १६९६ में पंडित कुशलधीर गणि कृत 'वेलि' का गद्यात्मक बालबोध इस समय के डिंगल गद्य जैन साहित्य का अच्छा नमूना है।

बाबू श्यामसुंदरदास जी ने अपनी रिपोर्ट में सं० १६१६ के कवि ब्रह्मरायमल कृत हणुवंत मोक्षगामी कथा का उल्लेख किया है।

वकील मोहनलाल दलीचंद जी ने भी इस शताब्दी के बहुत से भाषा जैन ग्रंथों के नाम प्रकाशित किए हैं।

अठारहवीं शताब्दी।

गत शताब्दी से ही बराबर साहित्य की पूरी जाग्रति देखने में आती है और इस समय के बहुत से गद्य पद्य ग्रंथ विद्यमान हैं। प्रेमीजी ने दोनों संप्रदायों के २५ विद्वानों के नाम तथा उनके भाषा साहित्य के ग्रंथों का कुछ हाल दिया है। मिश्रबंधु विनोद में ६ कवियों का उल्लेख किया गया है। वकील मोहनलाल दलीचंद जी

ने लगभग ३० ग्रंथकर्त्ता और उनके ग्रंथों की टीप लिखी है। बाबू श्यामसुंदरदास जी ने इस शताब्दी के निम्न लिखित ग्रंथ और ग्रंथ-कर्त्ताओं का उल्लेख किया है।

(१) सं० १७१५ में अचलकीर्त्ति आचार्य कृत 'विषापहार भाषा'।

(२) सं० १७४१ में धर्ममंदिर गणिकृत 'प्रबोधचिंतामणि'।

(३) सं० १७७५ में मनोहर खंडेलवालकृत 'धर्मपरीक्षा'।

कलकत्ता संस्कृत कालेज में इस शताब्दी के जैन भाषा साहित्य की कई उत्तम उत्तम हस्तलिखित पुस्तकें विद्यमान हैं।

इसके अतिरिक्त इस समय के जो भाषा साहित्य के उत्तम ग्रंथ उपलब्ध हैं उनमें से कुछ प्रकाशित हैं और बहुत से अप्रकाशित हैं। कवि लाल विजयजी के शिष्य पं० सौभाग्य विजय कृत सं०-१७५० का 'तीर्थमाला स्तवन' अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। यह छंदोबद्ध तीर्थयात्रा का विवरण बड़ी ही योग्यता से बनाया गया है। कवि आगरे से प्राय: सभी प्रधान तीर्थस्थानों में गया है और प्रत्यंक स्थान का वर्णन काव्यरस पूर्ण है। इसके आदि और अंत के काव्य इस प्रकार हैं—

आरंभ—

दोहा— आनंद दाई आगरें प्रणमौ पाय जिणंद।
चिंतामणि चिंताहरण केवल ज्ञान दिनंद॥

समरूं शारद स्वामिनी जिण वाणी सुखदाय।
जास प्रसाद कवियण तणी वाणी निरमल थाय॥

प्रणमी श्री गुरु चरणयुग प्राणी अधिक उल्लास।
तीर्थमाळ पूरवतणी करस्यों बचन विलास॥

जहां जहां श्री जिनराज के कल्याणक कहिवाय।
निज नयणों निरख्या जिके देश गाम ने ठाय॥

कहिस्यों ते सघला हिवै सुणज्यो चतुर सुजाण।
सुणतां तीरथ माळ नै जनम हुवै सुप्रमाण॥

अंत में—ए तीर्थमाला, अतिरसाला, पंच कल्याणक तणी।
संवत सतर स पचासे लाभ जाणी मैं थुणी॥

श्री विजयरत्न सूरि गच्छ पति सदा संघ सुहं करो।
गुरु लाल विजय तणै पसाएं सौभाग्य विजय जय जय करो॥

——*——

१०—अशोक की धर्मलिपियाँ।

[लेखक—रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा, बाबू श्यामसुंदरदास बी. ए., और पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बी. ए.]

[पत्रिका भाग २ पृष्ठ १२० के आगे]

[क ६—छठा प्रज्ञापन।]

कालसी	१	देवानं	पिये	पियदसि	लाजा	हेवं
गिरनार	२	देवानं	प्रि	···सि	राजा	एवं
धौली	३	देवानं	पिये	पियदसी	लाजा	हेवं
जौगड़	४	·वानं	पिये	पियदसी	लाजा	हेवं
शहबाज़गढ़ी	५	देवनं	प्रियो	प्रियद्रशि	रय	एवं
मानसेरा	६	देवनं	प्रिये	प्रियद्रशि	रज	एवं
संस्कृत-अनुवाद		देवानां	प्रियः	प्रियदर्शी	राजा	एवं
हिंदी-अनुवाद		देवताओं के	प्रिय	प्रियदर्शी	राजा ने	इस प्रकार

कालसी	७	आहा	अतिकंतं	अंतलां	नो	हुतपुलुवे
गिरनार	८	आह	अतिक्रातं	अंतरं[४१]	न	भूतप्रुव
धौली	६	आहा	अतिकंतं	अंतलं	नो	हूतपुलुवे
जौगड़	१०	आहा	अतिकंतं	अंतलं	नो	हूतपुलुवे
शहबाज़गढ़ी	११	अहति	अतिक्रतं	अंतरं	न	भुतप्रुवं
मानसेरा	१२	अह	अतिक्रंतं	अंतरं[२६]	नो	हुतप्रुवे
संस्कृत-अनुवाद		आह।	अतिक्रांतं	अंतरं	न	भूतपूर्व
हिंदी-अनुवाद		कहा है।	बीत गया	[बहुत]काल	न	पहले हुआ

कालसी	१३	सवं	कालं	अठकंमे	वा	पटिवेदना	वा
गिरनार	१४	सव	कलं	अथकंमे	व	पटिवेदना	वा
धौली	१५	सवं	कालं	अठकंमे	व	पटिवेदना	व
जौगड़	१६	सवं	कालं	अठकंमे	व	पटिवेदना	व
शहबाज़गढ़ी	१७	सब्रं	कलं	अथक्रमं	व	पटिवेदन	व
मानसेरा	१८	सब्रं	कल	अथ्रक्रम	व	पटिवेदन	व
संस्कृत-अनुवाद		सर्व	कालं	अर्थकर्म	वा	प्रतिवेदना	वा
हिंदी-अनुवाद		सब	काल	अर्थकर्म (=राजकार्य)	या	प्रजा की पुकार का निवेदन	या

कालसी	१९	से	ममया	हेवं	कटे	सवं	कालं
गिरनार	२०	त	मया	एवं	कतं(२०)	सवे	काले
धौली	२१	से	ममया		कटे	सवं	कालं
जौगढ़	२२	से	ममया		कटे	सवं	कालं(३०)
शहबाज़गढ़ी	२३	तं	मय	एवं	किटं	सव्रं	कलं
मानसेरा	२४	त	मय	एवं	किटं	सव्र	कलं
संस्कृत-अनुवाद		तत्	मया	एवं	कृतं	सर्वं सर्वस्मिन्	कालं काले
हिंदी-अनुवाद		इसलिये	मैंने	ऐसा	किया	सब	काल

कालसी	२५	अदमनसा	मे(१७)		ओलोधनसि	गभागालसि
गिरनार	२६	भुंजमानस	मे		ओरोधनम्हि	गभागारम्हि
धौली	२७	··मानस	मे(२८)	अंते	ओलोधनसि	गभागालसि
जौगढ़	२८	····स	मे	अंते	ओलोधनसि	गभागालसि
शहबाज़गढ़ी	२९	अशमनस	मे		ओरोधनस्पि	ग्रभगरस्पि
मानसेरा	३०	अशतस	मे		ओरोधने	ग्रभगरसि
संस्कृत-अनुवाद		अदतः भुंजानस्य अश्नतः	मे	अंते	अवरोधने	गर्भागारे
हिंदी-अनुवाद		खाते हुए (के)	मेरे	पास	अंतःपुर (महल)में	निज मंदिर(=ढके घर) में

१०

कालसी	३१	वचसि		विनितसि	उयानसि		सवता
गिरनार	३२	वचम्हि	व(५.)	विनीतम्हि	उयानेसु	च	सवत्र
धौली	३३	वचसि		विनीतसि	उयानसि	च	सवत
जौगड़	३४	वचसि		विनीतसि	उयानसि	च	सवत
शहबाज़गढ़ी	३५	व्रचस्पि		विनितस्पि	उयनस्पि		सव्रत्र
	३६	व्रचस्पि		विनितस्पि	उयनस्पि		सव्रत्र
संस्कृत-अनुवाद		व्रजे	{वा}	विनीते	उद्याने उद्यानेषु	च	सर्वत्र
हिंदी-अनुवाद		भ्रमण में	{या}	लंबी यात्रा में	बगीचे में बगीचों में	और	सर्वत्र

कालसी	३७	पटिवेदका		अठं		जनषा
गिरनार	३८	पटिवेदका	स्टिता	अथे	मे	जनस (१२)
धौली	३९	पटिवेदका				जनस
जौगड़	४०	पटिवेदका				जनस
शहबाज़गढ़ी	४१	पट्रिवेदक		अठं		जनस
मानसेरा	४२	पटिवेदक		अथ्र		जनस (२०)
संस्कृत-अनुवाद		प्रतिवेदकाः	स्थिताः	अर्थं	{मे}	जनस्य
हिंदी-अनुवाद		निवेदन करनेवाले	उपस्थित [होकर]	कार्य को	{मुझे}	प्रजा के

कालसी	४३		पटिवेदेंतु	मे		सवता	
गिरनार	४४		पटिवेदेथ		इति	सर्वत्र	च
धौली	४५	अठं	पटिवेदयंतु	मे	ति	सवत	च
जौगड़	४६	अठं	पटिवेदयंतु	मे	ति	सवत	च
शहबाज़गढ़ी	४७		पट्रिवेदेतु	मे		सवत्र	च
मानसेरा	४८		पटिवेदेतु	मे		सवत्र	च
संस्कृत-अनुवाद		{अर्थं}	प्रतिवेदयंतु	मे	इति।	सर्वत्र	च
हिंदी-अनुवाद		{काम को}	निवेदन करें	मुझे	ऐसा।	सब जगह	और

कालसी	४९	जनसा	अठं	कछामि	हकं	यं	पि	चा
गिरनार	५०	जनस	अथे	करोमि		य		च
धौली	५१	जनस	अठं	कलामि	हकं[२९]	अं	पि	च
जौगड़	५२	जनस[३१]	..	...	·कं	अं	पि	च
शाहबाज़गढ़ी	५३	जनस	अठ्र	करोमि		यं	पि	च
मानसेरा	५४	जनस	अथ्र	करोमि	अहं	यं	पि	
संस्कृत-अनुवाद		जनस्य	अर्थं	करिष्यामि करोमि	अहं।	यत्	अपि	च
हिंदी-अनुवाद		प्रजा के	कार्य(को)	करूंगा करता हूँ	मैं।	जो	भी	और

कालसी	५५	किछि	मुखते	आनपयामि	हकं	दापकं
गिरनार	५६	किंचि	मुखतो(५३)	आञपयामि	स्वयं	दापकं
धौली	५७	किंछि	मुखते	आनपयामि		दापकं
जौगढ़	५८	किंछि	मुखते	आनपयामि		दापकं
शहबाज़गढ़ी	५९	किचि	मुखतो	अणपयमि	अहं	दपकं
मानसेरा	६०	किचि	मुखति	अणपेमि	अहं	दपकं
संस्कृत-अनुवाद		किंचित्	मुखतः	आज्ञापयामि	अहं स्वयं	दापकं
हिंदी-अनुवाद		कुछ	मुँह से	आज्ञा देता हूँ	मैं आप	दापक को

कालसी	६१	वा	सावकं	वा	ये	वा	पुना
गिरनार	६२	वा	स्रावापकं	वा	य	वा	पुन
धौली	६३	वा	सावकं	वा	ए	वा	
जौगड़	६४	वा	सावकं	वा	ए	वा	
शहबाज़गढ़ी	६५	व	श्रवकं	व	यं	व	पन
मानसेरा	६६	व	श्रवकं	व	यं	व	पुन
संस्कृत-अनुवाद		वा	श्रावकं	वा	यद्	वा	पुनः
हिंदी-अनुवाद		या	श्रावक को	या	जो	या	फिर

कालसी	६७	महामातेहि[१८]		अतियायिके	आ · पितं	होति
गिरनार	६८	महामात्रेसु[२४]		आचायिके	आरोपितं	भवति
धौली	६९	महामातेहि		अतियायिके	आलोपिते	होति
जौगढ़	७०	महामातेहि		अतियायिके	आलोपिते	होति
शाहबाज़गढ़ी	७१	महमत्रनं	वो	अचयिक	अ · · पितं	भोति
मानसेरा	७२	महमत्रेहि		अचयिके	अरोपित	होति[२८]
संस्कृत-अनुवाद		महामात्रैः महामात्राणां महामात्रेषु	{वा}	आत्ययिके	आरोपितं	भवति
हिंदी-अनुवाद		महामात्रों से महामात्रों का महामात्रों में	{था}	अत्यंत आवश्यकता पर	स्थिर किया	है

कालसी	७३	ताये	ठाये	विवादे		निभति	वा
गिरनार	७४	ताय	अथाय	विवादो		निभती	व
धौली	७५	तसि	अठसि	विवादे	व	निभती	वा
जौगड़	७६	तसि	अठसि	विवादे	व[३२]	. . .	.
शहबाज़गढ़ी	७७	तये	अठये	विवदे	व	निभति	व
मानसेरा	७८	तये	अथूये	विवदे		निभति	व
संस्कृत-अनुवाद		तस्मै तस्मिन्	अर्थाय अर्थे	विवादे विवादः	वा	निध्यातौ निध्यातिः	वा
हिंदी-अनुवाद		उस(के लिए) उस (में)	विषय के लिए विषय में	विवाद(में) विवाद	या	विशेष ध्यान(में) विशेष ध्यान	या

कालसी	७९	संतं	पलिसाये	अनंतलियेना	पटि · · विये
गिरनार	८०	संतो	परिसायं(२९)	आनंतरं	पटिवेदेतव्यं
धौली	८१	संतं	पलिसाय(३०)	आनंतलियं	पटिवेदेतविये
जौगढ़	८२	· ·	· लिसाय	आनंतलियं	पटिवेदेतविये
शहबाज़गढ़ी	८३	संतं	परिषये	अनंतरियेन	प्रटिवेदेतवो
मानसेरा	८४	संत	परिषये	अनंतलियेन	पटिवेदितविये
संस्कृत-अनुवाद		सति(सत्यां) सन्(सती)	परिषदा	आनन्तर्येण	प्रतिवेदयितव्यं
हिंदी-अनुवाद		होने पर	परिषद् से	बिना विलंब के	निवेदन किया जाय

काळसी	८५	मे		सवता	सवं	कालं	हेवं
गिरनार	८६	मे		सर्वत्र	सर्वे	काले	एवं
धौली	८७	मे	ति	सवत	सवं	कालं	हेवं
जौगड़	८८	मे	ति	सवत	सवं	कालं	हेवं
शहबाज़गढ़ी	८९	मे(१४)*		सवत्र	सब्रं	कलं	एवं
मानसेरा	९०	मे		सव्रत्र	सब्र	कल	एवं
संस्कृत-अनुवाद		मे	इति	सर्वत्र	सर्वं सर्वस्मिन्	कालम् । काले	एवं
हिंदी-अनुवाद		मुझे	ऐसा	सब जगह	सब	समय ।	ऐसे

काळसी	६१		आनपयिते	ममया	नथि	हि
गिरनार	६२	मया	आञपितं		नास्ति	हि
धौली	६३	मे	अनुसथे		नथि	हि
जौगड़	६४	मे	अनुसथे		नथि	हि
शहबाज़गढ़ी	६५		अञपितं	मय	नस्ति	हि
मानसेरा	६६		अञपित	मय	नस्ति	हि
संस्कृत-अनुवाद		मया मे	आज्ञापितं अनुशिष्टं	{मया} ।	नास्ति	हि
हिंदी-अनुवाद		मैंने	आज्ञा दी[है]	मैंने} ।	नहीं है	(निश्चय)

कालसी	९७	मे	दोसे	च	उठानसा	अठसंतिलनाये	चा
गिरनार	९८	मे	तोसो(२१)		उस्टानम्हि	अथसंतीरणाय	च
धौली	९९	मे	तोसे		उठानसि	अठसंतीलनाय	च
जौगड़	१००	मे	तोसे		उठानसि	अठसंतीलनाय	च(२२)
शहबाज़गढ़ी	१०१	मे	तोषो		उठनसि	अठसंतिरणाये	च
मानसेरा	१०२	मे	तोषे		उटनसि	अथ्रसंतिरणाये	च(२३)
संस्कृत-अनुवाद		मे	तोषः	{एव}	उत्थाने उत्थानस्य	अर्थसंतरणाय	च ।
हिंदी-अनुवाद		मुझे	संतोष	{ही}	उद्योग में उद्योग के [लिये]	कार्य संपन्न करने के लिये	और ।

कालसी	१०३	कटविय	मुते	हि	मे	सवलोकहिते	तथा
गिरनार	१०४	कतव्य	मते	हि	मे	सर्वलोकहितं[२०]	तच
धौली	१०५	कटविय	मते	हि	मे	सवलोकहिते[२१]	तच
जौगड़	१०६	. . . .	. .	.	मे	सवलोकहिते	तच
शहबाज़गढ़ी	१०७	कटव	मतं	हि	मे	सम्रलोकहितं	तच
मानसेरा	१०८	कटविय	मते	हि	मे	सम्रलोकहिते	तच
संस्कृत-अनुवाद		कर्तव्यं	मतं	हि	मे	सर्वलोकहितं।	तस्य
हिंदी-अनुवाद		कर्तव्य	माना [है]	(निश्चय)	मेरा (= मैंने)	सब लोगों का हित।	उसका

कालसी	१०९		पुना	एसे	मुले		उठाने(११)
गिरनार	११०	च	पुन	एस	मूले		उस्टानं
धौली	१११	च	पन	इयं	मूले		उठाने
जौगड़	११२	च	पन	इयं	मूले		उठाने
शहबाज़गढ़ी	११३	च			मुलं	अत्र	उथनं
मानसेरा	११४	चु	पुन	एषे	मुले		उठने
संस्कृत-अनुवाद		च	पुनः	एतद् इदं	मूलम्	{अत्र}	उत्थानं
हिंदी-अनुवाद		और	फिर	यह	मूल [है]	{यहां}	उत्थान

कालसी	११५		अठवंतिलना	वा	नथि	हि
गिरनार	११६	च	अथसंतीरणा	च	नास्ति	हि
धौली	११७	च	अठवंतीलना	च	नथि	हि
जौगड़	११८	च	अठवंतीलना	च	नथि	हि
शाहबाज़गढ़ी	११९		अठवंतिरण	च	नस्ति	हि
मानसेरा	१२०		अथ्रवतिरण	च	नस्ति	हि
संस्कृत-अनुवाद		च	अर्थसंतरणं	च।	नास्ति	हि
हिंदी-अनुवाद		और	कार्य संपन्न करना	और।	नहीं [है]	(निश्चय)

कालसी	१२१	कंमतला	सवलोकहितेना	यं	च	किछि
१२ गिरनार	१२२	कंमतरं(४८)	सर्वलोकहितत्पा	य	च	किंचि
धौली	१२३	कंमत ·	सवलोकहितेन	अं	च	· छि
जौगड़	१२४	कंमतला	सवलोकहितेन	अं	च	किछि
शहबाज़गढ़ी	१२५	क्रमतरं(१५)	सवलोकहितेन	यं	च	किंचि
मानसेरा	१२६	क्रमतर	सव्रलोकहितेन	यं	च	किंचि
संस्कृत-अनुवाद		कर्मान्तरं कर्मतरं	सर्वलोकहितेन(= हितात्) ।	यत्	च	किंचित्
हिंदी-अनुवाद		दूसरा काम अधिक[उपादेय]काम	सब लोगों के हित सं [= के अतिरिक्त] ।	जो	और	कुछ

कालसी	१२७	पलकमामि	हकं	किति	भुतानं	अननियं
गिरनार	१२८	पराक्रमामि	अहं	किंति	भूतानं	आनंणं
धौली	१२९	पलकमामि	हकं	किंति	भूतानं	आननियं
जौगड़	१३०	पलकमामि	हकं(३४)	. .	. . .	· ननियं
शहबाज़गढ़ी	१३१	परक्रममि		किति	भुतनं	अनणियं
मानसेरा	१३२	परक्रममि	अहं	किति	भुतनं(३०)	अनणियं
संस्कृत-अनुवाद		पराक्रमे	अहं	किमिति	भूतानाम्	आनृण्यम्
हिंदी-अनुवाद		पराक्रम करता हूँ	मैं	[वह] क्यों ?	जीवधारियों का(= से)	उरिणता को

कालसी	१३३	येहं		हिद	च	कानि
गिरनार	१३४	गछेयं(२६)		इध	च	त्रानि
धौली	१३५	येह	ति(२७)	हिद	च	कानि
जौगड़	१३६	येहं	ति	हिद	च	कानि
शहबाज़गढ़ी	१३७	व्रचेयं		इअ	चं	प
मानसेरा	१३८	येहं		इअ	च	प
संस्कृत-अनुवाद		इयाम् गच्छेयम् व्रजेयम्	इति	इह	च	कानि(चित्) खलु
हिंदी-अनुवाद		जाऊं(प्राप्त होऊं)	ऐसा	यहां (= इस लोक में)	और	कुछ को निश्चय

कालसी	१३९	सुखायामि	पलत	चा	स्वगं	आलधयितु
गिरनार	१४०	सुखापयामि	परत्रा	च	स्वगं	आराधयंतु
धौली	१४१	सुखयामि	पलत	च	स्वगं	आलाधयंतू
जौगड़	१४२	सुखयामि	पलत	च	स्वगं	आलाधयंतू
शहबाज़गढ़ी	१४३	सुखयमि	परत्र	च	स्पगं	अरधेतु
मानसेरा	१४४	सुखयमि	परत्र	च	स्पग्रं	अरधेतु
संस्कृत-अनुवाद		सुखयामि	परत्र	च	स्वर्गं	आराधयितुम् आराधयन्तु
हिंदी-अनुवाद		सुखी करूं	पर (लोक)में	और	स्वर्ग को	सिद्ध करने को सिद्ध करें

कालसी	१४५		से	एताये	ठाये	इयं
गिरनार	१४६		त	एताय	अथाय[६०]	अयं
धौली	१४७	ति		एताये		इयं
जौगड़	१४८	ति		एताये	अठाये	इयं
शहबाज़गढ़ी	१४९			एतये	अठये	अयि
मानसेरा	१५०	ति	से	एतये	अथ्रये	इयं
संस्कृत-अनुवाद		इति ।	तत्	एतस्मै	अर्थाय	इयं
हिंदी-अनुवाद		ऐसा ।	सो	इस(के लिए)	प्रयोजन(के लिए)	यह

कालसी	१५१	धमलिपि	लेखिता		चिलठितिक्या
गिरनार	१५२	धंमलिपी	लेखापिता	किंति	चिरं तिस्टेय
धौली	१५३	धंमलिपी	लिखिता		चिलठितीका
जौगड़	१५४	धंमलिपी	लिखिता		चिलठितीका
शहबाज़गढ़ी	१५५	ध्रम	दिपिस्त		चिरथितिक
मानसेरा	१५६	ध्रमदिपि	लिखित		चिरठितिकं
संस्कृत-अनुवाद		धर्मलिपि:	लेखिता	किमिति	चिरस्थितिका चिरं तिष्ठेत्
हिंदी-अनुवाद		धर्मलिपि	लिखाई	क्यों(कि)	चिरस्थायी चिरकाल[तक]रहे

कालसी	१५७	होतु		तथा	च	मे	पुतदाले
गिरनार	१५८		इति	तथा	च	मे	पुत्रा
धौली	१५९	होतु		तथा	च		पुता
जौगड़	१६०	होतु (३५)		..	.		..
शहबाज़गढ़ी	१६१	भोतु		तथ	च	मे	पुत्र
मानसेरा	१६२	होतु		तथं	च	मे	पुत्र
संस्कृत-अनुवाद		भवतु ।	इति}	तथा	च	मे	पुत्रदारं पुत्राः
हिंदी-अनुवाद		होवे ।	{ऐसा}	वैसे	और	मेरे	स्त्री-पुत्र पुत्र

कालसी	१६३						पलकमातु
गिरनार	१६४	पोता	च	प्रपोत्रा		च(६१)	अनुवतरां
धौली	१६५			पपोता	मे		पलकमंतु(३२)
जौगड़	१६६			पोता	मे		पलकमंतु
शाहबाज़गढ़ी	१६७	नतरो					परक्रमंतु
मानसेरा	१६८	नतरे					परक्रमंते
संस्कृत-अनुवाद		पौत्राः नप्तारः	च	प्रपौत्राः	{मे}	च	पराक्रमन्ताम् अनुवर्तन्ताम्
हिंदी-अनुवाद		पोते	और	पड़पोते	{मेरे}	और	पराक्रम करें अनुसरण करें

कालसी	१६९	सवलोकहिताये(२०)	दुकले	च		इयं
गिरनार	१७०	सवलोकहिताय	दुकरं	तु		इदं
धौली	१७१	सवलोकहितायेे	दुकले	चु		इयं
जौगड़	१७२	सवलोकहितायेे	दुकले	चु		इयं
शहबाज़गढ़ी	१७३	सवलोकहितये	दुकरं	तु	खो	इमं
मानसेरा	१७४	सव्र(२१) लोकहितये	दुकरे	चु	खो	
संस्कृत-अनुवाद		सर्वलोकहिताय ।	दुष्करं	च तु	खलु	इदं
हिंदी-अनुवाद		सब लोगों के हित के लिये ।	दुष्कर[है]	और तो	निश्चय	यह

कालसी	१७५	अनत	अगेना	पलकमेना	
गिरनार	१७६	अञत	अगेन	पराक्रमेन(६२)	
धौली	१७७	अंनत	अगेन	पलकमेन	सेतो
जौगड़	१७८	अंनत	अगेन	पलकमेन(३६)	
शहबाज़गढ़ी	१७९	अंञत्र	अग्रे	परक्रमेन(१६)	
मानसेरा	१८०	अञत्र	अग्रेन	परक्रमेन	
संस्कृत-अनुवाद		अन्यत्र	अग्र्येण	पराक्रमेण ।	श्वेतः
हिंदी-अनुवाद		बिना	अगले(= उत्कृष्ट)(से)	पराक्रम से ।	सफेद[हाथी]

[हिंदी अनुवाद ।]

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा है। बहुत दिन बीत गए[1] [कि] सब समय में[2] राजा का कार्य[3] और [राजा के सामने प्रजा की] विज्ञप्ति[3] नहीं होती, इसलिये मैंने इस प्रकार [प्रबंध] किया कि सब

---

(१) अतिक्रांतं अंतरं—अशोक ने जो नई बात चलाई या पुरानी चाल में परिवर्तन किया उसका वर्णन यों ही आरंभ किया जाता है। कहीं तो सूचित होता है कि यह चाल पहले थी ही नहीं, कहीं यह कि पहले थी, बीच में बंद हो गई, कहीं यह कि बहुत काल से ऐसा होता आ रहा है। स्थान स्थान पर सभी अर्थ बैठ जाते हैं। यहां सब समय प्रजा की सुनवाई का उल्लेख है, चाहे उससे राजा के शरीरसुख में विघ्न हो। मैगास्थनीज़ लिखता है कि चंद्रगुप्त उस समय भी प्रजा की पुकार सुनता रहता था जिस समय चार सेवक लकड़ी के बेलनों से उसके अंगों का संवाहन (मर्दन) करते थे।

(२) सर्वं कालं—"राजा दरबार में हो तो कार्यार्थियों की दरवाज़े पर भीड़ न होने दे, जिस राजा का दर्शन (प्रजा को) कठिनता से होता है उसके पास रहनेवाले कार्य अकार्य की गड़बड़ मचा देते हैं जिससे राजा पर प्रजा का कोप होता है या वह शत्रु के वश हो जाता है।" (कौटिल्य पृ. ३८-३९)

(३) अर्थकर्म—राज्य का कार्य। प्रतिवेदना–प्रजा की पुकार की अर्ज़, जो राजा के शरीरसुख और विहार काल में बंद रहती है।

समय में, चाहे मैं खाता होऊँ, चाहे महल[३] में होऊँ, चाहे निज महल[४] में, चाहे टहलने[६] में, चाहे [स्थान स्थान पर बदलनेवाली सवारी की] डाक से लंबी यात्रा में[७] और चाहे बगीचे में, सर्वत्र[८] प्रतिवेदक[९] प्रजा के कार्य की [मुझे]

---

(३) अवरोधन—देखो प्रज्ञापन ५ टि० ११ ।

(४) गर्भागार—महल के बीच का घर या गर्मियों में बैठने का ठंढा तहखाना, या शयनागार ।

(६) व्रज—खरोष्ठी लिपि में वर्णों में 'र' लगाने की अद्भुत रीति से वह वर्च पढ़ा गया और उसका 'मल' अर्थ करके यह तात्पर्य निकाला गया कि शौचागार में भी अशोक अर्ज़ियाँ सुनता था । वह हास्यास्पद और असंभव है । व्रज (जाना) धातु का प्रज्ञापन १३ (शहबाज़गढ़ी) में 'व्रचति' हुआ है, और हेमचंद्र ने 'व्रजति' के स्थान में 'वच्चइ' दिया है । व्रज के दो अर्थ हो सकते हैं (१) मार्ग और (२) गोष्ठ (गाइगोठ—तुलसी०) अर्थात् (१) छोटी मोटी यात्रा, चहलकदमी, या (२) पशुशाला (गाय भैंस, भेड़, बकरी, गधे, ऊँट, घोड़े, खच्चर यह सब व्रज है, कौटिल्य पृ० ६०, समाहर्ता (अधिकारी) व्रज को सम्हाले, वहीं, पृ० ५६)

(७) विनीत—(१) अच्छे सिखाए हुए घोड़े, (२) गाड़ी या पालकी जो दूसरों से चलाई जाय, (३) धर्मचिंता का एकांत स्थान, (४) विनय अर्थात् कवायद या (५) सैनिक शिक्षागृह । इन सब से ठीक अर्थ वह है जो अनुवाद में किया है, व्रज छोटी यात्रा, विनीत लंबी यात्रा जिसमें सवारी की डाक बदले । विनीतक या वैनीतक के अर्थ परंपरावाहन (अमरकोश) का यह अर्थ क्षीरस्वामी ही समझा है—वोढृभिः परंपरया वाह्यते, अर्थ नं० (२) में यह बात नहीं आई ।

(८) सब जगह—यहाँ यह प्रश्न उठता है कि ज़नाना, निजमंदिर, अमण (या अश्वशाला), डाक की यात्रा (या व्यायाम), और बाग (गिरनार के पाठ में बहुवचन)—ये नाम यों ही गिना दिए गए हैं कि जिनमें प्रतिवेदकों के पहुँचने से राजा के सुख में विघ्न पड़ता हो और जहाँ पर राजा ने अब से उनका आना अव्याहत कर दिया, या इनके यों उल्लेख में कोई साभिप्राय नियम है ? जायसवाल ने कुछ सफलता के साथ सिद्ध करना चाहा है कि इसमें अभिप्राय है । कौटिल्य ने दिन रात के आठ आठ विभाग किए हैं, दिन के भाग चाहे नली (पानी की नाली का बहना जिससे नाडिका = घड़ी) द्वारा किए जाँय चाहे सूर्य की छाया से । उनम राजा के काम यों नियत किए हैं (भाग १) उपस्थान (दरबार आम में बैठकर), रक्षाविधान, आयव्यय का सुनना (२) नगर और

सूचना दें । मैं सब जगह[८] प्रजा का कार्य करता हूँ (= करूंगा) । दिलाने वाले[१०] और सुनानेवाले[११] अधिकारियों को

देशवासियों का काम देखना (३) स्नानभोजन, स्वाध्याय (४) सुवर्ण का संग्रह, अध्यक्षों की नियति (५) मंत्रिसभा से पत्र व्यवहार, गुप्तदूतों की बातें सुनना (६) स्वच्छंद विहार या परामर्श (७) हाथी, घोड़े, रथ, आयुध देखना (८) सेनापति के साथ विक्रम की चिंता । दिवस के अंत में संध्योपासन । रात्रि को (१) गुप्तचरों से मिलना (२) स्नान भोजन और स्वाध्याय (३) गाजे बाजे से महल में प्रवेश (४)(५) निद्रा (६) बाजे से जगाए जाकर शास्त्र और इतिकर्तव्यता की चिंता (७) परामर्श (मंत्र), गुप्तचरों का भेजना (८) ऋत्विक् आचार्य, पुरोहित के साथ आशीर्वाद लेना, वैद्य, ज्योतिषी और रसोईदारों से मिलना, फिर दरबार आम में आना । जायसवाल कहते हैं कि दिन के आठ भागों में जो भाग राजा के अपने शारीरिक सुख के लिये नियत हैं या जिनमें वह कुछ स्वतंत्र है और उपस्थानमंडप में नहीं बैठता वे भी अशोक ने राजकार्य को दे दिए हैं, बाकी भाग तो राजकार्य के हैं ही जैसे ऊपर दिन का (३) = 'भोजन करते हुए, महल में, निज घर में'(६) = 'निज घर में'(७) = 'व्रज'(८) = 'विनीत' । अशोक बौद्ध था, उसे वैदिक चंद्रगुप्त की तरह स्वाध्याय (वेदाध्ययन) नहीं करना था इसलिये (३) का समय, और संध्या नहीं करनी पड़ती होगी इसलिये दिवस के अंत में 'उद्यान' या बाग की सैर का समय भी प्रतिवेदकों को दे दिया । और कलिंग विजय के पीछे उसने पराराष्ट्रों पर आक्रमण भी छोड़ दिया था इस लिये (८) की जगह वह अपना ही शारीरिक व्यायाम करता होगा । हम ऊपर देख चुके हैं कि चंद्रगुप्त भी, जिसके लिये यह समयनियम बनाया गया था, प्रजा के कार्य की अधिकता से (३) में भी (२) का कार्य करता था ।

(९) प्रतिवेदक—इसका अर्थ खबरनवीस या जासूस नहीं, किंतु पेशकार करना चाहिए जो राजा के पास प्रजा का काम लाते हैं । गुप्त पुरुषों या चारों का मिलने का समय दिन के पांचवें और रात्रि के प्रथम भाग में और भेजे जाने का रात्रि के सातवें भाग में है, प्रतिवेदकों का समय अशोक ने दिन भर कर दिया । गिरनार के पाठ के पटिवेदेथ (पं० ४४) से संदेह होता है कि राजा मानो प्रतिवेदकों को संबोधन करके यह कह रहा हो । मेगस्थनीज़ ने गुप्तचरों के विषय में लिखा है कि नगर और सेना की गणिकाएँ भी उनकी सहायक होती थीं ।

(१०) दापक— (१) देनेवाला अधिकारी, दानाध्यक्ष (२) दिलाने की आज्ञा ।

(११) श्रावक—(१) राजाज्ञा को सब को सुनाकर प्रचारित

जो कुछ आज्ञा मैं मुँहज़बानी दूँ, [या दान देने की[10] या सुनाए जाने की[11] जो कुछ आज्ञा मैं मुँहज़बानी दूँ,] उसके विषय में, या अत्यंत आवश्यकता पर [मुझे बिना पूछे या मेरी अनुपस्थिति में] जितना अधिकार महामात्रों[12] को दिया गया है[13] [या, अत्यंत आवश्यकता पड़ने पर महामात्र[12] जिस विषय में निश्चय करें] उसके संबंध में संदेह या मतभेद और पुनर्विचार[14] होने पर [मंत्रि–] परिषद्[15] बिना विलंब के सब जगह और सब समय मुझे सूचित करे[16] । इस प्रकार मैंने आज्ञा दी; [क्योंकि] उद्योग करने में और [राज] कार्य चलाने के लिए मुझे संतोष नहीं होता । सब लोगों की भलाई करना ही मैंने कर्त्तव्य माना है और उस [सर्वलोकहित] का मूल उद्योग[17] और

करनेवाला अधिकारी (२) सब को सुनाई जानेवाली आज्ञा। पहले प्रकार की आज्ञा का उदाहरण गुहाओं के दान के लेख हैं, दूसरी प्रकार के ये प्रज्ञापन हैं। गिरनार के स्रावापक (पं० ६२) के लिये देखो पत्रिका भाग १ पृ० ४०७ टि० ११।

(१२) महामात्र—देखो प्रज्ञा० ५, टि० ३।

(१३) यह अर्थ गिरनार के सप्तमी के प्रयोग के अनुसार किया गया है। 'आरोपित' का प्रयोग भी इसे पुष्ट करता है।

(१४) निझ्याति—का अर्थ पुनर्विचार, नज़रसानी ही है, कुछ नहीं।

(१५) यहां परिषद् का अभिप्राय मंत्रिसभा स्पष्ट है 'बौद्ध संघ के परिषद् का झगड़ा' या 'किसी जाति की पंचायत का मतभेद' यहां अप्रासंगिक है।

(१६) पटिवेदेतवो मे के आगे शहबाज़गढ़ी के पाठ (पं० ८१) में इतना अधिक है—'सव्रत्र च अठं जनस करोमि अहं यं च किंचि मुखतो अणपेमि अहं दपकं व श्रवक व य व पन महमत्रनं अचयिकं अरोपितं भोति तये अठये विवदे संतं निझति व परिषये अनंतरियेन पटिवेदेतवो मे'। अनुमान होता है कि लेख को पत्थर पर लिखनेवाले ने मूल प्रति की एक या अधिक पंक्ति भूल से दुबारा लिख दी या एक ही पंक्ति को वह दुबारा पढ़ गया। जिससे खोदनेवाले ने वैसा ही खोद दिया। एक दो शब्दों के अंतर को छोड़ कर पहले खुदी पंक्ति और इसमें कोई भेद नहीं है इसलिये इस अंश को न मूल में रक्खा गया और न इसका अनुवाद दिया गया। यहां मूल में ⁘ चिन्ह है।

(१७) उत्थान। राजनीति में इसका पारिभाषिक अर्थ है—'उत्थान

[राज–] कार्यसंचालन है। सब लोगों की भलाई के अतिरिक्त मुझे अधिक करणीय काम[18] कोई नहीं है[19]। जो कुछ पराक्रम मैं करता हूँ, वह क्यों? इसी लिये कि जीवधारियों के ऋण से मुक्त होऊँ, कुछ [प्राणियों] को इस लोक में सुख देऊँ, [जिससे] वे दूसरे लोक में स्वर्ग (=सुख) प्राप्त करें [या, अपने अथवा उनके लिये स्वर्ग प्राप्त करने को]। इसी प्रयोजन से यह धर्मलिपि लिखवाई। यह चिरस्थायी हो तथा मेरे स्त्री, पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र सब लोगों की भलाई के लिये उद्योग करें। बिना अत्यधिक प्रयत्न के यह [सब लोगों का हित] दुष्कर है। सफेद [हाथी][20]

ही राजा का व्रत है,...अनुत्थान से नाश निश्चित है, उत्थान से फल और अर्थसंपत्ति मिलती है···राजा नित्योत्थित होकर अर्थानुशासन करे' (कौटिल्य, पृ० ३९) महाभारत, शांतिपर्व, में भी उत्थान इसी अर्थ में आया है।

(१८) कर्मतर–संस्कृत अनुवाद में 'कर्मान्तर' अब तक के टीकाकारों के 'पूजार्थ' ही रख दिया है, वस्तुतः कर्मतर = 'अधिक (करने योग्य) काम' है, 'कर्मान्तर = 'दूसरा काम' नहीं। पुरानी संस्कृत में संज्ञा शब्दों के आगे भी आतिशायन प्रत्यय लगते थे, जैसे अश्व-तर, गो-तम, महाभाष्य में गो-तर, गर्ग-तर गार्ग्य-तर (५।३।२) आए हैं। कालसी के हाथी के नीचे 'गज-तमो' है, 'गजोत्तमः' नहीं। (देखो पत्रिका भाग १ पृ० ३३७)

(१९) 'प्रजा के सुख में राजा का सुख है, प्रजा के हित में हित, राजा को अपना प्रिय हित नहीं, प्रजा का प्रिय ही हित है' (कौटिल्य, पृ० ३९)

(२०) देखो पत्रिका भाग १ पृ० ३३७-८।

——:०:——

११—विविध विषय।

[लेखक—पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बी. ए., अजमेर]

(१) पाणिनि की कविता।

मैं पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी जी का उपकार मानता हूँ कि उनकी कृपा से मुझे मालूम पड़ा कि पाणिनि की कविता (पत्रिका भाग १, पृष्ठ ३७४) में सं० २० पर जो श्लोक 'क्षपा: क्षामीकृत्य—' आदि उद्धृत किया है उसी भाव का एक श्लोक बिल्हण कवि के विक्रमांकदेवचरित काव्य में (सर्ग १३, श्लोक ३६) भी है—

तृणानि भूभृत्कटकेषु निक्षिपन्न कैः स्फुरद्धीरमृदङ्गनिस्वनः।
तडित्प्रदीपैश्चलदङ्गलीलया निदाघमन्विष्यति वारिदागमः॥

(२) रड्डा छंद।

इसी संख्या के प्रथम लेख में कुमारपालप्रतिबोध में से एक छंद (संख्या ३७) व्याख्या (पृ०१५१) में अनवधान से एक मोटी भूल रह गई है। लिखा गया है कि उस छंद के अंतिम दो चरण छप्पय के हैं। छप्पय के अंतिम दो चरण उल्लाला होते हैं, यहां तो अंत में स्पष्ट दोहा है। प्राकृत पिंगलसूत्र में इस छंद का नाम वस्तु या रड्डा दिया है। रड्डा के लक्षण मेँ वहां पर दो छंद दिए हैं, एक तो रड्डा ही है, दूसरा छप्पय; किंतु दोनों ही राजसेन के नाम के हैं। टीकाकार लक्ष्मीनाथ (वि० सं० १६५७) इस राजसेन को 'राजा' कहता है। अस्तु। यह राजसेन राजा भी पुरानी हिंदी का एक कवि मिला जो प्राकृत पिंगलसूत्र के वर्तमान रूप के पहले का होना चाहिए। प्रति चरण मात्राओं का क्रम यह है—१५ + १२ + १५ + ११ + १५ + दोहा। पहले पांच चरणों में अड़सठ मात्राएं

हुई । चरणों में मात्राओं की संख्या में कुछ भेद मानकर रड्डा के सात भेद होते हैं, जैसे—१३ + ११ + १३ + ११ + १३ = करभो ; १४ + ११ + १४ + ११ + १४ = नंदा ; १६ + ११ + १६ + ११ + १६ = मोहिनी ; १५ + ११ + १५ + ११ + १५ = चारुसेनी; १५ + १२ + १५ + १२ + १५ = भद्रा ; १५ + १२ + १५ + ११ + १५ = राजसेनी ; १६ + १२ + १६ + ११ + १६ = तालंकिनी । वाणीभूषण में इसे, दोहा के चार चरण मानकर, नवपद छंद कहा है । राजसेन के रचित छंदों की ऐतिहासिकता के कारण वे यहां उद्धृत किए जाते हैं ।

(१) पढम[1] विरइ[2] मत्त[3] दह पंच,
पअ बीअ[4] बारह ठवउ,[5]
तीअ ठाँव दह पंच जाणहु,
चारिम एग्गारहिं
पंचमे हि दहपंच माणहु,
अट्ठासट्ठा पूरवहु अग्गे दोहा देहु ।
राअसेण सुपसिद्ध इअ रड्ड भणिज्जइ एहु ॥

(२) विसम[1] तिकल[2] संठवहु तिण्णि पाइक[3] करहु लइ ।
अंत णरिंद[4] किं विप्प[5] पढम बे मत्त अवर पइ[6] ॥
समपअ[7] तिअ पाइक[3] सव्व लहु अंत विसज्जहु ।
चउठा चरण विचारि एक लहु कट्टिअ लिज्जहु ।
एम पंच पाअ उटवण्ण[5] कइ वत्थु णाम पिंगल कुणइ ।
ठवि[8] दोसहीण दोहाचरण राअसेण रड्डह भणइ ॥

---

१ प्रथम, २ विरचि, ३ मात्रा, ४ दूसरा, ५ रक्खो ।

१ विषम पदों में, २ त्रिकल, ३ पैदल (चतुष्कल), ४ भगण, ५ विप्र, चार लघु, ६ पद ७, ? उत्पन्न, ? उठावणा, छंद की मात्राओं के लेखन को उटवणिका कहते हैं, ८ रख कर ।

(३) कादंबरी और दशकुमारचरित के उत्तरार्द्ध ।

पहले एक लेख में (पत्रिका भाग १, पृ० २३५-७) कादंबरी के उत्तरार्द्ध के कर्ता, बाण के पुत्र, पुलिंदभट्ट के विषय में लिखा जा चुका है । बूलर ने उसका नाम भूषण भट्ट लिखा है किंतु कोई प्रमाण नहीं दिया । उस लेख में डाकृर स्टाइन के सूचीपत्र के अनुसार जिस कश्मीर की पुस्तक का हवाला दिया है वह शारदाक्षरों में भूर्जपत्र पर लिखी हुई है और उसका लेखकाल शक संवत् १५६९ (ई० १६४७) है । सूक्तिमुक्तावलि में धनपाल कविकृत एक श्लोक विशिष्टकवि प्रशंसा में है जिस में बाण और पुलिंद का नाम साथ देकर श्लेष से दिखाया है कि बाण की कादंबरी का 'संधान' पुलिंद ने किया—

केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन् ।
किं पुनः क्लृप्तसंधानपुलिंदकृतसंनिधिः ॥

जम्मू के पुस्तकालय में, स्टाइन की सूची के अनुसार, एक दशकुमारचरित की पोथी भूर्जपत्र पर संवत् १८३३ की लिखी हुई है जिससे जाना जाता है कि दशकुमारचरित का शेषांश (उत्तरपीठिका) पद्मनाभ ने पूर्ण किया था । संभव है कि वह भी दंडी का पुत्र हो क्योंकि दूसरी एक प्रति के वर्णन में यह संवेदन दिया है 'अत्र दंडिन एव कर्तृत्वं न तु तत्पुत्रस्य' ।

(४) बनारसी ठग ।

काशी (बनारस) ठगों के लिये कब से प्रसिद्ध है ? (१) कुमारपाल प्रतिबोध (सं० १२४१) में नलदमयंती की कथा में प्रतीहारी ने स्वयंवर के समय दमयंती से 'कासिनयरीनरेस' का परिचय दिया है तो दमयंती कहती है—'पर वंचणवसणिणो कासिवासिणो सुव्वंति' । (२) हेमचंद्र के प्राकृतद्व्याश्रय काव्य कुमारपालचरित में फूलों को 'कामदेवरूपी ठग के वाराणसीप्रदेश' कहा है । (सर—ठग—वाणारसि-पएसा··· कुरवया, ३।५९-६०, पूर्णकलशगणि की टीका—यथा वाराणसी

ठकानां स्थानं तथा एते दंपत्योरुत्कंठादिजननान् स्मरस्यंति भावः)। यहाँ प्राकृत या देशी ठग का संस्कृत रूप 'ठक' दिया है। मंख ने श्रीकंठ-चरित में भी 'ठक' का इसी अर्थ में व्यवहार किया है (उद्भूष्णुना कस्य न नाम यात्रा वसंतनाम्ना रुरुधे ठकेन ६।३३, जोनराज की टीका— ठकेन हठमोषकेन)। ठग से ठक बना या ठक से ठग यह विचारणीय है। जब संस्कृत भाषा जीवित थी तब वह और भाषाओं से शब्द बड़ी स्वतंत्रता और उदारता से ले लिया करती थी।

झूठी शब्दानुसरिणी व्युत्पत्ति ने बहुत गड़बड़ किया है। सीसोदा गाँव से सीसोदिये कहलाए किंतु सीसो + दिया शब्द देख कर लोगों ने व्युत्पत्तियाँ गढ़ लीं कि (१) मद्यपान के प्रायश्चित्त में जलता हुआ सीसा पीने से और (२) देशसेवा में 'सीस' देने से यह नाम चला। महरठा शब्द 'महाराष्ट्र' (= बड़ा देश) से बना है किंतु 'मरहटा' देखकर लोगों ने व्युत्पत्ति कर ली कि लड़ाई से मरकर ही हटते थे, इस लिये 'मरहटे' कहलाए। वाराणसी का अर्थ वर + अनस् 'अच्छे रथोंवाली' होता है किंतु उसके वरणा + असी नदियों के बीच होने से यह नाम बनने की कल्पना की गई और 'बनारस' नाम पर 'रस बना' होने की हिंदी कवियों की वाचोयुक्ति कहीं कहीं निर्बचन मान ली गई है। हेमचंद्र ने प्राकृतव्याकरण में वाराणसी, वाणारसी; अलचपुर, अचलपुर; महरट्ठ, मरहट्ठ; को केवल व्यत्यय माना है (८।२।११६-९)। यह व्यत्यय बोलने में हो जाता है जैसे पंजाबी चाकू का काचू, गँवारी चिलम का चिमल। इसपर नए निर्वचन करना पांडित्य का अजीर्ण मात्र है।

१२—महर्षि च्यवन का रामायण।

[लेखक—पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बी. ए., अजमेर]

महाकवि अश्वघोष[1] ने अपने प्रसिद्ध काव्य

(१) तिब्बती और चीनी बौद्ध ग्रंथों से छै अश्वघोषों का पता चलता है, किंतु अश्वघोष सम्राट कनिष्क का समकालिक था। वह साकेतक अर्थात् अयोध्या का निवासी था और आचार्य पार्श्व के शिष्य पूर्णयशस् ने इसे बौद्धधर्म में दीक्षित किया था। जब कनिष्क ने, जिसकी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) थी, मगध के पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया तब वह वहां से अश्वघोष को ले गया। पीछे पार्श्व आचार्य से कनिष्क ने बौद्ध आगमों का अध्ययन किया और धार्मिक शंकाओं की निवृत्ति के लिये अपने राज्य के अंतर्गत कश्मीर में कुंडलवन नामक स्थान पर बौद्ध ज्ञाताओं का संघ कराया। वसुमित्र इस संघ का प्रधान और अश्वघोष उपप्रधान हुआ। उसी संघ में महाविभाषा नामक बौद्ध धर्म की व्याख्या की रचना की गई।

राजतरंगिणी में हुष्क, जुष्क और कनिष्क नामक तीन बौद्ध धर्मानुयायी तुरुष्क राजाओं का कश्मीर में साथ ही साथ राज्य करना लिखा है किंतु वहां उनका गोनंद तृतीय और अभिमन्यु के भी पहले, अर्थात् राजतरंगिणी के क्रम के अनुसार ईसवी सन् से लगभग १२०० वर्ष पहले, राज्य करना कहा गया है जो माननीय नहीं। कनिष्क का बसाया हुआ कनिष्कपुर भी कश्मीर में कहा गया है जो डाक्टर स्टाइन के मत से बारहमूला से श्रीनगर को जाती हुई सड़क और वितस्ता (विहाट) नदी के बीच का वर्तमान कानसीपोर है। (राजतरंगिणी १। १६८–१७३)

तुरुष्क या यूइचि राजाओं में कुजुल कडफिसिस और उसके पुत्र वेम कडफिसिस के पीछे कनिष्क आता है। उसका पुत्र हुविष्क था और उसका वसुदेव वा वसुष्क। यों कनिष्क, हुविष्क और वसुष्क की तीन पीढ़ियां राजतरंगिणी के कनिष्क, हुष्क और जुष्क हो सकती हैं। इन सब के सिक्के मिले हैं। कनिष्क का राज्यारंभ सन् ७८ ई० में और उससे ही शक संवत् का चलना मानने के पक्ष में कई लोग हैं। इस विषय में बहुत वाद विवाद है किंतु ईसवी सन् की पहली शताब्दी के उत्तरार्ध से दूसरी के मध्य तक कनिष्क का काल कभी न कभी मानना ही पड़ता है। चतुर्थ बौद्ध संघ जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, ई० स० १४० के लगभग हुआ था।

बुद्धचरित[१] में एक प्रसंग पर लिखा है कि 'वाल्मीकि के नाद ने वह पद्य उपजाया जो च्यवन महर्षि नहीं बना सके थे'। इस पर प्रोफेसर ल्यूमैन ने लिखा कि इस प्रकार के उल्लेख से यह अनुमान

सुभाषितावलियों में कुछ श्लोक अश्वघोष के नाम से मिलते हैं, और अमरकोश की टीकाओं में कुछ उदाहरण, जो बुद्धचरित और सौंदरनंद से लिए हैं। चीनी और तिब्बती भाषाओं में अश्वघोष के बहुत से ग्रंथों के अनुवाद मिलते हैं। वहां के बौद्ध साहित्य की परीक्षा से जाना जाता है कि अश्वघोष, मातृचेट, शूर, आर्य्यशूर, सब एक ही महाकवि के नाम हैं। सम्राट् कनिक (कनिष्क) के नाम मातृचेट का एक पत्र 'कनिकलेख' भी मिला है। अश्वघोष के प्रधान ग्रंथ ये हैं—(१) बुद्धचरित काव्य, (२) सौंदरनंद—महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री ने इसे नेपाल से प्राप्त कर बिब्लोथिका इंडिका में छपवाया है। इसमें बुद्ध के अपने भाई नंद के पास जाकर उसे पत्नी सुंदरा के प्रेमपाश से छुड़ाकर वैराग्यमार्ग में लाने का बड़ा ही सुंदर वर्णन है, (३) वज्रसूची—इसमें जन्म से जाति मानने का खंडन है, (४) शारिपुत्र प्रकरण—इस नाटक का खंड तुरफान की खोज में मिला था। डाक्टर लूडर्स ने इसे छपवाया है, (५) जातकमाला, (६) सूत्रालंकार, (७) डेढ़ सौ स्तोत्र। और भी कई ग्रंथ हैं। बौद्ध साहित्य में अश्वघोष, मातृचेट अथवा आर्यशूर का बड़ा ऊँचा स्थान है। संस्कृत साहित्य में उसका निवेश नई खोज का फल है।

(१) इसमें बुद्ध के जन्म, गृहत्याग, तपस्या, सिद्धि आदि का बड़ा उत्तम वर्णन है। इस महाकाव्य का चीनी अनुवाद ईसवी सन् की पांचवीं शताब्दी में धर्मरक्ष ने किया और तिब्बती अनुवाद सातवीं या आठवीं शताब्दी में हुआ। संस्कृत मूल पाठ की प्रतियाँ नेपाल से मिली हैं। वहां पंडित अमृतानंद ने उसकी खंडित प्रति को कई श्लोक और चार सर्ग अपनी ओर से जोड़ कर नेवारी संवत् ९५० (ईसवी सन् १८३० ई०) में पूर्ण किया। डाक्टर कावेल ने एनेकडोटा आक्सेनसिया में इसका अतिप्रामाणिक संस्करण निकाला है। चीनी अनुवाद और अमृतानंद के संशोधित (!) पाठ का अनुवाद बील ने 'सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट' में छपवाया है। चीनी अनुवाद सारमात्र है, तिब्बती अनुवाद पूर्ण, अक्षरानुयायी और प्रामाणिक है, डाक्टर वेंजल ने उसका अनुशीलन किया है। बंबई विश्वविद्यालय के पाठकों के लिये नंदर्गीकर ने बुद्धचरित के पांच सर्गों का संस्करण छापा है जिसकी भूमिका में लिखा है कि एक नई प्रति उन्हें पंजाब के बेतिया नगर से (?) मिली है।

कालिदास को विक्रम संवत् के चलानेवाले विक्रम के यहां माननेवाले

करना कि वैदिक ऋषि च्यवन का बनाया हुआ कोई रामायण गद्य में था और वह वाल्मीकि की पद्यमय रचना के प्रचलित होने पर लुप्त हो गया, बड़े साहस का काम है। ल्यूमैन का यह कहना था[३] कि हवा ही चल गई कि च्यवन का रामायण वाल्मीकि के पहले था। नंदर्गिकर ने अपने रघुवंश के संस्करण की भूमिका में यह माना है[४] कि च्यवन-रचित रामायण था, और और भी कई लोग ऐसा मानने लग गए हैं। अतएव यह विचार करना अनुचित न होगा कि बुद्धचरित के उस उल्लेख से यह अनुमान कहाँ तक निकल सकता है।

बुद्धचरित के उस प्रसंग की विस्तारपूर्वक आलोचना करने का एक और भी कारण है। पिछले हज़ार दो हज़ार वर्षों से हिंदू सभ्यता में धर्म के नाम पर यह कुसंस्कार घुस गया है कि पहले जो कुछ हो गया वैसा अब नहीं हो सकता, अब गिरने के दिन हैं, चढ़ने के नहीं। प्रचलित धर्म और समाज के शोकसंगीत की टेक यही है कि न पहले का सा समय है, न राजा, न ऋषि, न विद्या और न संपत्ति। वर्तमान आंदोलनों में भी आगे उन्नति करने की प्रवृत्ति को दबाकर यह रोग बढ़ता जा रहा है कि प्राचीन समय फिर लौट आवे तो हम निहाल हो जायँ। जिस बुद्धि ने हिंदू सभ्यता की जड़ों में अवसर्पिणी काल और कलियुग के तेल की सिंचाई की है उसने बड़ा अनर्थ किया है, सारे समाज को उत्साहशून्य बना दिया है। और देशों में पिता पुत्र से यह आशा करता है कि वह

लोग बुद्धचरित में बुद्ध को देखने के लिये आनेवाली नगरवासिनी स्त्रियों के शृंगार और हड़बड़ी के वर्णन में रघुवंश तथा कुमारसंभव के वैसे ही वर्णनों की छाया देखते हैं, किंतु कालिदास का समय गुप्तकाल में मानने वाले अश्वघोष के वर्णन को कालिदास का उपजीव्य मानते हैं। अश्वघोष की कविता बहुत ही ओजस्विनी और मधुर है।

(३) विएना ओरिएंटल सोसाइटी का जर्नल, जिल्द ७, पृष्ट १९७।

(४) रघुवंश के संस्करण की भूमिका, पृष्ठ १००।

मुझ से सब बातों में बढ़कर हो, पर यहाँ वह यही कहता है कि हमारी चाल निबाह लोगे तो बहुत है, हम से बढ़कर क्या हो सकते हो। जहां पलने से लेकर बैकुंठी तक यही मनहूस रौर मचा रहता है कि जो पीछे गया अच्छा था, आगे आवेगा वह बुरा ही बुरा होगा, वहाँ उन्नति की क्या आशा की जा सकती है? यह बारहमासी आत्मग्लानि, यह निराशामय आत्मवंचना, यह दुर्भाग्य-जनक आत्मघर्षण, पहले न था। पहले लोग अपने को पूर्वजों की बराबरी का समझते थे और यह असंभव नहीं मानते थे कि हम उनसे बढ़कर हो सकते हैं। कम से कम उनपर यह निराशा का उन्माद और जन्म भर का सियापा तो नहीं चढ़ा था कि हम गिरते ही जायँगे। कम से कम आर्यसुवर्णाक्षीपुत्र साकेतक आचार्य आर्यभदंत अश्वघोष ने तो इस विषय पर बहुत ही स्पष्ट लिखा है। उदाहरणों की प्रचुरता में, भाषा के अनुपम लालित्य में, उत्साह के उद्दीपन में, उसका कथन इतना ओजस्वी, इतना मधुर और इतना रमणीय है कि उसका पूरी तरह मनन करना चाहिए।

कपिलवस्तु में महाराज शुद्धोदन के मायादेवी के गर्भ से तथागत बुद्ध का जन्म हुआ है। राजा चिंता में मग्न है कि देखें यह बालक कैसा निकले। इसपर ब्राह्मणों ने उसे दृष्टांत कह कर विश्वास दिलाया, आश्वासन दिया, अभिनंदन किया; तब राजा ने मन से अनिष्ट शंका छोड़ दी और वह अत्यंत प्रसन्न हुआ। ब्राह्मणों ने क्या दृष्टांत दिए थे?—

> यद् राजशास्त्रं भृगुरङ्गिरा वा न चक्रतुर्वंशकरावृषी तौ ।
> तयोः सुतौ तौ च ससर्जतुस्तत्कालेन शुक्रश्च बृहस्पतिश्च ॥
> सारस्वतश्चापि जगाद वेदं नष्टं पुनर्यं ददृशुर्न पूर्वे ।
> व्यासस्तथैनं बहुधा चकार न यं वसिष्ठः कृतवान्न शक्तिः ॥
> वाल्मीकिनादश्च ससर्ज पद्यं जग्रन्थ यन्न च्यवनो महर्षिः ।
> चिकित्सितं यच्च विवेद नात्रिः पश्चात्तदात्रेय ऋषिर्जगाद ॥
> यच्च द्विजत्वं कुशिको न लेभे तत्साधनं सूनुरवाप राजन् ।
> वेलां समुद्रे सगरश्च दध्रे नेक्ष्वाकवो यां प्रथमं बबंधुः ॥

आचार्यकं योगविधौ द्विजानामप्राप्तमन्यैर्जनको जगाम ।
ख्यातानि कर्माणि च यानि शौरेः शूरादयस्तेष्ववला बभूवुः ॥
तस्मात्प्रमाणं न वयो न कालः कश्चित्कचिच्छ्रैष्ठ्यमुपैति लोके ।
राज्ञामृषीणां च हितानि (चरितानि?) तानि कृतानि पुत्रैरकृतानि पूर्वैः ॥

भावार्थ—भृगु और अंगिरा[६] वंश के चलानेवाले ऋषि थे; उन्होंने जो राजशास्त्र[७] नहीं बनाया वह उनके पुत्र शुक्र और बृहस्पति ने समय पाकर बना दिया । पहले ऋषियों को जिसका दर्शन भी नहीं हुआ था उस नष्ट वेद को सारस्वत ऋषि ने (फिर) कह दिया[८] । व्यास ने वेद का (शाखाभेद-) विस्तार किया जो

---

(५) बुद्धचरित, कावेल का संस्करण, सर्ग १, श्लोक ४६—५१ ।

(६) भृगु का पुत्र भार्गव (शुक्र), अंगिरा का पुत्र आंगिरस (बृहस्पति) 'अंगिरा बृहस्पतिपिता'''भृगुः शुक्रपिता' (गणरत्नमहोदधि, एगलिंग का संस्करण, पृष्ठ ५५)

(७) बृहस्पति और शुक्र के नीतिशास्त्र प्रसिद्ध हैं । 'उशना वेद यच्छास्त्रं यच्च वेद बृहस्पतिः' । महाभारत शांतिपर्व में लिखा है कि बृहस्पति ने एक लक्ष श्लोकों का नीतिशास्त्र बनाया और फिर उशनस् (शुक्र) ने उसे संक्षिप्त किया । इनके मत और कहीं कहीं इनकी गाथाएँ भी महाभारत में हैं । कौटिल्य ने भी इनके मत उद्धृत किए हैं । प्रचलित शुक्रनीति और नए मिले हुए बृहस्पति-सूत्र पीछे के ग्रंथ हैं । ये दोनों राजनीति के पुराने आचार्य मनुष्य-ऋषि थे, कथाओं में देवताओं और असुरों के गुरु हो गए ।

(८) महाभारत, शल्य पर्व, में कथा है कि एक समय दुर्भिक्ष पड़ने पर और सब ऋषि पेट पालने के लिये भटकते फिरे, वेद भूल गए । केवल अंगिरा और सरस्वती का पुत्र अपनी माता के प्रसाद से उसके तट पर प्रति दिन एक मछली खाकर वेद को जीवित रख सका । समय बीतने पर उस युवा ऋषि ने वृद्ध ऋषियों से गुरूचित सम्मान पाकर उन्हें फिर वेद पढ़ाया । यों सारस्वत सब का गुरु हुआ । 'अध्यापयामास ऋषीन् शिशुराङ्गिरसः कविः । पुत्रका इति च प्राह''' ॥ न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बंधुभिः । ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् । (मनुस्मृति २।१२१, ४) अथाङ्गिरा रागपरीतचेताः सरस्वतीं ब्रह्मसुतः सिषेवे । सारस्वतोऽभूत्तनयस्तु सोऽस्य नष्टस्य वेदस्य पुनः प्रवक्ता ॥ (सौंदरनंद काव्य)

न उसके पड़दादा वसिष्ठ से हुआ और न पितामह शक्ति[९] से। वाल्मीकि के नाद[१०] ने वह पद्य उत्पन्न किया जो च्यवन महर्षि न गाँठ सके थे; अत्रि को जो चिकित्सा नहीं आती थी वह उसके पीछे आत्रेय[११] ऋषि ने कही। कुशिक को जो ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं हुआ उसका साधन, हे राजा, उसके पौत्र विश्वामित्र[१२] ने

आसीद्ब्रह्मसरः सुधासहचरं···भाँवासतः
प्रावर्तिष्ट सरस्वती सुरनदी गंभीरनीरा भुवि।
सा तीरे तपसि स्थितं वृतवती देवी दधीचिं मुनिं
तस्मादाप सुतं वसिष्ठसदृशं सारस्वतं नामतः॥ २॥
तन्नामावृष्टिरासीज्जगति तदुतर ब्राह्मयो द्वादशाब्दं
तस्यामासाद्य वृष्टिं कथमपि तपसा देवराजप्रसादात्।
वेदा···म तान् स्मृतिपथविमुखान्ब्राह्मणान् भक्तिभाजो
भूयः सारस्वतो यः श्रवणरससुखं पाठयामास सम्यक्॥ ३॥
सरस्वती पत्तननामधेये सारस्वतास्तस्य सुता बभूवुः।
श्रुतिस्मृतीहासपुराणविज्ञा यज्ञप्रधानाः शिवसन्निधानाः॥ ४॥

(ग्वालियर राज्य के सुरवाया स्थान में सोमधर के पुत्र ईश्वर की कराई वापी की प्रशस्ति, सं० १३५१ कार्तिक शुदि ५ बुधे, एक फोटो से)

(९) वसिष्ठ—शक्ति—पराशर—व्यास। 'विव्यास वेदान् यस्मात्स वेद-व्यास इतीर्यते' (महाभारत)। वेद के शाखाभेद के बारे में पौराणिक मत यह है कि व्यास ने सुमंतु, जैमिनि, पैळ और वैशंपायन नामक शिष्यों को एक एक वेद बाँट दिया, उन्होंने अपने शिष्यों को शाखाएं पढ़ाईं, नहीं तो पहले सारा वेद एक ही था (भागवत १२।६, विष्णुपुराण ३।३–४)

(१०) वाल्मीकि ने एक व्याध को क्रौंच पक्षियों के जोड़े में से एक को तीर से मारते देख जो शोक का 'नाद' किया था वही आदिकाव्य की श्लोकमय रचना का बीज हुआ (वाल्मीकि रामायण १।२) 'शोकः श्लोकत्वमागतः' (वहीं १।२।४०)

(११) चरकसंहिता का वक्ता आत्रेय ही है, अध्याय अध्याय में 'इति ह स्माह भगवान् पुनर्वसुरात्रेयः' मिलता है।

(१२) विश्वामित्र क्षत्रिय थे, तपस्या से ब्राह्मण हुए। उन्हें ब्राह्मण न मानना ही विश्वामित्र और वसिष्ठ के वंशों में द्वेष का कारण हुआ जिसकी कथा ऋग्वेद (३।५३, ७।३२) से लेकर सभी पुराणों तक चली आई है। (महाभारत, आदिपर्व १८१ आदि, रामायण १।५१-६५)

पाया। सगर ने समुद्र पर वेला बाँधी (समुद्र का तीर नियमन किया) जो उसके पहले इक्ष्वाकु वंशी नहीं कर सके थे[११]। योग विधि में ब्राह्मणों का गुरु बनना औरों के भाग्य में नहीं बदा था, वह

विश्वामित्र ऋषि तो बन गए किंतु एक खानदानी ऋषियों की होती थी। यज्ञ में जब होता का आवाहन करते थे उस समय कई इकट्ठे हुए हों तोभी उनमें से 'ऋषे! आर्षेय! ऋषीणां नपात्!' (शुक्लयजु २१।६१) अर्थात् ऋषि ऋषिपुत्र और ऋषिपौत्र कह कर योग्य ही को बुलाते थे। बृहस्पति के पुत्र कच और शुक्र की कन्या देवयानी के प्रेम की कथा में भी कच के परंपरागत ऋषि होने की ही प्रशंसा है (ऋषेः पुत्रं तमथो वापि पौत्रं कथं न शोचयमहं न रुद्याम्—महाभारत, आदिपर्व, ७०। ५२)। कम से कम निरंतर ऋषि वंश में पैदा न होने से व्याकरण के तद्धित-प्रत्यय तो नहीं हो सकते थे (पाणिनि ४।१।१०४)। इसलिये विश्वामित्र ने तपस्या न केवल इसलिये की कि मैं ऋषि हो जाऊं किंतु फिर भी इस लिये की कि ऋषि का बेटा और ऋषि का पोता कहलाऊं (विश्वामित्रस्तपस्तेपे नानृषिः स्यामिति। तत्र भवानृषिः संपन्नः। स पुनस्तपस्तेपे नानृषेः पुत्रः स्यामिति। तत्र भवान् गाधिरपि ऋषिः संपन्नः। स पुनस्तपस्तेपे नानृषेः पौत्रः स्यामिति। तत्र भवान्कुशिकोऽपि ऋषिः संपन्नः—पाणिनि ४।१।१०४ पर पातंजल महाभाष्य) और गाधि और कुशिक को भी ऋषि बना लिया। यह वृद्धकुमारी न्याय की सी बात हुई। एक वृद्ध कुमारी ने इंद्र से वर मांगा कि मेरे पुत्र कांसे की थाली में बहुत घी दूध और भात खावें, यों उसने पति, पुत्र, गौ, अन्न सब एक ही वाक्य में गिन लिया (अथवा वृद्धकुमारीवाक्यवदिदं द्रष्टव्यं। तद्यथा वृद्धकुमारी इंद्रेणोक्ता वरं वृणीष्वेति सा वरमवृणीत पुत्रा मे बहुक्षीरघृतमोदनं कांस्यपात्र्यां भुंजीरन्निति। न च तावदस्याः पतिर्भवति कुतः पुत्राः कुतो वा गावः कुतो धान्यं। तत्रानया एकवाक्येन पतिः पुत्रा गावः धान्यमिति सर्वं संगृहीतं भवति एवमिहापि···पाणिनि ८।२।३ पर पातंजल महाभाष्य)

(११) महाभारत वनपर्व १०५—१०६, (समाख्यातः सगरो···पुत्रत्वे कल्पयामास समुद्रं वरुणालयम् १०७।२७), भागवत ८।८-६। (सगरश्चक्रवर्त्यासीत्सागरो यत्सुतैः कृतः ८।८।५)। भागवत की वंशावली में सगर इक्ष्वाकु से ३१ वां पुरुष है।

जनक[१४] ने पाया । कृष्ण के जो लोकोत्तर कर्म प्रसिद्ध हैं उन्हें करने में उसके पूर्वज शूर[१५] आदि असमर्थ थे । इसलिए न तो अवस्था प्रधान है, न काल, लोक में कोई कभी श्रेष्ठ हो जाता है, राजाओं तथा ऋषियों के कई हितकारक कार्य हैं जो पुरखाओं से न हो सके और उनके पुत्रों ने कर दिखाए ।

कैसा उत्साहवर्धक वर्णन है ! 'कृतानि पुत्रैरकृतानि पूर्वैः' !!

इन सारे उदाहरणों को विचार कर देखते हैं तो जान पड़ता है कि इनमें उन महत्व के कार्यों का उल्लेख है जो पूर्वजों से न बन पड़े और उनके वंशधरों ने कर दिखाए । इससे यह परिणाम तो निकाल सकते हैं कि च्यवन वाल्मीकि का पिता, पितामह या पूर्वज था, किंतु यह नहीं कह सकते कि च्यवन ने गद्य या पद्य में रामायण लिखा था ।

प्राचीन काल में वाल्मीकि-रामायण के अतिरिक्त रामकथा के विषय के और भी पुराण, इतिहास, काव्य आदि रहे होंगे

---

(१४) च्यवनो जीवदानं च चकार भगवानृषिः । चकार जनको योगी वैद्यस्देहभञ्जनम् (ब्रह्मवैवर्त पुराण, ।।१६।१६)॥ जनक के ब्राह्मणों को योग सिखाने की कथा विष्णुपुराण में भी है ('आज' दैनिक पत्र, रविवार ता११।१२।२० की संख्या में बाबू भगवानदास का लेख) । शतपथ ब्राह्मण में कथा है कि जनक श्वेतकेतु आरुणेय, सोमशुष्म सात्ययज्ञि और याज्ञवल्क्य तीनों से अधिक अग्निहोत्र की जानकारी दिखाकर और याज्ञवल्क्य को यह कह कर कि तू भी इतनी इतनी बातें नहीं जानता, रथ पर बैठा आगे चला गया । इसपर उन दोनों ऋषियों ने कहा कि यह राजन्यबंधु (घृणावाचक शब्द, क्षत्रिय के लिये) हमसे बढ़कर बोल गया, इसे ब्रह्म विचार के लिये ललकारें क्या ? तब याज्ञवल्क्य ने उन्हें समझाया कि हम ब्राह्मण ठहरे, यह राजन्यबंधु, यदि इसे जीत लिया तो बड़ाई क्या और कहीं हार गए तो हमें लोग कहेंगे कि क्षत्रिय से हार गए । वे मान गए । उन्हें यों समझाकर याज्ञवल्क्य जनक के पीछे रथ दौड़ाकर गया । जनक ने पूछा कि अग्निहोत्र सीखने आया है ? याज्ञवल्क्य ने कहा 'हाँ, सम्राट्' । तब जनक ने उसे उपदेश देकर कहा कि इससे परे कुछ नहीं है । फिर जनक ब्राह्मण हो गया । (शतपथ ६।२।१—१०) ।

(१५) शूर वसुदेव के पिता थे ।

जिनमें वाल्मीकि-रामायण की कथा से कहीं कहीं भेद भी था। महाभारत की रामकथा में ही वाल्मीकि-रामायण से कुछ भेद हैं[१६]। कालिदास, भास और कुमारदास के काव्यों में रघुवंश की परंपरा वाल्मीकि से भिन्न है, पुराणों में भी भिन्न है[१७]। पतंजलि के महाभाष्य में 'एति जीवन्तमानन्दः' यह उदाहरण का टुकड़ा दो जगह[१८] आया है, और यह वाल्मीकि रामायण में भी है[१९]। किंतु यह साधारण कहावत है, यह नहीं कह सकते कि भाष्य में वाल्मीकि-रामायण से ही उद्धृत की गई है[२०]।

---

(१६) महाभारत वनपर्व, २७४-२९३। देखो पत्रिका भाग २, पृ० १२७।

(१७) नागरीप्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग १ पृष्ठ १०१ टिप्पण ४।

(१८) पाणिनि ३।३।१२ और ३।१।६७ पर महाभाष्य।

(१९) कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मा। एति जीवंतमानंदो नरं वर्षशतादपि (सुंदरकांड ३४। ६) युद्धकांड में यही श्लोक 'प्रतिभाति माम्' पाठांतर से है (युद्धकांड १२६। २)

(२०) महाभाष्य के टुकड़ों से यह अनुमान करना कि महाभाष्य के पहले वे ग्रंथ विद्यमान थे जिनमें वे टुकड़े अब श्लोकरूप से मिलते हैं बड़े खतरे में पड़ना है। 'व्यक्तवाचां समुच्चारणे (पाणिनि १। ३। ४८)' के महाभाष्य में उदाहरण दिया है—वरतनु संप्रवदंति कुक्कुटाः। यह शाकटायन के उणादि सूत्रों की उज्ज्वलदत्त रचित टीका में भी है। रायमुकुट कृत अमरकोश की टीका पदचंद्रिका में यह टुकड़ा 'भारवि' का कहा गया है किंतु भारवि के किरातार्जुनीय में यह खंड या इसका पूरा श्लोक नहीं है। (भंडारकर की सन् १८८३-४ की रिपोर्ट में पंडित दुर्गाप्रसाद जी का परिशिष्ट)। क्षेमेंद्र ने अपनी औचित्य-विचार-चर्चा में 'अयि विजहीहि दृढोपगूहनं त्यज नवसंगमभीरु वल्लभे (मम)। अरुणकरोद्गम एष वर्तते वरतनु संप्रवदंति कुक्कुटाः' यह पूरा श्लोक कुमारदास का बताया है किंतु जानकीहरण में इसका पता नहीं। छंदोमंजरी में यह श्लोक भारवि का कहा गया है। वर्धमान के गणरत्नमहोदधि में इस श्लोक का प्रथम चरण दिया है (एगलिंग का संस्करण, पृष्ठ १६)। व्यास की एक पोथी में पूरा श्लोक मिलता है (वरेंद्र रिसर्च सोसाइटी का संस्करण पृष्ठ १२२, टिप्पण)। काशिका की टीका पदमंजरी में पूरा श्लोक यों

महाभाष्य में एक जगह रामकथा के संबंध के दो श्लोक दिया है—अपनय पादसरोजसंकतः शिथिलय बाहुलतां गलात्ताद् । च वदनेंशुकमाकुलीकृतं वरतनु संप्रवदंति कुक्कुटाः (शेषगिरि की रिपोर्ट, सन् १८९३-९४, पृ० १७-१८) तो क्या पतंजलि को कुमारदास या भारवि के पीछे का ठहराया जाय ? प्रत्यक्ष तो यह है कि भाष्य के उदाहरणों की समस्यापूर्तियाँ पीछे की गई हैं, भाष्य में किसी उस समय प्रचलित काव्य का प्रतीक दिया है जो या तो स्वतंत्र काव्य हो, या भट्टिकाव्य का सा उदाहरण-मय काव्य हो ।

ऐसे ही 'अनुवादे चरणानाम् (पाणिनि २।४।३)' के महाभाष्य में 'उदगात्कठकालाप' प्रत्यष्ठात्कठकौथुमम्' दिया है । वही वहीं की काशिका में भी उद्धृत है । भट्ट भौमक के रावणार्जुनीय काव्य में यह अर्ध श्लोक है । तो क्या महाभाष्यकार भट्ट भौमक से भी अर्वाचीन हैं ? बात तो यह है कि भाष्यकार ने किसी अपने समय के उदाहरणमय काव्य से यह अंश उद्धृत किया, रावणार्जुनीयकार ने भी उसे ज्यों का त्यों भाष्य उद्धृत कर लिया ।

भाष्यकार से पहले भी भट्टिकाव्य के भैया या दादा काव्य बन चुके थे जिनसे भाष्यकार ने जहाँ तहाँ उद्धृत किया है (स्तोष्याम्यहं पादिकमौदवाहिं इत्यादि) । इसी 'एति जीवंतमानंदः' को लीजिए । वैयाकरण काशिकाकार तो कदाचित् अपने शास्त्र के संकेत को जानते थे कि भाष्यकार ने यह अवतरण कहां से दिया है, काशिका की कुछ प्रतियों में तो यही रामायणवाला श्लोक दिया है, और कुछ में इसका पाठ यह है—एति जीवंतमानंदो नरं वर्ष-शतादपि । जीव पुत्रक मामैवं तपः साहसमाचर । इसके अर्थ से मालूम होता है कि यह रामायण का नहीं है, कोई पिता संसार से दुखी होकर तपस्या के लिए जाते हुए पुत्र को रोक रहा है जैसे मेना ने पार्वती को रोकना चाहा था । यों ही पाणिनि १।२।२४ पर महाभाष्य में यह उदाहरण दिया है—

सुसूक्ष्मजटकेशेन सुनताजिनवाससा ।

इसका काशिका की एक प्रति में तो पूरा पाठ है—

सुसूक्ष्म०—। समंतशितिरंध्रेण द्वयोर्वृत्तौ न सिद्ध्यति ।

इससे तो जान पड़ता है कि यह किसी व्याकरण के उदाहरणकारिकामय ग्रंथ से है, किंतु दूसरी प्रति का पाठ है—

सुसूक्ष्मजटकेशेन मकिनाजिनवाससा ।
पुत्री पर्वतराजस्य कुतो हेतोर्विवाहिता ॥

इससे जान पड़ता है कि यह किसी शिवपार्वतीपरिणय या शिवपार्वती के पुराने 'ब्याहले' का श्लोक है ।

मिलते हैं[२१] जो वाल्मीकि-रामायण में नहीं हैं, संभव है कि वे किसी और रामकथाविषयक काव्य में से हों, यह भी संभव है कि वे किसी भट्टिकाव्य के ढंग के प्राचीन उदाहरण-मय काव्य में से हों, क्योंकि इनमें उपसर्गसहित √स्था के प्रयोग के दो भिन्न अर्थों का[२२] विवेचन किया गया है।

यों रामकथासंबंधी अनेक प्राचीन काव्यों के होते हुए भी वाल्मीकि के रामायण के पहले च्यवन का रामायण था ऐसा मानने का कोई कारण अश्वघोष के उद्धृत प्रतीक में नहीं है।

कई श्लोक महाभारत, मनुस्मृति और धम्मपद में, कई महाभारत और रामायण में एक ही मिल जाते हैं, वहाँ कहना कठिन है कि किसमें किससे लिया गया है।

(२१) उपान्मंत्रकरणे (पाणिनि १।३।२५) पर—

बहूनामप्यचित्तानामेको भवति चित्तवान्।
पश्य वानरसैन्येऽस्मिन्यदर्कमुपतिष्ठते॥
मैवं मंस्थाः सचित्तोयमेषोऽपि हि यथा वयम्।
एतदप्यस्य कापेयं यदर्कमुपतिष्ठति॥

(२२) उपतिष्ठति—सामने खड़ा होता है, उपतिष्ठते—पूजा करता है।

सभा द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें।

ज्ञान-योग

सूर्यकुमारी पुस्तकमाला की पहली पुस्तक

इसमें सुप्रसिद्ध स्वामी विवेकानंद के ज्ञान-योग संबंधी समस्त व्याख्यानों का सुंदर हिंदी अनुवाद है। इसका मूल पाठ मायावती संस्करण से मिलाया गया है। इसमें धर्म्म की आवश्यकता, मनुष्य की वास्तविक प्रकृति, माया और ईश्वर की भावना, ईश्वर सब में है, आत्मा की स्वतंत्रता, सृष्टि, दृश्य और वास्तव ब्रह्म आदि विषयों पर बहुत ही महत्वपूर्ण और शिक्षाप्रद सोलह व्याख्यानों का संग्रह है। गढ़ धार्म्मिक बातों का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को इसका अध्ययन तथा संग्रह करना चाहिए। पौने चार सौ पृष्ठों की और सुनहरी जिल्दवाली प्रति का मूल्य केवल २॥) रु०।

देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला की पुस्तकें।

पहली पुस्तक

फाहियान

पाँचवीं शताब्दी के आरंभ में चीन से फाहियान नामक जो चीनी बौद्ध यात्री इस देश में भ्रमण करने आया था, उसी का यह यात्रा-विवरण है। इसे पढ़ने से उस समय की राजनीतिक तथा सामाजिक अवस्था का बहुत कुछ ज्ञान होता है। इसके आरंभ में ६४ पृष्ठ का एक उपक्रम भी दिया गया है जिसमें खोज-संबंधी अनेक महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त स्थान स्थान पर जो टिप्पणी दिए गए हैं, उनसे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। कई एक अंगरेज़ ग्रंथकारों ने अनेक स्थानों पर इस यात्रा-विवरण के संबंध में जो भूलें की हैं, उनका भी बहुत योग्यता के साथ संशोधन किया गया है। यह इतिहास-प्रेमियों के बड़े काम की चीज़ है। मूल्य १॥) रु०।

दूसरी पुस्तक

सुंगयुन

यह चीनी बौद्ध यात्री चीन की महारानी के आज्ञानुसार सन् ५१७ में महायान की पुस्तकों की खोज में भारत आया था। इसने अपना जो यात्रा-विवरण लिखा था, उसी का यह हिंदी अनुवाद है। इसमें भी प्रायः वे सभी विशेषताएँ हैं जो उक्त पुस्तक फाहियान में हैं। अतः यह भी प्रत्येक इतिहास-प्रेमी तथा विद्या-व्यसनी के पुस्तकालय में मुख्य स्थान पाने के योग्य है। इसकी सुंदर जिल्द बँधी हुई है और यह बढ़िया कागज पर छपी है। मूल्य १) रु०।

Printed by Bishweshwar Prasad, at The Indian Press, Ltd., Benares-Branch.

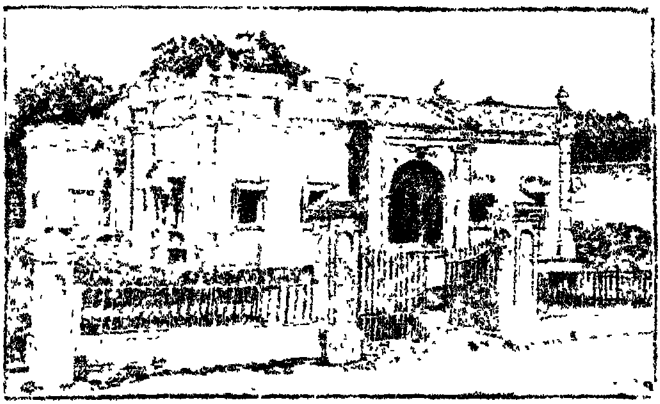
नागरीप्रचारिणी पत्रिका

अर्थात्

प्राचीन शोधसंबंधी त्रैमासिक पत्रिका

[नवीन संस्करण]

भाग २—अंक ३



संपादक

रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा

चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी, बी० ए०

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित

कार्तिक, संवत् १९७८] [मूल्य प्रति संख्या—एक रुपया

१३—पुरानी हिंदी (३)।

[लेखक—पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बी. ए., अजमेर]

पिछले अंक में कुमारपालप्रतिबोध (सं० १२४१) में से उस समय की हिंदी के नमूने दिए गए हैं। इस लेख में उससे पीछे चलना चाहिए। हेमचंद्र ने अपने कुमारपालचरित में जो रचना स्वयं की है और उसने अपने व्याकरण के अपभ्रंश-विषयक विभाग में जो अपने से पहले की कविता उदाहरण स्वरूप दी है वह इस लेख का विषय होना चाहिए था। हेमचंद्र का व्याकरण सिद्धराज जयसिंह की मृत्यु (सं० ११९९) के पूर्व किसी समय समाप्त हो गया था और हेमचंद्र की मृत्यु सं० १२२९ में हुई। किंतु उसका विवेचन बहुत बड़ा है, पत्रिका की इस संख्या में आ नहीं सकता। वह चौथे अंक में संपूर्ण प्रकाशित किया जायगा। इस संख्या में इस विषय का अनध्याय न हो इसलिये कुछ और बातें पुरानी हिंदी कविता के बारे में पाठकों को अर्पित की जाती हैं।

(१) माइल्ल धवल के पहले का दोहा ग्रंथ।

दिगंबर जैनों के यहाँ एक ग्रंथ बृहत् नयचक्र के नाम से प्रसिद्ध है। उसके कर्ता श्रीदेवसेन मुनि कहे जाते हैं, किंतु जैन इतिहास और साहित्य के विद्वान् शोधक नाथूरामजी प्रेमी ने सिद्ध किया है[१] कि इसका नाम 'दव्वसहावपयास' अर्थात् द्रव्यस्वभावप्रकाश है और इसका वास्तव कर्ता माइल्ल धवल है। माइल्ल धवल भी इसका कर्ता नहीं है, गाथा कर्ता है। वह स्वयं लिखता है कि पहले 'दव्व सहावपयास' दोहाबंध में देखा जाता है। उसे सुनकर किसी शुभंकर महाशय ने हँसकर कहा कि यहाँ अर्थ सोहता नहीं, इसे गाथाबंध से कह दो। तब माइल्ल धवल ने उसे गाथाबंध से रच दिया।

---

(१) जैनहितैषी, भाग १४, अंक १०—११, जुलाई अगस्त १९२०, पृ० ३०९-३१०।

१३—पुरानी हिंदी (३)।

[लेखक—पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बी. ए., अजमेर]

पिछले अंक में कुमारपालप्रतिबोध (सं० १२४१) में से उस समय की हिंदी के नमूने दिए गए हैं। इस लेख में उससे पीछे चलना चाहिए। हेमचंद्र ने अपने कुमारपालचरित में जो रचना स्वयं की है और उसने अपने व्याकरण के अपभ्रंश-विषयक विभाग में जो अपने से पहले की कविता उदाहरण स्वरूप दी है वह इस लेख का विषय होना चाहिए था। हेमचंद्र का व्याकरण सिद्धराज जयसिंह की मृत्यु (सं० ११९९) के पूर्व किसी समय समाप्त हो गया था और हेमचंद्र की मृत्यु सं० १२२९ में हुई। किंतु उसका विवेचन बहुत बड़ा है, पत्रिका की इस संख्या में आ नहीं सकता। वह चौथे अंक में संपूर्ण प्रकाशित किया जायगा। इस संख्या में इस विषय का अनध्याय न हो इसलिये कुछ और बातें पुरानी हिंदी कविता के बारे में पाठकों को अर्पित की जाती हैं।

(१) माइल्ल धवल के पहले का दोहा ग्रंथ।

दिगंबर जैनों के यहां एक ग्रंथ बृहत् नयचक्र के नाम से प्रसिद्ध है। उसके कर्ता श्रीदेवसेन मुनि कहे जाते हैं, किंतु जैन इतिहास और साहित्य के विद्वान् शोधक नाथूरामजी प्रेमी ने सिद्ध किया है[1] कि इसका नाम 'दव्वसहावपयास' अर्थात् द्रव्यस्वभावप्रकाश है और इसका वास्तव कर्ता माइल्ल धवल है। माइल्ल धवल भी इसका कर्ता नहीं है, गाथा कर्ता है। वह स्वयं लिखता है कि पहले 'दव्वसहावपयास' दोहाबंध में देखा जाता है। उसे सुनकर किसी शुभंकर महाशय ने हँसकर कहा कि यहां अर्थ सोहता नहीं, इसे गाथाबंध में कह दो। तब माइल्ल धवल ने उसे गाथाबंध में रच दिया।

(१) जैनहितैषी, भाग १४, अंक १०—११, जुलाई अगस्त १९२०, पृ० ३०५-३१०।

दव्वसहावपयासं दोहयबंधेन आसि जं दिट्ठं ।
तं गाहाबंधेण य रइयं माइल्लधवलेण ॥
सुणिऊण दोहरत्थं सिग्घं हसिऊण सुहंकरो भणइ ।
एत्थ ण सोहइ अत्थो गाहाबंधेन तं भणह ॥

यह 'दव्वसहावपयास' गाथा में अर्थात् प्राकृत में है। इसमें दो गाथाओं में णयचक्क अर्थात् 'नयचक्र' नामक ग्रंथ को और तीसरी में नयचक्र के कर्ता देवसेनदेव गुरु को नमस्कार लिखा है। देवसेन के लिये कवि ने यहाँ 'गुरु' शब्द का प्रयोग किया है और एक दूसरी गाथा में लिखा है कि श्रीदेवसेनयोगी के चरणों के प्रसाद से यह (मुझे) प्राप्त हुआ। इससे स्पष्ट है कि नयचक्र (जो लघुनयचक्र कहलाता है) के कर्ता देवसेनसूरि से माइल्ल धवल का निकटस्थ गुरु-शिष्य संबंध था, परंपरागत नहीं। देवसेनसूरि ने 'भावसंग्रह' ग्रंथ में अपने को श्रीविमलसेन गणधर का शिष्य कहा है और 'दर्शनसार' के अंत में लिखा है कि धारानगरी में निवास करते हुए पार्श्वनाथ के मंदिर में संवत् ९९० में माघ शुदि दशमी को यह ग्रंथ रचा। यह संवत् विक्रम संवत् ही है क्योंकि "धारा (मालवा प्रांत) में यही प्रचलित था और दर्शनसार की अन्य गाथाओं में जहाँ जहाँ संवत् का उल्लेख दिया है वहाँ वहाँ "विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स" पद देकर विक्रम संवत् ही प्रकट किया गया है[1]। यही और इससे २०।३० वर्ष आगे तक ही माइल्ल धवल का काल है।

माइल्ल धवल के इस कथन पर ध्यान दीजिए कि (१) दव्वसहावपयास 'दोहयबंध' में 'दिट्ठ' था, (२) 'दोहरत्थ' को सुनकर हँसकर शुभंकर ने कहा कि इसमें अर्थ नहीं सोहता, इसे गाहाबंध में कहो, (३) माइल्ल धवल ने इसे गाहाबंध में रच दिया। प्रबंधचिंतामणि वाले लेख के उपक्रम में दिखाया गया है कि 'गाथा' प्राकृत का उपलक्षण है और दोहा अपभ्रंश या पुरानी हिंदी का, पुरानी हिंदी विद्या 'दोहाविद्या' कहलाती थी, और छंद चाहे दोहा हो चाहे

(१) नाथूराम प्रेमी, वहीं, पृ० ३०९ ।

सोरठा, 'दोहाविद्या' में आ जाता था, इसलिये दोहयबंध = पुरानी हिंदी और गाहाबंध = प्राकृत। यदि दोहयबंध में भी वही प्राकृत भाषा होती, केवल छंद का भेद होता तो शुभंकर को हँसने, नाक चढ़ाने और यह कहने की क्या आवश्यकता थी कि यहाँ अर्थ नहीं सोहता, गाथाबंध में भण दो। **दोहरत्थ** को सुनकर उसने **शीघ्र** यह कहा। इसका आशय यही है कि शुभंकर को यह बात खटकी कि धर्मविषयक ग्रंथ इस गँवारी बोली में क्यों है, क्यों नहीं यह अपने और धर्मग्रंथों की पवित्र भाषा प्राकृत में हो। इसी लिये शुभंकर के कहने से माइल्ल धवल ने पुरानी हिंदी के काव्य का प्राकृतानुवाद कर दिया। **विक्रम की दशम शताब्दी के अंत में दोहाबद्ध पुरानी हिंदी के काव्य के होने का यह प्रमाण है।** माइल्ल धवल ने अपने मूलग्रंथ का कृतज्ञतापूर्वक उल्लेख तो किया, उन पंडितों की तरह नहीं जिन्हें तुलसीदास जी के रामचरितमानस के से 'भाषानिबंधमतिमंजुल' का सहन न हुआ कि 'भाखा' में अलौकिक चमत्कारपूर्ण ग्रंथ कहाँ से हो जाय, जिन्होंने कल्पित "शंभु" कवि का कल्पित संस्कृत रामचरितमानस बनाकर भद्दा जाल रचा और यह कहने का साहस किया कि तुलसीदासजी ने इसकी 'भाखा' की है[1]।

(२) खड़ी बोली-म्लेच्छभाषा।

एक समय मैंने हिंदी के एक वैयाकरण मित्र से कहा था कि खड़ी बोली उर्दू पर से बनाई गई है, अर्थात् हिंदी मुसलमानी भाषा है। यह हँसी में कहा था किंतु मेरे मित्र को बुरा लगा। मेरे कहने का तात्पर्य यह था कि हिंदुओं की रची हुई पुरानी कविता जो मिलती है वह ब्रजभाषा या पूर्वी बैसवाड़ी, अवधी, राजस्थानी,

(१) कहते हैं कि यह काव्य, जो वास्तव में रामचरितमानस से अनुवाद किया गया है, इटावे में मिला। पं० बलभद्रप्रसाद ने इसे छपवाया भी था। देखो ग्रियर्सन, ज० रा० ए० सो० जनवरी, १९१३; सीताराम, वहीं, अप्रैल, १९१४।

गुजराती आदि ही मिलती है अर्थात् 'पड़ी बोली' में पाई जाती है। खड़ी बोली या पक्की बोली या रेख़ता या वर्तमान हिंदी के आरंभ काल के गद्य और पद्य को देखकर यही जान पड़ता है कि उर्दू रचना में फ़ारसी अरबी तत्सम या तद्भवों को निकालकर संस्कृत या हिंदी तत्सम और तद्भव रखने से हिंदी बना ली गई है। इसका कारण यही है कि हिंदू तो अपने अपने घरों की प्रादेशिक और प्रांतीय बोली में रँगे थे, उसकी परंपरागत मधुरता उन्हें प्रिय थी। विदेशी मुसलमानों ने आगरे दिल्ली सहारनपुर मेरठ की 'पड़ी' भाषा को 'खड़ी' बनाकर अपने लश्कर और समाज के लिये उपयोगी बनाया, किसी प्रांतीय भाषा से उनका परंपरागत प्रेम न था। उनकी भाषा सर्वसाधारण या राष्ट्रभाषा हो चली, हिंदू अपने अपने प्रांत की भाषा को न छोड़ सके। अब तक यही बात है। हिंदू घरों की बोली प्रादेशिक है, चाहे लिखापढ़ी और साहित्य की भाषा हिंदी हो; मुसलमानों में बहुतों की घर की बोली खड़ी बोली है। वस्तुतः उर्दू कोई भाषा नहीं है, हिंदी की 'विभाषा' है, किंतु 'हिंदुई' भाषा बनाने का काम मुसलमानों ने बहुत कुछ किया, उसकी सार्वजनिकता भी उन्हींकी कृपा से हुई, फिर हिंदुओं में जागृति होने पर उन्होंने हिंदी को अपना लिया। हिंदी गद्य की भाषा लल्लूलाल के समय से आरंभ होती है, उर्दू गद्य उससे पुराना है; खड़ी बोली कविता हिंदी में नई है; अभी अभी तक ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली का झगड़ा चलही रहा था, उर्दू पद्य की भाषा उसके बहुत पहले हो गई है। पुरानी हिंदी गद्य और पद्य—खड़े रूप में—मुसलमानी हैं। हिंदू कवियों का यह संप्रदाय रहा है कि हिंदू पात्रों से प्रादेशिक भाषा कहलवाते थे और मुसलमान पात्रों से खड़ी बोली।

(१) पत्रिका भाग १ पृष्ठ १७८-६ में राव अमरसिंह के सलावतखाँ के मारने के दो कवित्त उद्धृत हैं। वहाँ इस विषय की टिप्पणी भी दी है। वहाँ शाहजहाँ की उक्ति का कवित्त तो इस प्रकार की भाषा में है कि—

बखम मांह मारी थी कि रेख में सुधारी थी
हाथ से उतारी थी कि साँचे हू में ढारी थी ।
सेख जी के दर्द मांहि गर्द सी जमाई मर्द
पूरे हाथ साँधी थी कि जोधपुर सँवारी थी ॥
हाथ में हटक गई गुही सी गटक गई
फेंफड़ा फटक गई थाँकी बाँकी तारी थी ।
शाहजहाँ कहे यार सभा मांहि बार बार
अमर की कमर में कहाँ की कटारी थी ॥

कवि की अपनी उक्ति एसी है—

साहि को सलाम करि मार्यो थो सलावत खां
दिल्ला गयो मरोर सूर वीर धीर आगरो ।
मीर उमरावन की कचेड़ी धुजाय सारी
खेलत सिकार जैसे मृगन में बागरो ।
कहे रामदीन गजसिंह के अमरसिंह
राखी रजपूती मजबूती नव नागरो ।
पाव सेर लोह से हलाई सारी पातसाही
होती समसेर तो छिनाय लेतो आगरो ॥

(२) भूषण की भाषा से सब परिचित हैं । वह हिंदू कविता की टकसाली भाषा, पड़ी भाषा, ब्रजभाषा, का प्रयोग करता है किंतु शिवाबावनी में जहाँ 'मुगलानियाँ मुखन की लालियाँ' के मलिन होने और बेगमों की विपद का वर्णन है उन छंदों में कुछ छींटा मुसलमानी अर्थात् खड़ी बोली का स्वाभाविक रंग लाने के लिये दिया है । मिलाओ[1]—

(क) बाजि गजराज सिवराज सैन साजत ही०
(ख) कत्ता की कराकन चकत्ता को कटक काटि०
(ग) ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहन वारी०
(घ) उतरि पलंग ते न दियो ना धरा में पग०
(ङ) अंदर ते निकसी न मंदर को देख्यो द्वार०
(च) अतर गुलाब रस चोआ घनसार सब०
(छ) सोंधे के अधार किसमिस जिनको अहार०

(१) हिंदी साहित्य संमेलन का सस्करण, पृ० १२१—१२२ ।

इन छंदों में कई शब्द, विशेषत: क्रियापद ध्यान देने योग्य हैं। विस्तार-भय से पूरे छंद नहीं दिए जाते क्योंकि वे प्रसिद्ध हैं। अंतिम छंद का अंतिम चरण है—

'तोरि तोरि आछे से पिछौरा सों निचोरि मुख कहें सब (यहाँ तक कवि की भाषा) कहाँ पानी मुकतों में पाती हैं (यह पात्र की भाषा)

एक यह कवित्त भी देखिए जिसमें भूषण की उक्ति और परोक्ति का मिश्रण है—

> अफ़ज़ल खां को जिन्होंने मयदान मारा
> मारा बीजापुर गोलकुंडा मारा जिन आज हैं।
> भूषण भनत फरासीस त्यों फिरंगी मारि
> हबसी तुरक डारे उलटि जहाज़ हैं।
> देखत में खान रुस्तम जिन खाक किया
> सालति सुरति आजु सुनी जो अवाज हैं।
> चौंकि चौंकि चकता कहत चहुधां ते यारो
> लेत रहो खबर कहाँ लौं शिवराज हैं॥

(३) भानुचंद्र नामक जैन विद्वान् अकबर के यहाँ थे। उन्होंने कादंबरी की टीका लिखी है (पत्रिका भाग १ पृ० २३६)। स्वरचित विवेकविलास तथा भक्तामर स्तोत्र की टीका में उन्होंने अपना एक विशेषण 'सूर्यसहस्रनामाध्यापक:' अर्थात् सूर्यसहस्रनाम का पढ़ानेवाला भी दिया है। यह प्रसिद्ध है कि बादशाह अकबर सूर्य की ओर मुँह करके सूर्य के एक हज़ार एक नाम पढ़ा करता था[1]। यह सहस्रनाम स्तोत्र भानुचंद्र ने संग्रह किया और अकबर को पढ़ाया था। ऋषभदास कवि (सं० १६८५) अपने हीरविजयसूरिरास (गुजराती) में लिखता है कि—

> पातशाह काशमीरें जाय भाणचंद पूंठे पणि थाय।
> पूछइ पातशा ऋषि ने जोइ सुदा निजीक कोने बसी होइ।
> भाणचंद बोल्या ततखेव नजीक तरणी जागतो देव।
> ते समर्प्यो करि बहु सार तस नामिं ऋद्धि अपार।

(१) अलबदाउनी, लो का अनुवाद, जिल्द २ पृ० ३३२।

हुओ हुकम ते तेखीवार संभलावे नाम हजार ।
आदित्य ने अरक अनेक आदिदेव भी चवारे विवेक ॥

जैनाचार्य प्रसिद्ध शोधक विजयधर्मसूरिजी महाराज के संग्रह में इस सूर्यसहस्रनाम की एक प्रति है जिसके अंत में लिखा है कि अकबर इसे रोज़ सुनते थे[1] । अस्तु । यह भानुचंद्र फिर जहाँगीर के राज्य में उसके पास आया । जहाँगीर ने उसे कहा कि जैसे बाल्यावस्था में तुम मुझे धर्मोपदेश किया करते थे[2] वैसे अब मेरे पुत्र को पढ़ाओ । इसका वर्णन कवि लिख तो पुरानी गुजराती (पड़ी) में रहा है, किंतु जहाँगीर की उक्ति उसने 'खड़ी बोली' में दी है—

मिल्या भूपनइं भूप आनंद पाया
भलइं तुमे भलइं अहीं भाणचंद आया ।
तुम पासिथिइं मोहि सुख बहुत होवइ
सहरिआर भणवा तुम वाट जोवइ ॥
पढाओ अम्ह पूत कूं धर्मबात
जिउं अवल सुणाता तुम्ह पासि तात ।
भाणचंद कदीम तुम हो हमारे
सब ही थकी तुम्ह हो हम्महि पियारे[3] ॥

(४) पूर्वोक्त कवि ऋषभदास ने श्रीहीरविजयसूरिरास में श्रीहीरविजयसूरिजी तथा अकबर की मुलाकात का वर्णन किया है जो गुजराती में है । अकबर कह रहा है कि आगरे से अजमेर तक मैंने

---

(१) अमुं श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रं प्रत्यहं प्रणमत्पृथ्वीपतिकोटीरकोटिसंघट्टितपदकमलत्रिखंडाधिपतिदिल्लीपतिपातिसाहिश्रीअकब्बरसाहिजलालदीनः प्रत्यहं शृणोति सोऽपि प्रतापवान् (मुनिराज विद्याविजय रचित सूरीश्वर अने सम्राट् पृ० १४६)

(२) भानुचंद्र को उपाध्याय पदवी बादशाह के सामने लाहौर में दी गई थी । उसने जहाँगीर और दानियाल को जैन शास्त्रों का अभ्यास कराया था (वही, पृ० १९३)

(३) ऐतिहासिक रासमंग्रह भाग ४, पृ० १०१ ।

खंभे बनवाए हैं[1] । आपने देखे होंगे, प्रत्येक पर पाँच पाँच सौ हरिणों के सींग मैंने लगवाए हैं । इस प्रसंग को कवि यों लिखता है—

देखो हजूरे हमारे तुम्ह एक सो च्यद (ह) कीए थे हम्म ।
अकेके सिंह पंच से पंच पाति न करता नहि बलबंच ॥

(५) सं० १६०२ की कार्तिक शुक्ल एकादशी को भट्ट नारायण ने पव्येक पंडित के पुत्र केदार के बनाए वृत्तरत्नाकर पर टीका लिखी । उसने अपने पूर्वपुरुषों का यह पता दिया है—भट्ट नागनाथ, (पुत्र) चांगदेव भट्ट, (पुत्र) भट्ट गोविन्द रामभक्त, (पुत्र) भट्ट रामेश्वर, विश्वामित्र वंश (गोत्र) रूपी समुद्र का चंद्र, (पुत्र) ग्रंथकर्ता नारायण, काशी में । वह लिखता है कि जाति, वृत्त दोनों प्रकार का छंद केवल संस्कृत में ही नहीं, कवि की इच्छा से प्राकृत, देशभाषाओं में भी होता है । प्राकृत के कुछ उदाहरण देकर उसने भाषा के उदाहरण दिए हैं ।

(क) महाराष्ट्र भाषा में उपजाति छंद का उदाहरण—

अगा मुरारी भवदु:ख भारी कामादि बैरी मन हें थरारी ।
मी मूढ देवा न करींच सेवा माझा कुठावां परितां करावा ॥

(हे मुरारी, भव दुःख भारी हैं, काम आदि बैरी हैं, इनसे मन काँपता है, हे देव, मुझ मूढ ने आपकी सेवा न की, मेरी दुरवस्था को दूर कर)

(ख) गुर्जरभाषा में स्रग्विणी छंद का उदाहरण—

वित्ततें संचवूं युक्ततें भोगवूं अग्नितें होमवूं विप्रतें आपवूं ।
पापतें खंडवूं कामतें दंडवूं पुण्यतें संचवूं रामतें सेववूं ॥

(वित्त का संचय करो, उसे जुगत से भोगो, अग्नि में होमो, ब्राह्मण को दो,

---

(१) अकबर प्रतिवर्ष अजमेर में ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की ज़ियारत को जाता था । मार्ग में जहाँ पड़ाव थे वहाँ महल और कोस कोस पर खंभा और कुआँ बनवाया था (अलबदाऊनी, लो का अनुवाद जिल्द २ पृ० १७६) । अब भी स्थान स्थान पर कई खंभे या उनके भग्नावशेष दिखाई देते हैं । एक जयपुर से आमेर जाती सड़क पर है, दूसरा जयपुर से कुछ ही दूर पूर्व को रेल के किनारे दिखाई देता है । इनपर सींग लगाने की बात जैन ग्रंथों में ही है । ये चरकर के रास्ता न भूलने के लिये मार्गचिह्न और कूच का नगारा बजाने के लिये थे ।

पाप का खंडन करो, काम को दंडित करो, पुण्य संचय करो, राम को सेवो। यदि 'तें' विभक्ति न मानी जाय और मध्यमपुरुष का सर्वनाम माना जाय तो 'तुझ से वित्त संचय किया जाय' इत्यादि अर्थ होगा।)

(ग) कान्यकुब्जभाषा में वसंततिलका का उदाहरण—

कन्दर्परूपजवने तुललीन कृष्ण
से कोप काम हमही बहु पीर छोडी।
तो भेटिके विरह पीर नसाउ मारी
यँ भाँति दूति पठई कठिलात गोपी॥

(बहुत अस्पष्ट है। काशी के संस्कृतज्ञ पंडित ने इसे कान्यकुब्जभाषा कहा है, वस्तुतः यह व्रजभाषा और पूर्वी का मिश्रण अर्थात् प्रचलित 'पड़ी बोली' है: आशय यह जान पड़ता है कि काम के रूप को जीतने वाले कृष्ण! अपने में लीन गोपी को बहुत पीड़ा देकर कोप करके तैंने क्यों छोड़ा? मिलके मेरी विरह पीड़ा नष्ट कर—यों दूतिका भेजी।)

(घ) म्लेच्छ और संस्कृत के संकर में मालिनी, किसी कवि का—

हरनयनसमुत्थज्वालवह्निजलाया
रतिनयनजलौघैः खाक बाकी बहाया।
तदपि दहति चेतो मामकं क्या करोंगी
मदनशिरसि भूयः क्या बला आगि लागी॥

(कामदेव की बात देखिए—पहले उसे शिवजी के तृतीय नेत्र की अग्नि-ज्वाला ने जला दिया, बाकी खाक रही थी, वह रति के आँसुओं से बह गई, तो भी वह मेरे चित्त को जलाता है? क्या करूँगी! न मालूम कामदेव के सिर पर फिर यह क्या बला की आग लगी, जल बहकर भी जी उठा!!)

कवि ने इसे म्लेच्छभाषा केवल खाक, बाकी और बला शब्दों पर से ही नहीं कहा है, इसकी खड़ी रचना पर से ऐसा लिखा है। संस्कृत के पंडित की दृष्टि में यह पक्की बोली म्लेच्छों की भाषा थी!!

१४—बूँदी का सुलहनामा।

[लेखक—पंडित प्रेमवल्लभ जोशी, एम. ए., बी. एस-सी., अजमेर]

राजपूताने के इतिहास में कई घटनाएँ ऐसी हैं जिनकी अभी ऐतिहासिक दृष्टि से छानबीन नहीं की गई। यों तो अभी राजपूत इतिहास लिखा ही नहीं गया और इसके अभाव से लेखकों के कार्य में बड़ी बाधा पड़ती है। बहुत स्थानों में अशुद्ध होने पर भी कर्नल टॉड का "राजस्थान" उच्च श्रेणी का ग्रंथ है और भावी लेखकों के लिये ऐतिहासिक सामग्री का एकमात्र विशाल भांडार है। वास्तव में जिन कठिनाइयों से और जिस समय में टॉड साहब ने यह ग्रंथ रचा उनपर विचार करने से यही कहना पड़ेगा कि उनका कार्य बहुत ही प्रशंसनीय है और इस ग्रंथ के लिये ऐतिहासिक संसार सदा के लिये उनका कृतज्ञ रहेगा।

ऐसा होने पर भी यह कहना अनुचित न होगा कि जो लेखक टॉड साहब के लेख को एकमात्र आधार मान किसी घटना को सच्चा कहें तो वे अपने पाठकों को भूल में डाल सकते हैं। टॉड ने ऐतिहासिक सामग्री का संग्रह किया। उस संग्रह में जिस राजस्थान ने स्वयं लिखित, या भाटों या चारणों द्वारा रचित जो कुछ अपना वर्णन पहुँचाया वह संमिलित कर लिया गया। जहाँ के लोगों की टॉड के पास अधिक रसाई थी अथवा जहाँ टॉड अधिक रहा वहाँ का वर्णन स्वभावतः बहुत कुछ विस्तार से संमिलित हुआ। सब के वर्णनों को मिलाकर एक दूसरे के विरोधी अंशों को काट-कर फलस्वरूप वास्तव इतिहास लिखने की न टॉड को आवश्यकता थी, न रुचि। न उस समय ऐसा करने के साधन भी अधिक थे। वास्तव में यदि टॉड साहब का वृत्तांत अन्य मुसलमानी लेखकों के

वृत्तांतों से मिलाया जाय अथवा उसकी वर्णित घटनाओं का *साधारण बुद्धि या ऐतिहासिक दृष्टि* से विवेचन किया जाय तो यह *निश्चय* होगा कि "राजस्थान" में संशोधन की बहुत गुंजाइश है।

इन संशोधन योग्य बातों में से अकबर के रणथंभोर के विजय का वर्णन तथा बूँदी का सुलहनामा भी है।

चित्तौड़ विजय के उपरांत अकबर ने रणथंभोर[1] जीतने का विचार किया। रणथंभोर का गढ़ अजमेर से पूर्व गंगापुर और सवाई माधोपुर के बीच स्थित है और मुसलमानी समय में यह बड़ा विख्यात था। इस सुदृढ़ दुर्ग को विजय करना कोई साधारण बात न थी। शाबान ९७६ हिजरी (फर्वरी, सन् १५६९ ई०) में बादशाह ने इस गढ़ की मोर्चाबंदी की और एक माह के भीतर किला मुगलों के हाथ आगया। इस समय के जितने मुसलमानी इतिहास हैं उनमें यह लिखा है कि बादशाह की गढ़ जीतने की प्रतिज्ञा सुन राव सुर्जन[2] हाड़ा ने, जो इस गढ़ का किलेदार और चित्तौड़ का जागीरदार था, हार मान ली और किला अकबर को सौंप दिया।

(१) अबुल फ़ज़ल ने अकबरनामे में रणथंभोर विजय का हाल यों दिया है[3]—"इस वक्त इस किले का अधिकारी राव सुर्जन हाड़ा था। उसने किले को कई तरह मज़बूत बनाया, उसमें खाने पीने का सामान जमा किया और लड़ाई की तय्यारी की। अपनी

(१) पुराना नाम रणस्तंभपुर है। कच्छवंश महाकाव्य के कर्ता ने वर्तमान उच्चारण 'रणतभँवर' से 'रणितभ्रमर' बनाया है। पंडितों के इस संस्कृतीकरण से कई पुराने नाम और के और हो गए हैं। स्टीन ने कश्मीर में ऐसे कई उदाहरण बताए हैं जहाँ पुराने इतिहास को भूलकर उच्चारण की सदृशता पर बिलकुल नया संस्कृत नाम बना लिया गया है। [सं०]

(२) सब मुसलमानी इतिहासकारों ने 'राय सुर्जन' लिखा है जिसे हमने बदल दिया है।

(३) एच० बेवरिज कृत अकबरनामे का अनुवाद, एशियाटिक सोसाइटी बंगाल से प्रकाशित, जिल्द २, पृ० ४९१—४९४।

बदगुमानी में इस पत्थर के टुकड़े (क़िले) पर बहुत भरोसा किया। वहाँ पहुँचते ही बादशाह अपने ख़ेमे से निकले और कुछ दरबारियों को साथ लेकर उन्होंने पहाड़ी का मुआइना फ़रमाया। हुक्म के मुताबिक़ बख़्शियों ने क़िले के चारों ओर मोर्चे बाँधे और मानिंद एक खौफ़नाक बाढ़ के शाही फ़ौज ने पहाड़ी को घेर लिया। क़िले के भीतर वालों का इस क़दर आना जाना बंद हो गया कि हवा तक अंदर नहीं जा सकती थी। सिपाही लोग बड़ी फुर्ती से तोपें चलाते थे। सुर्जन हाड़ा नाउम्मेद हो गया और उसने कुछ दरबारियों के मार्फ़त अपने लड़के दूदा और भोज को बादशाह के पास भेजा। बड़े बड़े हाकिमों के ज़रिये इनकी मुलाक़ात बादशाह से हुई और इन्होंने अपने पिता के लिये मुआफ़ी चाही.........सुर्जन बादशाह के पास हाज़िर हुआ और उसने किला सौंप दिया[1]......।

(२) आईने अकबरी के साथ ब्लाक-मैन साहब ने अकबर के दरबारियों का कुछ कुछ हाल कई ग्रंथों से संग्रह करके लिखा है। राव सुर्जन हाड़ा का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं[2] कि राव सुर्जन पहले राना (चित्तौड़) की नौकरी में था। उसने मुग़लों का मुक़ाबला किया क्योंकि वह अपने को रणथंभोर के भीतर बेख़तर समझता था। अकबर ने चित्तौड़ फ़तह करने के बाद रणथंभोर पर धावा किया। चूँकि किला एक माह से घिरा था और राव सुर्जन जीतने से नाउम्मीद हो चुके थे इसलिये उन्होंने अपने लड़के दूदा और भोज को अकबर के ख़ेमे में सुलह की दर्ख़्वास्त करने को भेजा। बादशाह ने उनकी पूरी ख़ातिर की और उनको ख़िलअत बख़्शी। जब ये लड़के तंबू के भीतर कपड़े पहनने गए तब उनका एक आदमी यह ख़ौफ़ खाकर कि इनसे दग़ा किया जा रहा है तलवार हाथ में ले शाही ख़ेमे की ओर भागा और उसने कई आदमियों को क़तल कर

(१) १८ मार्च, सन् १५६९ ई० ।

(२) आईने अकबरी, ब्लाकमैन का तर्जुमा, बंगाल एशियाटिक सोसाइटी से प्रकाशित, जिल्द १, पृ० ४०९ ।

दिया...लेकिन...नौकरों ने उसे मार डाला। चूँकि राव सुर्जन के लड़के बिलकुल बेगुनाह थे, इस घटना से बादशाह का उनके ऊपर ख्याल बिलकुल नहीं बदला और वे किले में वापस भेज दिए गए। राव सुर्जन के अर्ज़ करने पर हुसेन कुली खां किले के भीतर गए और राव सुर्जन को बादशाह के पास लिवा लाए। रणथंभोर शाही इलाके में मिला लिया गया। राव सुर्जन गढ़ कटंग[1] के किलेदार बनाए गए जहाँ से कि वे बीसवें साल चुनार को बदल दिए गए...”।

(३) ऐसा ही हाल अबदुल कादिर (अलबदायूनी) ने भी लिखा है[2]। वह कहता है कि “...रणथंभोर का किला घेर दिया। कुछ ही वक्त में साबात[3] तैयार किए गए जो कि किले के बहुत करीब

(१) गढ़ कंटक या गढकटंक, गोंडवान में, गढ़ प्रधान नगर और कटंक उसके पास एक स्थान है (अबुलफ़ज़ल)।

(२) मुन्तख़ाबुत् तवारीख़, डबल्यू० एच० लो साहब का तर्जुमा, बंगाल एशियाटिक सोसायटी से प्रकाशित, जिल्द, २, पृ० ११०—११।

(३) साबात—अकबर के चित्तौड़ विजय के वर्णन में 'साबात' का रोचक विवरण मिलता है—साबात हिंदुस्तान का ही खास युद्धसाधन है। यहां के दृढ़ किलों में तोपें, बंदूकें और युद्ध सामग्री बहुत होती है और साबात से ही वे लिए जा सकते है। साबात ऊपर से ढका हुआ एक चौड़ा रास्ता होता है जिसमें किले वालों की गोलियों से सुरक्षित रह कर हमला करनेवाले किले के पास तक पहुँच जाते हैं। अकबर ने दो साबात बनवाए। जो बादशाही डेरे के सामने थे वे इतने चौड़े थे कि उनमें दो हाथी और दो घोड़े चले जा सकें, ऊँचे इतने थे कि हाथी पर बैठा हुआ आदमी भाला खड़ा किए जा सके। जब साबात बनाये जा रहे थे तब राना के सात आठ हज़ार सवार और कई गोलंदाज़ों ने इन पर हमला किया। कारीगरों के बचाव के लिए गाय भैंस के मोटे चमड़े की छाजन थी तो भी इतने मरे कि ईंट पत्थर की तरह लाशें चुनी गईं। बादशाह ने किसी से बेगार न ली, कारीगरों को रुपये और दाम बरसा कर भरपूर मजदूरी दी। एक साबात किले की दीवाल तक पहुँच गया और इतना ऊँचा था कि दीवालें उससे नीची लखाती थीं। साबात (की चमड़े की छत) पर बादशाह के लिये बैठक थी कि वह अपने वीरों का करतब देखता रहे और युद्ध में भाग भी ले सके। अकबर स्वयं बंदूक लेकर बैठा वहां से मार भी

तक पहुँचे।······राव सुर्जन हाड़ा ने जब चित्तौर की हार, अपनी फ़ौज की हक़ीक़त व अपनी तक़दीर पर ख़्याल किया तो कई ज़र्मींदारों के बीच में पड़ने से अपने लड़के दूदा और भोज को बादशाह की ताज़ीम करने के लिये भेजा और ख़ुद पनाह माँगी। तब हुसेन कुली ख़ां आए और राव सुर्जन को यक़ीन दिलाकर बादशाह के पास ले गए। इसने क़िले की चाबी बादशाह की ख़िदमत में हाज़िर करदी···"।

(४) तारीख़ फरिश्ता में यों लिखा है[1] कि "सन् ९७६ हिजरी में अरशे असयानी (बादशाह) ने क़िले रनथंभोर की फ़तह की तैयारी की। जब बादशाह शिकार करते हुए रनथंभोर में पहुँचे··· ···और शाही फ़ौज ने उस क़िले को चारों तरफ़ से घेरकर आने जाने की राह बंद की और बादशाह के हुक्म से मदन[2] नामी पहाड़ी पर जो कि क़िले के क़रीब है चंद तोपें चढ़ाई गईं जैसा कि पहाड़ की ऊँचाई के कारण पहले कोई बादशाह न कर सका था, और तोप सर हुईं तब कितने ही मकान ख़राब और मिसमार हुए। राजा

कर रहा था। इधर सुरगें लगाई जा रही थीं और किले की दीवालों के पत्थर काटकर सेंध लग रही थी। (तारीखे अल्फ़ी, इलियट, जि० ५, पृ० १७१-२, संक्षिप्त)। साबात किले के दोनों ओर बनाए गए थे और ५ हज़ार कारीगर और खाती लगे थे। साबात एक तरह की दीवाल है जो किले से गोली की मार की दूरी पर खड़ी की जाती है और इसके तख़्ते बिना कमाए चमड़े से सब ढके तथा मजबूत बँधे होते हैं। उनकी रक्षा में किले तक कूचा सा बन जाता है। फिर दीवालों को तोपों से मारते हैं और सेंध फूटने पर बहादुर भीतर पैठते हैं। अकबर ने जयमल को साबात पर बैठकर गोली से मारा था (तबकाते अकबरी, इलियट, जि० ५, पृ० ३२६-७ संक्षिप्त)। इससे मालूम होता है कि साबात ढका हुआ मार्ग सा होता था जिससे किले तक पहुँच जायँ। किंतु और जगह के वर्णनों से जान पड़ता है कि यह ऊँची टेकड़ी सा भी हो जिसपर से किले पर (गरगज की तरह) मार की जा सके। [सं०]

(१) तारीख़ फ़रिश्ता, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, पृ० ३१६।

(२) फ़िरिश्ता ने इस पहाड़ी को 'मदन' कहा है किंतु अबुलफज़ल, बदायूनी और फ़ैज़ी ने इसका नाम "रन" लिखा है।

सुर्जन आजिज़ होकर सुलह का तलबगार हुआ और अपने आश्रितों को लेकर किले से निकल गया......"।

(५) मआसिरउल उमरा में भी हाड़ा चौहानों के वृत्तांत में लेखक और इतिहासों का सा हाल देता है। उसे लिखने की कोई आवश्यकता नहीं।

(६) मौलाना अहमद तारीखे अलफी में लिखता है[1]—बादशाह ने रणथंभोर पर चढ़ाई की और शाबान महीने के अंत में किले के सामने डेरा डाला। किला राव सुर्जन के पास था जिसने इसे सलीम खां (इसलाम शाह) के नौकर हिज्जाज़ खां से मोल लिया था। पहले भी कई बार हिंदुस्तान के बादशाहों ने पांच छः वर्ष तक इस किले को घेरा था और सुर्जन राव को इसकी दृढ़ता का भरोसा था। उसने इसमें ज़रूरत का सामान भरकर दरवाज़े बंद कर दिए किंतु चित्तौड़ के ले लेने की घटना उसकी आँखों के सामने थी। बादशाह ने देखभाल की, तोपखाने रखवाने की आज्ञा दी, आने जाने का रास्ता बंद कर दिया और साबात बनवाना आरंभ किया। किले के पास ही एक 'रन' नामी पहाड़ी थी जिससे क़िले पर मार थी। उसकी ऊँचाई और उसपर चढ़ने की कठिनाई से कोई अभी वहाँ पर चढ़ न सका था। बादशाह ने अब तोपें और ज़र्बज़न (घूमती तोपें) उसपर रखवाने की आज्ञा दी, ऐसी तोपें जिन्हें दो दो सौ बैल जोड़ियां भी कठिन भूमि पर मुश्किल से खैंच सकतीं। थोड़े ही दिनों में दस पंद्रह तोपें जो पचास, चालीस और बीस मन के पत्थर फेंक सकती थीं[2] मज़दूरों ने पहाड़ी पर चढ़ा दीं। पहला गोला जो चला उसने सुर्जन राव का घर नाश कर दिया जिससे वह बहुत डरा। हर गोले से कई घर ध्वंस होने लगे और क़िलेवाले इतना डरे कि सामना करने की

(१) इलियट, जिल्द ५, पृष्ठ १७५—६।

(२) बदायूनी ने इनकी संख्या सात आठ दी है और पत्थर पांच सात मन के बताए हैं।

हिम्मत हार गए। सुर्जन राव ने निराश होकर अपने पुत्र दूध और भोज को संधि पाने की आशा में भेजा। बादशाह ने उनकी दशा पर दया करके कहा कि यदि सुर्जन राव आकर हाज़िर हो तो क्षमा कर दिया जायगा। दोनों जवान प्रसन्न होकर बाप के पास इस अभयदान को लेकर गए। सुर्जन राव ने प्रार्थना की कि कोई अमीर मुझे हुज़ूर में लाने के लिये भेजा जाय और पंजाब का सूबेदार हुसैन कुली खां इस काम पर भेजा गया। तारीख़ तीसरी शाबान को सुर्जन राव बाहर आकर बादशाह के सामने हाज़िर हुआ। उसने बहुत सा ख़िराज दिया और क़िले की चाबियां सौंप दी, जो सोने चांदी की बनी हुई थीं। उसने तीन दिन की मोहलत मांगी कि उसके नौकर और दूसरे लोग अपने परिवार और माल मते को क़िले से बाहर ले जा सकें। वह दी गई और उसके पीछे क़िला, सब लड़ाई के सामान के साथ, सरकारी अफ़सरों को सौंप दिया गया। यों यह सुदृढ़ दुर्ग एक महीने के भीतर भीतर ले लिया गया और मिहतर खां के अधिकार में रक्खा गया।

(७) निज़ामुद्दीन अहमद की तबक़ाते अकबरी[1] में पहले तो रनथंभोर पर एक पहले आक्रमण का हाल है। इसी (अर्थात् चौथे राज्यवर्ष) वर्ष में—जिसका आरंभ शुक्रवार दूसरी जुमादलख़ैर ९६६ हि० = १० मार्च सन् १५५९ ई० को हुआ—हबीब अली खां रनथंभोर पर भेजा गया। शेरशाह अफ़ग़ान के समय में यहाँ का शासक उसका गुलाम हाजी खां था। हाजी खां ने यह किला राव सुर्जन को बेच दिया था। वह राय उदयसिंह[2] का आश्रित था। उदयसिंह का इधर बहुत ज़ोर था, उसने सब परगने अपने नीचे कर लिए थे और अपना अधिकार जमा लिया था। हबीब अली ने सेना से किले को घेरा और उसका पड़ोस बरबाद किया, फिर अमीर अपनी अपनी जागीरों को लौट गए।

(१) इलियट, जि० ५ पृ० २६०।
(२) मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह, प्रताप के पिता।

उसी पुस्तक में अकबर के रनथंभोर विजय का हाल यों[1] है—इस (चौदहवें राज्यवर्ष) का आरंभ ५ वीं रमज़ान ९७६ हि० (= २२ फरवरी सन् १५६९ ई०) से है। बादशाह साल शुरू होते ही रनथंभोर पर चढ़ा और थोड़े समय में ही क़िले के नीचे पहुँचा। किला घेरा, तोपख़ाने खड़े किए, साबात बनवाए और तोपों से दीवालें कई जगह भेद दी गईं। क़िलेदार राव सुर्जन ने जब घेरे को अधिक समय रहते देखा तब घमंड और गुस्ताख़ी के शिखर से उतर पड़ा और उसने संधि करने के लिये अपने पुत्र दूध और भोज को भेजा। बादशाह इन दोनों जवानों से कृपा करके मिले जो उसकी दया मांगने आए थे। उसने उनके अपराध क्षमा कर दिए और हुसैन कुली खां को, जिसे ख़ानेजहां की उपाधि मिल गई थी, किले में राव सुर्जन को दिलासा देने को भेजा। वह वैसा करके राव को हुजूर में ले आया। राव ने अधीनता स्वीकार की और राजसेवकों में भरती हुआ। बुधवार ता० ३ शाबान को किले का विजय हुआ और दूसरे दिन बादशाह स्वयं किला देखने गए। उसने मिहतरखां को किलेदार बनाया।

टॉड साहब का वृत्तांत इन सब से भिन्न है[2]। वे कहते हैं कि अकबर इस दुर्गम गढ़ के पास बहुत दिनों तक रहे और इसको विजय करने से हताश हो गए। तब आमेर के भगवानदास तथा उनके पुत्र राजा मान ने············राव सुर्जन हाड़ा को प्रतिज्ञा (चित्तौड़ की जागीर समझ कर गढ़ की रक्षा करना) भंग करने को लाचार किया। उस सभ्यता के भाव ने, जिसे राजपूत लोग अपने शत्रु से भी व्यवहार करने में नहीं भूलते, राजा मान का गढ़ के भीतर जाना संभव किया और अकबर भी उनके साथ चोबदार का भेस बनाकर गए। जब वार्तालाप हो रहा था तब सुर्जन हाड़ा

(१) इलियट जि० ५, पृ० ३३१—३२।

(२) राजस्थान, जिल्द २, पृ० ४७१–७३।

के चचा ने बादशाह को पहचान लिया और आदर भाव से एका-एक उनके हाथ से चोब लेकर उन्हें गढ़ की गद्दी पर बिठा दिया। अकबर का शांत चित्त इस घटना से बिलकुल न डगमगाया और उसने पूछा "कहो, राव सुर्जन, अब क्या करना चाहिए"। राजा मान ने कहा "राना को छोड़ दो, रणथंभोर देदो, और अच्छा पद लेकर बादशाह की सेवा में आ जाओ"। पुरस्कार में उनको ५२ ज़िलों का अधिकार देने की प्रतिज्ञा की गई, और इसके अतिरिक्त बादशाह ने जो कुछ वह माँगे वह देने का वचन दिया। इसपर एक सुलहनामा लिखा गया जिसकी शर्तें ये हैं—

(१) बूँदी के राजाओं से शाही महल में डोला भेजने को न कहा जाय।

(२) उनसे जज़िया न लिया जाय।

(३) उनसे अटक पार जाने को न कहा जाय।

(४) उनसे अपनी स्त्रियों को मीना बाजार (नौरोज़) में भेजने को न कहा जाय।

(५) उनको शस्त्र पहिने दीवाने आम में आने की आज्ञा रहे।

(६) उनके मंदिर इत्यादि पूज्य स्थानों का पूरा आदर किया जाय।

(७) वे कभी किसी हिंदू सेनापति के नीचे न रक्खे जायँ।

(८) उनके घोड़ों के शाही दाग न लगाया जाय।

(९) उनको राजधानी में लाल दर्वाजे तक नक्कारे बजाते हुए आने की आज्ञा रहे और बादशाह के पास आने पर उनसे "सिजदा" करने को न कहा जाय।

(१०) जैसे बादशाह की दिल्ली है वैसे ही हाड़ों की बूँदी रहे, बादशाह उन्हें राजधानी बदलने के लिये लाचार न करे।

बादशाह ने इन सब बातों को मानने का वचन दिया और राव सुर्जन को काशी में अच्छा निवास स्थान दिया।

ऊपर दिए हुए सब वृत्तांतों को पढ़कर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि मुसलमानी लेखकों और टॉड साहब के बीच इतना बड़ा भेद क्योंकर है? या तो मुसलमानी इतिहास झूठे हैं, नहीं तो टॉड साहब का वृत्तांत विश्वास योग्य नहीं। रणथंभोर विजय का हाल आधुनिक इतिहास लेखकों ने थोड़ा बहुत दिया है और प्रायः सबही ने मुसलमानी वृत्तांत को ठीक माना है। पर हालही में स्मिथ साहब ने लिखा है[1] कि टाड का वृत्तांत सच है और यह अकबर की शत्रु के सहायकों को लोभ देकर उसे कमज़ोर करने की कुटिल नीति का अच्छा प्रमाण है। इस लेख में हमको स्मिथ साहब की पुस्तक के विषय में अधिक कहना नहीं है पर इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि अकबर की वास्तविक अथवा कल्पित बुराइयों को बढ़ाकर दरसाने में स्मिथ साहब ने कमी नहीं की। हमारी समझ में नहीं आता कि टॉड साहब का वृत्तांत किस प्रकार सच्चा माना जाय। यदि रणथंभोर के किले को चित्तौड़ से अधिक विकट और अजेय और उसका सेना-बल से नहीं किंतु कौशल से ही जीता जाना माना जाय तो कोई न कोई मुसलमानी लेखक इसका हाल अवश्य देता। कम से कम बदायूनी तो ऐसा लेखक है जिसने प्रसंग प्रसंग पर अकबर की हँसी उड़ाने में कसर नहीं रक्खी। यदि यह भी मान लिया जाय कि अबुल फ़ज़ल ने अपने बादशाह की बड़ाई करने के लिये झूठा हाल लिख दिया तो भी यह कैसे संभव हो सकता है कि बदायूनी, फ़रिश्ता और अन्य लेखक भी उसी का अनुकरण करें।

हमारे विचार में टॉड साहब की कहानी केवल कल्पित है। यह कैसे संभव हो सकता है कि जिस गढ़ के पीछे अकबर को एक मास तक लड़ना पड़ा उसके भीतर बादशाह अकेला चला जाय और सुर्जन हाड़ा अपने शत्रु मानसिंह को गढ़ के भीतर आने दे तथा वहाँ अकबर को पहचानकर उसे गद्दी पर बिठा दे? यह

१—"अकबर", विंसेंट स्मिथ, पृ० ६८।

क्यों? केवल आदर के भाव से! एक महीना अकबर से लड़ें और जब धोखे से बादशाह क़िले के भीतर पहुँचा तो उसके प्रति इतना आदर भाव उमगा कि उसके लिये तुरंत ही गद्दी छोड़ दी! पाठक सोचें यह कहाँ तक संभव है।

हमने माना कि राजपूतों में अतिथिसत्कार का बहुत विचार होता है, पर जो शत्रु उनको धोखा देकर उनके गढ़ में घुस जाय उसे कहीं भी अतिथि का सत्कार मिला हो यह नहीं पाया जाता। फिर जिस सुर्जन हाड़ा ने अपने मालिक चित्तौड़ नरेश को धोखा देकर अकबर को गद्दी दे दी उससे यह आशा करना कि अतिथि सत्कार का उच्च भाव रखकर वह मुट्ठी में आए हुए शत्रु को छोड़ दे बिलकुल असंभव प्रतीत होता है।

क्या सुर्जन हाड़ा यह नहीं जानते थे कि यदि मैं अकबर को पकड़ लूँ तो फिर एक बार राजपूतों के भाग्य का सूर्य उदय हो जाय? अभी मुगलों की बादशाहत की बुनियाद भी पक्की नहीं हुई थी। अभी स्वयं अकबर के भाई भतीजे उससे लड़ने को तत्पर थे और अभी यह भी निश्चय नहीं था कि अकबर इस देश में स्थायी रूप से रहेगा। सुर्जन हाड़ा यह भी जानते ही होंगे कि भारतवर्ष में राज्य एक मनुष्य पर निर्भर रहता है, वह मनुष्य गया कि उस राज्य के टुकड़े टुकड़े हुए और फिर घर घर के राजा हुए। स्वयं राजपूतों ने कई बार देहली के मुसलमान राजाओं की अधीनता स्वीकार की, पर ज्योंही वह शक्तिमान् पुरुष जिसने इन्हें नीचा दिखाया था संसार को छोड़ चला त्योंही फिर राजपूत स्वाधीन हो गए।

यह विचार का स्थल है कि इस कहानी का ठीक होना कहाँ तक संभव है। सच तो यह है कि राव सुर्जन अकबर की शक्ति से भयभीत हो गए, चित्तौड़ के विजय के समाचारों से उनके छक्के छूट गए और भगवानदास के समझाने और बड़ी जागीर के लालच से हारे हुए राणा की अधीनता में रहने में कोई लाभ न देखकर उन्होंने गढ़ मुगलों को देदिया। कर्नल टॉड कुछ आगे चलकर

लिखते हैं[1] कि "सावंत हाड़ा ने जब यह सुना कि सुर्जन ने सुलह कर ली तो वह कुछ राजपूतों को लेकर हाड़ा वंश का नाम रखने के लिये बादशाह से लड़ने को गया"।

वास्तव में यह लड़ाई वही मालूम होती है जिसको कि मुसलमानी इतिहासकारों ने दूसरे प्रकार लिखा है। इसका उल्लेख सुर्जन के पुत्रों के खिलअत पहनने के प्रसंग में किया जा चुका है। राव सुर्जन के किसी सेवक ने क्रोध में आकर दो चार तलवारें चलाईं, वही घटना टॉड साहब के वृत्तांत में बढ़ाकर अथवा बदलकर लड़ाई बन गई है। रणथंभोर के गढ़ को बिना लड़े बादशाह को सौंप देना कोई अनोखी बात न थी। रणथंभोर विजय के कुछ ही दिनों पीछे राजसेना ने कलिंजर के गढ़ पर चढ़ाई की और मुगलों को आया देख राजा रामचंद्र ने तुरंत ही किला सौंप दिया।[2]

अब हम ऐतिहासिक दृष्टि से सुलहनामे की शर्तों पर विचार करते हैं जिन्हें टॉड के अनुसार अकबर ने शपथ खाकर पालन करने का वचन दिया।

सुलहनामे की दूसरी शर्त यह है कि बूँदी वालों से जज़िया न लिया जाय। २२ मार्च १५६९ ई० को रणथंभोर लिया गया और उसी समय वह सुलहनामा भी लिखा गया होगा। पर जज़िया का लेना अकबर ने सन् १५६४ ई० में बंद कर दिया था और उस समय यह आशा न थी कि फिर कभी जज़िया जारी किया जायगा और इतना कष्टकारी होगा कि इससे छुटकारा पाने का समाधान पहले ही से किया जाय तथा सुलहनामे में उल्लेख के योग्य माना जाय। वास्तव में केवल फ़ीरोज़ तुग़लक़ और औरंगज़ेब के समय को छोड़कर जज़िया कभी भी इतना कष्टकारी न रहा कि मनुष्यों के चित्त में उसका सदा ध्यान रहता। संभव है कि भावी संतान की भलाई पर विचारकर यह शर्त लिखवाई गई हो पर अधिक

(१) राजस्थान, जिल्द २, पृ० २७३।

(२) स्मिथ, अकबर, पृष्ठ १०१, आईने अकबरी जिल्द २ पृ० ४६६।

संभव यह है कि औरंगज़ेब के समय में जज़िया का उत्ताप प्रत्यक्ष होने पर अपना महत्व दिखाने को पीछे किसी समय यह सुलहनामा रचा गया हो।

सुलहनामे की तीसरी शर्त यह है कि बूँदी के राव अटक पार जाने को लाचार न किये जायँ। अभी अकबर के राज्य का आरंभ ही है, अभी उसकी राजनीति पूरी पूरी बनी ही नहीं और अभी तक किसीसे अटक पार जाने को नहीं कहा गया है। फिर सुर्जन हाड़ा को यह कैसे पता चला कि एक समय ऐसा आवेगा जब अकबर राजा मान तथा उनके राजपूत साथियों को "सभी भूमि गोपाल की यामें अटक कहा। जाके मन में अटक है सोई अटक रहा॥" इत्यादि कहकर अटक पार भेजेंगे? जिस समय रणथंभोर लिया गया उस समय अटक पार की भूमि अकबर के राज्य में भी न थी। उसका भाई हाकिम मिर्ज़ा काबुल प्रांत का राजा था और कुछ ही वर्ष हुए भारतवर्ष पर आक्रमण करने को प्रस्तुत हुआ था। यदि यह सुलहनामा १० वर्ष उपरांत लिखा गया होता तो इस शर्त का उसमें होना संभव था क्योंकि दस वर्ष उपरांत जो विचार अकबर के इस विषय में हो गए थे उनका प्रमाण ऊपर लिखा दोहा है।

सातवीं शर्त यह है कि बूँदीवाले किसी हिंदू सेनापति के नीचे न रक्खे जायँ। इस शर्त का क्या अर्थ है यह हम नहीं समझते। आगे होनेवाली बात को जाने दीजिए, अब तक तो केवल आमेरवालों से अकबर का संबंध हुआ था और राजा भगवानदास और राजा मान ही दो ऐसे व्यक्ति थे जिनका सेनापति बनना संभव था। तो क्या यह शर्त इन्हींकी अधीनता से बचने के लिये की गई। यह विचार करने की बात है कि जिस राजा मान के जागीर आदि के लालच दिलाने पर सुर्जन हाड़ा ने अपने स्वामी चित्तौड़ नरेश से विश्वासघात किया उसी राजा मान के सामने उसीके विरुद्ध इस शर्त का लिखा जाना और अकबर का उस समय उसे स्वीकार करना कहाँ तक स्वाभाविक है।

आठवीं शर्त बड़ी ही विलक्षण है, वह यह है कि बूँदी के घोड़ों के बादशाही दाग[1] न लगाया जाय। दाग की प्रथा भारतवर्ष में पहले पहल अल्लाउद्दीन खिलजी के समय में चली। तदुपरांत शेरशाह ने इसका बहुत कुछ अनुकरण किया। पर शेरशाह ने केवल चारही वर्ष राज्य किया और यह समय भी लड़ने में बिताया। उसको किसी प्रथा को भी पूरी तरह प्रचलित करने का अवसर न मिला। अकबर के समय में दाग की प्रथा सन् १५७४ ई०[2] में नियमपूर्वक चलाई गई। यह कैसे संभव हो सकता है कि सुर्जन हाड़ा एक ऐसी बात की शपथ बादशाह से करावे जिसका अभी किसीको ध्यान भी न था? सन १६२० ई० में मारवाड़ के राव गजसिंह के रिसाले को दाग से बरी किया गया, संभव है कि वह उदाहरण स्मरण रहा हो, बीकानेर के राजा पृथ्वीराज के "अणदागल असवार" वाले सोरठे के प्रताप के महत्व का अनुकरण किया हो।

फिर एक शर्त यह है कि बूँदी के राजा बादशाह को "सिजदा" न करें। मुसलमानों में "सिजदा" सिर्फ खुदा को किया जाता है। अकबर ने दीने इलाही धर्म प्रचार करते समय (ई० स० १५८८—९४) राजा के लिये "सिजदा" करने की प्रथा चलाई। इस पर कट्टर मुसलमान बहुत बिगड़े। तब सिजदा का हाल बूँदी के सुलहनामे में कहाँ से आगया[3]?

दसवीं शर्त भी अद्भुत है। अकबर ने किसीको राजधानी

(१) ललाट पर फूल का दाग। पहले यह रीति सुलतान संजार ने चलाई थी। कहते हैं कि शेरशाह तो महतरों तक पर दाग लगाता था। घोड़ों पर दाग लगाने की रीति इसलिये थी कि जिन्हें घोड़ों की निर्दिष्ट संख्या रखने के कारण जागीर मिलती थी, वे छल से दूसरे के घोड़े दिखाकर काम न चला लें।

(२) स्मिथ, अकबर, पृ० ४५४।

(३) स्मिथ, अकबर, पृ० २१९--२०, "सन् १५८८ से १५९४ तक और भी कई ऊटपटांग आज्ञाएँ निकलीं...सिजदा या घुटने टेककर दंडप्रणाम जिसे अब तक केवल ईश्वर की वंदना में ही उचित मानते थे अब बादशाह का अधिकार कर दिया गया"।

बदलने के लिये अब तक नहीं कहा था, न यह संभव था। अधिक संभव यह है कि जब राव रतन के पुत्रों में कोटे का विभाग होकर राज्य स्थापित हुआ, या भावसिंह के समय में बूँदी पर मुगलों का हमला हुआ, या कोटा ने हाड़ाओं में मुख्य होने की लगातार चेष्टा की तथा वहाँ के राजा भीम ने बूंदी पर आक्रमण किया तब शाही सहायता पाने की आशा में यह शर्त सूझी हो।

कहाँ तक लिखा जाय ऊपर लिखी शर्तों और गढ़ के विजय के वृत्तांत को पढ़कर यही कहना पड़ेगा कि या तो सुर्जन हाड़ा को किसी प्रकार अकबर के समय की भावी घटनाओं का दिव्य दृष्टि से बोध हो गया था या यह सारा वृत्तांत तथा सुलहनामा केवल कल्पित है।

जज़िया सन् १५६४ ई० में बंद कर दिया गया था। दाग़ की प्रथा सन् १५७४ ई० में चली थी। 'सिजदा' सन् १५८४ ई० से आरंभ हुआ। अटक पार जाने का विचार सन् १५७४ ई० तक नहीं था। मीना बाज़ार और नौरोज़ अभी भावी दिनों की बातें थीं। तब यह कैसे संभव हो सकता है कि ये सब बातें सन् १५६६ ई० में लिखे हुए सुलहनामे में स्थान पावें?

यह भी आश्चर्य की बात है कि किसी इतिहास-लेखक ने अकबर के बाद भी इस प्रकार का हाल नहीं लिखा है। औरंगज़ेब के गद्दी पर बैठने के कुछ पूर्व से उसके राज्य के प्रारंभ के वर्षों तक (सं० १७०५ से १७२५ विक्रमी) मुँहणोत नैणसी ने अपनी प्रसिद्ध ख्यात लिखी जिसमें उसने इन १० शर्तों में से एक का भी उल्लेख नहीं किया है। उसने लिखा है कि "सुरजन को रणथंभोर के किले में रहते १४ बरस हुए तब अकबर ने उसपर घेरा डाला। जब सुरजन का बल न रहा तब कछवाहा राजा भगवंतदास (भगवानदास) को बीच में डालकर संवत् १६२५ चैत सुदि ६ को बादशाह से वह मिला। उसने केवल इतना ही आग्रह किया कि राणा का अन्न मैंने खाया है इसलिये राणा से लड़ने न जाऊँगा, फिर किला बादशाह के सुपुर्द किया"। (नैणसी की ख्यात, पत्र २७ पृ० २—हस्तलिखित)

यदि टॉड साहिब के वृत्तांत में, जो बूंदीवालों के कथनानुसार लिखा गया है, कुछ भी सत्यता होती तो यह संभव नहीं जान पड़ता कि नैणसी, जिसने राजपूतों का विस्तृत इतिहास संग्रह किया, इन शर्तों का उल्लेख किए बिना रहता।

वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि जब औरंगज़ेब की कुटिल नीति से राजपूत लोग तंग आ गए थे, जज़िया फिर नियम-पूर्वक लिया जाने लगा, लोग सब प्रकार दबाए जा रहे थे, जसवंतसिंह की मृत्यु काबुल में हुई, हाड़ा, सीसोदिया, तँवर, चौहान जो कोई औरंगज़ेब को प्रसन्न कर सकता बड़ा बना दिया जाता, ऐसे समय में अपने बचाव के लिए एक सुलहनामा गढ़ दिया गया हो और उसके लिये रणथंभोर विजय के वृत्तांत को भी कुछ बदलना आवश्यक था। अथवा जब मुग़ल साम्राज्य जर्जर हो गया और मुग़लों के प्रतिपक्षियों की महिमा बढ़ी तब अपनी बड़ाई नए सिरे से स्थापित करने के लिये यह सुलहनामा रचा गया हो।

स्वयं कर्नल टॉड सुलहनामे का वृत्तांत कहने के पूर्व लिखते हैं[1] कि बूँदी के इतिहास का इससे आगे का अंश उस ऐतिहासिक खुलासे का स्वतंत्र अनुवाद है जो मेरे लिये बूँदी के राजा ने अपने काग़ज़ों से संकलित किया और जो कहीं कहीं चारण-भाटों की ख्यातों से बढ़ाया गया है। चारण-भाटों के वचनों को स्वतंत्र इतिहास नहीं कह सकते। यदि कर्नल टॉड के समय में (ई० स० १८२६—३२) यह सुलहनामा बूँदी में था तो अब भी होगा और उसमें शाही मुहर तथा अकबर के हस्ताक्षर अवश्य होंगे। क्या कोई बूँदी निवासी इतिहास-प्रेमी इस सुलहनामे का चित्र सर्वसाधारण के हितार्थ छपवाने की कृपा करेंगे?

यों तो महता लज्जाराम जी ने 'उमेदसिंह चरित्र' में ऊपर लिखी हुई शर्तों को बूंदी का गौरव प्रकट करनेवाली बतलाया है (पृ० १६-१७) परंतु उन्होंने यह कहीं नहीं लिखा कि यह सुलहनामा अब तक बूँदी में

(१) राजस्थान, जि० २ पृ० ४७२।

है। हम उनके कथन को सच्चा मान बैठते परंतु जो लेखक स्वयं यह लिखता है कि 'रणथंभोर का किला राणाजी का न था' और यह आशा करता है कि 'जिसके शिर में जरा सी भी बुद्धि है' वह इस बात को मान जाय, तथा टॉड को रणथंभोर राणाजी का कहने में असत्य का दोषी ठहराता है उसके लेख को ऐतिहासिक घटनाओं की जाँच करने में कोई स्थान नहीं दिया जासकता। लेखक को चाहिए था कि बूँदी का इतिहास लिखने का साहस करने के पूर्व नैणसी की ख्यात तथा अनेक फ़ारसी तवारीखों को भी पढ़ जाता। सुर्जन को विश्वासघात का दोषी केवल टॉड ने ही नहीं ठहराया है किंतु नैणसी तो यहाँ तक लिखता है कि अपने स्वामी के लिये प्राण देनेवाले पत्ता और जैमल की तो अकबर ने हाथियों पर चढ़ी मूर्तियाँ बनवाकर अपने क़िले के फाटक पर खड़ी कराईं परंतु सुर्जन की एक कुत्ते की मूर्त्ति बनाकर रखवाई जिसपर वह बड़ा लज्जित हुआ। (ख्यात, पत्रा २७, पृ० २)

अस्तु, यदि असली सुलहनामा वास्तव में अभी तक है तो हमें अपनी भूल स्वीकार करनी पड़ेगी और यह कहना पड़ेगा कि सुर्जन में अलौकिक दिव्य दृष्टि थी। यदि इस सुलहनामे का पता तक कहीं न हो तो अकबर ऐसे महापुरुष के चरित्र में कुटिलता का धब्बा सोच समझकर लगाना चाहिए।

१५—ख़ुसरो की हिंदी कविता।

[लेखक—बाबू ब्रजरत्नदास, काशी]

तेरहवीं शताब्दी के आरंभ में, जब दिल्ली का राजसिंहासन गुलाम वंश के सुल्तानों के अधीन हो रहा था, अमीर सैफुद्दीन नामक एक सर्दार बलख़ हज़ारा से मुग़लों के अत्याचार के कारण भागकर भारत आया और एटा के पटियाली नामक ग्राम में रहने लगा। सौभाग्य से सुल्तान शम्शुद्दीन अल्तमश के दर्बार में उसकी पहुँच जल्दी हो गई और अपने गुणों के कारण वह उस का सर्दार बन गया। भारत में उसने नवाब एमादुल्मुल्क की पुत्री से विवाह किया जिससे प्रथम पुत्र इज्जुद्दीन अलीशाह, द्वितीय पुत्र हिसामुद्दीन अहमद और सन् १२५५ ई० में पटियाली ग्राम में तीसरे पुत्र अमीर ख़ुसरो का जन्म हुआ। इनके पिता ने इनका नाम अबुलहसन रखा था पर इनका उपनाम ख़ुसरो इतना प्रसिद्ध हुआ कि असली नाम लुप्तप्राय हो गया और वे अमीर ख़ुसरो कहे जाने लगे।

चार वर्ष की अवस्था में वे माता के साथ दिल्ली गए और आठ वर्ष की अवस्था तक अपने पिता और भाइयों से शिक्षा प्राप्त करते रहे। सन् १२६४ ई० में इनके पिता ८५ वर्ष की अवस्था में किसी लड़ाई में मारे गए तब इनकी शिक्षा का भार इनके नाना नवाब एमादुल्मुल्क ने अपने ऊपर ले लिया। कहते हैं कि उनकी अवस्था उस समय ११३ वर्ष की थी। नाना ने थोड़े ही दिनों में इन्हें ऐसी शिक्षा दी कि ये कई विद्याओं से विभूषित हो गए। ख़ुसरो अपनी पुस्तक तुहफ़तुस्सग्र की भूमिका में लिखते हैं कि ईश्वर की कृपा से मैं १२ वर्ष की अवस्था में शैर और रुबाई कहने लगा जिसे सुनकर विद्वान् आश्चर्य करते थे और उनके आश्चर्य से मेरा उत्साह बढ़ता था। उस समय तक मुझे कोई काव्यगुरु नहीं मिला था जो कविता की

उचित शिक्षा देकर मेरी लेखनी को बेचाल चलने से रोकता। मैं प्राचीन और नवीन कवियों के काव्यों का मनन करके उन्हींसे शिक्षा ग्रहण करता रहा।

ख़्वाज: शम्सुद्दीन ख्वारिज्मी इनके काव्यगुरु इस कारण कहे जाते हैं कि उन्होंने इनके प्रसिद्ध ग्रंथ पंजगंज को शुद्ध किया था। इसी समय ख़ुसरो का झुकाव धर्म की ओर बढ़ा और उस समय दिल्ली में निज़ामुद्दीन मुहम्मद बदायूनी मुल्तानुलमशायख़ औलिया की बड़ी धूम थी। इससे ये उन्हींके शिष्य हो गए। इनके शुद्ध व्यवहार और परिश्रम से इनके गुरु इनसे बड़े प्रसन्न रहते थे और इन्हें तुर्के-अल्लाह के नाम से पुकारते थे।

खुसरो ने पहले पहल सुल्तान ग़ियासुद्दीन बल्बन के बड़े पुत्र मुहम्मद सुल्तान की नौकरी की, जो मुल्तान का सूबेदार था। यह बहुत ही योग्य, कविता का प्रेमी और उदार था और इसने एक संग्रह तैयार किया था जिसमें बीस सहस्र शैर थे। इसके यहाँ ये बड़े आराम से पाँच वर्ष तक रहे। जब सन् १२८४ ई० में मुग़लों ने पंजाब पर आक्रमण किया तब शाहज़ादे ने मुग़लों को दिपालपुर के युद्ध में परास्त कर भगा दिया पर युद्ध में वह स्वयं मारा गया। ख़ुसरो जो युद्ध में साथ गए थे मुग़लों के हाथ पकड़े जाकर हिरात और बलख़ गए जहाँ से दो वर्ष के अनंतर इन्हें छुटकारा मिला। तब यह पटियाली लौट आए और अपने संबंधियों से मिले। इसके उपरांत ग़ियासुद्दीन बल्बन के दरबार में जाकर इन्होंने शैर पढ़े जो मुहम्मद सुल्तान के शोक पर बनाए गए थे। बल्बन पर इसका ऐसा असर पड़ा कि रोने से उसे ज्वर चढ़ आया और तीसरे दिन उसकी मृत्यु होगई।

इस घटना के अनंतर ख़ुसरो अमीर अली मीरजामदार के साथ रहने लगे। इसके लिए इन्होंने अस्पनामा लिखा था और जब वह अवध का सूबेदार नियुक्त हुआ तब वे भी वहाँ दो वर्ष तक रहे। सन् १२८८ ई० में वे दिल्ली लौटे और कैकुबाद के दर्बार में

बुलाए गए। उसके आज्ञानुसार सन् १२८६ ई० में क़िरानुस्सादैन नामक काव्य इन्होंने छः महीने में तैयार किया। सन् १२६० ई० में कैकुबाद के मारे जाने पर गुलाम वंश का अंत हो गया और सत्तर वर्ष की अवस्था में जलालुद्दीन ख़िलजी ने दिल्ली के तख़्त पर अधिकार कर लिया। इसने ख़ुसरो की प्रतिष्ठा बढ़ाई और अमीर की पदवी देकर १२०० तन का वेतन कर दिया।

जलालुद्दीन ने कई बार निज़ामुद्दीन औलिया से भेंट करने की इच्छा प्रकट की पर उन्होंने नहीं माना। तब इसने ख़ुसरो से कहा कि इस बार बिना आज्ञा लिए हुए हम उनसे जाकर भेंट करेंगे, तुम उनसे कुछ मत कहना। ये बड़े असमंजस में पड़े कि यदि उनसे जाकर कह दें तो प्राण का भय है और नहीं कहते तो वे हमारे धर्म-गुरु हैं उनके क्रोधित होने से धर्म नाश होता है। अंत में जाकर उन्हों ने सब वृत्तांत उनसे कह दिया जिसे सुनकर वे अपने पीर फ़रीदुद्दीन शकरगंज के यहाँ अजोधन अर्थात् पाटन चले गए। सुल्तान ने यह समाचार सुनकर इनपर शंका की और इन्हें बुलाकर पूछा। इस पर इन्होंने सत्य सत्य बात कह दी।

सन् १२६६ ई० में अपने चाचा को मारकर अलाउद्दीन सुल्तान हुआ और उसने इन्हें ख़ुसरुए-शाअरा की पदवी दी और इनका वेतन एक सहस्र तन का कर दिया। ख़ुसरो ने इसके नाम पर कई पुस्तकें लिखी हैं जिनमें एक इतिहास भी है जिसका नाम तारीख़े अलाई है। सन् १३१७ ई० में कुतुबुद्दीन मुबारक शाह सुल्तान हुआ और उसने ख़ुसरो के क़सीदे पर प्रसन्न होकर हाथी के तौल इतना सोना और रत्न पुरस्कार दिए। सन् १३२० ई० में इसके वज़ीर ख़ुसरो ख़ां ने उसे मार डाला और इसके साथ ख़िलजी वंश का अंत होगया।

पंजाब से आकर ग़ाज़ी ख़ां ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया और ग़िआसुद्दीन तुग़लक के नाम से वह गद्दी पर बैठा। ख़ुसरो ने इसके नाम पर अपनी अंतिम पुस्तक तुग़लकनामा लिखा था। इसीके साथ

ये बंगाल गए और लखनौती में ठहर गए। सन् १३२४ ई० में जब निज़ामुद्दीन औलिया की मृत्यु का समाचार मिला तब ये वहाँ से झट चल दिए। कहा जाता है कि जब ये उनकी क़ब्र के पास पहुँचे तब यह दोहा पढ़कर बेहोश हो गिर पड़े—

गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस।
चल खुसरू घर आपने रैन भई चहुँ देस॥

इनके पास जो कुछ था सब इन्होंने लुटा दिया और वे स्वयं उनके मज़ार पर जा बैठे। अंत में कुछ ही दिनों में उसी वर्ष (१८ शव्वाल, बुधवार) इनकी मृत्यु होगई। ये अपने गुरु की क़ब्र के नीचे की ओर पास ही गाड़े गए। सन् १६०५ ई० में ताहिरबेग नामक अमीर ने वहाँ पर मक़बरा बनवा दिया। ख़ुसरो ने अपने आँखों से गुलामवंश का पतन, खि़लजी वंश का उत्थान और पतन तथा तुग़लक वंश का आरंभ देखा। इनके समय में दिल्ली के तख़्त पर ११ सुल्तान बैठे जिनमें सात की इन्होंने सेवा की थी। ये बड़े प्रसन्न चित्त, मिलनसार और उदार थे। सुल्तानों और सर्दारों से जो कुछ धन आदि मिलता था वे उसे बाँट देते थे। सल्तनत के अमीर होने पर और कविसम्राट् की पदवी मिलने पर भी ये अमीर और दरिद्र सभी से बराबर मिलते थे। इनमें और मुसल्मानों की तरह धार्मिक कट्टरपन नाम को भी नहीं था।

इनके ग्रंथों से जाना जाता है कि इनके एक पुत्री और तीन पुत्र थे जिनका नाम ग़िआसुद्दीन अहमद, ऐनुद्दीन अहमद और यमीनुद्दीन मुबारक था। इन लोगों के बारे में और कुछ वृत्तांत किसी पुस्तक में नहीं मिलता।

मनुष्य के साथ ही उसका नाम भी संसार से उठ जाता है पर उन कार्यकुशल व्यक्तियों और कवि-समाज का जीवन और मृत्यु भी आश्चर्यजनक है कि जो मर जाने पर भी जीवित कहलाते हैं और जिनका नाम सर्वदा के लिये अमिट और अमर होजाता है। इनका कार्य और रचना ही अमृत है जो उन्हें अमर बना देता है;

नहीं तो अमृत कल्पना मात्र है। इन्हींमें अमीर ख़ुसरो भी हैं कि जिनके शरीर को इस संसार से गए हुए आज छ सौ वर्ष हो गए पर वे अब भी जीवित हैं और बोलते चालते हैं। इनके मुख से जो कुछ निकल गया वह संसार को भाया। इनके गीत, पहेलियाँ आदि छ शताब्दी बीतने पर भी आज तक उसी प्रकार प्रचलित हैं।

ख़ुसरो अरबी, फ़ारसी, तुर्की और हिंदी भाषाओं के पूरे विद्वान थे और संस्कृत का भी कुछ ज्ञान रखते थे। यह फ़ारसी के प्रतिभाशाली कवि थे। इन्होंने कविता की ९९ पुस्तकें लिखी हैं जिनमें कई लाख के लगभग शैर थे पर अब उन ग्रंथों में से केवल बीस बाईस ग्रंथ प्राप्य हैं। उन ग्रंथों की सूची यह है —

१ मसनवी क़िरानुस्सादैन। २ मसनवी मतलउलअनवार। ३ मसनवी शीरीं व ख़ुसरू। ४ मसनवी लैली व मजनूँ। ५ मसनवी आईनेइस्कंदरी या सिकंदरनामा। ६ मसनवी हश्त-बिहिश्त। ७ मसनवी खिज्रनाम: या खिज्र ख़ां देवल रानी या इश्क़िया। ८ मसनवी नुह सिपहर। ९ मसनवी तुग़लक़नामा। १० ख़ज़ायनुलफ़ुतूह या तारीख़े अलाई। ११ इंशाए ख़ुसरू या ख्यालातं ख़ुसरू। १२ रसायलुलएजाज़ या एजाज़ ख़ुसरवी। १३ अफ़ज़लुलफ़वायद। १४ राहतुलमुजों। १५ ख़ालिक़बारी। १६ जवाहिरुलबह्र। १७ मुक़ाल:। १८ क़िस्सा चहार दर्वेश। १९ दीवान तुहफ़तुस्सग्र। २० दीवान वस्तुलहयात। २१ दीवान ग़र्रतुल्कमाल। २२ दीवान बक़ीय: नक़ीय:।

इनके फ़ारसी ग्रंथ, जो प्राप्य हैं, यदि एकत्र किए जायँ तो और कवियों से इनकी कविता अधिक हो जायगी। इनके ग्रंथों की सूची देखने ही से मालुम होजाता है कि इनकी काव्य-शक्ति कहाँ तक बढ़ी चढ़ी थी। इनकी कविता में शृंगार, शांति, वीर और भक्ति रसों की ऐसी मिलावट है कि वह सर्वप्रिय हो गई है। सब प्रकार से विचार करने पर यही कहा जा सकता है कि ख़ुसरो फ़ारसी कवियों के सिरमौर थे। ख़ुसरो के कुछ फ़ारसी ग्रंथों की व्याख्या

इस कारण यहाँ करना आवश्यक है कि उनमें इन्होंने अपने समय की ऐतिहासिक घटनाओं का समावेश किया है और वह वर्णन ऐसा है जो अन्य समसामयिक इतिहास लेखकों के ग्रंथों में नहीं मिलता।

ख़ुसरो की मसनवियों में कोरा इतिहास नहीं है। उस सहृदय कवि ने इस रूखे सूखे विषय को सरस बनाने में अच्छी सफलता पाई है और उस समय के सुल्तानों के भोग विलास, ऐश्वर्य, यात्रा, युद्ध आदि का ऐसा उत्तम चित्र खींचा है कि पढ़ते ही वह दृश्य आँखों के सामने आ जाता है। इन मसनवियों में क़िरानुस्सादैन मुख्य है[1]। इस शब्द का अर्थ दो शुभ तारों का मिलन है। बलबन की मृत्यु पर उसका पौत्र कैक़ुबाद जब दिल्ली की गद्दी पर बैठा तब कैक़ुबाद का पिता नसीरुद्दीन बुग़रा ख़ाँ जो अपने पिता के आगे ही से बंगाल का सुल्तान कहलाता था इस समाचार को सुनकर ससैन्य दिल्ली की ओर चला। पुत्र भी यह समाचार सुनकर बड़ी भारी सेना सहित पिता से मिलने चला और अवध में सरयू नदी के किनारे पर दोनों सेनाओं का सामना हुआ। परंतु पहले कुछ पत्रव्यवहार होने से आपस में संधि होगई और पिता पुत्र का मिलाप हो गया। बुग़रा ख़ाँ ने अपने पुत्र को गद्दी पर बिठा दिया और वह स्वयं बंगाल लौट गया। क़िरानुस्सादैन में इसी घटना का ३९४४ शैरों में वर्णन है।

मसनवी ख़िज़्रनामः[2] में सुल्तान अलाउद्दीन ख़िलजी के पुत्र ख़िज़्र ख़ाँ और देवल देवी के प्रेम का वर्णन है। ख़िज़्र ख़ाँ की आज्ञा से यह मसनवी लिखी गई थी। ग़ोरी और ग़ुलाम वंश का संक्षेप में कुछ वर्णन आरंभ में देकर अलाउद्दीन ख़िलजी के विजयों का, जो उसने मुग़लों पर प्राप्त की थी, विवरण दिया है। इसके अनंतर

(१) इलियट जिल्द ३ का परिशिष्ट और अलीगढ़ कॉलेज द्वारा प्रकाशित और मौलवी मुहम्मद इसमाईल द्वारा संपादित मूल ग्रंथ।

(२) इलियट जिल्द ३ का परिशिष्ट और मौलाना रशीद अहमद द्वारा संपादित और अलीगढ़ कालिज द्वारा प्रकाशित मूल ग्रंथ।

ख़ुसरो ने क्रमशः गुजरात, चित्तौर, मालवा, सिवाना, तेलिंगाना, मलाबार आदि पर की चढ़ाइयों का हाल दिया है। गुजरात के राय कर्ण की स्त्री कमलादेवी युद्ध में पकड़ी जाकर अलाउद्दीन के हरम में रखी गई। इसीकी छोटी पुत्री देवल रानी थी जिसके प्रेम का वर्णन इस पुस्तक में है। दोनों का विवाह हुआ पर कुछ दिनों में अलाउद्दीन की मृत्यु हो जाने पर काफ़ूर ने ख़िज़्र ख़ाँ को अंधा कर डाला। इसके अनंतर मुबारकशाह ने काफ़ूर को मारकर दिल्ली पर अधिकार कर लिया। जो कुछ रक्तपात इसने शाही घराने में किया था उसका हृदयग्राही वर्णन पढ़ने योग्य है।

ख़ुसरो ने इस ग्रंथ में हिंदुस्तान के फूलों, कपड़ों और सौंदर्य को फ़ारस, रूम और रूस आदि के फूलों कपड़ों और सौंदर्य से बढ़कर निश्चित किया है और अंत में लिखा है कि यह देश स्वर्ग है, नहीं तो हज़रत आदम और मोर यहाँ क्यों आते। ख़ुरासानियों की हँसी करते हुए लिखा है कि वे पान को घास समझते हैं। हिंदी भाषा के बारे में इन्होंने जो कुछ लिखा है वह उल्लेखनीय है।

'मैं भूल में था पर अच्छी तरह सोचने पर हिंदी भाषा फ़ारसी से कम नहीं ज्ञात हुई। सिवाय अरबी के जो प्रत्येक भाषा की मीर और सबों में मुख्य है, रई[1] और रूम की प्रचलित भाषाएँ समझने पर हिंदी से कम मालूम हुई। अरबी अपनी बोली में दूसरी भाषा को नहीं मिलने देती पर फ़ारसी में यह एक कमी है कि वह बिना मेल[2] के काम में आने योग्य[3] नहीं है। इस कारण

(१) अरब में एक नगर है। इलियट साहब ने इसे राय और रूम को राम लिखा है।

(२) मूल शैर में बे-अचार शब्द है जिसका अर्थ अचार अर्थात् खटाई रहित है। अचारों में कई प्रकार की वस्तु का मेल है इससे यहाँ बिना मेल का अर्थ लिया गया है।

(३) इलियट साहब ने ख़ुरद का अर्थ खाया लिया है पर यहाँ सज़ावार या योग्य है।

कि वह शुद्ध है और यह मिली हुई है, उसे प्राण और इसे शरीर कह सकते हैं। शरीर से सभी वस्तु का मेल हो सकता है पर प्राण से किसी का नहीं हो सकता। यमन के मूँगे से दरी के मोती की उपमा देना शोभा नहीं देता। सब से अच्छा धन वह है जो अपने कोष में बिना मिलावट के हो और न रहने पर माँगकर पूँजी बनाना भी अच्छा है[1]। हिंदी भाषा भी अरबी के समान है क्योंकि उसमें भी मिलावट का स्थान नहीं है।"

इससे मालूम पड़ता है कि उस समय हिंदी में फ़ारसी शब्दों का मेल नहीं था या नाम मात्र को रहा हो। हिंदी भाषा के व्याकरण और अर्थ पर भी लिखा है—'यदि अरबी का व्याकरण नियमबद्ध है तो हिंदी में भी उससे एक अक्षर कम नहीं है। जो इन तीनों (भाषाओं) का ज्ञान रखता है वह जानता है कि मैं न भूल कर रहा हूँ और न बढ़ाकर लिख रहा हूँ। और यदि पूछो कि उसमें अर्थ न होगा तो समझ लो कि उसमें दूसरों से कम नहीं है। यदि मैं सचाई और न्याय के साथ हिंदी की प्रशंसा करूँ तो तुम शंका करोगे और यदि मैं सौगंद खाऊँ तब कौन जानता है कि तुम विश्वास करोगे या नहीं? ठीक है कि मैं इतना कम जानता हूँ कि वह नदी की एक बूँद के समान है पर उसे चखने से मालूम हुआ कि जंगली पक्षी को दजलः नदी (टाइग्रीस) का जल अप्राप्य है। जो हिंदुस्तान की गंगा से दूर है वह नील और दजलः के बारे में बहकता है। जिसने बाग़ के बुलबुल को चीन में देखा है वह हिंदुस्तानी तूती को क्या जानेगा।'

नुह सिपहर (नौ आकाश) नामक मसनवी में अलाउद्दीन खिलजी के रँगीले उत्तराधिकारी कुतुबुद्दीन मुबारक शाह की गद्दी-नशीनी के अनंतर की घटनाओं का हाल है। इस पुस्तक में नौ परिच्छेद हैं। इसका तीसरा परिच्छेद हिंदुस्तान, उसके जलवायु, पशुविद्या

(१) इसके पहले और बाद के शेरों का अर्थ इलियट साहब ने दिया है पर इसको छोड़ गए।

और भाषाओं पर लिखा गया है। हिंदुओं का दस बातों में और देशवालों से बढ़कर होना दिखलाया है। इसमें उस समय के सुल्तानों के अहेर और चौगान खेलने का अच्छा दृश्य खींचा है। यह ग्रंथ अभी छपा नहीं है।

तुग़लक़नामः में ख़िलजियों के पतन और तुग़लकों के उत्थान का पूरा ऐतिहासिक वर्णन दिया गया है। दीवान तुहफ़तुस्सग़ (यौवन की भेंट) में बल्बन के समय की घटनाओं पर छोटी छोटी मसनवियाँ हैं। इसे ख़ुसरो ने १६ वें से १९ वें वर्ष तक की अवस्था में लिखा था। दूसरा दीवान वस्तुलूहयात (जीवन का मध्य) है जिसमें निज़ामुद्दीन औलिया, मुहम्मद सुल्तान सूबेदार मुलतान, दिपालपुर के युद्ध आदि पर मसनवियाँ हैं जो २४ से ३२ वर्ष तक की अवस्था में लिखी गई थीं। तीसरा दीवान ग़ुर्रतुल्कमाल (पूरी चाँदनी) सब से बड़ा दीवान है जो ३४ से ४२ वर्ष की वय मे लिखा गया है। आरंभ में अपने जीवनचरित्र का कुछ हाल लिखा है। छोटी छोटी मसनवियाँ ऐतिहासिक घटनाओं पर, जो इनके समय में हुई थीं, लिखी हैं। चौथा दीवान बक़ीयः नक़ीयः (बची हुई बातें) ५० से ६४ वर्ष की अवस्था तक में लिखा गया है जिसमें भी समसामयिक घटनाओं पर मसनवियाँ हैं।

ख़ुसरो ने गद्य में एक इतिहास तारीख़े अलाई[1] लिखा है जिसमें सन् १२९६ ई० में अलाउद्दीन ख़िलजी की गद्दी से सन् १३१० ई० में मलाबार विजय तक १५ वर्ष का हाल दिया गया है। कुछ इतिहासज्ञों ने इस पुस्तक का नाम तारीख़े अलाउद्दीन ख़िलजी लिखा है। इलियट साहब लिखते हैं कि इस पुस्तक में ख़ुसरो ने कई हिंदी

(१) इलियट जिल्द पन्ना ६८ का नोट (यह पुस्तक १८८ पन्ने की है और प्रत्येक पत्र में १५ पंक्तियाँ हैं। एक प्रति मिस्टर टौमस के पास और एक कैंब्रिज के किंग्स कौलेज में है, रायल एशाटिक सुसायटी जर्नल जिल्द ६ पृ० ११५।) हयात ख़ुसरू में लिखा है कि एक प्रति जयपुर पुस्तकालय में है जिसे इसके लेखक ने स्वयं देखा है।

शब्द काम में लाए हैं जैसे काठगढ़, परधान, बरगद, मारामार आदि। इस प्रकार ख़ुसरो के ग्रंथों से ग़ियासुद्दीन बल्बन के समय से ग़ियासुद्दीन तुग़लक़ के समय तक का इतिहास लिखा जा सकता है।

ख़ुसरो का वर्णन अधिक विश्वसनीय है क्योंकि वह केवल उन घटनाओं के समसामयिक ही नहीं थे बल्कि कई में उन्होंने योग भी दिया था। ग़िआसुद्दीन बर्नी ने अपने इतिहास में समर्थन के लिए कई स्थानों पर इनके ग्रंथों का उल्लेख किया है।

ख़ुसरो प्रसिद्ध गवैए भी थे और नायक गोपाल और जस सावंत से विख्यात गवैए इन्हें गुरुवत् समझते थे। इन्होंने कुछ गीत भी बनाए थे जिनमें से एक को आज तक झूले के दिनों में स्त्रियाँ गाती हैं। वह यों है—

जो पिया आवन कह गए, अजहुँ न आए स्वामी हो।
(ए) जो पिया आवन कह गए।
आवन आवन कह गए आए न बारह मास।
(ए हो) जो पिया आवन कह गए॥

बरवा राग में लय भी इन्होंने रखी है। यह गीत तो युवा स्त्रियों के लिए बनाया था पर छोटी छोटी लड़कियों के लिए स्वामी और पिया की याद में गाना अनुचित होता इससे उनके योग्य एक गीत बनाया है जो संग्रह में दिया गया है। इनका हृदय क्या था एक बीन थी जो बिन बजाए हुए पड़ी बजा करती थी। ध्रुपद के स्थान पर कौल या कव्वाली बनाकर उन्होंने बहुत से नए राग निकाले थे जो अब तक प्रचलित हैं। कहा जाता है कि बीन को घटाकर इन्होंने सितार बनाया था। इन्हींके समय से दिल्ली के आस पास के सूफ़ी मुसलमानों में बसंत का मेला चल निकला है और इन्होंने बसंत पर भी कई गीत लिखे हैं। नए बेल बूटे बनाने का इन्हें जन्म ही से स्वभाव था।

ख़ुसरो ने पद्य में अरबी, फ़ारसी और हिंदी का एक बड़ा कोष

लिखा था जो पूर्णरूप में अब अप्राप्य है पर उसका कुछ संक्षिप्त अंश मिलता है जो ख़ालिक़बारी नाम से प्रसिद्ध है। इसके कुछ नमूने दिए जाते हैं जिससे ज्ञात हो जायगा कि इन्होंने इन बेमेल भाषाओं को इस प्रकार मिलाया है कि वे कहीं पढ़ने में कर्णकटु नहीं मालूम होतीं।

ख़ालिक़ बारी सिरजनहार।
वाहिद एक बिदा कर्त्तार॥
मुश्क काफ़ूर अस्त कस्तूरी कपूर।
हिंदवी आनंद शादी औ सरूर॥
मूश चूहा गुर्बः बिल्ली मार नाग।
सोज़नो रिश्तः बहिंदी सूई ताग॥
गंदुम गेहूँ नखुद चना शाली है धान।
जरत जोन्हरी अदस मसूर बर्ग है पान॥

कहा जाता है कि ख़ुसरो ने फ़ारसी से कहीं अधिक हिंदी भाषा में कविता की थी पर अब कुछ पहेलियां, मुकरियों और फुटकर गीतों आदि को छोड़कर और सब अप्राप्य हो रही है। फ़ारसी और हिंदी मिश्रित *ग़ज़ल* पहले पहल इन्हीं ने बनाना आरंभ किया था जिसमें से केवल एक ग़ज़ल जो प्राप्त हुआ है वह संग्रह में दे दिया गया है। उसे पढ़ने से चित्त प्रफुल्लित होता है पर साथ ही यह दुःख अवश्य होता है कि केवल यही एक ग़ज़ल प्राप्य है।

ख़ुसरो को हुए छ सौ वर्ष व्यतीत होगए किंतु उनकी कविता की भाषा इतनी सजी सँवारी और कटी छँटी हुई है कि वह वर्तमान भाषा से बहुत दूर नहीं अर्थात् उतनी प्राचीन नहीं जान पड़ती। भाटों और चारणों की कविता एक विशेष प्रकार के ढाँचे में ढाली जाती थी। चाहे वह ख़ुसरो के पहले की अथवा पीछे की हो तो भी वह वर्तमान भाषा से दूर और ख़ुसरो की भाषा से भिन्न और कठिन जान पड़ती है। इसका कारण साहित्य के संप्रदाय की

रूढ़ि का अनुकरण ही है। चारणों की भाषा कविता की भाषा है, बोलचाल की भाषा नहीं। व्रजभाषा के 'अष्टछाप' आदि कवियों की भाषा भी साहित्य, अलंकार और परंपरा के बंधन से ख़ुसरो के पीछे की होने पर भी उससे कठिन और भिन्न है। कारण केवल इतना ही है कि ख़ुसरो ने सरल और स्वाभाविक भाषा को ही अपनाया है, बोलचाल की भाषा में लिखा है, किसी सांप्रदायिक बंधन में पड़कर नहीं। अब कुछ वर्षों से खड़ी बोली की कविता का आंदोलन मचकर हिंदी गद्य और पद्य की भाषा एक हुई है, नहीं तो, पद्य की भाषा पश्चिमी (राजस्थानी), व्रजी और पूरबी (अवधी) ही थी। सर्वसाधारण की भाषा—सरल व्यवहार का वाहन—कैसा था यह या तो ख़ुसरो की कविता से जान पड़ता है या कबीर के पदों से। इतना कहने पर भी इस कविता के आधुनिक रूप का समाधान नहीं होता। ये पहेलियाँ, मुकरियाँ आदि प्रचलित साहित्य की सामग्री हैं, लिखित कम, वाचिक अधिक; इसलिए मुँह से कान तक चलते चलते इनमें बहुत कुछ परिवर्तन होगया है जैसा कि प्राचीन प्रचलित कविता में होता आया है। यह कहना कि यह कुल रचना ज्यों की त्यों ख़ुसरो की है कठिन है। हस्त-लिखित पुरानी पुस्तकों से मिलान आदि के साधन दुर्लभ हैं। पिछले संग्रहकार आजकल के खोजियों की तरह छान बीन करने के प्रेमी नहीं थे। पहेली में पहेली का ख़ुसरो के नाम और कहानी में कहानी का बीरबल या विक्रमादित्य या भोज के नाम से मिल जाना असंभव नहीं। कई लोग अपने नए सिक्के को चलाने के लिए उन्हें पुराने सिक्कों के ढेर में मिला देते हैं, किसी बुरी नीयत से नहीं, कौतुक से, विद्या के प्रेम से या पहले की अपूर्णता मिटाने के सद्भाव से। प्राचीन वस्तु में हस्तक्षेप करना बुरा है यह उन्हें नहीं सूझता। कई जान बूझ कर भी अपने उद्देश की सिद्धि के लिये ऐसा किया करते हैं। पुराणों के भविष्य वर्णन के से एक आध पद पृथ्वीराज रासे में और वैसेही कुछ पद सूरदास या तुलसीदास की छाप से उन कई

भोले मनुष्यों को पागल बनाए हुए हैं जो अपनी जन्म-भूमि को संभल और अपने ही को भविष्य कल्की समझे हुए हैं। अभी अभी चरखे की महिमा के कई गीत "कहै कबीर सुनो भाई साधो" की चाल के चल पड़े हैं। जब राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक संशोधन या परिवर्तन या स्वार्थ के लिए श्रुति, स्मृति और पुराण में या उनके अर्थों में वर्द्धन और परिवर्त्तन होता आया है तब केवल मौखिक, बहुधा अलिखित, लोकप्रिय प्रचलित साहित्य में अछूतपन रहना असंभव है। यदि अकबर और बीरबल की सब कहानियाँ प्रामाणिक हों तो ख़ुसरो के नाम की सब रचना भी उन्हीं की हो सकती है। इस संग्रह में जो अवतरण दिए गए हैं वे प्रामाणिक पुस्तकों से लिए गए हैं और अधिकतर जवाहिर ख़ुसरवी से लिए गए हैं पर जो दूसरी पुस्तकों से मिले हैं यथासंभव उनके पते दिए गए हैं। टिप्पणियों में जो अक्षर दिए गए हैं वे सहायक पुस्तकों के प्रथमाक्षर हैं, जैसे आबे-हयात का 'आ'।

इनके जो फुटकर छंद मिले हैं उनमें इनका सख्य भाव ही अधिक प्रतीत होता है। इनकी पहेलियाँ दो प्रकार की हैं। कुछ पहेलियाँ ऐसी हैं जिनमें उनका बूझ छिपाकर रख दिया है और वह झट वहीं मालूम हो जाता है। कुछ ऐसी हैं जिनका बूझ उनमें नहीं दिया हुआ है। मुकरी भी एक प्रकार की पहेली (अपन्हुति) ही है पर उसमें उसका बूझ प्रश्नोत्तर के रूप में दिया रहता है। 'ऐ सखी साजन ना सखी' इस प्रकार एक बार मुकर कर उत्तर देने के कारण इस अपन्हुति का नाम कह-मुकरी पड़ गया है। दो-सखुने वे हैं जिनमें दो या तीन प्रश्नों के एक ही उत्तर हों।

इस संग्रह और ख़ुसरो के जीवनचरित्र के लिखने में निम्नलिखित पुस्तकों से सहायता ली गई है—

(१) जवाहिरे-ख़ुसरवी—जिसका संपादन मौलाना मुहम्मद अमीन साहिब अब्बासी चिरियाकोटी ने किया है और जिसे सन् १९१८ ई० में अलीगढ़ कौलेज ने प्रकाशित किया है।

(२) नक़ले-मजलिस—संग्रहकर्त्ता हाजी शेख़ रजब अली। सन् १८७१ ई० में ईसवी प्रेस, लखनऊ, में छपा।

(३) आबे-हयात—शम्सुलउलमा मौलवी मुहम्मद हुसेन साहब आज़ाद लिखित, सन् १९१७ ई० का नवाँ संस्करण, इस्लामिया स्टीम प्रेस, लाहौर, द्वारा प्रकाशित।

(४) हयाते-ख़ुसरवी—मुहम्मद सईद अहमद साहिब मारहरवी लिखित, नवलकिशोर स्टीम प्रेस, लखनऊ, द्वारा सन् १९०९ ई० में प्रकाशित, दूसरा संस्करण।

(५) मुंतख़ाबुत्तवारीख़—अब्दुलक़ादिर बदायूनी द्वारा लिखित। एशियाटिक सोसायटी आफ़ बंगाल ने सन् १८९८ ई० में इस ग्रंथ को जौर्ज एस० ए० रैंकिंग, एम० डी०, द्वारा अंग्रेज़ी में अनुवादित और संपादित कराकर छपाया। बदायूनी अकबर के समसामयिक थे।

(६) हिंदी भाषा—बाबू बालमुकुंद गुप्त लिखित। संवत् १९६४ में भारतमित्र प्रेस ने अमृतलाल चक्रवर्त्ती से संपादित कराके छपाया।

—०:—

(१) बूझ पहेलियाँ

(१) एक नार वह दाँत दँतीली। पतली दुबली छैल छबीली॥
जब वा तिरियहिं लागै भूख। सूखे हरे चबावे रूख॥
जो बताय वाही बलिहारी। ख़ुसरो कहे वरे को आरी॥

आरी

---

(२) इधर को आवे उधर को जावे। हर हर फेर काट वह खावे॥
ठहर रहे जिस दम वह नारी। ख़ुसरो कहे वरे को आरी॥

आरी

(३) श्याम बरन और दाँत अनेक । लचकत जैसी नारी ॥
दोनों हाथ से ख़ुसरो खींचे । और कहे तू आरी ॥

आरी

---

(४) एक बुढ़िया शैतान की ख़ाला । सिर सफ़ेद औ मुहँ है काला ॥
लुंडों घेरे है वह नार । लड़के रखे हैं उससे प्यार ॥
उछले कूदे नाचे वो । आग लगे उस बुढ़िमुम को ॥

आग की बुढ़िया

---

(५) पौन चलत वह देह बढ़ावे । जल पीवत वह जीव गँवावे ॥
है वह प्यारी सुंदर नार । नार नहीं पर है वह नार ॥

आग

---

(६) गन मैन है साँप की सूरत आँखें देखी कहती है ।
अन खावे ना पानी पीवे देखे से वह जीती है ॥
दौड़ दौड़ जमीं पर दौड़ आसमान पर उड़ती है ।
एक तमाशा हमने देखा हाथ पाँव नहिं रखती है ॥

आँख

---

(७) फ़ारसी बोली आई ना । तुर्की ढूँढ़ी पाई ना ॥
हिंदी बोली आरसी आए । ख़ुसरो कहे कोइ न बताए ॥

आरसी

---

(५) नार = आग और स्त्री ।
(७) आ० हि०, ब०, इ० ।

(८) टूटी टूट के धूप में पड़ी । जों जों सूखी हुई बड़ी ॥

बड़ी

---

(९) एक नार जब बन कर आवे । मालिक अपने ऊपर बुलावे ॥
है वह नारी सब के गौं की । खुसरो नाम लिए तो चौंकी ॥

चौकी

---

(१०) घूम घुमेला लहँगा पहिने एक पाँव से रहे खड़ा ।
आठ हाथ हैं उस नारी के सूरत उसकी लगे परी ॥
सब कोइ उसकी चाह करे हैं मुसलमान हिंदू छत्री ।
खुसरू ने यह कही पहेली दिल में अपने सोच ज़री ॥

छाता

---

(११) बाला था जब सबको भाया । बढ़ा हुआ कछु काम न आया ॥
खुसरू कह दिया उसका नाँव । अर्थ करो नहि छाँड़ो गाँव ॥

दीया

---

(१२) नारी से तू नर भई औ श्याम बरन भइ सोय ।
गली गली कूकत फिरे कोइलो कोइलो लोय ॥

कोयला

---

(१३) सरकंडों के ठट्ट बँधे और बद लगे हैं भारी ।
देखी है पर चाखी नाहीं लोग कहे हैं खारी ॥

खारी

---

(१४) घूम घाम के आई है औ मेरे मन को भाई है ।
देखी है पर चाखी नाहीं, अल्ला की क़सम खाई है ॥

खाई

---

(१५) पान फूल वाके सर माँ हैं । लड़ कर जब मद पर आहैं ॥
चिट्टे काले वाके बाल । बूझ पहेली मेरे लाल ॥

लाल चिड़िया

---

(१६) गोल मटोल और छोटा मोटा । हरदम वह तो जमीं पर लोटा ॥
खुसरो कहे नहीं है झूटा । जो ना बूझे अकिल का खोटा ॥

लोटा

---

(१७) खड़ा भी लोटा पड़ा भी लोटा । है बैठा और कहें हैं लोटा ॥
खुसरो कहें समझ का टोटा ।

लोटा

---

(१८) एक नार हाथे पर खासी । जनवर बैठा बीच ख़वासी ॥
अता पता मत पूछो हमसे । कुछ तो महरम होगी उससे ॥

अंगिया

---

(१९) एक नार चरन वाके चार । स्याम बरन सूरत बदकार ॥
बूझो तो मुश्क है न बूझे तो गँवार ॥

मुश्क

---

(१८) महरम अंगिया का, परिचित होना ।

(२०) सावन भादों बहुत चलत है माघ पूस में थोरी।
अमीर खुसरो यों कहे तू बूझ पहेली मोरी ॥

मोरी

---

(२१) अंदर है और बाहर बहे। जो देखे सो मोरी कहे ॥

मोरी

---

(२२) मुझको आवे यही परख। पैर न गर्दन मोढ़ा एक ॥

मोढ़ा

---

(२३) एक मंदिर के सहस्र दर। हर दर में तिरिया का घर ॥
बीच बीच वाके अमृत ताल। बूझ है इसकी बड़ी महाल ॥

शहद का छत्ता

---

(२४) एक नार तरवर से उतरी सर पर वाके पांव।
ऐसी नार कुनार को मैं ना देखन जांव ॥

मैना

(२५) हाड़ की देही उज्जल रंग। लिपटा रहे नारि के संग ॥
चोरी की ना खून किया। वाका सिर क्यों काट लिया ॥

नाखून

---

(२६) बीसों का सिर काट लिया। ना मारा ना खून किया ॥

नाखून

(२०) हि० से पाठांतर—चार महीने बहुत चले हैं और महीने थोरी।
अमीर खुसरो यों कहे तू बता पहेली मोरी ॥

(२३) महाल = कठिन, शहद का खूसा।

(२७) जल जल चलता बसता गाँव । बस्ती में ना वाका ठाँव ॥
खुसरू ने दिया वाका नाँव । बूझ अरथ नहिं छोड़ो गाँव ॥

नाव

---

(२८) एक नार तरवर से उतरी मा सो जनम ना पायो ।
बाप को नाँव जो वासे पूछ्यो आधो नाँव बतायो ॥
आधो नाँव बतायो खुसरू कौन देस की बोली ।
वाको नाँव जो पूछ्यो मैंने अपने नाँव न बोली ॥

निबोली

---

(२९) नर नारी की जोड़ी दीठी । जब बोले तब लागै मीठी ॥
एक नहाय एक तापनहारा । चल खुसरो कर कूँच नक़ारा ॥

नक़ार:

---

(२) बिन बूझ पहेलियाँ ।

(३०) बिधना ने एक परख बनाया । तिरिया दी और नीर लगाया ॥

---

(२६) आ० हि० ज० ।

(२८) आ० हि० से पाठांतर—तरवर से एक तिरिया उतरी उसने बहुत रिझाया । बाप का उसके नाम जो पूछा आधा नाम बताया । आधा नाम पिता पर वाका बूझ पहेली मोरी । अमीर ख़ुसरो यों कहैं अपने नाम निबोरी ॥ नीम के फल को निबोली या निमौड़ी कहते हैं । फ़ारसी में नीम का अर्थ आधा है । उर्दू में, न बोली, निबोली, एक ही प्रकार लिखा जाता है ।

(२९) पाठांतर—नहि कीच न गारा ।

(३०) आदम—हज़रत आदम पहले मनुष्य थे जिनसे आदमियों का वंश चला । गेहूँ खाने के कारण ख़ुदा ने इन्हें हौआ नामक स्त्री के साथ स्वर्ग से निकाल मृत्युलोक के लंका द्वीप में भेज दिया ।

चूक भई कुछ वासे ऐसी । देश छोड़ भयो परदेसी ॥

आदमी

---

(३१) एक नार पिया को भानी । तन वाको सगरा ज्यों पानी ॥
आब रखे पर पानी नांह । पिया को राखे हिर्दय मांह ॥
जब पी को वह मुख दिखलावे । आपहि सगरी पी हो जावे ॥

दर्पण

---

(३२) भिलमिल का कुंआ रतन की क्यारी ।
बताओ तो बताओ नहीं तो दूंगी गारी ॥

दर्पण

---

(३३) आना जाना उसका भाए । जिस घर जाए लकड़ी खाए ॥

आरी

---

(३४) एक थाल मोती से भरा । सबके सिर पर औंधा धरा ॥
चारों ओर वह थाली फिरे । मोती उससे एक न गिरे ॥

आकाश

---

(३५) एक पेड़ रेती में होवे । बिन पानी दिए हरा रहे ॥
पानी दिए से वह जल जाय । आँख लगे अंधा हो जाय ॥

आँख

---

(३६) जा घर लाल बलैया जाय । ताके घर में दुंद मचाय ॥
लाखन मन पानी पी जाय । धरा ढका सब घर का खाय ॥

आग

(३७) एक पुरुख जब मद पर आय। लाखों नारी सँग लपटाय ॥
जब वह नारी मद पर आय। तब वह नारी नर कहलाय ॥

आम

---

(३८) आवे तो अंधेरी लावे। जावे तो सब सुख लेजावे ॥
क्या जानूं वह कैसा है। जैसा देखो वैसा है ॥

आँख

---

(३९) अरथ तो इसका बूझेगा। मुँह देखो तो सूझेगा ॥

दर्पण

---

(४०) हाथ में लीजे देखा कीजे ॥

दर्पण

---

(४१) सामने आग कर दे दो। मारा जाय न ज़ख़्मी होय ॥

दर्पण

---

(४२) स्याम बरन की है एक नारी। माथे ऊपर लागै प्यारी ॥
जो मानुस इस अरथ को खोले। कुत्ते की वह बोली बोले ॥

भौं

---

(४३) गोरी सुंदर पातली, केसर काले रंग।
ग्यारह देवर छोड़ के, चली जेठ के संग ॥

अरहर

---

(४४) एक नार जाके मुँह सात । सो हम देखी बैठी जात ॥
आधा मानुस निगले रहे । आँखों देखी खुसरू कहे ॥
पैजामा

---

(४५) एक नार दो को ले बैठी । टेढ़ी होके बिल में पैठी ॥
जिसके बैठे उसे सुहाय । खुसरू उसके बल बल जाय ॥
पैजामा

---

(४६) आग लगे फूले फले, सींचत जावे सूख ।
मैं तोहि पूछौं ऐ सखी, फूल के भीतर रूख ॥
अनार (आतिशबाज़ी)

---

(४७) रात समय एक सूहा आया । फूलों पातों सबको भाया ॥
आग दिए वह होए रूख । पानी दिए वह जावे सूख ॥
अनार (आतिशबाज़ी)

---

(४८) उज्जल अति वह मोती बरनी । पाई कंत दिए मोहि धरनी ॥
जहां धरी थी वहां न पाई । हाट बजार सभी ढूंढ आई ॥
सुनो सखी अब कीजिए क्या । पी मांगे तो दीजे क्या ॥
ओला

---

(४९) देख सखी पी की चतुराई । हाथ लगावत चोरी आई ॥
ओला

---

(४४) न० अ० ।
(४९) न० ।

(५०) जल से गाढ़ो थल धरो, जल देखे कुम्हिलाय।
लाओ बसुंदर फूँक दें, जो अमर बेल हो जाय॥

ईंट

---

(५१) बांसबरेली से एक नारी। आई अपने बंद कटारी॥
पी कुछ उसके कान में फूँके। बोली वह सुन पी के मुँह के॥
आह पिया यह कैसी कीनी। आग बिरह की भड़का दीनी॥

बाँसुली

---

(५२) एक राजा की अनोखी रानी। नीचे से वह पीवे पानी॥

दीया की बत्ती

---

(५३) एक नार ने अचरज किया। सांप मार पिंजरे में दिया॥
जों जों सांप ताल को खाए। ताल सूख सांप मर जाए॥

दीया बत्ती

---

(५४) है वह नारी सुंदर नार। नार नहीं पर है वह नार॥
दूर से सब को छवि दिखलावे। हाथ किसी के कभू न आवे॥

बिजली

---

(५५) आगे से वह गांठ गठीला। पीछे से है टेढ़ा॥
हाथ लगाए कहर खुदा का। बूझ पहेला मेरा॥

बिच्छू

---

(५६) भांति भांति की देखी नारी। नीर भरी है गोरी काली॥

ऊपर बसे और जग धावें। रच्छा करें जब नीर बहावें॥

बादल

---

(५७) एक नार नौरंगी चंगी। वह भी नार कहावे॥
भांति भांति के कपड़े पहिने। लोगों को तरसावे॥

बादल

---

(५८) एक अचंभा देखो चल। सूखी लकड़ी लागे फल॥
जो कोई इस फल को खावे। पेड़ छोड़ कहिं और न जावे॥

बर्छी

---

(५९) उजल बरन अधीन तन, एक चित्त दो ध्यान।
देखन में तो साधु है, पर निपट पाप की खान॥

बक

---

(६०) एक नार वह औषध खाए। जिसपर थूके वह मर जाए॥
उसको पी जब छाती लाय। अंधा नहिं काना हो जाय॥

बंदूक

---

(६१) एक तरुवर का फल है तर। पहले नारी पीछे नर॥
वा फल की यह देखो चाल। बाहर खाल और भीतर बाल॥

भुट्टा

---

(६२) आगे आगे बहिना आई पीछे पीछे भइया।

दांत निकाले बाबा आए बुरका ओढ़े मैय्या ॥

भुट्टा

---

(९३) सर पर जटा गले में झोली किसी गुरू का चेला है।
भर भर झोली घर को धावे उसका नाम पहेला है ॥

भुट्टा

---

(९४) एक गाँव में सदहा कूँए, कुँए कुँए पनिहार।
मूरख तो जानें नहीं, चतुरा करें विचार ॥

बरें का छत्ता

---

(९५) श्यामबरन पीतांबर कांधे, मुरली धरे न हाथ।
बिन मुरली वह नाद करत है, बिरला बूझै कोय ॥

भौंरा

---

(९६) अचरज बंगला एक बनाया। ऊपर नींव तले घर छाया ॥
बांस न बल्ली बंधन घने। कहू ख़ुसरो घर कैसे बने ॥

बए का घोंसला

---

(९७) एक नार करतार बनाई। ना वह क्वारी ना वह ब्याही ॥
सूहा रंगहि वाको रहै। भाबी भाबी हर कोई कहै ॥

बीरबहूटी

---

(९८) एक नार करतार बनाई। सूहा जोड़ा पहिन के आई ॥

हाथ लगाए वह शर्माय । या नारी को चतुर बताय ॥

बीरबहूटी

---

(६९) एक गुनी ने यह गुन कीना । हरियल पिंजरे में दे दीना ॥
देखो जादूगर का हाल । डाले हरा निकाले लाल ॥

पान

---

(७०) हरा रूप है निज वह बात । मुख में धरे दिखावे जात ॥
तीन वस्तु से अधिक पिआर । जानित हैं सबसे नर नार ॥
हर एक सभा का रखे मान । चतुराई की ठाट पहिचान ॥

पान

---

(७१) अजब तरह की है एक नार । वाका मैं क्या करूँ विचार ॥
दिन वह रहे बदी के संग । लाग रही निस वाके अंग ॥

परछाईं

---

(७२) एक पुरुख औ नौलख नारी । सेज चढ़ी वह तिरिया सारी ॥
जले पुरुख देखे संसार । इन तिरियों का यही सिंगार ॥

हाँडी

---

(७३) एक पुरुख औ सहसों नार । जले पुरुख देखे संसार ॥
बहुत जले और होवे राख । तब तिरियों की होवे साख ॥

हांडी

---

(७४) धूपों से वह पैदा होवे छाँव देख मुर्झाय ।

एरी सखी मैं तुझ से पूछूं हवा लगे मरजावे॥

पसीना

---

(७५) सोने की एक नार कहावे। बिना कसौटी बान दिखावे॥

पलंगड़ी

---

(७६) चाम मास वाके नहीं नेक। हाड़ हाड़ में वाके छेद॥
मोहि अचंभो आवत ऐसे। वामें जीउ बसत है कैसे॥

पिंजड़ा

---

(७७) खेत में उपजे सब कोई खाय। घर में होवे घर खा जाय॥

फूट

---

(७८) एक नार कूएँ में रहे। वाका नीर खेत में बहे॥
जो कोई वाके नीर को चाखे। फिर जीवन की आस न राखे॥

तलवार

---

(७९) एक नार दर सींगों से। नित खेले उठ धींगों से॥
जिसके द्वार जाय के अड़े। बे मानुस लिए नहीं टले॥

डोली

---

(८०) एक कन्या ने बालक जाया। वा बालक ने जगत सताया॥
मारा मरे न काटा जाय। वा बालक को नारी खाय॥

जाड़ा

---

(८१) ताना बाना जल गया जला नहीं एक तागा ।
घर का चोर पकड़ गया घर में मोरी में से भागा ॥

जाल

---

(८२) बिन सिर का निकला चोरी को, बिन थन की पकड़ी जाए।
दौड़ा था बिन पाओं के, बिन सिर का लिए जाय ॥

जाल

---

(८३) क्या करूँ बिन पाओं के, तुझे लेगया बिन सिर का ।
क्या करूँ लंबी दुम के, तुझे खागया बिन चोंच का लड़का ॥

जाल

---

(८४) दूध में दिया दही से लिया ।

जोर

---

(८५) काजल की कजलौटी उधा, पेड़न का सिंगार ।
हरी डाल पे मैना बैठी, है कोइ बूझनहार ॥

जामुन

---

(८६) डाला था सब को मन भाया। टाँग उठाकर खेल बनाया ॥
कमर पकड़ के दिया ढकेल । जब होवे वह पूरा खेल ॥

झूला

---

(८७) एक पुरुख बहुत गुन भरा । लेटा जागे सोवे खड़ा ॥
उलटा होकर डाले बेल । यह देखो करतार का खेल ॥

चरखा

(८८) एक नारि के हैं दो बालक, दोनों एक हि रंग ।
एक फिरे एक ठाढ़ा रहे, फिर भी दोनों संग ॥

चक्की

---

(८६) नई की ढीली पुरानी की तंग ।
बूझो तो बूझो नहीं चलो मेरे संग ॥

चिलम

---

(६०) चालीस मन की नार रखावे, सूखी जैसे तीली ।
कहन को पर्दे की बीबी, पर वह रंग रंगीली ॥

चिलमन

---

(६१) मिला रहे तो नर रहे, अलग होय तो नार ।
सोने का सा रंग है, कोइ चतुरा करे विचार ॥

चना

---

(६२) चटाख पटाख कब से । हाथ पकड़ा जब से ॥
आह आवे कब से । आधा गया जब से ॥
चुप चाप कब से । सारा गया जब से ॥

चूड़ियाँ

---

(६३) तीनों तेरे हाथ में, मैं फिरूँ तेरे साथ में ।
मैं हर फिर मारूँ तेरी, तू बूझ पहेली मेरी ॥

चौसर

---

(९४) चारों दिशा की सोलह रानी। तीन पुरुख के हाथ बिकानी ॥
मरना जीना उसके हाथ । कभी न सोवें वह एक साथ ॥

चौसर

---

(९५) बाजों बाँधी एक छिनाल । नित वो रहवे खोले बाल ।
पी को छोड़ नफर से गाजी । चतुरा हो सो जीत बाजी ॥

चुनरी

---

(९६) बाल नुचे कपड़े फटे, मोती लिए उतार ।
यह बिपता कैसे बनी, जो नंगी कर दई नार ॥

भुट्टा

---

(९७) एक रूख में अचरज देखा डाल घनी दिखलावे ।
एक है पत्ता वाके ऊपर साथ छुए कुम्हलावे ॥
सुंदर वाकी छाँव है औ सुंदर वाको रूप ।
खुला रहे औ नहिं कुम्हलावे जो जो लागे धूप ॥

छतरी

---

(९८) गोल गात औ सुंदर मूरत, कालामुँह तिसपर खुबसूरत ।
उसको जो हो मरहम बूझे, सीना देख पिरोना सूझे ॥

छाता

---

(९९) अगिन कुंड में घिर गया, औ जल में किया निकास ।
परदे परदे आवता, अपने पिय के पास ॥

हुक्के का धूँआ

---

(१००) सुख के कारज बना एक मंदर। पौन न जावे वाके अंदर॥
इस मंदर की रीत दिवानी। बुझावे आग और ओढ़ै पानी॥

स्नान घर

---

(१०१) मूली चढ़ मुसकत करे, स्याम बरन एक नार।
दो से दस से बीस से, मिलत एकही बार॥

मिस्सी

---

(१०२) स्याम बरन एक नार कहावे। तांबा अपना नाम धरावे॥
जो कोइ वाको मुख पर लावे। रती से सेर खा जावे॥

मिस्सी

---

(१०३) नर से पैदा होवे नार। हर कोइ उससे रखे प्यार॥
एक ज़मानः उसको खावे। खुसरो पेट में वह ना जावे॥

धूप

---

(१०४) पीके नाम से बिकत है, कामिन गोरी गात।
एक बेर दो बेर सती भइ, पिया न पूछे बात॥

दीयासलाई

---

(१०५) एक पहेली तीन का गुच्छा, जिसमें एक सुंदर है।
ऐ सखी मैं तुझ से पूछूं, दो बाहर एक अंदर है॥

बोली

---

(१०१) दो, दस और बीस का जोड़ बत्तीस होता है। इतने दाँत प्रत्येक मनुष्य के मुख में होते हैं।

(१०६) श्याम बरन औ सोहनी, फूलन छाई पीठ।
सब सूरन के गले पड़त है, ऐसी बन गई ढीठ॥

ढाल

---

(१०७) लोहे के चने दांत तले पाते हैं उसको।
खाया वह नहीं जाता है, पर खाते हैं उसको॥

रुपया

---

(१०८) दानाई से दांत उस पै लगाता नहिं कोई।
सब उसको भुनाते हैं पै खाता नहिं कोई॥

रुपया

---

(१०९) चंद्रवदन ज़ख्मी तन पांव बिना वह चलता है।
अमीर खुसरो यों कहें, वह हौले हौले चलता है॥

रुपया

---

(११०) एक राजा ने महल बनाया। एक थम पर वाने बँगला छाया॥
भोर भई जब बाजी बम। नीचे बंगला ऊपर थम॥

रई

---

(१११) मोटा पतला सब को भावे। दो मीठों का नाम धरावे॥

सकरकंद

---

(११२) एक नारी के सर पर नार। पी के लगन में खड़ी लचार॥

सीस धुने औ चले न ज़ोर। रो रो कर वह करे है भोर॥

दीपशिखा

---

(११३) जब काटो तबही बढ़े, बिन काटे कुम्हिलाए।

ऐसी अद्भुत नार का, अंत न पाया जाए॥

दीपशिखा

---

(११४) एक पुरुख का अचरज लेखा। मोती फलती आंखों देखा॥

जहाँ से उपजे वहीं समाय। जो फल गिरे सो जल जल जाय॥

फुआरा

---

(११५) जब से तरुवर उपजा एक। पात नहीं पर डाल अनेक॥

इस तरुवर की सीतल छाया। नीचे एक न बैठन पाया॥

फुआरा

---

(११६) बात की बात ठठोली की ठठोली।

मरद की गांठ औरत ने खोली॥

ताला

---

(११७) भीतर चिलमन बाहर चिलमन, बीच कलेजा धड़के।

अमीर खुसरो यों कहें, वह दो दो अंगुल सरके॥

कैंची

---

(११८) आदि कटे से सब को पाले। मध्य कटे से सब को मारे॥

अंत कटे से सबको मीठा । खुसरू वाको आँखों दीठा ॥

काजल

---

(११९) जल कर उपजे जल में रहे । आंखों देखा खुसरू कहे ॥

काजल

---

(१२०) आधा मटका सारा पानी । जो बूझे सो बड़ा गिआनी ॥

काजल

---

(१२१) एक नार चातुर कहलावे । मूरख को ना पास बुलावे ॥

चातुर मरद जो हाथ लगावे । खोल सतर वह आप दिखावे ॥

पुस्तक

---

(१२२) कीली पर खेती करे, औ पेड़ में दे दे आग ।

रास ढोए घर में रखे, वह जाए रह राख ॥

कुम्हार

---

(१२३) माटी रौंदूं चक धरूँ, फेरूँ बारंबार ।

चातुर हो तो जान ले, मेरी जात गँवार ॥

कुम्हार

---

(१२४) एक पुरुष ने ऐसी करी । खूंटी ऊपर खेती करी ॥

खेती बारी दई जलाय । वाई के ऊपर बैठा खाय ॥

कुम्हार

---

(११८) अ० म० ।

(१२५) चार अंगुल का पेड़ सवा मन का पत्ता।
फल लगे अलग अलग पक जाय इकट्ठा ॥

चाक

---

(१२६) अंगूठे सी जड़ चौड़ा पात। छोटे बड़े फल एकही साथ ॥

चाक

---

(१२७) पानी में निस दिन रहे, जाके हाड़ न मास।
काम करै तलवार का, फिर पानी में बास ॥

कुम्हार का डोरा

---

(१२८) एक जानवर जल में रहे, औ मन में वाके खींच।
उछल वार खांडा करे, जल का जल के बीच ॥

कुम्हार का डोरा

---

(१२९) गांठ गँठीला रंग रँगीला, एक पुरुष हम देखा।
मरद इस्तरी उसको रखें, उसका क्या कहूं लेखा ॥

कंठा

---

(१३०) एक कहानी मैं कहूँ, तू सुन ले मेरे पूत।
बिना परों वह उड़ गया, बांध गले में सूत ॥

गुड्डी

---

(१३१) नारी काट के नर किया सब से रहे अकेला।
चलो सखी वाँ चल के देखें, नर नारी का मेला ॥

कुआँ

(१३२) अंबर चढ़े न भू गिरे, धरती धरे न पाँव ।
चांद सुरज ओझल बसे, वाका क्या है नांव ॥

गूलर का भुनगा

---

(१३३) एक नार पानी पर तरं । उसका पुरुष लटका मरं ॥
ज्यों ज्यों खंदी गोता खाय । टूं टूं भडुआ मारा जाय ॥

घड़ी घंटा

---

(१३४) अंधा बहिरा गूँगा बोले गूँगा आप कहावे ।
देख सफेदी होत अँगारा गूँगे से भिड़ जावे ॥
बाँस का मंदिर वाका बासा बासे का वह खाजा ।
संग मिले तो सिर पर रखें वाको रानी राजा ॥
सी सी करके नाम बताया तामें बैठा एक ।
उल्टा सीधा हर फिर देखो वही एक का एक ॥
भेद पहेली में कही तू सुनले मेरे लाल ।
अरबी हिंदी फारसी तीनों करो खियाल ॥

लाल

---

(१३५) उकरूँ बैठ के मारन लागा, आंच कलेजा धड़के ।
अमीर खुसरो यों कहें, वह दो दो अंगुल सरके ॥

मुठिया

---

(१३४) लाल—(फारसी) गुंगा बहिरा, (अरबी) सुखरंग, (हिंदी) एक चिड़िया, छोटा बच्चा, एक रत्न और लार ।

बासो—शिकारी चिड़िया ।

संग—साथ और पत्थर ।

(१३६) एक जानवर रंग रँगीला, बिन मारे वह रोवे।
उसकी माँ पर तीन तिलाकें, बिना बताए सोवे॥

मोर

---

(१३७) सर पर जाली पेट से खाली। पसली देख एक एक निराली॥

मूढ़ा

---

(१३८) बाँस काट ठायँ ठायँ नदी को कँगुआय।
कँवल का सा फूल जैसे अंगुल अंगुल जाय॥

नाव

---

(१३९) ऊपर से वह सूखी साखी नीचे से पनहाई।
एक उतरे और एक चढ़े और एक ने टाँग उठाई॥
मोटा डंडा खाने लागी यह देखो चतुराई।
अमीर ख़ुसरो यों कहें तुम अरथ देव बताई॥

नाव

---

(१४०) मीठी मीठी बात बनावे, ऐसा पुरुष वह किसको भावे!
बूढ़ा बाला जो कोई आए, उसके आगे सीस नवाए॥

नाई

(१४१) नारी में नारी बसे, नारी में नर दोय।
दो नर में नारी बसे, बूझे बिरला कोय॥

नथ

---

(१४२) एक नार दक्खिन से आई। है वह नर और नार कहाई॥

काला मुँह कर ऊपर दिखलावे । सोय रहे जब वाको पावे ।

नगीना

---

(१४३) लाल रंग वह चिपटा चिपटा, मुँह को करके काला ।
थूक लगाकर दाब दिया, जब खसम का नाम निकाला ॥

नगीना

---

(३) कह मुकरियाँ ।

(१४४) बरसा बरस वह देस में आवे । मुँह से मुँह लगा रस प्यावे ॥
वा खातिर में खरचे दाम । ऐ सखी साजन ना सखी आम ॥

---

(१४५) सोभा सदा बढ़ावन हारा । आँखों ते छिन होत न न्यारा ॥
आए फिर मेरे मन रंजन । ऐ सखी साजन ना सखी अंजन ॥

---

(१४६) कसके छाती पकड़े रहै । मुँह से बोले न बात कहै ॥
ऐसा है कामिनि का रंगिया । ऐ सखी साजन ना सखी अँगिया ॥

---

(१४७) बन मे रहे वह तिरछी खड़ी । देख सके मेरे पीछे पड़ी ॥
उन बिन मेरा कौन हवाल । ऐ सखी साजन ना सखी बाल ॥

---

(१४८) पड़ी थी मैं अचानक चढ़ आयो । जब उतरयो तो पसीनो आयो ॥
सहम गई नहि सकी पुकार । ऐ सखी साजन ना सखी बुखार ॥

---

(१४९) आँख चलावे भौं मटकावे । नाच कूद के खेल खिलावे ॥
मन में आवे लै जाऊँ अंदर । ऐ सखी साजन ना सखी बंदर ॥

(१५०) उछल कूद के वह जो आया। धरा ढँका वह सब कुछ खाया॥
दौड़ झपट जा बैठा अंदर। ऐ सखी साजन ना सखी बंदर॥

---

(१५१) छोटा मोटा अधिक सोहाना। जो देखे सो होय दिवाना॥
कभी वह बाहर कभी वह अंदर। ऐ सखी साजन ना सखी बंदर॥

---

(१५२) सेज रंग मेंहदी पर धावे। कर छूवत नैनन चढ़ जावे॥
बैठत उठत मड़ोड़त अंग। ऐ सखी साजन ना सखी भंग॥

---

(१५३) हरा रंग मोहिं लागत नीको। वा बिन जग लागत है फीको॥
उतरत चढ़त मड़ोड़त अंग। ऐ सखी साजन ना सखी भंग॥

---

(१५४) वाको रगड़ा नीको लागै। चढ़े जो बन पर मजा दिखावे॥
उतरत मुँह का फीका रंग। ऐ सखी साजन ना सखी भंग॥

---

(१५५) मो खातिर बजार से आवे। करे सिंगार तब चूमा पावे॥
मन बिगड़े नित राखत मान। ऐ सखी साजन ना सखी पान॥

---

(१५६) बन ठन के सिंगार करे। धर मुँह पर मुँह प्यार करे॥
प्यार से मोपै देत है जान। ऐ सखी साजन ना सखी पान॥

---

(१५७) वा बिन मोको चैन न आवे। वह मेरी तिस आन बुझावे॥
है वह सब गुन बारह बानी। ऐ सखी साजन ना सखी पानी॥

---

(१५८) आप हले वह मोय हिलावे। वाका हिलना मोको भावे॥
हिल हिल के वह हुआ नसंखा। ऐ सखी साजन ना सखी पंखा॥

(१५९) ऊठ ऊमाहे मेरे घर आवे। आप हले और मोय हलावे॥
नाम लेत मोय आवे संखा। ऐ सखी साजन ना सखी पंखा॥

---

(१६०) रात दिना जाको है गौन। खुले द्वार वह आवे भौन॥
वाको हर एक बतावे कौन। ऐ सखी साजन ना सखी पौन॥

---

(१६१) हाट चलत मैं पड़ा जो पाया। खोटा खरा मैं ना परखाया॥
ना जानूं वह हैगा कैसा। ऐ सखी साजन ना सखी पैसा॥

---

(१६२) रात समय वह मेरे आवे। भोर भए वह घर उठ जावे॥
यह अचरज है सबसे न्यारा। ऐ सखी साजन ना सखी तारा॥

---

(१६३) मद भर जोर हमें दिखलावे। मुफत मेरे छाती चढ़ आवे॥
छूट गया सब पूजा जप। ऐ सखी साजन ना सखी तप॥

---

(१६४) घर आवे मुख फेर धरें। दें दुहाई मन को हरें॥
कभू करत हैं मीठे बैन। कभू करत हैं रूखे नैन॥
ऐसा जग में कोऊ होता। ऐ सखी साजन ना सखी तोता॥

---

(१६५) सबज रंग औ मुख पर लाली। उस पीतम गल कंठी काली॥
भाव सुभाव जंगल मे होता। ऐ सखो साजन ना सखी तोता॥

---

(१६६) अति सारँग है रंग रँगीलो। औ गुनवंत बहुत चटकीलो॥
राम भजन बिन कभू न सोता। ऐ सखी साजन ना सखी तोता॥

---

(१६७) लौंडी भेज उसे बुलवाया । नंगी होकर मैं लगवाया ॥
हमसे उससे होगया मेल । ऐ सखी साजन ना सखी तेल ॥

---

(१६८) सुरुख सफेद है वाका रंग । सांझ फिरी मैं वाके संग ॥
गले में कंठा स्याह थे गेसू । ऐ सखी साजन ना सखी टेसू ॥

---

(१६९) जोर भरा है ज्वानि दिखावत । हुमुकि हुमुकि मो पै चढ़ि आवत ॥
पेट में पाऊँ दे दे मारा । ऐ सखी साजन ना सखी जारा ॥

---

(१७०) लपट लपट के वाके सोई । छाती से छाती लगा के रोई ॥
दांत से दांत बजे तो ताड़ा । ऐ सखी साजन ना सखी जाड़ा ॥

---

(१७१) टप टप चूसत तन को रस । वासे नाहीं मेरा बस ॥
लट लट के मैं हो गई पिंजरा । ऐ सखी साजन ना सखी जरा ॥

---

(१७२) नंगे पावँ फिरन नहिं देत । पावँ से मिट्टी लगन नहिं देत ॥
पावँ का चूमा लेत निपूता । ऐ सखी साजन ना सखी जूता ॥

---

(१७३) द्वारे मोरे अलख जगावे । भभूत बिरह के अंग लगावे ॥
सिंगी फूंकत फिरे वियोगी । ऐ सखी साजन ना सखी जोगी ॥

---

(१७४) ऊँची अटारी पलंग बिछायो । मैं सोई मेरे सिर पर आयो ॥
खुल गई अँखियां भई अनंद । ऐ सखी साजन ना सखी चंद ॥

---

(१७५) नित मेरे घर वह आवत है । रात गए फिर वह जावत है ॥
फँसत अमावस गोरि के फंदा । ऐ सखी साजन ना सखी चंदा ॥

(१७६) आधि रात गए आयो दइमारो । सब आभरन मेरे तन से उतारो ॥
इतने में सखी हो गई भोर । ए सखी साजन ना सखी चोर ॥

---

(१७७) मेरे घर में दोनो सेंध । ढुलकत आवे जैसे गेंद ॥
वाके आए पड़त है सोर । ए सखी साजन ना सखी चोर ॥

---

(१७८) मोको तो हाथी को भावे । घटे बढ़े पर मोय न सुहावे ॥
ढूँढ़ ढाढ़ के लाई पूरा । क्यों सखि साजन ना सखी चूड़ा ॥

---

(१७६) अंगों मेरे लिपटा रहे । रंग रूप का सब रस पिए ॥
मैं भर जनम न वाको छोड़ा । ए सखी साजन ना सखी चूड़ा ॥

---

(१८०) सोलह सुहर या सेज प आवै । हड्डी से हड्डी खटकावै ॥
खेलत खेल है बाजी बद कर । ए सखी साजन ना सखी चौसर ॥

---

(१८१) न्हाय धोय सेज मेरी आयो । ले चूमा मुँह मुँहहिं लगायो ॥
इतनि बात पै शुक्कम शुक्का । ए सखी साजन ना सखी हुक्का ॥

---

(१८२) आप जले औ मोय जलावे । पी पी कर मोरे मुँह आवे ॥
एक मैं अब मारूँगी मुक्का । ए सखी साजन ना सखी हुक्का ॥

---

(१८३) बड़ो सयानो दम दे जाय । मुँह को मेरे मिट्टो ले जाय ॥
हरदम बाजे शुक्कम शुक्का । ए सखी साजन ना सखी हुक्का ॥

---

(१८४) रैन पड़े जब घर में आवे । वाका आना मो को भावे ॥
कर पर्दा मैं घर में लिया । ए सखी साजन ना सखी दिया ॥

(१८५) एक सजन वह गहरा प्यारा। जा से घर मेरा उजियारा॥
भोर भई तब बिदा मैं किया। ऐ सखी साजन ना सखी दिया॥

---

(१८६) सारि रैन मोरे संग जागा। भोर भए तब बिछुड़न लागा॥
वाके बिछुड़त फाटे हिया। ऐ सखी साजन ना सखी दिया॥

---

(१८७) वह आवे तब शादी होय। उस बिन दूजा और न कोय॥
मीठे लागैं वाके बोल। ऐ सखी साजन ना सखी ढोल॥

---

(१८८) एक सजन मेरे मन को भावे। जासे मजलिस खड़ी सुहावे॥
सूत सुनूँ उठ दौड़ूं जाग। ऐ सखी साजन ना सखी राग॥

---

(१८९) बखत बे बखत मोयँ वाकी आस। रात दिना वह रहवत पास॥
मेरे मन को सब करत है काम। ऐ सखी साजन ना सखी राम॥

---

(१९०) तन मन धन का है वह मालिक। वाने दिया मेरे गोद में बालक॥
वासे निकसत नीको काम। ऐ सखी साजन ना सखी राम॥

---

(१९१) द्वारे मोरे खड़ा रहे। धूप छाँव सब सर पर सहे॥
जब देखो मोरी जाए भूख। ऐ सखी साजन ना सखी रूख॥

---

(१९२) मेरा मुँह पोंछे मोको प्यार करे। गरमी लगे तो बयार करे॥
ऐसा चाहत सुन यह हाल। ऐ सखी साजन ना सखी रुमाल॥

---

(१९३) सेज पड़ी मेरे आँखों आया। डाल सेज मोहि मजा दिखाया॥
किस से कहूँ मजा मैं अपना। ऐ सखी साजन ना सखी सपना॥

(१९४) उकडूँ बैठ के मांपत हैं। सौ सौ चक्कर देके घुमावत हैं ॥
तब वाके रस की क्या देत बहार। ऐ सखी साजन ना सखी सुनार ॥

(१९५) अति सुंदर जग चाहै जाको। मैं भी देख भुलानी वाको ॥
देख रूप भाया जो टोना। ऐ सखी साजन ना सखी सोना ॥

(१९६) संग मोसे सिंगार करावत। आगे बैठ के मान बढ़ावत ॥
वासे चिक्कन ना कोउ दीसा। ऐ सखी साजन ना सखी सीसा ॥

(१९७) बाट चलत मोरा अचरा गहै। मेरी सुनै न अपनी कहै ॥
ना कुछ मोसो भगड़ा भाँटा। ऐ सखी साजन ना सखी काँटा ॥

(१९८) दुर दुर करूँ तो दौड़ा आए। छन आँगन छन बाहर जाए ॥
दीहल छोड़ कहीं नहीं सुतता। ऐ सखी साजन ना सखी कुत्ता ॥

(१९९) टट्टी तोड़ के घर में आया। अरतन बरतन सब सरकाया ॥
खा गया पी गया दे गया बुत्ता। ऐ सखी साजन ना सखी कुत्ता ॥

(२००) वाकी मोको तनिक न लाज। मेरे सब वह करत है काज ॥
मूड़ से मोको देखत नंगी। ऐ सखी साजन ना सखी कंघी ॥

(२०१) आठ अँगुल का है वह असली। उसके हड्डी न उसके पसली ॥
लटा धारी गुरू का चेला। ऐ सखी साजन ना सखी केला ॥

(२०२) देखन में वह गाँठ गठीला। चाखन में वह अधिक रसीला॥
मुख चूँमू तो रस का भांडा। ऐ सखी साजन ना सखी गाँडा॥

---

(२०३) वैसाख में मेरे ढिग आवत। मोको नंगी सेज पर डारत॥
ना सोवे ना सोवन देत अधरमी। ऐ सखी साजन ना सखी गरमी॥

---

(२०४) चढ़ छाती मोको लचकावत। धोय हाथ मो पर चढ़ि आवत।
सरम लगत देखत सब नारी। ऐ सखी साजन ना सखी गगरी॥

---

(२०५) धमक चढ़ै सुध बुध बिसरावे। दाबत जाँघ बहुत सुख पावै॥
अति बलवंत दिनन का थोड़ा। ऐ सखी साजन ना सखी घोड़ा॥

---

(२०६) हुमक हुमक पकड़ मेरी छाती। हँस हँस मैं वा खेल खेलाती॥
चौंक पड़ी जो पायो खड़का। ऐ सखी साजन ना सखी लड़का॥

---

(२०७) जब माँगू तब जल भर लावे। मेरे मन की बिपत बुझावे॥
मन का भारी तन का छोटा। ऐ सखी साजन ना सखी लोटा॥

---

(२०८) उठा दोनों टाँगन बिच डाला। नाप तौल में देखा भाला॥
मोल तौल में है वह मँहगा। ऐ सखी साजन ना सखी लहँगा॥

---

(२०९) जब मोरे मंदिर में आवे। सोते मुझको आन जगावे॥
पढ़त फिरत वह बिरह के अच्छर। ऐ सखी साजन ना सखी मच्छर॥

---

(२०२) गाँडा—ईख की गँडेरी।

(२१०) बेर बेर सोवतहिं जगावै । ना जागूं तो काटे खावे ॥
व्याकुल हुई मैं हक्की बक्की । ऐ सखी साजन ना सखी मक्खी ॥

---

(२११) देखन के दो घड़ी उजियारी । सब संगर से आती प्यारी ॥
सगरी रैन मैं संग ले सोती । ऐ सखी साजन ना सखी मोती ॥

---

(२१२) नीला कंठ और पहिरे हरा । सीस मुकुट नाचे वह खड़ा ॥
देखत घटा अलापै जोर । ऐ सखी साजन ना सखी मोर ॥

---

(२१३) आठ पहर मेरे ढिग रहे । मीठी प्यारी बातें करे ॥
स्याम बरन और राती नैना । ऐ सखी साजन ना सखी मैना ॥

---

(२१४) उमड़ घुमड़ कर वह जो आया । अंदर मैंने पलंग बिछाया ॥
मेरा वाका लागा नेह । ऐ सखी साजन ना सखी मेंह ॥

---

(२१५) अपने आए देत जमाना । हूं सोते को यहाँ जगाना ॥
रंग रस का फाग मचाया । आप भिजे औ मोहि भिजाया ॥
वाको कौन न चाहे नेह । ऐ सखी साजन ना सखी मेंह ॥

---

(२१६) मुख मेरा चूमत दिन रात । होंठें लगत कहत नहीं बात ॥
जासे मेरी जगत में पत । ऐ सखी साजन ना सखी नथ ॥

---

(२१७) सरब सलोना सब गुन नीका । वा बिन सब जग लागै फीका ॥
वाके सर पर होवे कोन । ऐ सखी साजन ना सखी नोन ॥

---

(२१८) हालत झूमत नीको लागै । अपने ऊपर मोहिं चढ़ावै ॥
मैं वाकी वह मेरा साथी । ऐ सखी साजन ना सखी हाथी ॥

---

(२१९) एक तो है वह देह का भारू । छोटे नैन सदा मतवारू ॥
वह पीउ मेरे सेज का साथी । ऐ सखी साजन ना सखी हाथी ॥

---

(२२०) सगरी रैन छतिअन पर राखा । रंग रूप सब वाका चाखा ॥
भोर भई जब दिया उतार । ऐ सखी साजन ना सखी हार ॥

---

(२२१) अंगों मेरे लपटा आवे । वाका खेल मोरे मन भावे ॥
कर गहि कुच गहि गहे मोरि माला । ऐ सखी साजन ना सखी बाला ॥

---

(२२२) एक सजन मोरा मन ले जावे । मुख चूमे और बात बनावे ॥
होंठन लाग सही रस खींचा । ऐ सखी साजन ना सखी नैचा ॥

---

(४) दो सखुना हिंदी ।

(२२३) रोटी जली क्यों, घोड़ा अड़ा क्यों,
पान सड़ा क्यों ? उत्तर—फेरा न था

(२२४) अनार क्यों न चक्खा,
वज़ीर क्यों न रखा ? ,, दाना न था

(२२५) गोश्त क्यों न खाया,
डोम क्यों न गाया ? ,, गला न था

(२२६) गढ़ी क्यों छिनी, रोटी क्यों मांगी ? ,, खाई न थी

(२२४) फ़ारसी में दाना का अर्थ बुद्धिमान है ।

(२२७) संबोसा क्यों न खाया,
जूता क्यों न चढ़ाया ? उत्तर—तला न था

(२२८) ककड़ी क्यों छाँटी,
लकड़ी क्यों टूटी ? ,, बांदी थी

(२२९) राजा प्यासा क्यों,
गदहा उदासा क्यों ? ,, लोटा न था

(२३०) खिचड़ी क्यों न पकाई,
कबूतरी क्यों न उड़ाई ? ,, छड़ी न थी

(२३१) पोस्ती क्यों रोया,
चौकीदार क्यों सोया ? ,, अमल न था

(२३२) जोगी क्यों भागा,
ढोलकी क्यों न बाजी ? ,, मँढ़ी न थी

(२३३) दही क्यों न जमी,
नौकर क्यों न रखा ? ,, ज़ामिन न था

(२३४) सितार क्यों न बजा,
औरत क्यों न नहाई ? ,, परदा न था

(२३५) क्यारी क्यों न बनाई,
डोमनी क्यों न गाई ? ,, बेल न थी

(२३६) पानी क्यों न भरा,
हार क्यों न पहना ? ,, गढ़ा न था

(२३७) दरबार क्यों न गए,
ज़मीन पर क्यों न बैठे ? ,, चौकी न थी

---

(२२७) उर्दू में तल्ला या तला एकसा लिखा जाता है ।

(२३१) अमल—नशा; काम अर्थात् पहरे का समय ।

(२३३) ज़ामिन—(फ़ा०) दूध में जिसे डालकर दही जमाते हैं; ज़मानतदार ।

(२३४) परदा—आड़; सितार में बेड़ा धातु का मोटा तार जो तांत से बाँधा जाता है ।

(२३५) बेल—(फ़ा०) फावड़ा; कुदाल, (हिं०) एक बाजा ।

(२३६) गढ़ा—(गर्त का अपभ्रंश) गड्ढा; (गढ़ना से) बनाया ।

(२३८) दीवार क्यों टूटी,
राह क्यों लूटी ?　　उत्तर—राज न था

(२३९) खाना क्यों न खाया,
जामा क्यों न धुलवाया ?　　,,　मेल न था

(२४०) जोरू क्यों मारी,
ईख क्यों उजाड़ी ?　　,,　रस न था

(२४१) रोटी क्यों सूखी,
बस्ती क्यों उजड़ी ?　　,,　खाई न थी

(२४२) घर क्यों अँधियारा,
फ़कीर क्यों बिड़ारा ?　　,,　दिया न था

---

(५) निसबतें अर्थात् संबंध, बराबरी।

(२४३) हलवाई और दबकई में क्या निसबत है? उत्तर—कंदा
(२४४) हलवाई और बज़ाज़ में　,,　,,　,,　कंद
(२४५) गोटे और आफ़ताब में　,,　,,　,,　किरन
(२४६) घोड़े और हरफ़ों में　,,　,,　,,　नुक़ता
(२४७) जानवर और बंदूक में　,,　,,　,, मक्खी, घोड़ा
तोता, कुत्ता

---

(२३९)—मेल—(फारसी) इच्छा, रुचि। उर्दू में मेल और मैल एक प्रकार लिखा जाता है।

(२४३) कंदा—खानेवाला, और कुंदा, जिससे दबकई तबक पीटते हैं, उर्दू में एकही प्रकार लिखा जात है।

(२४४) कंद का फ़ारसी में चीनी अर्थ है और कपड़ों पर चमक के लिए कुंद कराया जाता है।

(२४६) घोड़े की मुहेंड़ी का वह भाग जो उसके नथुने के बीच में रहता है नुक़ता कहलाता है। कभी कभी यह शब्द कुल मुहेंड़ी के लिए भी प्रयोग किया जाता है। नुक़ता बिंदियों को भी कहते हैं जो फ़ारसी अक्षरों पर दिए जाते हैं। एक निसबत या बराबरी दोनों में और है क्योंकि घोड़े के कुल साज़ को भी लाम कहते हैं जो फ़ारसी का एक अक्षर भी है।

(२४८)	बंदूक और कुएँ में	क्या	निसबत	है ? उत्तर—	कोठी
(२४९)	बज़ाज़ और फल	,,	,,	,,	कमरख
(२५०)	आम या शलजम और कपड़े	,,	,,	,,	जाली
(२५१)	गहने और दरख़्त	,,	,,	,,	पत्ता
(२५२)	आम और ज़ेवर	,,	,,	,,	कीरी
(२५३)	मकान और अनाज	,,	,,	,,	कँगनी
(२५४)	दरया और गहने	,,	,,	,,	मगर
(२५५)	मकान और पायजामे	,,	,,	,,	मोरी
(२५६)	कपड़े और दरिया	,,	,,	,,	पाट
(२५७)	अँगरखे और पेड़	,,	,,	,,	कलियाँ
(२५८)	आदमी और गेहूँ	,,	,,	,,	बाल
(२५९)	बादशाह और मुर्ग़	,,	,,	,,	ताज
(२६०)	मुश्क और आदमी	,,	,,	,,	दहाँ

(२४९) किमरिख एक कपड़ा है जिसे अब लांकलाट या लौंग क्लाथ कहते हैं ।

(२५२) कैरी और कीरी उर्दू में एकसा लिखा जाता है । कैरी उस आम को कहते है जिसपर पत्ते का दाग़ लगने से कुछ भाग काला हो जाता है । इस प्रकार के आम को कोयल पद्दा आम भी कहते हैं । उदा० शेर—कैरी छिपेगी कब तक पत्तों के झाड़ में । आख़िर को आम होकर बिकेगी बज़ार में ॥ कीरी एक गहने का नाम है जो हाथ में पहिरा जाता है और पंजाब में उसका रिवाज है ।

(२५३) अन्न में ककुनी और मालकगनी होती है । मकान में गोल खंभे के ऊपर और नीचे जो उसीमें निकला हुआ पतला छज्जेदार गोला चारों ओर रहता है उसे कँगनी कहते हैं । मंदिर के नुकीले भाग में जिसपर कलश रक्खा जाता है एक पत्थर का गोला रहता है जिसे आँवला कहते हैं । यह जिस भाग पर जमाया जाता है उस पत्थर के चौकोर टुकड़े को भी कँगनी कहते हैं । छज्जे के नीचे के गोले को कँगनी कहते हैं ।

(२५४) मगर-मुख के कड़े आदि गहने बनते हैं ।

(२६०) मुश्क का अर्थ खुसरो ने केवल कस्तूरी नहीं लिया है, वह मृग लिया है जिससे कस्तूरी निकलती है, जैसे नं० १६ की पहेली में है । फ़ारसी में वहाँ शब्द का अर्थ मुख है पर इस प्रकार के शारीरिक अवयवों की समानता मृग और मनुष्य में बहुत सी बतलाई जासकती हैं । मुश्क अर्थात् मृगमद और आदमी में नाभि की समानता ठीक जान पड़ती है ।

(२६१) घोड़े और बज़ाज़ में क्या निसबत है ? उत्तर—थान, ज़ीन
(२६२) दामन और अंगरखे ,, ,, ,, पर्दा
(२६३) हलवाई और पायजामे ,, ,, ,, कुंदा
(२६४) मकान और कपड़े ,, ,, ,, लट्ठा (गज़)

---

(६) दो सखुना फ़ारसी और हिंदी।

(२६५) सौदागर बच: रा चे मी बायद,
बूचे को क्या चाहिए? उत्तर—दोकान
(२६६) क़ुव्वते रूह चीस्त, प्यारी को कब देखिए? ,, सदा
(२६७) बार बर्दारी रा चे मी बायद,
कलावंत को क्या कहिए ? ,, गाओ
(२६८) तिश्न: रा चे मी बायद,
मिलाप को क्या चाहिए ? ,, चाह
(२६९) शिकारी रा चे मी बायद,
मुसाफ़िर को क्या चाहिए? ,, दाम

(२६३) कुंद: और कंद: उर्दू में एकसा लिखा जाता है।

(२६५) व्यापारी को क्या चाहिए ? बूचा उसे कहते हैं जिसके कान कटे हुए हैं। उर्दू में दूकान और दोकान एक तरह लिखा जाता है।

(२६६) प्राण का बल क्या है ? फ़ारसी में सदा का अर्थ आवाज़, शब्द है और हिंदी में सर्वदा है।

(२६७) बोझ ढोने को क्या चाहिए ? उर्दू में गाओ और गाव एक प्रकार लिखा जाता है। फ़ारसी में गाव का अर्थ बैल है।

(२६८) प्यासे को क्या चाहिए ? फ़ारसी में चाह का अर्थ कुँआ है और हिंदी में प्रेम है।

(२६९) ब्याधे को क्या चाहिए ? दाम का अर्थ जाल, मूल्य, मुसलमानी समय का एक सिक्का आदि है।

(२७०) शिकार बेह चे मी बायद कर्द,
कूवते मग़ज़ को क्या चाहिए ? उत्तर—बादाम

(२७१) दुआ चे तौर मुस्तजाब शवद,
लश्कर में कौन बैठे ? ,, बाज़ारी

(२७२) कोह चे मी दारद,
मुसाफ़िर को क्या चाहिए ? ,, संग

(२७३) दर जहन्नुम चीस्त,
कामी को क्या चाहिए ? ,, नार

(२७४) अज़ खुदा चे बायद तलबीद,
बिरहिन की क्या गिनती ? ,, काम

(२७५) दर आईनः चे मी बीनद,
दुखिया को क्या न कहिए ? ,, रो

(२७६) माशूक रा चे मी बायद कर्द,
हिंदुओं का रब कौन है ? ,, राम

---

(२७०) अच्छा शिकार कैसे करना चाहिए ? बादाम का अर्थ फ़ारसी में बाल से है और बादाम एक मेवा है जो मस्तिष्क के लिए बड़ा लाभदायक है।

(२७१) प्रार्थना किस प्रकार मान्य होती है ? फ़ारसी में बाज़ारी का अर्थ नम्रता से और बाज़ारवाले है।

(२७२) पर्वत में क्या है ? संग का अर्थ पत्थर और साथ है।

(२७३) नर्क में क्या है ? नार का अर्थ आग और स्त्री दोनों है।

(२७४) खुदा से क्या माँगना चाहिए ? काम का अर्थ यहाँ घट और मिलाप है।

(२७५) आईना में क्या दीखता है ? फ़ारसी में रू का अर्थ मुख है और यह और रो अर्थात रोना उर्दू में एक प्रकार लिखा जाता है।

(२७६) माशूक को क्या करना चाहिए ? राम शब्द का फ़ारसी में आज्ञाकारी अर्थ है।

(७) अनमेलियाँ या ढकोसला।

(२७७) भादों पकी पीपली, झड़ झड़ पड़े कपास ॥
बी मेहतरानी दाल पकाओगी या नंगा सो रहूँ ॥ १ ॥

(२७८) कोठी भरी कुल्हाड़ियों, तू हरीरा करके पी ॥
बहुत ताउल है तो छप्पर से मुँह पोंछ ॥ २ ॥

(२७९) पीपल पकी पपोलियाँ, झड़ झड़ पड़े हैं बेर ॥
सर में लगा खटाक से, वाह वे तेरी मिठास ॥ ३ ॥

(२८०) भैंस चढ़ी बिटौरी, और लप लप गूलर खाय ॥
उतर आ मेरे साँड़ की, कहीं हपज़ ना फट जाय ॥ ४ ॥

(२८१) भैंस चढ़ी बबूल पर, और लप लप गूलर खाय ॥
दुम उठा कर देखा तो पूरनमासी के तीन दिन ॥ ५ ॥

(२८२) गोरी के नैना ऐसे बड़े जैसे बैल के सींग ॥ ६ ॥

(२८३) खीर पकाई जतन से, और चरखा दिया जलाय।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजाय ॥ ला पानी पिला ॥७॥

(२८४) औरों की चौपहरी बाजे, चम्मू की अठपहरी।
बाहर का कोई आए नाहीं, आए सारे सहरी ॥

---

(२७८) हरीरा एक प्रकार का खाना है जिसमें खटास और मिठास दोनों मिला रहता है। ताउल का अर्थ तिनका है।

(२८१) हि० से पाठा० भैंस चढ़ी बबूल पर, गप गप गूलर खाय। दुम उठाय के देखा तो ईद के तीन दिन ॥

(२८३) एक कूएँ पर चार पनिहारियाँ पानी भर रही थीं। ख़ुसरो को राह चलते प्यास लगी तो आकर एक से पानी माँगा। उनमें से एक इन्हें पहिचानती थी जिसने सबसे कहा कि यह ख़ुसरो है जो पहेली, मुकरी कहता है। उनमें से एक ने इनसे कहा कि मुझे खीर की बात कहो। दूसरी ने चरखे का, तीसरी ने ढोल का और चौथी ने कुत्ते का नाम लिया। इधर इनका प्यास से दम निकला जाता था पर कौन सुनता था। तब इन्होंने यह ढकोसला पढ़ कर पानी पिया। (ना०, इ०, अ०)

(२८४) चम्मू नाम की एक भठिहारिन थी जिसके यहाँ नगर के लुच्चे लोग चरस पीते थे और जब ख़ुसरो उधर से निकलते थे तब वह हुक्का ले सामने

साफ़ सूफ़ कर आगे राखे, जामें नाहीं तूमल ।
औरों के जहाँ सींक समाए, चम्मू के वाँ मूसल ।

—❀—

(८) बसंत और फुटकर पद्य ।

(१)

(२८५) हज़रत ख्वाजा संग खेलिए धमाल
बाइस ख्वाजा मिल बन बन आयो तामें ।
हज़रत रसूल साहब जमाल हज़रत····
अरब यार तेरो बसंत बनायो ।
सदा रखिए लाल गुलाल हज़रत····

(२)

(२८६) मोरा जोबना नवेल रा भयो है गुलाल
कैसे घर दीनी बकस मोरी माल ॥
नजामुद्दीन औलिया को कोई समझाए ।
जों जों मनाऊँ वह तो रूसा ही जाए ॥
मोरा जोबना ····
चूड़ियाँ फोड़ूँ पलंग पर डारूँ
इस चोली को दूँगी मैं आग लगाए ॥
कैसे घर······
सूनी सेज डरावन लागै, बिरहा अगिन मोहें डस डस जाए ।
मोरा जोबना नवेल रा भयो है गुलाल ॥

बड़ी होती थी। एक दिन उसने कहा कि बंदी के नाम पर भी कुछ कह दो। तब यही ढकोसला लिखा था। उस समय बादशाह के यहाँ चौपहरी नौबत बजती थी। भंग कभी इतनी गाढ़ी बनती है कि प्रशंसा में लोग कहते हैं कि इसमें तिनका खड़ा रह सकता है पर इसके यहाँ इतनी गाढ़ी बनती थी कि उसमें मूसल खड़ा होजाय। (आ०, ह०, हि० ज०)

(३)

(२८७) ऐ सरवंता मबा—मोरी ला—सब बना।
खेलत धमाल ख्वाजा मुइनुद्दीन और ख्वाजा कुतुबद्दीन ॥
शख़ फरीद शकरगंज सुल्तान मशायख नसीरुद्दीन औलिया ॥
ऐ सरवंता मबा......

(४)

(२८८) दइआ री मोहे भिजोया री   शाह निजाम के रंग में
कपड़े रँगने से कुछ ना होत है
या रँग में मैंने तन को डुबोया री
दइआ री मोहे......
वाही के रंग में सुन वे शोख रंग
खूब ही मल मल के धोया री
पीर निजाम के रंग में भिजोया री ॥

(५)

(२८९) औलिया तेरे दामन लागी।
पढ़ियों मेरे ललना।   औलिया......
ख्वाजा हसन को मैं मुजरे मिली
ख्वाजा कुतुबुद्दीन।   औलिया......

(६) सावन का गीत

(२९०) अम्मा मेरे बाबा को भेजो जी   कि सावन आया।
बेटी तेरा बाबा तो बुड्ढा री   ,,
अम्मा मेरे भाई को भेजो जी   ,,
बेटी तेरा भाई तो बाला री   ,,
अम्मा मेरे मामूँ को भेजो जी   ,,
बेटी तेरा मामूँ तो बाँका री   ,,

(२९०)मा०, अ०, इ०, हि० (हि० में केवल इतना पाठांतर है कि बाबा के स्थान पर बाबल और जी के स्थान पर री है।)

(७) दोहा

(२९१) खुसरू रैन सोहाग की, जागी पी के संग ॥
तन मेरा मन पीउ को, दोऊ भए एक रंग ॥

(८) दोहा

(२९२) गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस ॥
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस ॥

(९)

(२९३) ज़े हाल मिस्कीं मकुन तग़ाफ़ुल[1] दुराय नैना बनाए बतियाँ ॥
कि ताबे हिज्राँ न दारम ऐ जाँ[2] न लेहु काहे लगाए छतियाँ ॥
शबान हिज्राँ दराज़ चूँ जुल्फ़ व रोज़े वस्लत चू उम्र कोताह[3] ।
सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ ॥
यकायक अज़ दिल दो चश्मे जादू बसद फ़रेबम बबुर्द तसकीं ।[4]
किसे पड़ी है जो जा सुनावे पिआरे पी को हमारी बतियाँ ॥
चु शम्अ: सोज़ाँ चु ज़र्र: हैराँ हमेश: गिरियाँ बइश्क आँ मेह[5] ।
न नींद नैना न अंग चैना न आप आवैं न भेजे पतियाँ ॥

---

(२९०) यह दोहा कब और कैसे बना इसका वर्णन खुसरो के जीवन चरित्र में आ चुका है ।

(२९३) आ० अ० ह० हि०

(१) इस ग़रीब की दशा को मत भुलाओ ।

(२) ऐ प्यारे अब विरह नहीं सह सकती ।

(३) तेरे बालों के समान विरह की रातें बड़ी और अवस्था के समान मिलने के दिन छोटे हैं ।

(४) एकाएक इन दोनों जादूभरी आँखों ने सैकड़ों बहाने से मेरे धैर्य्य को छुड़ा दिया । आ० ह० और हि० में यही पाठ है पर अ० में 'बसद फ़रावेम सब्रो तसकीं' है ।

(५) उस प्यारे के प्रेम में दीप की तरह जलती हुई, ज़र्रे (धूल के कण जो सूर्य की किरण में चमकते और घूमते फिरते दिखलाते हैं) की तरह घबड़ाती हुई और सर्वदा रोती हुई । आ० ह० हि० में पाठांतर— चू शम्अः सोज़ाँ चू ज़र्रः हैराँ ज़े मेह आँ मेह बगश्तम आख़िर ।

बहक्क़ रोज़े वसाल दिल्बर कि दाद मा रा फ़रेब ख़ुसरू[6] ।
स पीत मन की दुराए राखूँ जो जाने पाऊँ पिया की घतियाँ[7] ॥

(१०) आँख का नुसख़ा

(२६४) लोध फिटकिरी मुर्दासंख। हल्दी जीरा एक एक टंक ॥
अफ़्यून चना भर मिर्चें चार। उरद बराबर थोथा डार ॥
पोस्त के पानी पुटली करे। तुरत पीड़ नैनों की हरे ॥

११ दोहा (उपनाम रहित)

(२६५) श्याम सेत गोरी लिए, जनमत भई अनीत।
एक पल में फिर जात हैं, जोगी काके मीत ॥

---

(६) ए ख़ुसरू, प्यारे से मिलने के दिन मुझे धोखा दिया गया।

(७) पाठा०—हि० में—सुभाय राखूँ तू सुन ए साजन जो कहने पाऊँ बोल बतियाँ। पर जो दिया गया है वह (आ० हु० ज०) तीनों में है।

(२६४) ज० ह०

(२६५) न०

१६—राजपूताने के भिन्न भिन्न विभागों के प्राचीन नाम।

[लेखक—रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर]

'राजपूताना' नाम अंग्रेज़ों का रक्खा हुआ है। जिस समय उनका संबंध इस देश के साथ हुआ उस समय बहुधा यह सारा देश, भरतपुर राज्य को छोड़कर, राजपूत राजाओं के अधीन था जिससे उन्होंने गोंडवाना, तिलिंगाना के ढंग पर इसका नाम 'राजपूताना' अर्थात् राजपूतों का देश रखा। राजपूताना के प्रथम और प्रसिद्ध इतिहास लेखक कर्नल जेम्स टॉड ने इस देश का नाम 'राजस्थान' या 'रायथान' रखा जो राजाओं या उनके राज्यों के स्थान का सूचक है, परंतु अंग्रेज़ों के पहले यह सारा देश उक्त नाम से कभी प्रसिद्ध रहा हो ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। अतएव वह नाम भी कल्पित ही है क्योंकि 'राजस्थान' या उसके प्राकृत (लौकिक) रूप 'रायथान' का प्रयोग प्रत्येक राज्य के लिये हो सकता है। सारे राजपूताना के लिये पहले किसी एक नाम का प्रयोग होना पाया नहीं जाता, उसके कितने एक अंशों के तो प्राचीन काल में समय समय पर भिन्न भिन्न नाम थे और कुछ विभाग अन्य बाहरी प्रदेशों के अंतर्गत थे।

जांगल[1] देश

वर्तमान सारा बीकानेर राज्य तथा मारवाड़ (जोधपुर राज्य)

---

(१) जांगल देश के लक्षण ये बतलाए जाते हैं कि 'जिस देश में जल और घास कम होती हो, वायु और धूप की प्रबलता हो और अन्न आदि बहुत होता हो उसको जांगल देश जानना चाहिए' (स्वल्पोदकतृणो यस्तु प्रवातः प्रचुरातपः। स ज्ञेयो जांगलो देशो बहुधान्यादिसंयुतः—शब्दकल्पद्रुम, काण्ड २, पृ० ५२१)। भावप्रकाश में लिखा है कि 'जहाँ आकाश स्वच्छ और उन्नत हो, जल और वृक्षों की कमी हो और शमी, कैर, बिल्व, आक, पीलु और बेर के

का उत्तरी हिस्सा, जिसमें नागौर आदि परगने हैं प्राचीन काल में 'जांगल देश' कहलाता था। महाभारत में कहीं देश या वहाँ के निवासियों[1] का सूचक 'जांगल' नाम अकेला (जांगलाः[2]) मिलता है तो कहीं 'कुरु' और 'मद्र' देशों (निवासियों) के साथ जुड़ा हुआ ('कुरुजांगलाः'[3]; 'माद्रेयजांगला':[4]) मिलता है। महाभारत में बहुधा ऐसे देशों के नाम समास में दिए हुए पाये जाते हैं जो परस्पर मिले हुए होते हैं जैसे, 'कुरुपांचालाः' आदि। अतएव 'माद्रेयजांगलाः' और 'कुरुजांगलाः' का आशय यही है कि 'मद्र[5]'

वृक्ष हों उसको जांगल देश कहते हैं,। (आकाशशुभ्र उच्चश्च स्वल्पपानीयपादपः। शमीकरीरबिल्वार्कपीलुकर्कंधुसंकुलः॥···देशो वातालो जांगलः स्मृतः (वही पृ० ५२६)। इन लक्षणों से राजपूताना के बालुवाले किसी प्रदेश का नाम जांगलदेश होना अनुमान किया जा सकता है।

(१) संस्कृत में देशों के नामों के साथ जब 'देश' या उसका पर्यायसूचक कोई दूसरा शब्द नहीं रहता तब वे बहुधा बहुवचन में मिलते हैं, जैसे कि 'पांचालाः', 'जांगलाः', 'दशार्णाः' आदि। इसका कारण यह है कि देशों के नाम बहुधा उनके निवासियों के नाम पर रखे गए हैं।

(२) कच्छा गोपालकक्षाश्च जाङ्गलाः कुरुवर्णकाः (महाभारत, भीष्मपर्व, अध्याय ६, श्लोक ५६—कुंभकोणं संस्करण)। पैतृ्यं राज्यं महाराज कुरवस्ते स जाङ्गलाः। (वही, उद्योगपर्व, अध्याय ५४, श्लो० ७)।

(३) तीर्थयात्रामनुक्रामन्प्राप्तोऽस्मि कुरुजांगलान् (वही, वनपर्व, अ० १०, श्लो० ११)। ततः कुरुश्रेष्ठमुपेत्य पौराः प्रदक्षिणं चक्रुरदीनसत्त्वाः। तं ब्राह्मणाश्चाभ्यवदन्प्रसन्ना मुख्याश्च सर्वे कुरुजाङ्गलानाम्। स चापि तानभ्यवदत्प्रसन्नः सहैव तैर्भ्रातृभिर्धर्मराजः। तस्थौ च तत्राधिपतिर्महात्मा दृष्ट्वा जनौघं कुरुजाङ्गलानाम् (वही, वनपर्व, अ० २३, श्लो० ५—६)

(४) तत्रेमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वा माद्रेयजाङ्गलाः (वही, भीष्मपर्व, अ० ६, श्लो० ३६)।

(५) पंजाब का वह हिस्सा जो चनाब और सतलज नदियों के बीच में है। इंडि० एंटि०, जि, ४०, पृ० २८।

इस समय बीकानेर राज्य (जांगल) का उत्तरी हिस्सा मद्र देश से नहीं मिलता, परंतु संभव है कि प्राचीन काल में या तो मद्र की सीमा दक्षिण में अधिक दूर तक हो या जांगल की उत्तरी सीमा उत्तर में मद्र से आ मिलती हो।

और 'कुरु'[1] देशों से जुड़ा हुआ 'जांगल देश'। मद्र और कुरु दोनों जांगल के उत्तर में थे इसलिये उनसे दक्षिण में जांगल देश होना चाहिए।

बीकानेर के राजा जांगल देश के स्वामी होने के कारण अपने को 'जंगलधर (जांगल देश) के बादशाह' कहते हैं जैसा कि उनके राज्यचिह्न में लिखा रहता है[2]।

जांगल देश की राजधानी अहिच्छत्रपुर[3] थी जिसको इस समय नागौर[4] कहते हैं और जो जोधपुर राज्य के उत्तरी विभाग में है।

(१) 'कुरु' के लिये देखो आगे पृ० ३३२।

(२) बीकानेर राज्य के राज्यचिह्न में 'जय जंगलधर बादशाह' लिखा रहता है।

(३) अहिच्छत्रपुर नाम के एक से अधिक नगरों का होना हिंदुस्तान में पाया जाता है। उत्तरी पांचाल देश की राजधानी अहिच्छत्र थी जिसका वर्णन चीनी यात्री हुएन्त्संग ने अपनी यात्रा की पुस्तक 'सी—यु—की' में किया है (बील, बुद्धिस्ट रेकर्ड्स ऑफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड, जि० १, पृ० २००)। जैन लेखक जांगल देश की राजधानी अहिच्छत्र बतलाते है (इंडि० एंटि०, जि० ४०, पृ० २८)। कर्नल टॉड के गुरु यति ज्ञानचंद्र के संग्रह (मांडल मेवाड़ में) में मुझे एक सूची २५ देशों तथा उनकी राजधानियों की मिली जिसमें भी जांगल देश की राजधानी अहिच्छत्र लिखी है। भैरवामत्ति के शिलालेख में सिंधुदेश में अहिच्छत्रपुर नामक नगर का होना लिखा है (एपि० इंडि०, जि० ३, पृ० २३५)। इसी तरह और भी अहिच्छत्र नाम के नगरों का उल्लेख मिलता है (बंबई गैजेटिअर, जि० १, भाग २, पृ० ५६०, टिप्पण ११)।

(४) जोधपुर राज्य के नागौर नगर को जांगल देश की राजधानी अहिच्छत्रपुर मानने का पहला कारण तो यह है कि नागौर 'नागपुर' का प्राकृत रूप है। नागपुर का अर्थ 'नाग का नगर' और अहिच्छत्रपुर का अर्थ 'नाग है छत्र जिस नगर का' है। नाग और अहि दोनों एक ही आशय (सांप) के सूचक हैं। संस्कृत के लेखक नामों का उल्लेख करने में उनके पर्याय शब्दों का प्रयोग सामान्य रूप से करते हैं। पुराणों में विशेषकर हस्तिनापुर नाम मिलता है परंतु भागवत में उसके स्थान में 'गजसाह्वय पुर' (भागवत, १।८।४५; ४।३१।३०; १०।२०७।८) या 'गजाह्वय' पुर (भागवत, १।४।४८; १।१५।३८) नाम भी है। महाभारत ने हस्तिनापुर के लिये नागसाह्वयपुर (७।११।८;

सपादलक्ष

जांगल देश की राजधानी अहिच्छत्रपुर (नागौर) के आसपास के छोटे से प्रदेश का प्राचीन नाम सपादलक्ष[1] था। राजपूताने में चौहानों का प्रथम अधिकार उसी प्रदेश पर रहा, जिससे वे 'सपादलक्षीयनृपति' (सपादलक्ष के राजा) कहलाए। फिर उनकी राजधानी शाकंभरी (सांभर) नगर हुई जिससे वे 'शाकंभरीश्वर' (संभरीनरेश) भी कहलाते हैं। उनकी तीसरी राजधानी अजमेर हुई। समय पाकर उनके राज्य का विस्तार बढ़ता गया

१४।६२।२०) और नागपुर (२।१४७।२) नामों का प्रयोग भी मिलता है, क्योंकि हस्ती, नाग और गज तीनों एक ही के सूचक हैं। दूसरा कारण यह है कि चौहान राजा सोमेश्वर के समय के वि० सं० १२२६ फाल्गुन वदि ३ के बीजोल्यां (उदयपुर राज्य में) के चट्टान पर के लेख में चौहान राजा सामंत का अहिच्छत्रपुर में राज करना लिखा है (विप्रश्रीवत्सगोत्रेभूदहिच्छत्रपुरे पुरा। सामंतोनंतसामंतः पूर्णतल्ले नृपस्ततः (श्लोक १२)। पृथ्वीराजविजयमहाकाव्य से पाया जाता है कि वासुदेव (सामंत का पूर्वज) शिकार को गया जहाँ एक विद्याधर की कृपा से शाकंभरी (सांभर) की झील उसको नज़र आई" (सर्ग ४)। इससे पाया जाता है कि सांभर की झील चौहानों की मूल राजधानी अहिच्छत्रपुर से बहुत दूर न थी, ऐसी दशा में नागौर ही अहिच्छत्रपुर हो सकता है।

(१) नागौर के आसपास के इलाके (नागौरपट्टी) को वहां के लोग अब तक 'सवालक' या 'सवालक' कहते हैं जो सपादलक्ष का ही लौकिक रूप है। तीन भिन्न भिन्न देशों के नाम सपादलक्ष मिलते हैं—जिनमें से एक तो गढ़वाल, कमाऊँ आदि प्रदेशों का, जैसा कि गया से मिले हुए राजा अशोकचल्ल के छोटे भाई कुमार दशरथ के समय के गया के लेख से पाया जाता है (इंडि० एं० टे०, जि० १०, पृ० ३४६; एपि० इंडि०, जि० १२, पृ० ३०।) दूसरा सांभर और अजमेर के चौहानों के अधीन के सारे देश का नाम जो उनके शिलालेखों तथा ऐतिहासिक पुस्तकों में मिलता है (देखो आगे पृ० ३३१, टिप्पण १-५) और तीसरा दक्षिण में था जिसका उल्लेख केवल कनड़ी भाषा के प्रसिद्ध कवि पंप के रचे हुए 'विक्रमार्जुनविजय' (पंपभारत) नामक कनड़ी काव्य में जो शक संवत् ८६३ (वि० सं० ९९८) के आस पास बना था, मिलता है (गौरीशंकर हीराचंद ओझा—सोलंकियों का प्राचीन इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १०६)।

और विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे के समय से तो राजपूताने के बाहर के कितने एक प्रदेश (देहली, हांसी आदि) भी उनके राज्य के अधीन हो गए थे, परंतु सामान्य रूप से जितना देश उनके अधिकार में रहा वह सारा ही सपादलक्ष[1] कहलाने लगा। उसके अंतर्गत जांगल (जोधपुर राज्य के उत्तरी विभाग सहित), जयपुर राज्य[2] का शेखावाटी से लगाकर रणथंभोर से कुछ दक्षिण तक का प्रदेश जिसमें कोटा रियासत का उत्तरी भाग भी है, मेवाड़ का मांडलगढ़[3] (मंडलकर दुर्ग) से लगाकर सारा पूर्वी हिस्सा[4], बूँदी राज्य का पश्चिमी अंश, किशनगढ़ का राज्य तथा अजमेर का सारा प्रदेश था। गुजरात के सोलंकी (चौलुक्य) राजाओं के समय के शिलालेखों तथा ऐतिहासिक संस्कृत पुस्तकों में अजमेर के चौहानों को कहीं सपादलक्ष[5] और कहीं जांगल देश[6] का राजा कहा है जिससे

(१) देवं सोमेश्वरं द्रष्टुं राजश्रीरुत्कंठत। आत्मजाभ्यामिव यशः प्रतापाभ्यामिवान्वितः। सपादलक्षमानिन्ये महामात्यैर्महीपतिः (पृथ्वीराजविजय, सर्ग ८, श्लो० १७—१८)। सपादलक्षमामर्थं नम्रीकृत भपा (नृपा ?) नकः (सोलंकी कुमारपाल का चित्तौड़ का शिलालेख, (एपि० इंडि० जि० २ पृ० ४२३)

(२) संवत् १२४४ श्रावणपूर्वं सपादलक्षे ... (जयपुरराज्य के बीसलपुर का शिलालेख, अजमेर के चौहानराजा पृथ्वीराज के समय का—कनिंगहाम, आर्कियालाजिकल सर्वे, रिपोर्ट, जि० ६, प्लेट २१)।

(३) श्रीमानस्ति सपादलक्षविषयः शाकंभरीभूषणस्तत्र श्रीरतिधाममण्डलकरं नामास्ति दुर्गं महत् ...॥१॥ ... म्लेच्छेशेन सपादलक्षविषये व्याप्ते सुवृत्तक्षतित्रासाद्विन्ध्यनरेन्द्रदोःपरिमलस्फूर्जत्त्रिवर्गौजसि। प्राप्तो मालवमंडले बहुपरीवारः पुरीमावसन्यो धारामपठज्जिनप्रमितिवाक्शास्त्रं महावीरतः ॥५॥ (जैन विद्वान् आशाधर रचित 'धर्मामृतशास्त्र')

(४) ओं सं० १२२५ ज्येष्ठ वदि १३ अद्येह श्रीसपादलक्षमंडले महाराजाधिराजपरमेश्वर .... शाकंभरीभूपालश्रीप्रिथिम्बिदेवविजयराज्ये (मेवाड़ के पूर्वी हिस्से के धौड़ गांव के रूठी राणी के मंदिर के स्तंभ पर खुदा हुआ चौहानराजा पृथ्वीराज दूसरे [पृथिवीदेव, पृथ्वीभट] के समय का शिलालेख)।

(५) सपादलक्षमामर्थं (ऊपर टिप्पण १)। सपादलक्षः सहभूरिलवैरानाकभूपाय गतायदत्तः (प्रबंधचिंतामणि, पृ० १६०)

(६) किमङ्ग! जांगलपतेः सौविकप्रस्तावोपश्लोकमनाकार्णतवान् भवान्

पाया जाता है कि प्राचीन जांगल देश चौहानों के विस्तृत राज्य के अंतर्गत हो जाने के कारण पीछे से सपादलक्ष में गिना जाने लगा।

कुरु

महाभारत में कुरु देश का नाम कभी अकेला[1] मिलता है और कभी उसके साथ जांगल[2] और पांचाल[3] के नाम जुड़े हुए मिलते हैं। जांगल दक्षिण में और पांचाल पूर्व में उससे जुड़ा हुआ था और वे

(प्रह्लादनदेव विरचित 'पार्थपराक्रमव्यायोग,' पृ० ३)। दण्डे मण्डपिका हैमी सद्मसर्मेतंगजैः। दत्त्वा पादं गले येन जाङ्गलेशादगृह्यत (कीर्तिकौमुदी, सर्ग २, श्लो० ४३)। हृदि प्रविष्टबाणविलष्टेनाघूर्णितं शिरः। जांगलक्षोणिपालेन व्याचक्षाणैः परैरपि (वही स० २, श्लो० ४६)। गूर्जरेश्वरपुरोहित सोमेश्वर ने अपनी 'कीर्तिकौमुदी' में गुजरात के सोलंकीराजा कुमारपाल और अजमेर के चौहानराजा आना (अर्णोराज, आनाक, आनल्लदेव) के बीच की लड़ाई के वर्णन के प्रसंग में चौहानराजा को जांगलक्षोणिपाल अर्थात् 'जांगलदेश का राजा' कहा है (सर्ग २, श्लो० ४६) परंतु उसी ग्रंथकार ने अपने 'सुरथोत्सवकाव्य' में गुजरात के चौलुक्य राजा जयसिंह (सिद्धराज) के और चौहान आना के युद्ध प्रसंग में आना को सपादलक्ष का राजा कहा है (ततः सोऽपि सपादलक्षनृपतिः पादानतिं शिक्षितः—सर्ग १५, श्लो० २२) मेरुतुंग ने बहुत जगह सपादलक्ष ही नाम दिया है, जांगल कहीं नहीं।

(१) देखो ऊपर पृ० ३२८, टिप्पण २।

(२) देखो ऊपर पृ० ३२८, टिप्पण ३।

(३) तत्रेमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वा माद्रेयजाङ्गलाः (महाभारत, भीष्मपर्व, अ० ६, श्लो० ३६)।

पांचाल अंतर्वेद (गंगा और यमुना के बीच के प्रदेश) के बड़े हिस्से का नाम था (आर्य! अनुवर्त्तिनी भगवत्ययोध्या। इमे अन्तर्वेदीभूषणं पांचालाः—राजशेखर, बालरामायण, अंक १०)। पांचाल के दो विभाग थे जो उत्तरी और दक्षिणी पांचाल कहलाते थे। उत्तरी पांचाल की राजधानी अहिच्छत्रपुर थी जिसके खंडहर बरेली से २० मील पश्चिम में पाए जाते हैं। दक्षिणी पांचाल की राजधानी कांपिल्य नगर गंगा के तट पर था जिसको इस समय कंपिल कहते हैं और जो करीब करीब बदाऊँ के सामने है (देखो खड्गविलास प्रेस का छपा टॉड राजस्थान, प्रथम खंड, पृ० ५४)।

कोई कोई पांचाल को पंजाब का प्राचीन नाम मानते हैं परंतु वह भ्रम

दोनों कभी कभी कुरुराज्य के अधीन[1] भी रहे थे। कुरु देश में पटियाला राज्य के पूर्वी (आधे) हिस्से से लगाकर यमुना के पूर्व तक के और थानेश्वर के कुछ उत्तर से लगाकर देहली से कुछ दक्षिण तक के प्रदेश का समावेश होता था[2]। उसकी प्राचीन राजधानी हस्तिनापुर गंगा के तट पर मेरठ ज़िले में (मेरठ से २२ मील उत्तर-पूर्व में) थी। यह नगर गंगा के प्रवाह से नष्ट हो गया जिससे परीक्षित के सातवें वंशधर निचक्नु ने कौशांबी को अपनी राजधानी बनाया[3]। उसकी दूसरी राजधानी इंद्रप्रस्थ (पुरानी देहली) पांडवों के समय में स्थिर हुई थी। राजपूताने का केवल अलवर राज्य का उत्तरी हिस्सा, जिसमें तहसील तिजारा आदि हैं, कुरु देश के अंतर्गत था।

कुरु देश को कुरुक्षेत्र[4] भी कहते हैं। कौरव पांडवों का प्रसिद्ध महाभारत का युद्ध इसी धर्मक्षेत्र में हुआ था।

मत्स्य

मत्स्य देश कुरुक्षेत्र से दक्षिण और शूरसेन से पश्चिम में था। उसमें अलवर राज्य की तहसील अलवर, राजगढ़, टहला आदि उक्त राज्य के पश्चिमी और दक्षिणी हिस्से तथा अलवर से मिला हुआ जयपुर राज्य का बहुत सा अंश था। महाभारत के समय

ही है। पंजाब कभी पांचाल नहीं कहलाया। उसका प्राचीन नाम पंचनद मिलता है (कृत्स्नं पञ्चनदं चैव तथैवामरपर्वतम्—महाभा०, सभापर्व, अ० ३२, श्लो० १०)। अथ पञ्चनदं गत्वा नियतो नियताशनः। (वही, वन प०, अ० ८०, श्लो० ८४)।

(१) देखो ऊपर पृ० ३२८, टिप्पण २। मैकडॉनल और कीथ, वैदिक इंडेक्स, जि० १, पृ० १६६)।

(२) तैत्तिरीय आरण्यक में कुरु (कुरुक्षेत्र) की सीमा दक्षिण में खांडव (वन), उत्तर में तूघ्न और पश्चिम में परीणाह का होना लिखा है (वही, जि० १, पृ० १७०)।

(३) विष्णुपुराण, अंश ४, अध्याय २१।

(४) कुरुक्षेत्र को समंतपंचक भी कहते थे जिसका कारण ऐसा माना जाता है कि वहीं परशुराम ने क्षत्रियों को मारकर उनके रुधिर से पांच तालाब भरे थे (महाभारत, आदि प०, अ० २, श्लो १- ३)

उक्त देश का राजा विराट था जिसके नाम से उक्त देश की राजधानी विराट या विराट नगर कहलाई हो। विराट नगर को इस समय बैराट कहते हैं और वह जयपुर राज्य के अंतर्गत उक्त नाम की तहसील का मुख्य स्थान है। वह राजपूताने के प्राचीन नगरों में से एक है जहाँ मौर्यवंशी राजा अशोक के लेख मिले हैं[1]।

शूरसेन

मत्स्य देश से पूर्व में शूरसेन देश था। उसके अंतर्गत मथुरा के आसपास का प्रदेश (मथुरामंडल, ब्रज), अलवर राज्य का पूर्वी हिस्सा जिसमें तहसील रामगढ़, गोविंदगढ़ आदि हैं, भरतपुर और धौलपुर के राज्य तथा करौली राज्य का बहुत सा अंश (उत्तरी) था। उसकी राजधानी मथुरा (मधुपुरी) थी।

राजन्य देश

मथुरा के आसपास के प्रदेश से कुछ सिक्के ऐसे मिले हैं जिनपर खरोष्ठी या ब्राह्मी लिपि में 'राजञजनपदस' (=राजन्यजनपदस्य= राजन्यदेश का—सिक्का) लेख है[2]। ये सिक्के मथुरा के (उत्तरी) क्षत्रपों के सिक्कों की शैली के हैं और उनपर के खरोष्ठी लिपि के लेख से पाया जाता है कि वे विदेशी राजाओं के चलाए हुए हों। संभव है कि मथुरा के आसपास के प्रदेश अर्थात् शूरसेन देश पर क्षत्रपों का अधिकार होने से पूर्व वहाँ के स्वामी राजन्य अर्थात् क्षत्रिय (राजपूत) थे जिससे उस देश का नाम राजन्य देश भी रहा हो। राजन्य देश शूरसेन या उसके एक विभाग का नाम होना चाहिए।

शिबि

चित्तौड़ के प्रसिद्ध किले से ७ मील उत्तर में 'मध्यमिका' नामक प्राचीन नगरी के खंडहर हैं। उसको इस समय 'नगरी' कहते हैं। वहाँ से मिले हुए कई एक ताँबे के सिक्कों पर ई० स० पूर्व

(१) कनिंगहाम, कॉर्पस् इंस्क्रिपशनम् इंडिकेरम्, जि० १, पृ० २२-२३।

(२) वी. ए. स्मिथ, कॅटलॉग् ऑफ् दी कॉइंस इन् दी इंडियन् म्यूज़ियम, कलकत्ता, पृ० १६४-६५, १७४-८०।

की दूसरी शताब्दी के आसपास की ब्राह्मी लिपि में 'मझिमिकाय शिबिजनपदस, (मध्यमिकायाः शिबिजनपदस्य = शिवि देश की मध्यमिका का—सिक्का) लेख है'[1]। इसपर से अनुमान होता है कि उस समय मेवाड़ या उसका चित्तौड़ के आसपास का अंश 'शिवि'[2] नाम से प्रसिद्ध था। पीछे से वह देश मेवाड़ (मेदपाट) के अंतर्गत हो गया या उस नाम से प्रख्यात हुआ और उसका मूल नाम तक लोग भूल गए।

मेदपाट

उदयपुर राज्य के शिलालेखों तथा ऐतिहासिक पुस्तकों में उस राज्य या देश का नाम 'मेदपाट'[3] मिलता है और लोग उसको मेवाड़ कहते हैं। उस देश पर पहले मेद (संस्कृत में) अर्थात् मेव या मेर जाति का अधिकार रहने से उसका नाम मेदपाट (मेवाड़) पड़ा। मेवाड़ का एक हिस्सा अब तक मेवल कहलाता है तथा मेवों के राज्य का स्मरण दिलाता है। मेवाड़ के देवगढ़ की तरफ़ के इलाके में और अजमेर-मेरवाड़ा के मेरवाड़ा प्रदेश में, जिसका अधिकतर अंश मेवाड़ से ही लिया गया है, अब तक मेरों की आबादी अधिक है। कितने एक विद्वान् मेर (मेव, मेद) लोगों की गणना हूणों में करते हैं, परंतु मेर लोग शाकद्वीपी ब्राह्मणों की नाईं अपना निकास ईरान की तरफ़ से बतलाते हैं और मेर (मिहिर) नाम भी वही सूचित करता है जिससे संभव है कि वे पश्चिमी क्षत्रपों के अनुयायी या वंशज हों।

(१) कनिंगहाम आर्किआलोजिकल सर्वे, रिपोर्ट, जि० ६, पृ० २०३।

(२) हिंदुस्तान में शिबि नाम के एक से अधिक देश पाए जाते हैं, शिबि नाम का एक देश लाहौर और मुल्तान के बीच था (वहीं, जि० १४, पृ० १४५)। वराहमिहिर ने भारत के दक्षिणी विभाग में शिबिक (शिबि) नामक देश भी बतलाया है (कंकटंकणवनवासिशिबिकफणिकारकोंकणाभीराः बृहत्संहिता अध्याय १४, कूर्मविभाग, श्लो० १२)।

(३) नागरीप्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण), भाग १, पृ० २१८, टिप्पण ४२।

प्राग्वाट

करनबेल (जबलपुर के निकट) के एक शिलालेख में प्रसंगवशात् मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा हंसपाल, वैरिसिंह और विजयसिंह का वर्णन मिलता है जिसमें उनको प्राग्वाट[1] का राजा कहा है। अतएव प्राग्वाट मेवाड़ (मेदपाट) का ही दूसरा नाम होना चाहिए। संस्कृत के शिलालेखों[2] तथा पुस्तकों[3] में 'पोरवाड़' महाजनों के लिए 'प्राग्वाट' नाम का प्रयोग मिलता है। वे लोग अपना निकास मेवाड़ के 'पुर' कसबे से बतलाते हैं जिससे संभव है कि प्राग्वाट देश के नाम पर से वे अपने को प्राग्वाट वंशी कहते रहे हों।

बागड़[4]

डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्यों से मिलनेवाले शिला-लेखों में उक्त राज्यों का संमिलित नाम 'वागड[5]' मिलता है और वहाँ के लोगों में वे दोनों राज्य अब तक वागड़ नाम से ही प्रसिद्ध हैं। मेवाड़ का छप्पन ज़िला भी, जो डूंगरपुर राज्य की सीमा से मिला हुआ है, पहले वागड़ के अंतर्गत था[6]। वागड़ नाम की उत्पत्ति का ठीक पता नहीं मिलता। डूंगरपुर और बांसवाड़ा के ब्राह्मणों का

(१) प्राग्वाटेवनिपालभालतिलकः श्रीहंसपालोभवत्तस्माद्भूभृदभूत सत्यसमितिः श्रीवैरिसिंहाभिधः। इंडि० एँटि०, जि० १८, पृ० २१७।

(२) प्राग्वाटान्वयमुकुटं कुंदजप्रसूनविशदयशाः (एपि० इंडि० जि० ८ पृ० २०१)। श्रीमदणहिलपुरवास्तव्य श्रीप्राग्वाटज्ञातीय ठ० श्रीचण्डपसुत (वही, पृ० २१६)।

(३) प्रांशुः प्राग्वाटवंशोभूत्पुरे गूर्जरभूभुजाम् (सोमेश्वररचित कीर्तिकौमुदी, सर्ग ३, श्लोक १।)

(४) वागड के स्थान पर वागट और वार्गट पाठ भी मिलते हैं (जयति श्रीवागटसंघः—राजपूताना म्यूज़िअम (अजमेर) में रक्खी हुई एक जैनमूर्ति के आसन पर खुदा हुआ वि० सं० १०५१ का लेख—अप्रकाशित)। वार्गटिकान्वयोद्भूतसद्विप्रकुलसंभवः (हर्षनाथ का लेख, एपि० इंडि० जिल्द २ पृ० १२२), राजपूताने में बहुत से ब्राह्मण बागडिये या बागड़े कहलाते हैं।

(५) नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० ३१, टिप्पण ३०—३१।

(६) नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० २८—२६।

कथन है कि वागड़ शब्द 'वाक् जड़' शब्द का अपभ्रंश है क्योंकि वहाँ की भाषा जड़ अर्थात् कठोर है परंतु उनका यह कथन कल्पित सा प्रतीत होता है। वागड़ की भाषा गुजराती है जिसको जड़ नहीं कह सकते। उसमें वागड़ से मिलता हुआ 'वगडा' शब्द जंगल के अर्थ में प्रचलित है। संभव है कि 'वागड' नाम 'वगडा' (वगड = जंगल) शब्द से निकला हो। राजपूताने का वागड देश पहाड़ों तथा जंगलों से भरा हुआ है। कच्छ राज्य का एक हिस्सा तथा बीकानेर राज्य का एक अंश भी वागड कहलाता है। संभव है कि वे भी पहले वहाँ जंगल होने से ही उक्त नाम से प्रसिद्ध हुए हों।

मरु

संस्कृत में मरु और धन्व[1] (धन्वन्) दोनों शब्द मरुस्थली अर्थात् रेगिस्तान के सूचक मिलते हैं। सामान्य रूप से मरु शब्द राजपूताना के तथा उससे मिले हुए सारे रेगिस्तान का सूचक हो सकता है। इस रेगिस्तान के स्थान में पहले सागर (समुद्र) था[2]

(१) समानौ मरुधन्वानौ (अमरकोश, कांड २, भूमिवर्ग, श्लोक ५)। देशांस्तान्धन्वशैलद्रुमस (ग) हनसरिद्वीरबाहूपगूढान् (फ्लीट, गुप्त इंसक्रिप्शंस, पृ० १४६)।

(२) राजपूताना के रेगिस्तान में सीप, शंख, कौड़ी आदि परिवर्तित पाषाण रूप (Fossil) में मिलते हैं जो पहले वहाँ जल का होना बतलाते हैं। रेगिस्तान बन जाने के पीछे भी सिंधु की सहायक नदी घग्गर की एक धारा, जिसको राजपूताने में हाकड़ा कहते हैं, बीकानेर और जोधपुर राज्यों में बहती हुई सिंध में आकर सिंधु नदी में मिल जाती थी। जोधपुर, मालानी आदि परगनों में कई गाँवों में ईख पेरने के पत्थर के कोल्हू अब तक पड़े हुए मिलते हैं जिनके विषय में यह कहा जाता है कि पहले यहाँ हाकड़ा नदी बहती थी, उसके तट पर गन्नों की खेती होती थी जिससे गुड़ बनाया जाता था। यदि उक्त नदी का प्रवाह यहाँ न होता तो इन रेतीले प्रदेशों में ऐसे बड़े घाणों (कोल्हुओं) की संभावना ही कैसे होती। पीछे से ज़मीन ऊँची हो जाने के कारण हाकड़ा का बहना बंद हो गया, इतना ही नहीं किंतु मूल घग्गर नदी ही रेगिस्तान में लुप्त हो गई। अब केवल उसके प्राचीन बहाव के मार्ग के चिह्न ही दृष्टिगोचर

परंतु भूकंप आदि प्राकृतिक कारणों से भूमि ऊँची हो जाने से सागर का जल दक्षिण में हटकर समुद्र में मिल गया और रेते का पुंजमात्र रह गया, जिसको मरुकांतार भी कहते थे। यह भी कहा जाता है कि दक्षिण सागर के सेतु बँधवाने को राज़ी हो जाने पर रामचंद्र ने उसे डराने के लिये खैंचा हुआ अपना अमोघ बाण इधर फेंका जिससे समुद्र सूख गया[1]। व्यावहारिक संकेत में 'मरु' नाम मारवाड़ (जोधपुर राज्य) का सूचक माना जाता है। परंतु जयसिंहसूरि अपने हंमीरमदमर्दन नाटक में आबू के परमार राजा धारा-वर्ष और जालौर के सोनगरे (चौहान) उदयसिंह आदि तीन राजाओं को मरुदेश का राजा बतलाता है[2]। अतएव मरुदेश की सीमा आबू के राज्य (अर्बुद देश) तक होनी चाहिए। इस समय खास मरु (मारवाड़) में जोधपुर राज्य के शिव, मालाणी, और

होते हैं और उसका थोड़ा सा जल बीकानेर राज्य के हनुमानगढ़ इलाके तक हो आता है जिससे गेहूँ आदि पैदा होते हैं। उसको वहाँवाले कग्गर नदी कहते हैं। इस नदी के सूख जाने के विषय में लोकोक्ति है कि 'वे पानी मुलतान गए' जो समय चूककर पछताने के अर्थ में प्रयुक्त होती है। उसकी रोचक और उपदेशपूर्ण कथा यह प्रसिद्ध है कि किसी समय उस प्रदेश के किसी राजा ने एक लक्खी बणजारे (लाख बैलों पर माल ढो ले जानेवाले व्यापारी) की स्त्री हर ली और पति के बहुत प्रार्थना करने पर भी न लौटाई। बनजारा इस अत्याचार का बदला लेने की प्रतिज्ञा करके गया और जहाँ नदी का मोड़ इधर था वहाँ कई वर्षों तक उसने अपने लाखों बैल इसी काम पर लगा दिए कि नदी के प्रवाह में बालू डाल डालकर इधर की भूमि ऊँची कर दी जाय। उसका परिश्रम सफल हुआ और जल का प्रवाह दक्षिण न होकर पश्चिम की तरफ हो गया। इसपर अपने देश को उजड़ता देख राजा बहुत गिड़गिड़ाया और उसकी स्त्री को लौटाने लगा किंतु बनजारे ने यही उत्तर दिया कि वे पानी मुलतान गए।

(१) तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सागरस्य महात्मनः। मुमोच तं शरं दीप्तं परं सागरदर्शनात्॥ ३२॥ तेन तन्मरुकांतारं पृथिव्यां किल विश्रुतम्। निपातितः शरो यत्र वज्राशनिसमप्रभः॥३३॥ (वाल्मीकीय रामायण, युद्धकांड, सर्ग २२)

(२) श्रीसोमसिंहोदयसिंहधारावर्षैरमीभिर्मरुदेशनाथैः। द्विशोऽद्य जेतुं स्फुट-मद्बाहुभिर्भिः समेतैरभवत्प्रमुनैः (हंमीरमदमर्दन, पृ० ११)

पचपद्रा के परगने ही माने जाते हैं। मरु के स्थान में मरुस्थल[1], मरुस्थली, मरुमंडल,[2] तथा मारव[3] शब्दों का प्रयोग भी मिलता है।

अर्बुद

यह प्राचीन मरुदेश का एक अंश था। परमारों के राज्य के समय उसमें सिरोही राज्य, जोधपुर राज्य का कितना एक अंश, दांता राज्य[4] और पालनपुर[5] राज्यों का समावेश होता था। अर्बुद देश की राजधानी चंद्रावती आबू के नीचे थी।

माड

राजपूताना के शिलालेखों में माड[6] नाम जैसलमेर राज्य का सूचक मिलता है और वहांवाले अब तक अपने देश को माड ही कहते हैं। वहां की स्त्रियाँ विशेष कर 'माँड' राग गाती हैं जिससे संभव है कि उक्त राग का नाम माड देश के नाम पर से पड़ा हो।

वल्ल

माड के संबंध में उद्धृत किये हुए घटिआले के वि० सं० ९१८ के शिलालेख के अवतरण में 'वल्लमाडयोः' पद में वल्ल और माड देशों के

---

(१) मरुस्थल्यां यथा वृष्टिः (महाभारत)।

(२) प्रबंधचिंतामणि पृ० २७१।

(३) वही पृ० २४३।

(४) दांता राज्य इस समय गुजरात में गिना जाता है परंतु पहले वह आबू के राज्य का ही अंश था। दांता आबू के नीचे है और उसकी सीमा सिरोही राज्य से मिली हुई है। वहां के राणा आबू के परमार राजा धारावर्ष के ही वंशज हैं।

(५) पालनपुर का राज्य भी इस समय गुजरात में गिना जाता है परंतु पहले आबू के परमारों के राज्य के अंतर्गत था। इतना ही नहीं किंतु पालनपुर शहर आबू के राजा धारावर्ष के छोटे भाई प्रल्हादनदेव ने बसाया था। उसका प्राचीन नाम प्रल्हादनपुर था जिसका अपभ्रंश पालनपुर है (प्रल्हादनक्षितिपतिर्नृपतिर्महोभिः श्रीअर्बुदाचलविभुः स बभूव पूर्वम्। तेन स्वनामविदितं दलितापतापं संस्थापितं पुरमिदं मुदितप्रजाढ्यं (हीरसौभाग्यकाव्य, १३)।

(६) येन प्राप्ता महाख्यातिस्त्रवण्यां वल्लमाडयोः (प्रतिहारवंशी राजा कक्कुक का घटिआले का शिलालेख—एपि० इंडि०, जि० ९, पृ० २८०)।

नाम समासरूप में दिए हैं जिससे अनुमान होता है कि ये दोनों देश एक दूसरे से मिले हुए थे। जैसलमेर राज्य का प्राचीन नाम माड था यह ऊपर बतलाया जा चुका है। जैसलमेर के राजाओं के पूर्वज भट्टिक (भाटी) देवराज का पहले इस प्रदेश पर राज्य था ऐसा नीचे त्रवणी देश के वृत्तांत में बतलाया जायगा। इसलिये अनुमान होता है कि वल्लदेश जैसलमेर राज्य से मिले हुए उसके दक्षिण अथवा पूर्व के जोधपुर राज्य के किसी हिस्से का नाम होना चाहिए। अब तक ऐसे साधन उपस्थित नहीं हुए जिनसे इस देश के ठीक स्थान का संतोषजनक निर्णय हो सके।

त्रवणी

जोधपुर से मिले हुए मंडोर के प्रतिहार (पड़िहार, परिहार) राजा बाउक के वि० सं० ८९४ के शिलालेख में 'त्रवणीवल्लदेशयोः' समासांत पद है जिससे पाया जाता है कि त्रवणी और वल्ल देश भी परस्पर मिले हुए थे। उस लेख में उक्त राजा के पूर्वज शिलुक के वर्णन में लिखा है कि 'उसने त्रवणी और वल्ल देशों में [अपनी] सीमा स्थिर की (अर्थात् उनको अपने राज्य में मिला लिया) और वल्ल मंडल (देश) के राजा भट्टिक देवराज को पृथ्वी पर पछाड़कर उसका छत्र छीन लिया'[1]। काव्यमीमांसा आदि अनेक ग्रंथों का कर्ता प्रसिद्ध कवि राजशेखर, जो वि० सं० ९३७ और ९७७ के बीच विद्यमान था, अपनी काव्यमीमांसा में त्रवण देश की गणना

(१) ततः श्रीशिलुको जातः पुत्रो दुर्व्वारविक्रमः।
येन सीमा कृता नित्यस्त्र(त्र)वणीवल्लदेशयोः॥ [१८]
भट्टिकं देवराजं यो वल्लमण्डलपालकं।
निपात्य तत्क्षणं भूमौ प्राप्तवान् छ(च्छ)त्रचिह्नकं॥ [१९]

रॉयल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल, ई० स० १८९४, पृ० ६। उक्त जर्नल में उस लेख का जो संवत् छपा है वह अशुद्ध है। ऊपर दिया हुआ संवत् राजपूताना म्यूज़ियम (अजमेर) में रक्खे हुए मूल लेख से दिया गया है।

भारत के पश्चिमी विभाग के देशों में[1] करता है और भिन्न भिन्न देशों के लोगों से बोली जानेवाली भिन्न भिन्न भाषाओं का वर्णन करते हुए सुराष्ट्र और त्रवण आदि के लोगों का सुंदरता के साथ अपभ्रंश और संस्कृत का बोलना बतलाता है[2]। इसलिये त्रवणी या त्रवण देश, वल्ल से मिला हुआ, जोधपुर राज्य के दक्षिण-पश्चिमी हिस्से में, जो सुराष्ट्र (सोरठ, काठिआवाड़) से उत्तर में है, होना चाहिए। यद्यपि त्रवणी देश के स्थान का निश्चयात्मक निर्णय नहीं हो सका तो भी संभव है कि जोधपुर राज्य के मालाणी जिले या उससे मिले हुए किसी विभाग का वह सूचक हो।

गुर्जर या गुर्जरत्रा

इस समय राजपूताने के दक्षिण का देश ही, जहाँ गुजराती भाषा बोली जाती है, गुजरात (गुर्जर) कहलाता है जो संस्कृत गुर्जरत्रा से मिलता है, परंतु प्राचीन काल में गुर्जर या गुर्जरत्रा देश में केवल वर्तमान गुजरात का ही नहीं किंतु जोधपुर राज्य के उत्तर से दक्षिण तक के सारे पूर्वी हिस्से का भी समावेश होता था। गुर्जरत्रा नाम का अर्थ 'गुर्जरों (गूजरों) से रक्षित' होता है इसलिये यह नाम उक्त देश पर पहले किसी समय गुर्जर (गूजर) जाति का राज्य रहने से पड़ा होगा (जैसे मेद या मेव से मेदपाट या मेवाड़) परंतु वहाँ पर गुर्जर जाति का राज्य कब हुआ और कब तक रहा इसका अब तक कोई पता नहीं लगा। प्राचीन शोध के विद्वानों ने इस विषय में जो कुछ लिखा है वह केवल कपोलकल्पना ही है। चीनी यात्री हुएन्त्संग ने अपनी यात्रा की पुस्तक 'सि-यु-कि' में मालवे (?) के पीछे क्रमशः ओचलि (?), कच्छ, वलभी, आनंदपुर सुराष्ट्र (सोरठ) और गुर्जर देशों का वर्णन किया है। गुर्जर देश

(१) देवसभायाः परतः पश्चाद्देशः। तत्र देवसभसुराष्ट्रदशेरकत्रवणभृगुकच्छकच्छीयानर्तार्बुदब्राह्मणवाहयवनप्रभृतयो जनपदाः (काव्यमीमांसा पृ० ९४)।

(२) सुराष्ट्रत्रवणाद्या ये पठन्त्यर्पितसौष्ठवम्।
अपभ्रंशावदंशानि ते संस्कृतवचांस्यपि॥ (वही, पृ० ३४)।

के विषय में उसने लिखा है कि 'वलभी के देश से १८०० ली (३०० मील) के करीब उत्तर में जाने पर गुर्जर राज्य में पहुँचते हैं। यह देश अनुमान ५००० ली (८३३ मील) के घेरे में है। उसकी राजधानी, जिसको भीनमाल कहते हैं, ३० ली (५ मील) के घेरे में है। ज़मीन की पैदावार और लोगों की रीतभाँत सुराष्ट्र (सोरठ) वालों से मिलती हुई हैं। आबादी घनी है। लोग धनाढ्य और संपन्न हैं। वे बहुधा नास्तिक (बौद्धधर्म को न माननेवाले, वैदिक धर्म को माननेवाले) हैं। बौद्ध धर्म के अनुयायी थोड़े ही हैं। यहाँ एक संघाराम (बौद्धों का मठ) है जिसमें अनुमान १०० श्रमण (बौद्ध साधु) रहते हैं, जो हीनयान[1] और सर्वास्तिवाद[2] निकाय के माननेवाले हैं। यहाँ कई दहाई देव-मंदिर हैं जिनमें भिन्न भिन्न संप्रदायों के लोग रहते हैं। राजा क्षत्रिय जाति का है। उसकी अवस्था २० वर्ष की है। वह बुद्धिमान् और साहसी है। उसको बौद्ध धर्म पर दृढ़ आस्था है और वह बुद्धिमानों का बड़ा आदर करता है[3]'।

हुएन्त्संग गुर्जर देश की परिधि ८३३ मील बतलाता है जिससे पाया जाता है कि वह देश बहुत बड़ा था और उसकी लंबाई अनुमान ३०० मील होनी चाहिए। उसकी राजधानी भीनमाल (भिन्नमाल, श्रीमाल) जोधपुर राज्य के दक्षिणी विभाग में है जो गुजरात से मिला हुआ है। हुएन्त्संग वहाँ के राजा को क्षत्रिय लिखता है परंतु उसके नाम या जाति का परिचय नहीं देता। वह ई० सन्

---

(१) जैनों में जैसे दो फिर्के दिगंबरी और श्वेतांबरी हैं वैसे ही बौद्धों में महायान हीनयान और मध्यमयान नाम के तीन फिर्के थे। मध्यमयान के अनुयायी बहुत कम थे और अब तो कहीं कोई नहीं रहा।

(२) बौद्धधर्म में कर्मकांड के विचार से चार संप्रदाय या शाखा भेद हैं जिनको निकाय कहते हैं। ये संप्रदाय आर्यसंघिक, आर्यस्थविर, आर्यसंमति और सर्वास्तिवाद कहलाते हैं। इनमें से प्रत्येक के अवांतर भेद कई एक हैं।

(३) सेम्युअल बील; 'बुद्धिस्ट रेकर्डज़ आफ़ दी वेस्टर्न वर्ल्ड' जि० २० पृ० २६९—७०।

६४१ (वि० सं० ६६८) के आसपास भीनमाल आया था जहाँ के रहनेवाले[1] (भिन्नमालकाचार्य) ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त ने शक सं० ५५० (वि० सं० ६८५) में अर्थात् हुएन्संग के वहाँ आने से १३ वर्ष पूर्व ब्राह्मस्फुटसिद्धांत नामक ग्रंथ लिखा जिसमें उसने वहाँ के राजा का नाम व्याघ्रमुख और उसका वंश चाप[2] (चापोत्कट, चावड़ा) बतलाया है। हुएन्संग के समय भीनमाल का राजा व्याघ्रमुख या उसका पुत्र हो। चावड़ों का राज्य भीनमाल पर कब तक रहा इसका ठीक ठीक अनुसंधान अब तक नहीं हुआ, परंतु वि० सं० ७९६[3] के

(१) इंडि० एँटि०, जि० १७, पृ० १९२। शंकर बालकृष्ण दीक्षित' 'भारतीय ज्योतिषा चा प्राचीन आणि अर्वाचीन इतिहास (मराठी), पृ० २१७।

(२) श्रीचापवंशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपाणां।
पंचाशत्संयुक्तैर्वर्षशतैः पंचभिरतीतैः (५५०) ॥७॥
ब्राह्मः स्फुटसिद्धांतः सज्जनगणितगोलवित्प्रीत्यै।
त्रिंशद्वर्षेण कृतो जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन ॥ ८ ॥
(ब्राह्मस्फुटसिद्धांत, अध्याय २४)

(३) लाट के सोलंकी सामंत पुलकेशी (अवनिजनाश्रय) का एक दानपत्र कलचुरि संवत् ४९० (वि० सं० ७९६) का मिला है (विएना ओरिएँटल कांग्रेस का कार्यविवरण, आर्यन् सेक्शन, पृ० २३०) जिसमें उसके विषय में लिखा है कि 'ताजिकों (अरबों, मुसल्मानों) ने तलवार के बल से सैंधव (सिंध), कच्छेल्ल (कच्छ), सौराष्ट्र (सोरठ), चावोटक (चापोत्कट, चाप, चावड़े), मौर्य (मोरी), गुर्जर आदि के राज्यों को नष्ट कर दक्षिण के समस्त राजाओं को जीतने की इच्छा से प्रथम नवसारिका (नवसारी) पर आक्रमण किया, उस समय घोर संग्राम कर उस (पुलकेशी) ने ताजिकों को विजय किया। इसपर शौर्य के अनुरागी राजा वल्लभ (उसके स्वामी) ने उसको चार खिताब दिए। अबतक के शोध से चावड़ों (चावोटक, चापोत्कट, चाप) का तीन जगह अधिकार होने का पता चलता है। पहला भीनमाल में, दूसरा अनहिलवाड़े (पाटण) पर और तीसरा वढ़वाण (काठिआवाड़ में) पर। भीनमाल पर तो चावड़ों का अधिकार वि० सं० ६८५ के पूर्व से चला आता था जैसा कि ब्रह्मगुप्त के कथन से पाया जाता है। अनहिलवाड़े (पाटण) का राज्य चावड़ा वनराज ने वि० सं० ८२१ में अनहिलवाड़ा बसाकर स्थापित किया। वढ़वाण के चाप (चावड़ा) वंशी सामंत धरणीवराह का हड्डाला से मिला हुआ दानपत्र शक सं० ८३६ (वि० सं० ९७१)

आसपास तक तो वेही वहाँ के राजा थे यह निश्चित है। वि० सं० ७६६ और ८९५ के बीच किसी समय चावड़ों से रघुवंशी प्रतिहारों (पड़िहारों, परिहारों) ने गुर्जर देश का राज्य छीन लिया। फिर उन्होंने अपने बाहुबल से कन्नौज का प्रबल राज्य अपने राज्य में मिला लिया जिसके पीछे उनकी राजधानी कन्नौज हो गई। इससे उनको कन्नौज के प्रतिहार भी कहते हैं। चावड़ों के समय गुर्जर देश कहाँ से कहाँ तक था इसका कोई उल्लेख (सिवाय हुएन्त्संग के उपर्युक्त कथन के) नहीं मिलता। प्रतिहार राजा भोजदेव (पहले) के वि० सं० ९०० के दानपत्र में लिखा है कि 'उसने गुर्जरत्राभूमि (देश) के डेंडवानक विषय (ज़िले) का सिवा गाँव[1] दान किया। यह दानपत्र जोधपुर राज्य के डीडवाना जिले के सिवा गाँव के एक टूटे हुए मंदिर से मिला था। इस ताम्रपत्र का डेंडवानक जिला जोधपुर राज्य के उत्तर-पूर्वी हिस्से का नाम डींडवाना है और सिवा गाँव डींडवाना से ७ मील पर का सेवा गाँव है। कलिंजर से मिले हुए नवीं शताब्दी के आसपास के एक शिलालेख में गुर्जरत्रा मंडल (देश) के मंगलानक [गाँव] से निकले हुए[2] जेंदुक के बेटे देहक

का है जिसमें उक्त राजा के पूर्व के चार नाम और हैं। उनमें से सब से पहले (विक्रमार्क) का वि० सं० ८११ के आसपास विद्यमान होना स्थिर होता है। पुलकेशी के ताम्रपत्र के चावोटक (चावड़ों) का संबंध इन सौराष्ट्र के चावड़ों से है भी नहीं, क्योंकि उसमें सौराष्ट्र की विजय के बाद चावड़ों के राज्य का नष्ट करना लिखा है। मुसलमानों की ऊपर लिखी हुई चढ़ाई वि० सं० ७८८–७९६ के बीच किसी समय हुई थी क्योंकि पुलकेशी अपने बड़े भाई मंगलराज के पीछे उसकी जागीर का स्वामी हुआ था और मंगलराज का दानपत्र शक संवत् ६५३ (वि० सं० ७८८) का मिला है (इंडि० एंटि०, जि० १२, पृ० ७९)। ऐसी दशा में मुसलमानों की उक्त चढ़ाई के समय चावड़े भीनमाल के अतिरिक्त और कहीं नहीं थे।

(१) गुर्ज्जरत्राभूमौ डेण्डूवानकविषयसम्ब(म्ब)द्धसिवाग्रामाग्रहारे० (एपि० इंडि०, जि० ५, पृ० २११)। मूल में संवत् अशुद्ध छपा है। हमने राजपूताना म्यूज़ियम (अजमेर) में रक्खे हुए मूल ताम्रपत्र से ऊपर संवत् दिया है।

(२) श्रीमद्गुर्ज्जरत्रामण्डलान्तःपातिमंगलानकविनिर्गत० (वही, पृ० २१०)

की बनाई हुई मंडपिका के प्रसंग में उसकी स्त्री लक्ष्मी के द्वारा उमामहेश्वर के पट्ट की प्रतिष्ठा किए जाने का उल्लेख है। मंगलानक जोधपुर राज्य के उत्तरी विभाग का मंगलाना गाँव है जो मारोठ से १९ मील पश्चिम में और डीडवाने से कुछ ही दूरी पर है। इन दोनों लेखों से पाया जाता है कि गुर्जरत्रा या गुर्जर देश की उत्तरी सीमा जोधपुर राज्य की उत्तरी सीमा के पास तक थी।

जिस समय प्रतिहारों का राज्य गुर्जर देश तथा कन्नौज पर रहा उस समय दक्षिण (कोंकन) पर राष्ट्रकूटों (राठौड़ों) का राज्य था। राठौड़ों के राज्य की उत्तरी सीमा गुर्जर देश की दक्षिणी सीमा से मिली हुई थी और ये दोनों पड़ोसी एक दूसरे से बराबर लड़ते रहे[1]। राठौड़ों का राज्य लाट देश तक ही था इसलिये गुर्जर देश

(१) दक्षिण के राठौड़ राजा ध्रुवराज के पुत्र गोविंदराज (तीसरे) के वणी गाँव (नासिक ज़िले के डिंडोरी तालुके में) से मिले हुए शक संवत् ७३० (वि० सं० ८६५) के दानपत्र में उसके पिता ध्रुवराज के विषय में लिखा है कि 'गौडराज्य की लक्ष्मी को सहसा अपने हाथ करने पर मत्त बने हुए वत्स-राज को उस (ध्रुवराज) ने अपने अजेय सैन्य से मरु (मारवाड़) के मध्य में भगाया और गौड़ के राजा से जो दो श्वेत छत्र उस (वत्सराज) ने छीने थे वे उससे छीन लिए, इतना ही नहीं किंतु साथ ही उसके दिगंतव्यापी यश को भी, (हेलास्वीकृतगौडराज्यकमलामत्तं प्रवेश्याचिराद्दुर्मार्गं मरुमध्यमप्रतिब(व)लैर्यो वत्सरा(रा)जं ब(ब)लैः। गौडीयं शरदिंदुपादधवलं छत्रद्वयं के(के)वलं तस्मान्नाहृत तद्यशोपि ककुभां प्रांते स्थितं तत्क्षणात्—इंडि० एंटि०, जि० ११, पृ० १५७। यही श्लोक उक्त गोविंदराज तीसरे के राधनपुर से मिले हुए शक सं० ७३० (वि० सं० ८६५) के दानपत्र में उसके पिता ध्रुवराज के संबंध में मिलता है—एपि० इंडि०, जि० ६, पृ० २४३)। लाट देश पर शासन करनेवाले राठौड़ सामंत कर्कराज के बड़ौदा से मिले हुए शक सं० ७३४ (वि० सं० ८६९) के दानपत्र में उक्त कर्कराज के विषय में लिखा है कि 'उसका भुज पिटे हुए मालव (मालवा के राजा) की रक्षा के निमित्त गौड़ (बिहार) और वंग (बंगाल) के राजाओं को जीतकर दुष्ट बने हुए गुर्जरेश्वर (गुर्जर देश के राजा) के लिये अर्गल (रोक, आड) सा हो गया' अर्थात् उसने मालवा के राजा को गुर्जर देश के राजा से बचाया। (गौडेन्द्रवंगपतिनिर्जयदुर्विदग्धसद्गुर्जरेश्वर दिगर्गलतां च यस्य। नीत्वा भुजं विहतमालवरक्षणार्थं स्वामी तथान्यमपि

के प्रतिहारों के राज्य की दक्षिणी सीमा लाट[1] की उत्तरी सीमा अर्थात् सेढी नदी तक होनी चाहिए। ऐसी दशा में जोधपुर राज्य की उत्तरी सीमा से लगाकर दक्षिणी सीमा तक का सारा पूर्वी हिस्सा तथा उसके दक्षिण का सेढ़ी नदी तक का वर्त्तमान गुजरात का हिस्सा गुर्जर देश कहलाता था, परंतु अब जोधपुर का कोई भी अंश गुजरात में नहीं गिना जाता। अब तो राजपूताने के दक्षिण के पालनपुर राज्य की उत्तरी सीमा से लगाकर दमण (पुर्तगालवालों का) तक का सारा प्रदेश, तथा काठिआवाड़ और कच्छ, गुजरात में गिना जाता है जहाँ गुजराती भाषा बोली जाती है।

मालव (मालवा)

मालव जाति के लोगों ने प्राचीन अवंती[2] और आकर[3] देशों

राज्यश्रु(क)लानि भुंक्ते—इंडि॰ एंटि॰, जि॰ १२, पृ॰ १६०)। ऊपर .. दोनों ताम्रपत्रों में गौड़देश की राज्यलक्ष्मी छीननेवाले राजा का नाम व ;- राज दिया है और उसका मारवाड़ में भागना लिखा है जिससे पाया जाता है कि वह मारवाड़ का राजा था। तीसरे ताम्रपत्र में उसका गौड़ और बंग के राजाओं को जीतकर हुए बनना लिखने के साथ उसको गूर्जरेश्वर अथात गुर्जरदेश का राजा कहा है। वत्सराज प्रतिहार वंश का राजा और गुर्जर देश का स्वामी था और संभव है कि उसीने चावड़ों से भीनमाल का राज्य छीना हो। ग्वालियर से मिले हुए प्रतिहार राजा भोज के समय के शिलालेख में वत्सराज का बलपूर्वक भिंडी ६ वंश का साम्राज्य छीनना लिखा है (आर्कि-आलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिआ, ई॰ स॰ ११०३-४, पृ॰ २८०-१)। शा द भिंडी गुर्जरदेश के चावड़ों का मूल पुरुष हो। इसी तरह दक्षिण के राठौड़ों तथा प्रतिहारों के परस्पर लड़ने के और भी उदाहरण मिलते हैं।

(१) लाट देश की उत्तरी सीमा बंबई हाते के खेड़ा जिले में बहनेवाली सेढ़ी नदी तक और दक्षिणी सीमा तापी नदी से कुछ दक्षिण तक होना ताम्रपत्रादि से पाया जाता है। सामान्य रूप से मही और तापी नदियों के बीच का देश लाट माना जाता है (देशों की सीमाएँ बढ़ती घटती रही हैं)।

(२) मालवे का पश्चिमी हिस्सा जिसकी राजधानी उज्जैन (उज्जयिनी) थी।

(३) मालवे का पूर्वी हिस्सा। महाक्षत्रप रुद्रदामन् के शक संवत् ७२ (वि॰ सं॰ २०७) से कुछ ही बाद के जूनागढ़ (काठिआवाड़ में) के लेख में 'पूर्वापराकरावंती' लिखा है। कालिदास अपने मेघदूत में अवंती से पूर्व के देश

पर अपना अधिकार जमाया तब से उनके अधीन के उक्त देशों का संमिलित नाम मालव (मालवा) हुआ। राजपूताने के परतावगढ़, कोटा और झालावाड़ राज्य तथा टोंक[1] राज्य के छबड़ा, पिरावा और सीरोज के इलाके पहले मालव देश के अंतर्गत थे जैसा कि वहाँ से मिलनेवाले शिलालेखों[2] से पाया जाता है।

को दशार्ण कहना है और उसकी राजधानी विदिशा (भेलसा—ग्वालियर राज्य में) होना बन जाता है। संभव है कि आकर के अंतर्गत दशार्ण देश हो।

(१) राजपूताने में केवल टोंक का राज्य ही ऐसा है जिसके अलग अलग हिस्से एक दूसरे से मिले हुए नहीं हैं। टोंक (खास) और अलीगढ़ के जिले तो प्राचीन काल में सपादलक्ष के अंतर्गत थे। नींबाहेड़ा मेदपाट (मेवाड़) का हिस्सा था और छबड़ा, पिरावा आदि मालव के अंतर्गत थे।

(२) परतावगढ़, कोटा और झालावाड़ के राज्यों से जो शिलालेख मिले हैं उनसे इन राज्यों का पहले मालवे के अंतर्गत होना पाया जाता है। कोटे का थोड़ा सा उत्तरी हिस्सा मालवा के परमारों के पड़ोसी चौहानों के अधिकार में था और सपादलक्ष में गिना जाता था।

१७—अशोक की धर्मलिपियाँ।

[लेखक—रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा, बाबू श्यामसुंदरदास. बी. ए., और पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बी. ए.]

[पत्रिका भाग २ पृष्ठ २२३ के आगे]

[क ७—सातवाँ प्रज्ञापन]

कालसी	१	देवानं	पिये	पियदसि	लाजा	सवता	इछति
गिरनार	२	देवानं	पियो	पियदसि	राजा	सर्वत	इछति
धौली	३	देवानं	पिये	पियदसी	लाजा	सवत	इछति
जौगड़	४	. . .	. .	पियदसी	लाजा	सवत	इछति
शहबाज़गढ़ी	५	देवनं	प्रियो	प्रियद्रशि	रज	सवत्र	इछति
मानसेरा	६	देवन	प्रिये	प्रियद्रशि	रज	सव्रत्र	इछति
संस्कृत-अनुवाद		देवानां	प्रियः	प्रियदर्शी	राजा	सर्वत्र	इच्छति
हिंदी-अनुवाद		देवताओं का	प्रिय	प्रियदर्शी	राजा	सर्वत्र	चाहता है

कालसी	७	सव	पासंड	वसेयु		सवे	हि	ते
गिरनार	८	सवे	पासंडा	वसेयु		सवे		ते
धौली	९	सव	पासंडा	वसेवू	ति	सवे	हि	ते
जौगड़	१०	सव	पासंडा	वसेवू	ति	सवे	हि	ते
शाहबाज़गढ़ी	११	सत्र(१)	प्रषंड	वसेयु		सत्रे	हि	ते
मानसेरा	१२	सत्र	पषड	वसेयु		सत्रे	हि	ते
संस्कृत-अनुवाद		सर्वे	पाषण्डा:	वसेयु:	इति।	सर्वे	हि	ते
हिंदी-अनुवाद		सब	धर्मवाले	बसें	ऐसा।	सब	ही	वे

कालसी	१३	सयमं		भावसुधि	चा	इछंति	जने
गिरनार	१४	सयमं	च(१०)	भावसुधिं	च	इछति	जनो
धौली	१५	सयमं		भावसुधी	च	इछंति	मुनिसा
जौगड़	१६	सयमं		भावसुधी	च	इछंति	मुनिसा
शाहबाज़गढ़ी	१७	सयम		[illegible]वशुधि	च	इछंति([illegible])	जनो
मानसेरा	१८	सयम		भवशुधि	च(१२)	इछंति	जने
संस्कृत-अनुवाद		संयमं	(च	भावशुद्धिं	च	इच्छन्ति।	जन·(जना:) मनुष्या:
हिंदी-अनुवाद		संयम को	(और)	भाव की शुद्धि को	और	चाहते हैं।	मनुष्य

कालसी	१९	चु	उचावुचछंदे	उचावुचलागे	ते	सवं	
गिरनार	२०	तु	उचावचछंदो	उचावचरागो	ते	सवं	व
धौली	२१	च(३४)	उचावुचछंदा	उचावुचलागा	ते	सवं	वा
जौगढ़	२२	च	उचावुचछंदा	उचावुचालागा(३५)	.	..	वा
शहबाज़गढ़ी	२३	चु	उचवुचछंदो	उचवुचरगो	ते	सव्रं	व
मानसेरा	२४	चु	उचवुचचदे	उचवुचरगे	ते	सव्रं	
संस्कृत-अनुवाद		च तु	उच्चावचच्छंदः उच्चावचच्छंदाः	उच्चावचरागः । उच्चावचरागाः ।	ते	सर्वं	वा
हिंदी-अनुवाद		तो	ऊँच नीच विचार के	ऊँच नीच राग के [होते हैं]	वे	सबको	अथवा

कालसी	२५		एकदेसं		पि	कछंति	विपुले
गिरनार	२६	कासंति	एकदेसं	व		कसंति(६४)	विपुले
धौली	२७		एकदेसं	व		कछंति	विपुले
जौगढ़	२८		एकदेसं	व		कछंति	विपुले
शहबाज़गढ़ी	२९		एकदेशं	व(३)	पि	कषंति	विपुले
मानसेरा	३०		एकदेशं	व	पि	कषति	विपुले
संस्कृत-अनुवाद		करिष्यन्ति	एकदेशं	वा	अपि	करिष्यन्ति।	विपुलं
हिंदी-अनुवाद		करेंगे	एक अंश को	या	भी	करेंगे।	विपुल

कालसी	३१		पि	चु	दानं	असा	नथि[२१]	सयमे	भावसुधि
गिरनार	३२	तु	पि		दाने	यस	नास्ति	सयमे	भावसुधिता
धौली	३३		पि	चु	दाने	अस	नथि	सयमे	भावसुधी
जौगड़	३४		पि	च	दाने	. .	. .	. . .	. . . धी
शाहबाज़गढ़ी	३५		पि	चु	दने	यस	नस्ति	सयम	भव ( ) सुधि
मानसेरा	३६		पि	चु	दने	यस	नस्ति	सयमे	भवसुति
संस्कृत-अनुवाद		(तु)	अपि	तु	दानं	यस्य	नास्ति	संयमः	भावशुद्धिः भावशुद्धिता!
हिंदी-अनुवाद		(तो)	भी	तो	दान	जिसके	नहीं है	संयम	भावशुद्धि

कालसी	३७		किटनाता		दाढिभतिता	चा	निचे	बाढं	
गिरनार	३८	च	कतंञता	व	दिढभतिता	च	निचा	बाढं(१५)	
धौली	३९	च					नीचे	बाढं(१५)	
जौगढ़	४०	च					नीचे	बाढं(१८)	
शहबाज़गढ़ी	४१		किट्रञत		दिढभतित		निचे	पढं (५)	
मानसेरा	४२		किटनत		द्रिढ्भतित	च(३१)	निचे	बढं	
संस्कृत-अनुवाद		च	कृतज्ञता	वा	दृढभक्तिता	च	नित्या	बाढं ।	
हिंदी-अनुवाद		और	कृतज्ञता	या	दृढ़ भक्ति	और	नित्य [हैं]	निश्चय ।	

[हिंदी अनुवाद]

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा चाहता है कि सब धर्मवाले[1] सर्वत्र[2] बसें। वे[3] सब ही संयम और भावशुद्धि चाहते हैं। मनुष्यों के ऊँच नीच विचार और ऊँच नीच [अनु]राग होते हैं। वे [अपने अपने धर्म का] पूरी तरह [पालन करेंगे] अथवा [उसका] कोई अंश [पालन] करेंगे। जिसके [यहाँ करने को] बहुत दान नहीं है उसमें भी संयम, भावशुद्धि,[4] कृतज्ञता और दृढ़भक्ति तो अवश्य ही नित्य[5] हैं अर्थात् विद्यमान हैं।

---

(१) पाषंड—देखो प्रज्ञा० ४ टि० ४।

(२) 'सर्वत्र' को 'चाहता है' के साथ न लेकर 'बसें' के साथ लेना अच्छा है।

(३) वे = पाषंड।

(४) भावसुधिता (गिरनार)-दोहरा भाववाचक।

(५) "नीचे में भी प्रशंसनीय है" (बूलर);

[क ८—आठवाँ प्रज्ञापन]

कालसी	१	अतिकंतं	अंतलं	देवानं	पिया	विहालयातं	नाम
गिरनार	२	अतिकातं	अंतरं	राजानो		विहारयातां	
धौली	३	. . कंतं	अंतलं	लाजाने		विहालयातं	नाम
जौगड़	४	· तिकंतं	अंतलं	लाजा		. . . . . .	. .
शहबाज़गढ़ी	५	अतिक्रत्नं	अंतरं	देवनं	प्रिय	विहरयत्र	नम
मानसेरा	६	अतिक्रतं	अंतरं	देवन	प्रिय	विहरयत्र	नम
सोपारा	७	. . . .	. . .	. . .	. .	. . . . .	. .
संस्कृत-अनुवाद		अतिक्रान्तं	अन्तरं	देवानां राजानः	प्रियाः	विहारयात्रां	नाम
हिंदी-अनुवाद		बीत गया	[बहुत] काल	देवताओं के राजा	प्रिय	विहारयात्रा को (= के लिये)	. .

कालसी	८	निखमिसु	हिदा	मिगविया	अंनानि	चा	हेडिसानि
गिरनार	९	अयासु	एत	मगव्या	अञ्जानि	च	एतारिसानि(६६)
धौली	१०	निखमिसु	. त	मिगविया	अंनानि	च	एदिसानि
जौगढ़	११	. . . . .	. .	. . विया	अंनानि	च	ए . . .
शाहबाज़गढ़ी	१२	निक्रमिषु	अत्र	म्रुगय	अञ्ञनि	च	हेदिशनि
मानसेरा	१३	निक्रमिषु	इह	म्रिगविय	अञ्ञनि	च	एदिशनि
सोपारा	१४	. . . .	.	. . . . .	. . .	.	. . . . .
संस्कृत-अनुवाद		निष्क्रमिषुः । न्ययासिषुः ।	इह अत्र	मृगव्या	अन्यानि	च	ईदृशानि एतादृशानि
हिंदी-अनुवाद		निकलते थे ।	यहाँ	मृगया	दूसरी	और	ऐसी

कालसी	१५	अभिलामानि	हुसु			देवानं	पिये	पियदसि
गिरनार	१६	अभीरमकानि	अहुंसु		से	देवानं	पियो	पियदसि
धौली	१७	अभिलामानि	हुवंति	नं	से	देवानं	पिये(३६)	पियदसी
जौगड़	१८	. . . मानि	हुवंति	नं	से	देवानं	पिये(३६)	पियदसी
शहबाज़गढ़ी	१९	अभिरमनि	अभवसु		से	देवनं	प्रियो	प्रियद्रशि
मानसेरा	२०	अभिरमनि	हुसु		से	देवन	प्रिये	प्रियद्रशि(३७)
सोपारा	२१	. . . . .	. .		.	. . .	. .	. . . .
संस्कृत-अनुवाद		अभिरामाणि अभिरामिकाणि	अभवन् भवन्ति	[तु]	तत्	देवानां	प्रियः	प्रियदर्शी
हिंदी-अनुवाद		मन बहलानेवाली (बातें)	होती थीं होती हैं	...	सो	देवताओं का	प्रिय	प्रियदर्शी

कालसी	२२	लाजा	दसवसाभिसिते	संतं	निकमिठा	संबोधि(२२)
गिरनार	२३	राजा	दसवसाभिसितो	संतो	अयाय	संबोधिं(१७)
धौली	२४	लाजा	दसवसाभिसिते		निखमि	संबोधि
जौगड़	२५	लाजा	दस		. . . .	. . .
शाहबाज़गढ़ी	२६	रज	दशवषभिसितो	सतो	निक्रमि	सबोधिं
मानसेरा	२७	रज	दशवषभिसिते	संतं	निक्रमि	संबोधि
सोपारा	२८	. .	. . . .	. .	निखमिठा	सं . .
संस्कृत-अनुवाद		राजा	दशवर्षाभिषिक्तः	सन्	निरक्रमीन् अयान् निरक्रमिष्ट	संबोधिम्।
हिंदी-अनुवाद		राजा	दस वर्ष से अभिषिक्त	होकर	निकला प्राप्त हुआ	सम्यक्ज्ञान को (= की ओर)

कालसी	२९	तेनता	धंमयाता	हेता	इयं	होति
गिरनार	३०	तेनेवा	धंमयाता	एत	यं	होति
धौली	३१	तेनता	ध . . .	तते	स	होति
जौगड़	३२	. . .	. . . .	तते	स	होति
शहबाज़गढ़ी	३३	तेनंद	ध्रमयत्र	अत्र	इयं	होति
मानसेरा	३४	तेनदं	ध्रमयद्र	अत्र	इय	होति
सोपारा	३५	. . .	. . . .	हेत	इयं	होति
संस्कृत-अनुवाद		तेनएषा तेन इदं (= इयं)	धर्मयात्रा	अत्र तत्र	इदं एतत्	भवति।
हिंदी-अनुवाद		यह इस से	धर्मयात्रा [होने लगी]	यहाँ वहाँ	यह	होता है।

कालसी	३६	समनबंभनानं	दसने	चा	दाने	च	वुधानं
गिरनार	३७	ब्राह्मणस्रमणानं	दसणे	च	दाने	च	थैरानं
धौली	३८	समनबाभनानं	दसने	च	दाने	च	वुढानं
जौगड़	३९	स	. . .	च	दाने	च	वुढानं
शाहबाज़गढ़ी	४०	श्रमणब्रमणनं	द्रशने		द्नं		वुढनं
मानसेरा	४१	श्रमणब्रमणन	द्रशने		द्ने	च	वध्रन
सोपारा	४२	बंभ	. . .	.	. .	च	वुढानं
संस्कृत-अनुवाद		श्रमणब्राह्मणानां ब्राह्मणश्रमणानां	दर्शनं	च	दानं	च	वृद्धानां स्थविराणां
हिंदी-अनुवाद		श्रमणब्राह्मणों का	दर्शन	और	दान	और	बूढ़ों का

कालसी	४३	दसने	च	हिलंनपटिविधाने	चा	जानपदसा
गिरनार	४४	दसणे	च(६८)	हिरंणपटिविधानो	च	जानपदस
धौली	४५	दसने	च(३७)	हीलंनपटिविधाने	च	जानपदस
जौगड़	४६	दसने	च(४०)	हिलंनपटिविधाने	च	. . . . .
शहबाज़गढ़ी	४७	द्रशने		हिरञपटिविधने	च	जनपदस
मानसेरा	४८	द्रशने	च	हिञपटिविधने	च(३८)	जनपदस
सोपारा	४९	दसने		हिरंनपटिविधाने	च	. . . . .
संस्कृत-अनुवाद		दर्शनं	च	हिरण्यप्रतिविधानं	च	जानपदस्य
हिंदी-अनुवाद		दर्शन	और	सोने का वितरण	और	जनपद के

कालसी	५०		जनसा	दसने		धंमनुसथि	चा
गिरनार	५१	च	जनस	दसनं		धंमानुसस्टी	च
धौली	५२		जनस	दसने	च	धंमानुसथी	च
जौगड़	५३		...	...		....	.
शहबाज़गढ़ी	५४		जनस	द्रशनं		ध्रमनुशस्ति	
मानसेरा	५५		जनस	द्रशने		ध्रमनुशस्ति	च
सोपारा	५६		...	...		धंमानुसठि	
संस्कृत-अनुवाद		{च}	जनस्य	दर्शनं	{च}	धर्मानुशिष्टि धर्मानुशास्ति:	च
हिंदी-अनुवाद		{और}	लोगों का	दर्शन	{और}	धर्म का अनुशासन	और

कालसी	५७	धमपलिपुछा	च	ततोपया	एसे	भूये
गिरनार	५८	धमपरिपुछा	च(६६)	तदोपया	एसा	भुय
धौली	५९	. म . लिपुछा	च	तदोपया	एस	भूये
जौगढ़	६०	धंमपालिपु .	.	. . .	. .	.
शाहबाज़गढ़ी	६१	ध्रमपरिपुछ	च	ततोपयं	एष	भुये
मानसेरा	६२	ध्रमपरिपुछ	च	ततोपय	एषे	भुये
सोपारा	६३	धंम . . .	.	. . . . .	.	. ये
संस्कृत-अनुवाद		धर्मपरिपृच्छा	च ।	ततोपि या {या,} तदुपगा	एषा	भूयः
हिंदी-अनुवाद		धर्म की पूछताछ	और ।	उससे भी जो {या,} उससे उपजनेवाली	यह	अधिक

कालसी	६४	लाति		होति	देवानं	पियसा
गिरनार	६५	रति		भवति	देवानं	पियस
धौली	६६		अभिलामे	होति	देवानं	पियस
जौगड़	६७		. . लामे	होति	देवानं	पियस[४१]
शाहबाज़गढ़ी	६८	रति		होति	देवनं	प्रियस
मानसेरा	६९	रति		होति	देवन	प्रियस
सोपारा	७०	रती		होति	देव: .	. . .
संस्कृत-अनुवाद		रति:	अभिरामिकम्	भवति।	देवानां	प्रियस्य
हिंदी-अनुवाद		रति (= मनबहलाव)	मनबहलाव	होती है।	देवताओं के	प्रिय का

कालसी	७१ पियदसिना	लाजिने	भागे	अंने(२१)
गिरनार	७२ प्रियदसिनो	राञो	भागे	अंञे(७०)
धौली	७३ पियदसिने	लाजिने	भागे	अंने(६८)
जौगड़	७४ पियदसिने	लाजिने	भागे	अं. (१६)
शाहबाज़गढ़ी	७५ प्रियद्रशिस	रञो	भगि	अंञि(१७)
मानसेरा	७६ प्रियद्रशिस(३६)	रजिने	भगे	अणे (२०)
सोपारा	७७	. जिन	भागे	अञे
संस्कृत-अनुवाद	प्रियदर्शिन:	राज्ञ:	भाग:	अन्य: ।
हिंदी-अनुवाद	प्रियदर्शी का	राजा का	भाग	दूसरा है ।

[हिंदी अनुवाद।]

बहुत काल बीत गया [कि] देवताओं के प्रिय[1] राजा लोग विहारयात्रा के लिये[2] निकलते थे। इस [यात्रा] में शिकार[3] तथा वैसी ही मन बहलानेवाली दूसरी बातें होती थीं। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने अभिषिक्त होने के दसवें वर्ष में[4] सम्यक् ज्ञान के मार्ग पर पैर धरा [बोधितीर्थ की यात्रा की, या वह सम्यक् ज्ञान को प्राप्त हुआ][5]। इससे यह धर्मयात्रा चली। इसमें ये होते हैं [कि] श्रमणों और ब्राह्मणों का दर्शन, [उन्हें] दान,

(१) देवानां प्रियाः = राजानः, देखो प्रज्ञापन १ टि० १, यह केवल रूढ़ि की उपाधि थी। चीन तथा खुतन के राजाओं तथा कुशान वंश के शासकों की उपाधि 'देवपुत्र' थी।

(२) नाम —इसका अर्थ So-called करके विहारयात्रा का विशेषण मानने की आवश्यकता नहीं। यह केवल वाक्य-रचना में सौंदर्य लाता है।

(३) मृगव्या—मृगया को स्मृतिकारों ने कामज गण में व्यसन गिना है किंतु कौटिल्य (८।३) तथा उसके शिष्य कामंदक ने इसके गुण गिनाए हैं। कालिदास के अभिज्ञान शाकुंतल का प्रसिद्ध श्लोक 'मेदश्छेदकृशोदरं०—' इन्हींका अनुवाद है।

(४) इसके 'सत' को धातुज वर्तमान विशेषण न मानकर 'शांतः' अर्थात् 'बुद्ध' अर्थ करके 'बुद्ध संबोधि को गया' कहना अप्रासंगिक है।

(५) संबोधि को निकला, या गया—इसके अर्थ में बहुत विवाद है। बौद्ध परिभाषा में संबोधि का अर्थ सम्यक् ज्ञान है, अर्थात् सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र आदि अष्टविध मार्ग पर चलकर बुद्धावस्था को प्राप्त करना। अशोक के लिये अपने को 'संबोधि को पाया या पहुँचा' कहना अनुचित धृष्टता होती, वह न बुद्ध हुआ, न उसने बुद्धता का दावा किया। 'निः + क्रम' धातु का अर्थ निकलना, पाँव धरना है। गिरनार का 'अयाय' केवल उसकी जगह पर्याय की तरह रख दिया गया जान पड़ता है। अशोक शालीनता से कहता है कि मैं संबोधि की ओर

बूढ़ों का दर्शन, सोने का वितरण, जनपद (= राज्य) के लोगों का दर्शन, धर्म का उपदेश और धर्म विषय की जिज्ञासा। उस [पहले की विहारयात्रा] से यह [धर्मयात्रा] बहुत ही आनंददायक होती है। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा का भाग (= हिस्सा) ही दूसरा है [अर्थात् उसकी बात ही निराली है]।

कुछ अवसर हुआ। बौद्ध परिभाषा में इस अर्थ में 'संबोधिपरायणो' आता है। कुछ लोग 'संबोधि को जाने' का शब्दार्थ कहते हैं कि बोधि (वृक्ष) या महाबोधि (गया) में तीर्थयात्रा के लिये अभिषेक के दस वर्ष पीछे गया, तब से यह धर्मयात्रा चली। अशोकेन जातौ बोधौ...दत्तं, तत्र बोधौ विशेषतः प्रसादो जातः, रत्नानि...बोधिं प्रेषयति (दिव्यावदान) में जाति = बुद्ध की जन्मभूमि, बोधि = बुद्धत्व प्राप्तिस्थान, महाबोधिं उपगन्त्वा (महाबोधिवंश) (भंडारकर, इं० एं० ४२, पृ० १६०)

(६) भूयः = फिर फिर, या अधिकतर (मृगया आदि से)।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित नवीन पुस्तकें।

---

(१) हिंदी व्याकरण

इसके संशोधित संस्करण के पहले ५६ पृष्ठों का प्रथम अंक छपकर प्रकाशित हो गया। प्रति अंक में ५६ पृष्ठ रहेंगे और संभवतः ऐसे ६ अंकों में संपूर्ण व्याकरण समाप्त हो जायगा। प्रत्येक अंक का मूल्य ।॥) है, डाक व्यय अलग है। जो लोग ३॥) रु० एक साथ भेज देंगे उन्हें इसके चार अंक बिना और किसी प्रकार के व्यय के घर बैठे पहुँच जायँगे।

---

(२) न्यायी नौशीरवाँ

प्रसिद्ध इतिहास-लेखक मुंशी देवीप्रसाद ने नौशीरवाँ नाम के विख्यात बादशाह का जीवनचरित बड़ी खोज से लिखा है—यह पढ़ने योग्य है। मूल्य ॥=). डाक व्यय अलग।

---

(३) खुसरो की हिंदी कविता

पत्रिका के इस अंक में इस शीर्षक का जो लेख छपा है वह अलग पुस्तकाकार भी छापकर प्रकाशित किया गया है। मूल्य ।)॥. डाक व्यय अलग।

मिलने का पता—

मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा,

बनारस सिटी।

शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें।

---

(१) **शशांक** नाम का उपन्यास—इसमें गुप्तवंश की प्रधान शाखा के महाराज महासेनगुप्त के समय का इतिहास उपन्यास रूप में अंकित किया गया है। मूल्य ३) रु० होगा। यह सूर्यकुमारी पुस्तकमाला का तीसरा ग्रंथ होगा।

---

(२) **सुलैमान सौदागर** का यात्रा-विवरण—इस यात्री ने अरबी भाषा में अपना यात्रा-विवरण लिखा है। इससे पहले का अरबी भाषा में लिखा हुआ कोई यात्रा-विवरण नहीं मिलता। यह देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला में प्रकाशित किया जायगा। मूल्य १) होगा।

---

(३) **मनोरंजन पुस्तकमाला** में (१) ऐतिहासिक कहानियाँ, (२) केशवदास की कविता, (३) सूरसुधा (चार भाग)—ये तीन ग्रंथ छप रहे हैं।

मिलने का पता—

मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा,

बनारस सिटी।

Printed by Bishweshwar Prasad, at The Indian Press, Ltd., Benares-Branch

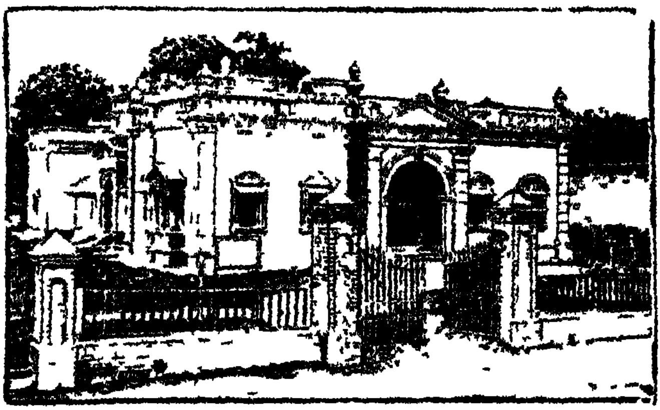
नागरीप्रचारिणी पत्रिका

अर्थात्

प्राचीन शोधसंबंधी त्रैमासिक पत्रिका

[नवीन संस्करण]

भाग २—अंक ४



संपादक

रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा

चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी, बी० ए०

—:*:—

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

माघ, संवत् १९७८] [मूल्य प्रति संख्या—एक रुपया

लेख-सूची ।

प्रकाशित होने के लिये स्वीकृत लेख ।

[१] अशोक की धर्मलिपियाँ ।

[२] मध्यदेश का विकास ।

[३] विविध विषय ।

[४] राजाओं की नीयत से बरकत ।

[५] बोर्नियो के संस्कृत शिलालेख ।

[६] कच्छवंश महाकाव्य ।

[७] बृहस्पति के सूत्र ।

[८] इब्न बतूता के समय का भारतवर्ष ।

[९] परमार राजा भोज का उपनाम 'त्रिभुवन नारायण' ।

[१०] एक ऐतिहासिक काव्य ।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

अर्थात्

प्राचीन शोधसंबंधी त्रैमासिक पत्रिका

[नवीन सम्करण]

भाग २—संवत् १९७८



सम्पादक

रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा

चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी, बी० ए०

—*—

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

Printed by Bishweshwar Prasad, at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch.

लेख-सूची ।

१८—पुरानी हिंदी (४)

[लेखक-पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बी० ए०, काशी]

हेमचंद्र के व्याकरण और कुमारपालचरित में से।

पाणिनि।

" शोभना खलु पाणिनिना सूत्रस्य कृतिः[1] "

संस्कृत व्याकरण में जो यश पाणिनि को मिला वह किसी के भाग्य में नहीं था। ऐसा सर्वांगसुंदर पूर्ण व्याकरण किसी काल में किसी भाषा में न बना। यों तो महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री कहते हैं[2] कि मैकडानल (मुग्धानलाचार्य) ने अब पाणिनि का सा ही वैज्ञानिक व्याकरण स्वतंत्र रीति पर बना दिया है, किंतु उस व्याकरण की रचना पाणिनि के व्याकरण के होने ही से संभव हुई। विभु आकाश, समुद्र या विष्णु की तरह पाणिनि के व्याकरण की नाप न ईदृक्ता से हो सकती है, न इयत्ता से। वह वही है। यह नहीं कहा जा सकता कि वह ऐसा है या इतना है। जैसे पाणिनि अपने पहले के सब संस्कृत वैयाकरणों का संघात है, वैसे ही वह अपने पिछले सब वैयाकरणों का उद्गम है। अपने से पहले जिन

(१) पतंजलि, २। ३। ६६।

(२) The Professor's Vedic Grammar is a unique work in so far as he has done it without Pāṇini's Vaidika Prakriya. He has evolved the grammar from the language itself and is as scientific as his great predecessor, Pāṇini. एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, के वार्षिकोत्सव पर सभापति का व्याख्यान, पृ० ६।

वैयाकरणों का नाम उसने, मतभेद दिखाने के लिये या पूजार्थ,[1] ले लिया उनका नाम तो रह गया, बाकी के नाम तक का पता नहीं। पूर्वाचार्यों की जो संज्ञाएँ उसने प्रचलित समझ कर ले लीं वे रह गईं,[2] बाकी पुराने सिक्के पाणिनि की नई टकसाल की मोहरों के आगे न मालूम कहाँ चले गए। पहले के व्याकरणों का एकदम अभाव देख कर कोई यह कल्पना करते हैं कि पाणिनि शास्त्रार्थ में जिन वैयाकरणों को हराता गया उनके ग्रंथों को जलाता गया। कोई कहता है कि शिवजी के हुंकार-वज्र से, जो, जैसा कि आगे कहा गया है, पाणिनि के दुर्बल पक्ष की हिमायत पर चलाया गया था, सब नष्ट हो गए। कोई कहता है कि सब वैयाकरण विश्वामित्र का नाम विश्व+अमित्र बनाकर उसके शापभाजन हुए, पाणिनि ने 'मित्रे चर्षौ'[3] सूत्र (६।३।१३०) बनाकर उसकी ख़ुशामद की तथा वर पाया। पाणिनि को जलाने, शिवकोप या विश्वामित्रानुग्रह की

---

(१) आपिशलि ६।१।९२, काश्यप १।२।२५, गार्ग्य ८।३।२०, गालव ७।१।७४, चाक्रवर्मण ६।१।१३०, भारद्वाज ७।२।६७, शाकटायन ३।४।१११, शाकल्य १।१।१६, सेनक ५।४।११२, स्फोटायन ६।१।१२३, उत्तरी (उदीचाम्) ४।१।१५३, कोई (एकेषां) ८।३।१०४, पूर्वी (प्राचाम्) या पुराने ४।१।१७।

(२) वर्णां वाहुः पूर्वसूत्रे (भाष्य, द्वितीय आह्निक), व्याकरणांतरे वर्णा अक्षराणीति वचनात् (कैयट); आङो नाऽस्त्रियाम् (१।३।१२०) आङिति टासंज्ञा प्राचाम् (कौमुदी)। प्रथमा आदि विभक्तियों के नाम, समासों के नाम, कृत्, तद्धित आदि नाम, पुराने हैं। अथवा पूर्वसूत्रनिर्देशोऽयम्। पूर्वसूत्रेषु येऽनुबंधा न तैरिहेत्कार्याणि क्रियन्ते (पतंजलि, चौक्‌आपः ७।१।१८ पर) पूर्वाचार्यैर्हि अपि द्विवचने किसी पठिते न चेह कश्चिद्‌चौक् प्रत्ययोऽस्ति। सामान्यग्रहणार्थं च पूर्वसूत्रनिर्देशस्तेन पूर्वसूत्रे च चौक् तस्य ग्रहणं भवति (वहीं कैयट)। तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात् (पाणिनि १।२।५३) के भाष्य तथा कैयट से जाना जाता है कि टि, घु, भ आदि संज्ञाएँ भी पुरानी हैं।

(३) यहाँ पाणिनि ने उस प्राकृतिक मौखिक दीर्घ का उल्लेख किया है जो 'विश्व' के साथ दूसरा पद मिलाने से हो जाता है। इसने विश्वावसु, विश्वाराट्, विश्वानर और विश्वामित्र का उल्लेख किया है, गँवारी बोली में 'कासी विस्वानाथ' अब तक होता है।

आवश्यकता न थी, स्वयं ही उसके तेज के आगे और व्याकरण न ठहर सके। पाणिनि के व्याकरण में विशेषता क्या है? नई उपज का भाव दिखाने के लिए 'उपज्ञ' और 'उपक्रम' पद आया करते हैं[1], जैसे दूरी और तोल के नाप पहले पहल नंद (राजा) ने चलाए। यों ही पाणिनि के लिये कहा जाता है कि अकालक व्याकरण पहले पहले पाणिनि ने चलाया[2] अर्थात् पहले क्रियापद (आख्यात) के रूपों के लिये कालवाचक नाम थे,[3] पाणिनि ने उन्हें हटाकर लट्, लिट् आदि नाम चलाए। उसने कई संज्ञाएँ नई चलाईं[4]। संक्षेप के लिये कई बीजगणित के से अनर्थक संकेत चलाए[5]। वर्णमाला को नए ढंग से जमाकर अच् कहने से स्वरमात्र, हल् कहने से व्यंजन मात्र आदि को समेट कर बतलाने (प्रत्याहार) की चाल चलाई। बारंबार एक बात न कहने के लिये हुकूमत और सिलसिले (अधिकार और अनुवृत्ति) का क्रम रक्खा। प्रकृति, प्रत्ययों

---

(१) उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम (२।४।२१) नन्दोपक्रमाणि मानानि।

(२) पाणिन्युपज्ञमकालकं (आकालापकं अशुद्ध पाठ है) व्याकरणम्। (काशिका)

(३) तेन तत् प्रथमतः प्रणीतं। स स्वस्मिन् व्याकरणे कालाधिकारं न कृतवान् (जिनेन्द्रबुद्धि का न्यास) भवन्ती (पाणिनि का लट्) परोक्षा (लिट्) अनद्यतनी भूता या ह्यस्तनी (लङ्) अद्यतनी (लुङ्) भविष्यन्ती (लृट्) अनद्यतनी, भाविनी, श्वस्तनी (लुट्) प्रतिसर्गी (लोट्) विधायिका (लिङ्) आशीः (आशीर्लिङ्), अतिपातिका (लृङ्)। लोट् तथा लिङ् को पंचमी या सप्तमी भी कहते थे जिससे सुबन्त विभक्तियों से गोलमाल हो जाता होगा। पाणिनि ने इनके लिये ये नाम धरे जो कोष्ठक में हैं और वैदिक Subjunctive को लेट् कहा। यह क्रम 'ल'कार की 'हृस्व' बाराखड़ी और उसके आगे ट् या ङ् का संकेत लगाकर क्रम से रखना मात्र है। पाणिनि की बुआ के बेटे संग्रहकार व्याडि (दाक्षायण) ने इन्हीं दस लकारों 'ट्, ङ्' की जगह 'इप्' लगाकर नए नाम बनाए इसलिये व्याड्युपज्ञं दुष्करणम्। (दुष्करणं नहीं)

(४) जैसे नदी घंग आदि।

(५) जैसे इ, रह, फक् आदि।

आदि में ऐसे बंध (अनुबंध) बैठाए कि क्या वैदिक साहित्य, क्या लौकिक, कुछ भी न बचा। अपने समय के मुहाविरों की जानकारी इतनी कि विपाशा के उत्तर तीर के वाहीक ग्रामों के कूप[१]; पार्श्व, यौधेय आदि आयुधजीवी गण[२] (प्रजातंत्र जो किसी राजा की प्रजा न थे और जहाँ दाम मिलता उसी ओर हथियार चलाते); ऋषियों और राजाओं के पितृक्रमागत नाम[३]; नए और पुराने ब्राह्मण और कल्पसूत्र,[४] उत्तरी और पूर्वी वाग्धारा के भेद[५], देखे हुए, बनाए हुए और कहे हुए वेद[६] तथा ग्रंथ, यवनों की लिपि,[७] सौवीर, साल्व और पूर्व की नगरियाँ तथा संकल का बनाया नगर[८], पशुओं के कानों पर पहचान के लिये बनाए चिह्न,[९] द्यूत के खेल[१०]—कोई उसकी दृष्टि से न बचा। सीमाप्रांत के शलातुर[११] में जन्म लेकर भी उसने पाटलिपुत्र में ख्याति पाई[१२]। वैदिक साहित्य के प्रयोगों को उसने अपवाद या विकल्प के विषय रखकर अपने समय की 'भाषा' का व्याकरण बनाया। स्वर

(१) ४।२।७४

(२) ५।३।११४, ११७, ४।३।६१

(३) ४।१।१०४

(४) ४।३।१०५

(५) ३।४।१६ आदि, १।१।७५ आदि

(६) २।३।४७, ४।३।११६, ४।३।१०१

(७) ४।१।४६

(८) ४।२।७५—७६

(९) ६।२।११२, ६।३।११५

(१०) २।१।१०, ५।२।६

(११) शालातुरीय पाणिनि (गणरत्नमहोदधि का मंगलाचरण) शलातुर युसुफ़ज़ई प्रांत का लहौर है।

(१२) यह राजशेखर ने काव्यमीमांसा में (संभवतः बृहत्कथा के आधार पर) कहा है किंतु पाटलिपुत्र की स्थापना मगध के बार्हद्रथ राजा अजातशत्रु ने अपने राज्य के चौथे वर्ष में की थी (पत्रिका भाग २ पृ० १६१) पाणिनि उससे बहुत पुराना होना चाहिए।

के विवेचन को पाणिनि ने इतना स्थान दिया है तथा आवाज़ कुदाने (प्लुत) के नियमों की ऐसी जाँच की है कि मानना पड़ता है कि आपामर भारतवासी मात्र की नहीं तो एक बहुत बड़े समुदाय की साधारण भाषा संस्कृत अवश्य थी। ज्यों ज्यों तारतम्यात्मक भाषाविज्ञान का महत्व बढ़ा है, पाणिनि का यश और भी चमकता गया है। सारे संस्कृत साहित्य पर पाणिनि की छाप लग गई। जिन्होंने खान से निकला सोना नहीं देखा, टकसाल की मुहरवाले सिक्के ही देखे हैं, उनकी बोल-चाल में अपाणिनीय का अर्थ अशुद्ध हो गया। पूर्व में सूर्य उगता है यह लोग भूल चले, सूर्य जिधर उगता है वही पूर्व है यह माना जाने लगा। व्याकरण और पाणिनि का अभेद संबंध हो गया, व्याकरण का या भाषा का अध्ययन न होकर पाणिनि का अध्ययन होने लगा। शब्द इस लिये साधु नहीं है कि वह प्रयुक्त है, इसलिये साधु है कि पाणिनि ने वैसा बनाना बताया है। लक्ष्यैकचक्षुष्क लोग घट गए, लक्षणैकचक्षुष्क[1] बढ़ गए। पाणिनि के आगम और आदेश वास्तव में आगम और आदेश बन गए। अन्य शास्त्रों में भी पाणिनि की परिभाषाओं का डंका बजा। 'लकार', 'लिङ् मां प्रेरयति', 'ङ' और 'णिच्' के अर्थों में पाणिनि के कागज़ के नोट देशांतरों में भी चलने लगे। पाणिनि के पहले भी वेद था, वेदांग थे, व्याकरण वेदांगों में मुख था, किंतु पाणिनि की अष्टाध्यायी वेदांग हो गई। उसके अविकल पारायण का पुण्य हुआ। पाणिनि का मान ऋषिवत् हुआ। वह था ही ऐसा, 'जो कछु कहिय थोर सब तासू'।

कहते हैं कि पीर स्वयं नहीं उड़ते, मुरीद उनके पर लगा देते हैं। पाणिनि ने कहीं स्वयं दावा नहीं किया है कि जिन चौदह सूत्रों में वर्णमाला का क्रम बदल कर मैंने इतना संक्षेप और क्रमसौकर्य

(१) ये उदकस्योदः संज्ञायां ६।३।५७ से ६।३।६० तक के भरोसे 'उदक' को प्रकृति और 'उद' को आदेश मानते हैं, 'उद' प्रकृति से 'क' करने से भी 'उदक' बन सकता है यह नहीं मानते और वाल्मीकि रामायण में 'उदाहारोऽहमागमम्' देखकर चौंकते हैं।

पाया है उनका मुझे इलहाम हुआ है, किंतु बात चल गई कि महेश्वर के डमरु के चौदह बार बजने से पाणिनि ने उन्हें पाया[1]। करामातों पर लोगों का विश्वास हो जाता है, पुरुषपरिश्रम पर नहीं। कन कन जोड़ने से लखपती होते हैं यह कोई नहीं मानता, किंतु बाबा जी मंत्र के बल से हँडिया में भरे गहनों को दूना कर देते हैं या एक नोट के दो कर देते हैं यह मानने को गाँव का गाँव तैयार हो जाता है। पुराने महलों या किलों को भूतों ने रात ही रात में बना दिया यह विश्वास होता है, यद्यपि बड़े बड़े पुल ईंट ईंट जोड़ कर बनते हुए सामने दिखाई दे रहे हैं। बाजीगर के आम की तरह कोई परम इष्ट वस्तु वर्ष में, छ महीने में, दो महीने में, किसी निर्दिष्ट तिथि तक, मिल जायगी—इस आशा पर जो उछल-कूद होती है उस का शतांश भी न दिखाई दे, यदि यह कहा जाय कि दस पंदरह वर्ष चोटी का पसीना एड़ी तक बहाकर वह मिलेगी। पाणिनि के अलौकिक शब्दज्ञान और अपूर्व व्याकरण पर 'वड्ड कथा' में यह कथा है कि पाटलिपुत्र में आचार्य वर्ष के यहा एक 'जड़बुद्धितर' पाणिनि नामक विद्यार्थी था, गुरुपत्नी उससे बहुत कसकर काम लेती, पानी के घड़े भरवाया करती, इसका परिणाम वही हुआ जो होता है—लड़का जान बचाकर भागा, तपस्या करने जा बैठा। शिवजी ने प्रसन्न होकर व्याकरण दिया। उसे लेकर शास्त्रार्थ करने

(१) वार्तिककार तथा भाष्यकार कहीं नहीं जतलाते कि ये १४ सूत्र पाणिनि के नहीं हैं। भाष्य के द्वितीय आह्निक की व्याख्या में तीन जगह कैयट उनके कर्ता को आचार्य या सूत्रकार कह देता है (जो पाणिनि के लिये ही आता है) किंतु तीनों जगह नागोजीभट्ट मानो कैयट की आस्तीन खैंचता है कि हैं! सूत्रकार यहाँ महेश्वर या वेदपुरुष है, क्या कह रहे हो? कैयट तक तो प्रत्याहारसूत्र आचार्य या सूत्रकार के ही माने जाते थे। नंदिकेश्वर कृत कारिका बहुत पीछे का ग्रंथ है तथा उसमें जो इन सूत्रों का आध्यात्मिक अर्थ किया है वह बड़ी खैंच तान का, बौद्ध तंत्रों में मातृका के महत्व के बढ़ने के पीछे का, जान पड़ता है। उसमें अनुबंधों का कोई अर्थ ही नहीं किया जो पाणिनि के सुभीते की नींव हैं।

आया। ऐंद्र व्याकरण का प्रतिनिधि वररुचि इस नए वैयाकरण को हरानेवाला ही था कि शिवजी ने अपने चेले की हिमायत पर, उसका पक्ष गिरता देख, हुँकार वज्र चला दिया; बस, ऐंद्र व्याकरण नष्ट हो गया—जिताः पाणिनिना सर्वे मूर्खीभूता वयं पुनः !! इस कहानी में, जो बृहत्कथा के आधार से कथासरित्सागर में भी है, सार इतना ही है कि 'जिताः पाणिनिना सर्वे' !!!

इस कथा में वररुचि को पाणिनि का समकालिक, नहीं नहीं उससे कुछ पुराना, कहा गया है। वस्तुतः वह पाणिनि से कई सौ वर्ष पीछे हुआ। उसके पहले पाणिनि पर कई व्याख्यान के वार्तिक बन चुके थे। वेद के समय से प्रसिद्धि चली आती है कि वाणी का पहला व्याकरण इंद्र ने बनाया[1]। वररुचि (कात्यायन) भी ऐंद्र संप्रदाय का था। किंतु उसने पाणिनि को उस्ताद मान लिया। सच्चे वीर की तरह अपने से प्रबल वीर के झंडे के नीचे आ खड़ा हुआ। कुफ़्र छोड़कर काबे में आ गया। उसने पाणिनि की रचना पर वार्तिक लिखे, किंतु अधीनता के साथ, लोहा मान कर, यही कहा कि इतना और कह दो,[2] इतना और गिनना चाहिए[3]। पाणिनि की परिभाषाएँ उसने मान लीं, पुरानी आदत से संध्यक्षर, संक्रम, समान, परोक्षा, भवंती या अद्यतनी भी उसके मुँह से निकलता रहा[4]। पाणिनि के समय से उसके समय तक जो नए शब्द चल गए थे या अर्थों में परिवर्तन हो गए थे वे भी उसने गिन दिए। पीछे कई सौ वर्ष बीतने पर, जिनमें कई गद्य और पद्य वार्तिक बने, पतंजलि ने बड़ी व्याख्या या महाभाष्य बनाया।

(१) तैत्तिरीय संहिता ६।४।७, शतपथ ब्राह्मण ४।१।३।१२, १५, १६

(२) इति वक्तव्यम्।

(३) उपसंख्यानम्।

(४) पीछे के वैयाकरण, अपने को पुरानी शैली पर चलनेवाला तथा पाणिनि को सुधारक बताने के लिये, ऐसे पदों को उसी चाव से कहते रहे हैं जिससे कुछ लोग हिंदी की जगह आर्यभाषा और नमस्कार की जगह नमस्ते कहते हैं।

अनद्यतनी ह्यस्तनी या लङ् क्रिया के रूप का प्रयोग उस भूतकाल के अर्थ में होता है कि जो बीता हो किंतु जिसे कहनेवाले ने देखा हो, या जिसे वह कम से कम देख सकता था, परोक्षा या लिट् का प्रयोग बिलकुल आँख से ओझल बात के लिए आता है। इसपर पतंजलि ने दो उदाहरण दिए हैं जो उसके समय को स्पष्ट बतलाते हैं—यवन ने साकेत को घेरा, यवन ने मध्यमिका को घेरा[1]। पतंजलि के समय में संस्कृत उस अर्थ में भाषा न रही थी जिस अर्थ में पाणिनि ने उसे भाषा कहा है। वह एक गो शब्द के गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका आदि अपभ्रंशों का उल्लेख करता है,[2] देवदिण्ण को देवदत्त से पृथक् करता है[3], आणपयति, वट्टति, वड्ढति, को धातुपाठ से अलग करता है,[4] दृशि के लिये दसि और कृषि के लिये कसि का प्रयोग होना बतलाता है[5]। साधु शब्दों के प्रयोग में आर्यावर्तवासी 'शिष्टों' की दुहाई देता है जो कुंभीधान्य, अलोलुप आदि हों[6]। सो पाणिनि की 'भाषा' अब 'शिष्टों की भाषा' रह गई थी जिसके जानने में 'धर्म' होता था[7]; पहले बहता पानी था, अब कुँआ खोदने वाले की तरह पहले अपशब्दों की धूल से ढके जाकर फिर शिष्ट-प्रयोग के जल से शुद्धि मिलती थी[8]। पतंजलि ने कात्यायन के

(१) अनद्यतने लङ् (पाणिनि ३।२।१११) लोकविज्ञाते प्रयोक्तुर्दर्शनविषये (कात्यायन) अरुणद् यवनः साकेतम्, अरुणद् यवनो मध्यमिकाम्। यह यवन मिनेंडर (मिलिंद) था। इसी तरह पिछले वैयाकरणों ने उदाहरणों से अपना अपना समय बता दिया है। अजयद् गुप्तो हूणान् (चंद्रव्या०-वृत्ति) अदहदमोघवर्षोरातीन् (जैनशाकटायन) अदहदरातीन् कुमारपालः (हेमचंद्र के व्याकरण की टीका मलयगिरिकृत) कई लोग बिना समझे इन्हीं उदाहरणों को दोहरा गए हैं; जैसे, काव्यानुशासनवृत्ति में हेमचंद 'अजयद् गुप्तो हूणान्'।

(२) प्रथम आह्निक।

(३) देवदिण्ण (जैसे रामदहिन, रामदीन),—द्वितीय आह्निक।

(४) पाणिनि १।३।१ 'भूवादयो धातवः' पर।

(५) वहीं।

(६) पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्। ६।३।१०९ का भाष्य।

(७) प्रथम आह्निक।

(८) 'कूपखानकवत्'—प्रथम आह्निक।

आक्षेपों का समाधान किया है। 'मांगलिक आचार्य (पाणिनि) ने शुद्ध स्थान में पूर्वाभिमुख बैठकर हाथ को कुशा से पवित्र करके सूत्र बनाए हैं उनमें एक अक्षर भी अनर्थक नहीं हो सकता'[1], 'सामर्थ्ययोग से देखता हूँ कि इस शास्त्र में कुछ भी अनर्थक नहीं है'[2], 'आचार्य की इतनी सी बात सह लो'[3], 'कहते तो तुम ठीक हो, किंतु अपाणिनीय होता है इसलिये जैसा रक्खा है वैसा (यथान्यास) रहने दो'[3], इत्यादि उसके वाक्यों से पाणिनिपूजा कितनी बद्धमूल हो गई थी यह जान पड़ता है। पाणिनि के सारे सूत्रपाठ को एक जुड़ा हुआ (संहिता) पाठ मानकर, कहीं उनमें चिपका अक्षर (प्रश्लेष) देखकर और कहीं प्रचलित सूत्र के दो भाग कर के काम निकालना भी कहा है। कात्यायन और पतंजलि ने इतने भारी वैयाकरण होकर भी नया राज नहीं जमाया, पाणिनि के साम्राज्य के भीतर ही कर दिया और स्वराज्य पाया। यह व्याकरण के 'त्रिमुनि' हुए, इनका एक ही संप्रदाय रहा, इस संप्रदाय में ऐतिहासिक विवेक की वह बात उदारता से चली जो और किसी हिंदू शास्त्र में नहीं चली अर्थात् यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्। पाणिनि से कात्यायन और कात्यायन से पतंजलि अधिक प्रमाण; और सब जगह इससे उलटा है।

अस्तु। इन तीनों ने व्याकरण खेती को लुन लिया। पीछे व्याकरण का अध्ययन नहीं रहा, पाणिनि का अध्ययन रह गया। इस सूर्यत्रयी के आगे क्या कोई उजियारा करता? टीका, व्याख्यान, खंडन मंडन, इसी बात पर होते रहे कि पाणिनि ने यह क्यों कहा, यह पद क्यों रक्खा। आस्तिकों के लिये संहितापाठ में छेड़छाड़ करना असंभव था। कुछ बौद्ध टीकाकारों ने सूत्रों में कुछ बढ़ाना

(१) पाणिनि १।१।१ पर।

(२) ६। १। ३ का भाष्य।

(३) प्रथम सूत्र।

चाहा तो आस्तिकों से उन्हें डाँट मिली कि हमारे पारायण की चीज़ में क्षेपक मिलाते हो'[1]।

इनके पीछे कुछ अहिंदू (बौद्ध और जैन) सीला बीननेवाले हुए। कोई कोई सीला जो उन तीनों लुननेवालों से रह गया था, या उनके पीछे प्रयोग में आया, इन्होंने चुना[2]। किंतु और बातों में बिना समझे लीक पीटते गए, अपना नया संप्रदाय चलाना चाहते रहे। जैसे हिंदुस्तान में कई राजाओं ने अपना नया संवत् चलाया जो कुछ ही वर्ष पीछे उनके वंश का राज्य नष्ट होने पर आगे न चला वैसे ही इन्होंने नई परिभाषाएँ चलाईं। पाणिनि ने बहुत संक्षेप किया था। चाहे उस समय लेखनसामग्री की कमी से संक्षिप्त लिखने की चाल रही हो, चाहे कंठस्थ करने के सुभीते के लिये सूत्र ऐसे रचे गए हों, चाहे वैदिक साहित्य और स्वरविचार की अधिकता से संक्षेप करना पड़ा हो। अब कागज़ की कमी न थी, रटने की चाल भी कम हो गई थी, न इनकी रचना में ऐसी पवित्रता थी कि वह पारायण में आती, और वैदिक भाग और स्वर को इन्होंने छोड़ ही दिया था। तो भी पाणिनि से बढ़कर

(१) चांद्र व्याकरण के लगभग ३५ सूत्र काशिकाकारों ने सूत्रपाठ में मिलाना चाहे। कैयट ने जगह जगह पर लिखा है कि उनका 'अपाणिनीयः सूत्रेषु पाठः'। पा० ४।१।१५ में ल्युन् जोड़ना अनार्ष हुआ।

(२) जैसे विभ्रम के अर्थ में 'विभ्रास' (चांद्र, मेघदूत श्लो० २५ की मल्लिनाथ कृत टीका)। जैसे बार्हस्पत्य संवत्सर अर्थात् जिस नक्षत्र में बृहस्पति का उदय सूर्य से युति होकर फिर अस्त से निकलने पर वर्ष के आरंभ में हो उसपर से वर्ष का नाम पौषसंवत्सर, माघसंवत्सर आदि रखने से गणना करना। पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि के समय में यह बार्हस्पत्य गणना नहीं थी, उन्होंने सास्मिन् पौर्णमासीति संज्ञायां (४।२।२१) नक्षत्रेण युक्तः कालः (४।२।३) से पौष, माघ आदि महीनों के नाम ही बनाए। बार्हस्पत्य गणना पुराने कदंबों और गुप्तों के शिलालेखों में मिलती है (पं० गौरीशंकर ओझाजी की प्राचीन लिपिमाला, पृ० १८७) चांद्र व्याकरण में इसके लिये सूत्र है—गुरूदयाद्भाद् युक्तेऽब्दे, *शाकटायन--उदितगुरोर्भाद्युक्तेऽब्दे*। काशिकाकार ने 'पौषः मासः' की तरह ही पौषः संवत्सरः (मासार्धमाससंवत्सराणामेषा संज्ञा) बनाना चाहा, किंतु यों

संक्षेप करने की धुन इनपर सवार थी, पाणिनिवालों ने आधी मात्रा के लाघव को पुत्रोत्सव समझा तो इन्होंने पौत्रोत्सव समझा। पाणिनि से अपना विलगाव दिखाने के लिये कुछ पुरानी संज्ञाएँ काम में लीं, कुछ नई गढ़ीं, उसकी 'संज्ञा' को 'नाम' कहा,[1] 'सु' को 'सि'[2] कहा, 'हल्' को 'हम्' किया। समेट कर कहने का ढंग (प्रत्याहार) तो उसीसे लिया किंतु कुछ अक्षर इधर उधर किए। कहीं संक्षेप के लिये पाणिनि के सूत्र के पद उलटे पुलटे किए, कहीं कात्यायन के वार्तिक की नई बात सूत्र में घुसेड़ी, कहीं एक सूत्र को तोड़ कर दो और कहीं दो को चिपका कर एक कर दिया। उदाहरण देना केवल विस्तार करना है। इनका प्रचार तब तक और वैसा ही हुआ जब तक और जैसा स्वामी दयानंद की 'नमस्ते' की रूढ़ि के जमने के पहले 'सलामवालेकम' 'वालेकमस्सलाम' की देखादेखी राजा जयकृष्णदास आदि के चलाए 'परमात्मा जयति' 'जयति परमात्मा' का रहा था। अपनी साख जमाने के लिये अपने संप्रदाय को पुराना बताने के लिये कई यत्न किए। पाणिनि के वैसा न कहने पर भी यह प्रसिद्धि चल गई थी कि उसके प्रत्याहारसूत्र और उसका व्याकरण महेश्वर से आया है। एक कहता है कि जब महावीर जिन कुमार थे, उस समय इंद्र ने उनसे प्रश्न करके जो व्याक-

प्रत्येक संवत्सर ही पौष, माघ आदि हो जाता है, विशेष संज्ञा नहीं होती, हर एक में पुष्य, मघा आदि आते हैं, बिना गुरूदय का उल्लेख किए काम नहीं चलता।

(१) चांद्र व्याकरण, 'असंज्ञकम्'।

(२) 'सु' 'सि' में एक रहस्य है। सिद्ध पद के अंत में स् (:) आता है, या संधि में ओ या र। सु सि में उ इ दोनों वैयाकरणों के संकेत हैं। शौरसेनी में पुरुसो होता है, मागधी में पुलिसे। संस्कृत में तो 'स्' ही काफ़ी था। क्या यह मानें कि शौरसेनी 'प्राकृत' को 'संस्कृत' करनेवालों ने 'पुरुसो' देखकर 'सु' माना, और मागधी के आधार पर संस्कृत करनेवालों ने 'पुलिसे' पर बिगाड़ जमा कर 'सि' माना? यह उलटी गंगा नहीं है, संस्कृत के वास्तव रूप की मूलभित्ति की कल्पना है।

रण सीखा वही प्रश्नोत्तर हमारा जैनेंद्र व्याकरण है[1] । 'मत पानी से सींच', और 'लड्डुओं से सींच' का भेद न जाननेवाले राजा के लिये जो व्याकरण बनाया गया वह महेश्वर का नहीं तो महेश्वर के पुत्र कुमार का कहा गया ।[2] एक व्याकरण साक्षात् सरस्वती का सिखाया कहलाया ।[3] एक ने पाणिनि के उल्लिखित पूर्वज शाकटायन के नाम पर अपनी कृति बनाई[4] और उसकी विशेष बातों को अपने व्याकरण में मिलाकर शाकटायनी रंग देना चाहा, किंतु पूरी तरह बात छिपाई न जा सकी[5] । पाणिनि ने तो मतभेद या आदरार्थ पुराने वैयाकरणों के नाम दिए, इन्होंने भी वैसेही सूत्रढंग पर कई नाम दिए जिनमें कई कल्पित हैं[6] । ये व्याकरण दो तरह के बने । एक तो हिंदुओं के वेदांग पाणिनि व्याकरण से ही हमारा काम क्यों चले इसलिये बौद्ध, दिगंबर जैन, और श्वेतांबर जैन व्याकरण बनाए गए । उनका पठन पाठन भी हुआ, टीकाएँ भी बनीं, किंतु अपनी गुट के बाहर प्रचार न हो सका । यह वैसा ही आंदोलन था जैसा मुसलमान जज, अ-ब्राह्मण प्रतिनिधि और नैषध की जगह धर्मशर्माभ्युदय

(१) यदिन्द्राय जिनेन्द्रेण कौमारेऽपि निरूपितम् । ऐन्द्रं जैनेन्द्रमिति तत्प्राहुः शब्दानुशासनम् ॥

(२) शर्ववर्मन् का कौमार या कालाप व्याकरण—"मोदकैः सिञ्च मां राजन्" ।

(३) अनुभूतिस्वरूपाचार्य का सारस्वत ।

(४) जैन या अभिनव शाकटायन दक्षिण के राठौड़ राजा अमोघवर्ष के यहाँ था । ईसवी नवीं शताब्दी का अंत उसका काल है ।

(५) जैसे पाणिनि कहता है कि मेरे मत में 'अयान्' होता है, शाकटायन के मत में 'अयुः' । (या धातु का अनद्यतन भूत प्रथम पुरुष बहुवचन ३।४।१११, ११२) जैन शाकटायन को केवल 'अयुः' ही मानना चाहिए था किंतु वह भी 'वा' लिख गया ।

(६) एक जैन पोथी में ही जैनेंद्र व्याकरण के 'रात्रेः प्रभाचन्द्रस्य' के प्रभाचंद्र को कल्पित बताया है तथा हेमचंद्र के द्व्याश्रय काव्य के टीकाकार ने सिद्धसेन को । (बेल्वलकर पृ० ६६)

पढ़ाने के लिये होता है। दूसरे वे जो पाणिनि की सांकेतिक कठिनता से बचाकर आलसियों, राजाओं, बनियों और साधारण जनों को[1], दस दिन में[2], व्याकरण सिखाने के लिये बनाए गए। दोनों से अधिक काम न सरा क्योंकि सारे संस्कृत वाङ्मय में पाणिनि की परिभाषाओं के चलने से पहले पक्ष को अधिक पढ़ने पर अपनी सीखी नौगढ़ंत परिभाषाएँ भूलना पड़तीं और दूसरे पक्ष में मुग्धबोध[3] और खोटे (छोटे) तंत्रों[4] से नाम के अनुसार ही ज्ञान होता। दूसरे ढंग के व्याकरणों का प्रचार बहुत कुछ रहा और हैं, क्योंकि पहले केवल 'पार्षदकृति'[5] थे और जो कुछ उनमें तत्व था वह पाणिनि के टीकाकारों ने या तो उदारता से ले लिया या कुछ खैंच-खोंच कर अपने यहाँ ही बता दिया.।

हेमचंद्र

इस लेख का उद्देश्य संस्कृत व्याकरण का इतिहास लिखना नहीं है। ऊपर का कुछ विस्तृत, किंतु अपनी समझ में रोचक वर्णन, हेमचंद्र के व्याकरण की पूर्वपीठिका समझाने के लिये दिया गया है। हेमचंद्र का व्याकरण सिद्धहेमचंद्रशब्दानुशासन या सिद्धहैम कहलाता है, सिद्धराज जयसिंह के लिये बनाया इसलिये सिद्ध और हेमचंद्र का होने से हैम। इसमें भी चार चार पादों के आठ अध्याय हैं जिनमें लगभग ४५०० सूत्र हैं। ढंग कौमुदियों का सा है, अर्थात् विषयविभाग से सूत्रों का क्रम है। साथ में अपनी बनाई टीका बृहद्वृत्ति भी है। हेमचंद्र का उद्देश्य सरल रीति पर अपने

(१) छान्दसाः स्वल्पमतयः शास्त्रान्तररताश्च ये।
ईश्वरा व्याधिनिरतास्तथालस्ययुताश्च ये॥
वणिक् सस्यादिसंसक्ता लोकयात्रादिषु स्थिताः।
तेषां क्षिप्रं प्रबोधार्थम् (कातन्त्र की टीका व्याख्यानप्रक्रिया)

(२) नरहरिकृत बालावबोध—दशभिर्दिनैर्वैयाकरणो भवति। इन टिप्पणियों में कई जगह डाक्टर बेलवलकर के उत्तम निबंध 'सिस्टम्स आफ संस्कृत ग्रामर' की सहायता ली गई है।

(३) बोपदेव का।

(४) का-तंत्र।

(५) देखो ऊपर पृ० ३८० टि० १, २।

संप्रदाय, अपने आश्रयदायक राजा तथा अपने गौरव के लिये ऐसा व्याकरण बनाने का था जिसमें कोई बात न बचने जाय। वह जैन शाकटायन के पीछे लीक लीक चला है। किंतु और सीला बीननेवालों की तरह वह सीला बीननेवाला न था। उसने संस्कृत व्याकरण सात अध्यायों में लिखकर आठवाँ केवल प्राकृत के पूर्ण विवेचन को दिया है। पाणिनि ने अपने पीछे देखकर, वैदिक साहित्य को मिलाकर 'अपने समय तक की भाषा' का व्याकरण बनाया। पीछे वेद छूट गया, स्वर छूट गया। हेमचंद्र ने पीछे न देखा तो आगे देखा, उधर का छूटा तो इधर बढ़ा लिया, 'अपने समय तक की भाषा' का विवेचन कर डाला। यही हेमचंद्र का पहला महत्व है कि और वैयाकरणों की तरह केवल पाणिनि के व्याकरण के लोकउपयोगी अंश को अपने ढचर में बदल कर ही वह संतुष्ट न रहा, पाणिनि के समान पीछा नहीं तो आगा देखकर अपने समय तक की भाषा का व्याकरण बना गया। उसके प्राकृत व्याकरण अर्थात् आठवें अध्याय का क्रम क्या है यह हम पहले बता चुके हैं।[1] संस्कृत और दूसरी प्राकृतों के व्याकरण में तो उसने अपनी वृत्ति में उदाहरणों की तरह प्रायः वाक्य या पद ही दिए हैं, किंतु अपभ्रंश के अंश में उसने पूरी गाथाएँ, पूरे छंद और पूरे अवतरण दिए हैं। यह हेमचंद्र का दूसरा महत्व है। यों उसने एक बड़े भारी साहित्य के नमूने जीवित रक्खे जो उसके ऐसा न करने से नष्ट हो जाते। इसका कारण क्या है? जैसे पहले कहा गया है[2] जिन श्वेतांबर जैन साधुओं के लिये, या सर्वसाधारण के लिये, उसने व्याकरण लिखा वे संस्कृत प्राकृत के नियमों को, उनके सूत्रों की संगति को पदों या वाक्यखंडों में समझ लेते। उसके दिए उदाहरणों से न समझते तो संस्कृत और किताबी प्राकृत का वाङ्मय उनके सामने था, नए उदाहरण ढूँढ़ लेते। किंतु अपभ्रंश के नियम यों समझ में न आते।

(१) पत्रिका भाग २, पृ० १३६।
(२) पत्रिका भाग २, पृ० १७।

मध्यमपुरुष के लिये ' पंइ,' शपथ में 'थ' की जगह 'ध' होने से सवध, और मकड़धुग्घि का अनुकरण-प्रयोग बिना पूरा उदाहरण दिए समझ में नहीं आता (देखो आगे ५६, ८८, १४४) । यदि हेमचंद्र पूरे उदाहरण न देता तो पढ़नेवाले जिनकी संस्कृत और प्राकृत आकर-ग्रंथों तक तो पहुँच थी किन्तु जो 'भाषा' साहित्य से स्वभावतः नाक चढ़ाते थे उसके नियमों को न समझते ।

इन सब उदाहरणों का संग्रह और व्याख्यान इस लेख के उदाहरणांश के द्वितीय भाग में किया जाता है । ये उदाहरण अपभ्रंश कहे जायँ किंतु उस समय की पुरानी हिंदी ही हैं, वर्तमान हिंदी साहित्य से उनका परंपरागत संबंध वाक्य और अर्थ से स्थान स्थान पर स्पष्ट होगा। स्मरण रहे कि ये उदाहरण हेमचंद्र के अपने बनाए हुए नहीं हैं, कुछ वाक्यों को छोड़कर सब उससे प्राचीन साहित्य के हैं । इनमें उस समय के पुराने हिंदी साहित्य के विस्तार का पता लगता है । यदि संस्कृत साहित्य बिलकुल न रहता तो पतंजलि के महाभाष्य में जो वेद और श्लोकों के खंड उद्धृत हैं उन्हींसे संस्कृत साहित्य का अनुमान करना पड़ता । वही काम इन दोहों से होता है । हेमचंद्र ने बड़ी उदारता की कि ये पूरे अवतरण दे दिए। इनमें शृंगार, वीरता, किसी रामायण का अंश (जेवड्डु अन्तरु० (१०१), दहमुहु भुवण० (५)), कृष्णकथा (हरि नच्चाविउ पङ्गणहि (१२२), एक्कमेक्कउँ जइवि जोएदि० (१२६), किसी और महाभारत का अंश (इत्तिउँ ब्रोप्पिणु सउणि० (७८)), वामनावतार कथा (मइँ भणिअउ बलिराय (६६), हिंदू धर्म (गङ्ग गमेप्पिणु०, (१६६, १६७), ब्राम महारिसि० (६१)), जैन धर्म (जेप्पि चएप्पिणु० (१६५), पंकर्त्वविणु मुहु जिनवरहो० (१७०)) और हास्य (सोएवा पर वारिआ (१५६)— सभी के नमूने मिलते हैं । मुंज (१६२) और ब्रह्म (१०३) कवियों के नाम पाए जाते हैं । कैसा सुंदर साहित्य यह संगृहीत है! कविता की दृष्टि से, इतने विशाल संस्कृत और प्राकृत साहित्य में भी, क्या

भल्ला हुआ जु मारिआ (३१); अइ ससणेही तो मुइअ (५२); लोणु विलिज्जइ पाणिएण (११५); अज्जवि नाहु महुज्जि घरि (१४४); आदि के जोड़ की कविता मिल सकती है ?

तीसरा महत्व हेमचंद्र का यह है कि वह अपने व्याकरण का पाणिनि और भट्टोजिदीक्षित होने के साथ साथ उसका भट्टि भी है। उसने अपने संस्कृत प्राकृत द्व्याश्रय काव्य में अपने व्याकरण के उदाहरण भी दिए हैं तथा सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल का इतिहास भी लिखा है। भट्टि और भट्ट भौमक की तरह वह अपने सूत्रों के क्रम से चला है। संस्कृत द्व्याश्रय काव्य के बीस सर्ग हैं। इसमें सिद्धराज जयसिंह तक गुजरात के सोलंकी राजाओं के वंश वैभव आदि का वर्णन और साथ ही साथ हेमचंद्र के (संस्कृत) शब्दानुशासन के सात अध्यायों के उदाहरण हैं। आठवें अध्याय (प्राकृत व्याकरण) के उदाहरणों के लिये प्राकृत द्व्याश्रय काव्य (कुमारपालचरित) की रचना हुई है जिसमें आठ सर्ग हैं। संस्कृत द्व्याश्रय की टीका अभयतिलकगणि ने तथा प्राकृत द्व्याश्रय की टीका पूर्णकलशगणि ने लिखी है, जो संवत् १३०७ फाल्गुन कृष्ण ११ पुष्य, रविवार, को पूर्ण हुई। कुमारपालचरित या प्राकृत द्व्याश्रय काव्य के आरंभ में अणहिलपुरपाटन का वर्णन है। राजा कुमारपाल है। महाराष्ट्र देशीय बंदी उसकी कीर्ति बखानता है। राजा की दिन-चर्या, दरबार, मल्लश्रम, कुंजरयात्रा, जिनमंदिरयात्रा, जिनपूजा आदि के वर्णन में दो सर्ग पूरे हुए। तीसरे मे उपवन का वर्णन है। वसंत की शोभा है। चौथे में ग्रीष्म और पाँचवें में अन्य ऋतुओं के विहार आदि का सालंकार वर्णन है। राजा और प्रजा की समृद्धि तथा विलासों का चित्र कवियों की रीति पर दिया गया है। छठे में चंद्रोदय का वर्णन है। राजा दरबार में बैठा है। सांधिविग्रहिक ने विज्ञप्ति की जिसमें कुंकुण के राजा मल्लिकार्जुन की सेना से कुमारपाल की सेना के युद्ध और विजय का तथा मल्लिकार्जुन के मारे जाने का वर्णन है। आगे कहा है कि यों कुमारपाल दक्षिण का स्वामी

हो गया। पश्चिम का स्वामी सिंधुपति, जवनदेश, उच्च (? उच्च) काशी, मगध, गौड़, कान्यकुब्ज, दशार्ण, चेदि, रेवातट, मथुरा, जंगल देश के राजाओं की अधीनता का भी वर्णन है। कुमारपाल सो जाता है। सातवें सर्ग के आरंभ में राजा उठकर परमार्थ चिंता करता है। उसमें काम, स्त्री आदि की निंदा, जैन आचार्यों की स्तुति, नमस्कार आदि के पीछे श्रुतदेवी की स्तुति है। श्रुतदेवी कुमारपाल के सामने प्रकट हुई और राजा के साथ उसका धर्म विषयक संभाषण चला। आठवें सर्ग भर में श्रुतदेवी का उपदेश है।

हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण (सिद्धहैम शब्दानुशासन के आठवें अध्याय) और कुमारपालचरित का संबंध नीचे एक तालिका से बताया जाता है—

लक्ष्य	लक्षण	उदाहरण
	अष्टमाध्याय,	
प्राकृत भाषा	पाद १ सू० १–२७१	कुमारपालचरित
	पाद २ सू० १–२१८	सर्ग १, २, ३, ४, ५, ६
	पाद ३ सू० १–१८२	७, गाथा १–९३
	पाद ४ सू० १–२५९	
	अष्टमाध्याय	कुमारपालचरित
शौरसेनी	पाद ४ सू० २६०–२८६	सर्ग ७ गाथा ९४–१०२
मागधी	,, २८७–३०२	सर्ग ८ गाथा १–७
पैशाची	,, ३०३–३२४	,, ,, ८–११
चूलिका पैशाची	,, ३२५–३२८	,, ,, १२–१३
अपभ्रंश	,, ३२९–४४८	,, ,, १४–८३

इससे स्पष्ट होगा कि जिस भाषा का व्याकरण कहा है उसी में कुमारपालचरित के उस अंश की रचना की गई है। पुरानी हिंदी के व्याकरण के विशेष नियमों के १२० सूत्र हैं, उदाहरणों में जो प्राचीन कविता से दिए गए हैं १७५ अवतरण हैं, पदों, वाक्यों और दोहराए अवतरणों की गणना नहीं (कई दोहों के खंड बार बार उदाहरणों की तरह कई सूत्रों पर दिए गए हैं) किंतु, स्वरचित

उदाहरणों में वह सब विषय ६८ छंदों में आ गया है। इसका कारण है कि एक एक छंद में कई उदाहरण आ गए हैं।

देशी नाममाला

हेमचंद्र को ऐसी रचना प्रिय थी। उसने देशी नाममाला नामक एक कोश भी बनाया है जिसमें प्राकृत रचना में आनेवाले देशी शब्दों की गणना है। संस्कृत के और कोषों में विषय-विभाग से (स्वर्ग, देव, मनुष्य आदि) शब्दों का संग्रह होता है, या अंत के वर्णों (जैसे कान्त, खान्त आदि) के वर्गों से। किन्तु यह देशी नाममाला वर्त्तमान कोशों की तरह अकारादि क्रम से बनी है। इसका भी कारण वही है जो व्याकरण में अपभ्रंश की कविता पूरी उद्धृत करने का है। संस्कृत प्राकृत कोशों की तरह देशी कोश को कोई रटता नहीं। जहाँ प्राकृत कविता में देशी पद आ गया वहाँ देखने के लिये इस कोश का उपयोग है। वहाँ अकारादि क्रम से ही काम चल सकता है[1]। उस क्रम के भीतर भी एकाक्षर, द्व्यक्षर आदि का क्रम है। जिस अक्षर से आरंभ होनेवाले शब्द जहाँ गिने हैं वहीं वैसे नानार्थ शब्द भी गिन दिए हैं। वहीं पर जितने शब्दों का उदाहरण एक गाथा में आ सका उतनों का ठूँसा गया है। कण्णो-ड्ढिआ (=नीरंगी, घूँघट, चादर, कान+ओढ़ी), कंठमल्ल (मुर्दे की बैकुंठी), कप्परिअ, कडंतरिअ (=फाड़ा गया), कडंभुअ (=गडुआ) इन शब्दों को साथ गूँथ कर एक गाथा बनाने में, जिसमें कुछ अर्थ भी हो, काव्य में सुंदरता आना कठिन है। हेमचंद्र ने इसपर एक मानिनी खंडिता की उक्ति बनाई है कि हे दाँतों से फाड़े गए

(१) पादलिप्ताचार्य आदि विरचित देशी शास्त्रों के रहते भी इस [देशी नाम-माला] के आरंभ का प्रयोजन ......'वर्ण क्रम सुखद' या 'वर्ण क्रम सुभग'... वर्ण क्रम से निर्दिष्ट शब्द अर्थ विशेष में संशय होने पर सुख से स्मरण और ध्यान किए जा सकते हैं; वर्णक्रम को उलांघ कर कहने से सुख से अवधारण नहीं किए जा सकते, इसलिये वर्णक्रमनिर्देश अर्थवान् है। (हेमचंद्र, देशी नाम-माला, दूसरी गाथा की टीका)।

अधरवाले, नखों से कटे अंगवाले, मेरी चादर छोड़, उसी गडुए के से स्तनों वाली के पास जा जो वैकुंठी के भी योग्य नहीं है (देशी नाममाला २०)। इस उदाहरण बनाने की कठिनता से उसने नानार्थों की उदाहरणगाथाएँ नहीं बनाई। यों ही कुमारपालचरित में कई उदाहरण एक एक दोहे में लाए गए हैं किंतु वहाँ श्रुतदेवी का राजा को धर्मविषयक उपदेश एक ही विषय है इसलिये कवि को बहुत कुछ स्वतंत्रता मिल गई है। इन ६८ छंदों में—

वदनक १४-२७, ७७, ८०

दोहा २८-७४, ८१

मात्रा ७५, ७८

वस्तु, वदनक, कर्पूर (=उल्लाला?) का योग ७६

सुमनोरमा ८२

ये छंद आए हैं। इनमें से नमूने का तरह कुछ इस लेख के उदाहरण भाग के पूर्वार्द्ध में दिए गए हैं। पुराने अपभ्रंश के उदाहरणों से ये कुछ क्लिष्ट हैं जिसका कारण ऊपर तथा पहले बताया जा चुका है[1] और स्पष्ट है।

यह तो हेमचंद्र की रचित पुरानी हिंदी है। कुमारपालचरित कुमारपाल के राज्य में बना। कुमारपाल की राजगद्दी सं० ११६६ और मृत्यु स० १२३० में हुई। हेमचंद्र की मृत्यु सं० १२२६ में हुई। शिलारा मल्लिकार्जुन से युद्ध सं० १२१७-१८ में हुआ मानना चाहिए[2]। अतएव कुमारपालचरित (द्व्याश्रय काव्य) और उसके अंतर्गत इस अपभ्रंश (पुरानी हिंदी) कविता का रचनाकाल वि० सं० १२१८ से वि० सं० १२२६ तक किसी समय है। हेमचंद्र का व्याकरण सिद्धराज जयसिंह की आज्ञा से उसीके राजत्व-

(१) पत्रिका भाग २, पृ० १३२।

(२) सिद्धराज जयसिंह पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का नाना था तथा सोमेश्वर की पालना कुमारपाल ने की थी। मल्लिकार्जुन की लड़ाई में सोमेश्वर संमिलित था। देखो पत्रिका भाग १ पृ० ४००—१। अब मिलाओ पत्रिका भाग २ पृ० २८—१६ की सारिणी।

काल में अर्थात् सं० ११९९ से पूर्व बना। व्याकरण की बृहद्‌वृत्ति और उसका उदाहरणसंग्रह सूत्रों के साथ ही बने होंगे । इस लिये द्वितीय भाग में उद्धृत कविता के प्रचलित होने का समय सं० ११९९ से पूर्व है । यह बारबार कहने की आवश्यकता नहीं कि यह उसकी उपलब्धि का निम्नतम समय है, ऊर्द्धतम समय मुंज के नामांकित दोहे से लेना चाहिए। अर्थात् यह कविता सं० १०२९ से ११९९ तक लगभग दो शताब्दियों की है[1]।

जब हेमचंद्र के उदाहरणों की व्याख्या लगभग लिखी जा चुकी थी तब दोधकवृत्ति नामक ग्रंथ उपलब्ध हुआ। इसे सन् १९१६ ई० में अहमदाबाद में श्रावक भगवानदास हर्षचंद्र ने छपवाया था। इस में रचयिता का नाम नहीं दिया किंतु अंत में यह लेख मिलता है—

इति श्री हैमव्याकरण प्राकृतवृत्तिगत दोधकार्थः समाप्तः लिखितो महोपाध्याय''य सं० १६७२ वर्षे शके १५३८ प्र०[वर्तमाने] वैशाख वदि १४ शनौ। इसमें इन सब उदाहरणों की संस्कृत व्याख्या है। अंत में एक मागधी गद्य खंड और एक महाराष्ट्री प्राकृत गाथा की भी लगे हाथों 'दोधक' मानकर व्याख्या कर दी है। जहाँ जहाँ इस व्याख्या का उपयोग किया जा सका, किया है। हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण के पठन पाठन का प्रचार जैन साधुओं में रहा इसलिये इन कविताओं का परंपरागत या सांप्रदायिक अर्थ जानने में दोधकवृत्ति ने कहीं कहीं बहुत सहायता दी है। जहाँ मतभेद है वहाँ दिखा दिया है। दोधकवृत्ति की रचना जैन संस्कृत में हुई है, उसमें जो भाषानुग संस्कृत पद आए हैं उनकी तालिका यहाँ दी जाती है—

चटितः—चढ़ा (हुआ), चटति—चढ़ता है, चटामः—हम चढ़ें, (चडिअउ, चडिओ।)

लगित्वा—लगा कर (लाइ), लगकर (लग्गि)।

बलिं क्रियं—बल जाती हूँ (बलि किज्जउँ)।

अग्गलं—आगे, बढ़कर (एत्तिउ अग्गलउँ)।

(1) पत्रिका भाग १, पृ० ४००—४०१।

स्फंटयति—(फेडइ) घेरे, नष्ट करे ।

किं न सृतम्—क्या नहीं सरा ? सब कुछ सिद्ध हुआ ।

मुत्कलेन—दान, उदारता से (मोकलडेन) ।

उद्धरिल (छपा है उद्धरित)-उबरा, बचा (उव्वरिअ) ।

उद्वर्त्यते—ऊबरै त्यज्यते (उव्वारिज्जइ) ।

चूटक:—चूड़ा (चूडुअउ) ।

छन्नं—गुप्त (मारवाड़ी छानै, देखो पत्रिका भाग २ पृष्ठ ५४ में (२७))

विध्यापयति—बुझाता है ।

आवर्तते—शोषयति ! (आवट्टइ = औटता है, औटाता है) ।

जगटकानि—झगड़े ।

धाटी—धाड़ा ।

द्रहे—दह में (ह्रद का व्यत्यय) ।

कलहापित: = कलहित: (पत्रिका भाग १ पृ. ५०७) ।

तीमोद्वाने = आर्द्रशुष्कं— गीला सूखा (तितुव्वाण) ।

विछोट्य—विछोड़ कर (देखो पत्रिका भाग २ पृ० २६) ।

स्ताघ—थाह ।

मोटयन्ति—मोड़ते हैं (मोडंति) ।

उदाहरणांश में अक्षरनिवेश वही रक्खा गया है जो श्रीशंकर पांडुरंग पंडित ने अपने कुमारपालचरित के संस्करण में कई प्रतियों की सहायता से रक्खा है। पाठांतर बहुत कम दिए गए हैं—उनके कारण मुखानुसारी लेखन, असावधानता, उ ओ, ऊ औ, स्थ, ख्छ, आदि के लेख की समानता, परसवर्ण की अनित्यता अइ, ए, अउ, ओ का विकल्प, अनुनासिक की असावधानता और अंत के उ की उपेक्षा आदि हैं¹ । ए ओ के अर्द्ध उच्चारण को ध्यान में रखने तथा अ से 'इ उ' को मिलाकर ए, ओ पढ़ने से छंद ठीक पढ़े जा सकते हैं तथा हिंदी कविता से बेगाने नहीं जान पड़ते ।

---

(१) पत्रिका भाग २, पृ० ३२–३३ ।

हेमचंद्र का जीवनचरित तथा काम।

हेमचंद्र के जीवनचरित का कुछ आभास पत्रिका भाग २ पृ० १२५ में दिया जा चुका है। उसका जन्म सं० ११४५ में, दीक्षा सं० ११५४ में, सूरिपद सं० ११६६ में, और मृत्यु सं० १२२९ में हुए। उसका जन्मनाम चंगदेव था, दीक्षा पर सोमचंद्र और सूरि होने पर हेमचंद्र हुआ। सिद्धराज जयसिंह के यहाँ उसने बहुत प्रतिष्ठा पाई। सिद्धराज स्वयं शैव था किंतु सब धर्मों का आदर करता था। सिद्धराज के लिये ही हेमचंद्र ने अपना व्याकरण बनाया जिसकी चर्चा की जा रही है। हेमचंद्र के प्रभाव से सिद्धराज का मन जैनधर्म की ओर झुका हो किंतु उसके पीछे कुमारपाल के राजा होने पर तो हेमचंद्र ही हेमचंद्र हो गए। हेमचंद्र कलिकालसर्वज्ञ हुए और कुमारपाल परमार्हत। कुमारपाल के राज्य के प्रथम पंद्रह वर्ष युद्ध विजय आदि में बीते। हेमचंद्र ने पहले ही कुमारपाल के राजा होने की भविष्यवाणी कर दी थी और सिद्धराज के द्वेष की संकटावस्था में उसकी सहायता भी की थी। अब उसे जिनधर्मोपदेश करके उससे खूब धर्मप्रचार कराया। कुमारपाल के उत्तराधिकारी अजयपाल के मंत्री यशःपाल ने मोहपराजय नामक नाटक प्रबोधचंद्रोदय के ढंग का लिखा है। उसमें वर्णन है कि धर्म और विरति की पुत्री कृपा से कुमारपाल का विवाह सं० १२१६ की मार्गशीर्ष शुक्ल द्वितीया को हेमचंद्र ने कराया जिससे मोह को हराकर धर्म को अपना राज्य फिर दिलाया गया। रूपक को निकाल दें तो यह तिथि कुमारपाल के जैनधर्म स्वीकार करने की है। हेमचंद्र के उपदेश से सदाचारप्रचार, दुराचारत्याग, मंदिररचना, पूजाविस्तार, जीर्णोद्धार, अमारिघोषण, तीर्थयात्रा आदि बहुत धूम धाम से कुमारपाल ने किए और कराए। जैन साहित्य में इन गुरुशिष्यों का बहुत प्रशंसापूर्ण उल्लेख है। 'राजा ने २१ ज्ञानकोश (पुस्तक भंडार) कराए। छत्तीस हज़ार श्लोकों का त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र हेमचंद्र से बनवाकर सोने रूपे से लिखा कर सुना। एकादश अंग, द्वादश

उपांग सोने में लिखवा कर सुने । योगशास्त्र आदि लिखवाए । गुरु के ग्रंथों को लिखनेवाले ७०० लेखक थे । एक दिन लेखकशाला में जाकर राजा ने लेखकों को 'कागदों' पर लिखते देखा । गुरु ने कहा श्रीताल पत्रों का टोटा आ गया । राजा को लज्जा आई । उपवास किया । खर ताड़ों (भद्दे ताड़ जिनके पत्ते लिखने के काम के नहीं) की पूजा करके प्रार्थना की तो वे सवेरे श्रीताड़ हो गए । फिर ग्रंथ लिखे जाने लगे ।'[1] हेमचंद्र ने कई लक्ष श्लोकों के ग्रंथ बनाए जिनमें प्रधान ये हैं—अभिधानचिंतामणि आदि कई कोश, काव्यानुशासन, छंदोनुशासन, देशीनाममाला, द्व्याश्रय काव्य (संस्कृत तथा प्राकृत) योगशास्त्र, धातुपारायण, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, परिशिष्ट पर्व, शब्दानुशासन (व्याकरण) । उसने अपने रचे ग्रंथों की प्राय: वृत्तियाँ भी बनाई हैं । ८४ वर्ष की अवस्था में अनशन से हेमचंद्र ने प्राणत्याग किया । कुमारपाल भी लगभग छ: मास पीछे मर गया ।

सिद्धहैमव्याकरण की रचना[2] ।

पहले कभी हेमचंद्र 'परब्रह्ममयपरमपुरुषप्रणीतमातृकाअष्टादशलिपिविन्यासप्रकटन प्रवीण' ब्राह्मी आदि मूर्तियों को देखने कश्मीर चले थे तो भगवती ने उनका मार्गक्लेश बचाने के लिये मार्ग ही में आकर दर्शन तथा विद्यामंत्र दिए थे । सिद्धराज जयसिंह के यहाँ उनका पांडित्य देखकर कई असहिष्णु [ब्राह्मणों] ने कहा कि हमारे शास्त्र [पाणिनीय व्याकरण] के पढ़ने से इनकी यह विद्वत्ता है । सिद्धराज के पूछने पर हेमचंद्र ने कहा कि महावीर जिन ने शिशु अवस्था में जो इंद्र के सामने उपदेश दिया था वह जैनेंद्र व्याकरण ही हम पढ़ते हैं[3] । राजा ने कहा कि पुराने को छोड़ कर किसी समीप के कर्ता का नाम लो । कहा कि सिद्धराज सहायक हो तो

(१) जिनमंडन का कुमारपालप्रबंध, पृ० ६६-६७ ।

(२) जिनमंडन के कुमारपालप्रबंध से, पृ० १२ (२), १६ (२) प्रभृति ।

(३) देखो ऊपर, पृ० ३८१, टि० २ ।

नया पंचांग व्याकरण बनावें। राजा के स्वीकार करने पर हेमचंद्र ने कहा कि कश्मीर में प्रवरपुर[1] में भारतीकोश में पुरातन आठ व्याकरणों की प्रति हैं, मँगा दीजिए। प्रधानों ने जाकर भारती की स्तुति की तो भारती ने कहा हेमचंद्र मेरी ही मूर्ति है, प्रतियाँ दे दो। प्रतियाँ आईं। बहुत देशों से अट्ठारह व्याकरण लाए गए। गुरु (हेमचंद्र) ने वर्ष भर में सवा लाख ग्रंथ का व्याकरण बनाकर राजा के हाथी पर धर, चँवर डुलाते हुए राजसभा में ला पधराया और सुनाया। अमर्षी ब्राह्मणों ने कहा कि बिना शुद्धाशुद्ध परीक्षा के राजा के सरस्वतीकोश में रखने योग्य नहीं। कश्मीर में चंद्रकांत मणि की बनी हुई ब्राह्मी की मूर्ति है, उसके समक्ष जलकुंड में पुस्तक फेंकी जाती है। यदि बिना भीगे निकल आवे तो शुद्ध जानो, अन्यथा नहीं[2]। राजा ने संशयाकुल होकर वहाँ भेज दी। पंडितों के सामने दो घड़ी तक व्याकरण कश्मीर के सरस्वतीकुंड में पड़ा रहा। अक्लिन्न निकला। राजा को जब प्रधानों ने यह सुनाया तो ३०० लेखकों

(१) बिल्हण कवि की जन्मभूमि।

(२) भास और व्यास के काव्यों की अग्नि परीक्षा के बारे में देखो पत्रिका भाग १ पृ० १००। राजशेखर ने सूक्तिमुक्तावलि में भास के स्वप्नवासवदत्त के न जलने का उल्लेख किया है (दाहकोऽभून्न पावकः) और गौडवहो के कर्ता वाक्पतिराज ने शायद इसी लिये भास को जलणमित्त (ज्वलन-मित्र) कहा है। राजशेखरसूरि (जैन) के चतुर्विंशति प्रबंध में कश्मीर में सरस्वती के हाथ में श्रीहर्ष के नैषधचरित्र के रक्खे जाने और सरस्वती के उस काव्य में अपने ऊपर किए व्यक्तिगत आक्रमण से चिढ़कर उसे फेंक देने का उल्लेख है। श्रीहर्ष चिढ़कर कहता है कि 'कुपितैः किं कुरुषे कलङ्कात् ?'। मेरे पास 'गन्धोत्तमानिर्णय' नामक एक खंडित पोथी है जिसमें शाक्त पूजा में मद्य के उपयोग के विधान का निर्णय है। उसमें लिखा है कि भागवत की कई टीकाएँ पानी में डाल दी थीं किंतु श्रीधरस्वामी की टीका बिना गले निकली। यों ही माघकाव्य भी। गन्धोत्तमानिर्णयकार तो इसलिये इन कथाओं को लाया है कि श्रीधरस्वामी की टीका में 'लोके व्यवायामिषमद्य०—' श्लोक की व्याख्या तथा माघकाव्य में बलदेव के वर्णन में 'घूर्णयन् मदिरास्वाद०—' श्लोक उसके पक्ष में काम देता है। किंतु पानी में डालकर शास्त्रपरीक्षा के संप्रदाय की कथा होने से यहाँ लिख दी गई।

से तीन वर्ष तक प्रतियाँ[1] लिखवा कर अट्ठारह देशों[2] में पठन पाठन के लिये भेजीं ।

हेमचंद्र और देशी ।

युव(न्) (= जवान) के तारतम्य वाचक रूप यवीयस्, यविष्ठ और अल्प के अल्पीयस् और अल्पिष्ठ होते हैं। इन्हीं अर्थों में कनीयस् और कनिष्ठ भी होते हैं। पाणिनि का इस बात के कहने का ढंग यह है कि युव और अल्प की जगह विकल्प से कन् हो जाता है[3]। इसका ऐतिहासिक अर्थ यह है कि पाणिनि के समय में अकेला कन् छोटे के अर्थ में नहीं आता था, केवल इसके तारतम्य-वाचक रूप आते थे। वैयाकरणों की कहने की चाल है कि पाणिनि के सूत्र से अल्पीयस् और यवीयस् की जगह कनीयस्, और अल्पिष्ठ और यविष्ठ की जगह कनिष्ठ हो जाता है। यह कुछ नहीं होता। व्याकरण के सूत्र कोई नई चीज़ नहीं बना सकते। वे जो है उसीको नियम से रख देते हैं। 'अमुक सूत्र से ऐसा हुआ' इसकी जगह वैज्ञानिक रीति से यही कहना चाहिए कि 'ऐसा भाषा में होता है, उसका उल्लेख अमुक सूत्र में कर दिया है'। कन् का, जिसका अर्थ छोटा है, अकेले विशेषण की तरह उस समय संस्कृत में व्यवहृत होना छूट गया हो। 'कन्या' में वह मौजूद है। कन्या का पुत्र 'कानीन' बनाने के लिये पाणिनि ने कन्या की जगह 'कनीन' मानकर प्रत्यय लगाया है[4], वह काम कन् से प्रत्यय लगा

(१) कई संस्कृताभिमानी मातृका, कोष या प्रतिकृति की जगह प्रतिः लिखने के लिये म० म० सुधाकर द्विवेदी की हँसी किया करते हैं किंतु जैन या देश-भाषानुगामी संस्कृत में यह शब्द सं० १४१२ से मिलता है। जिनमंडन ने प्रतयः, प्रतीः, कई बार लिखा है।

(२) अट्ठारह देश—कर्नाट, गूर्जर, लाट, सौराष्ट्र, कच्छ, सिंधु, उच्च, भंभेरी, मरु, मालव, कौंकण, राष्ट्र, कीर, जालंधर, सपादलक्ष, मेवाड़, दीप, आभीर [जिनमंडन का कुमारपाल प्रबंध, पत्र ८१ (१)]

(३) ५।३।६४।

(४) ४।१। ११६।

कर भी हो सकता था, यदि 'कन्' की सत्ता पाणिनि मानता। नेपाली कान्-छा (छोटा), हिंदी कन्+अँगुरिया, नारंगी की 'कणी' फाँक आदि में वह कन् चलता आया है। यों ही जहाँ पाणिनि ने 'ब्रू' के कुछ रूपों की जगह 'आह' का होना, हन् का 'वध्' हो जाना और 'अस्' का 'भू' हो जाना कहा है उसका यही ऐतिहासिक अर्थ है कि 'आह,' 'अस्' और 'वध्' धातुओं के पहले पूरे रूप होते होंगे, उस समय ये धातु अधूरे रह गए थे, पाणिनि ने उन्हें उसी अर्थ के और धातुओं के रूपों में मिला दिया। पाणिनि के वैदिक रूपों के विवेचन से यह पता लग जाता है कि किस समय तक कैसे प्रयोग होते थे, कब से क्या बदल हुई। प्राकृत व्याकरणों ने बद्धमूल संस्कृत को प्रकृति मान कर बद्धमूल प्राकृत का व्याकरण लिखा है। संस्कृत से क्या क्या परिवर्तन होते हैं उन्हींको गिना है, प्राकृत को भाषा मानकर वे नहीं चले। चल भी नहीं सकते थे, उनकी लक्ष्य प्राकृत भी किताबी अर्थात् जड़ प्राकृत थी। हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण के लगभग दो पाद इसीमें चले गए हैं कि किस संस्कृत शब्द में किस अक्षर की जगह क्या हो जाता है। यदि पाणिनि की तरह स्थान, प्रयत्न, अंतरतम आदि का विचार प्राकृत वाले करते तो संक्षेप भी होता और वैज्ञानिक नियम भी बन जाते। बिना उसके प्राकृत व्याकरण अनियम परिवर्तनों की परिसंख्या मात्र हो गया है। हेमचंद्र कहता है कि ङसि (पंचमी एकवचन, अपादान) की जगह प्राकृत में त्तो, दो, दु, हि, हिन्तो आते हैं, या कोरी संज्ञा बिना प्रत्यय के आती है। बहुवचन में इनके सिवाय सुन्तो भी आता है[1]। आगे चलकर उसने मध्यमपुरुष और उत्तमपुरुष के कई रूप गिनाए हैं[2]। यह जानना बहुत रोचक और ज्ञानदायक होता कि क्या ये सभी रूप प्राकृत में एक ही समय चल गए या समय समय पर आए? इससे प्राकृत की तहें मालूम हो जातीं। संबंध के

(१) ८।३।८,९

(२) ८।३। ९०-११७

अर्थ में केरअ (सं० केरक, हिं० केरा) प्रत्यय आता है, हेमचंद्र ने उसे अपभ्रंश में आदेश गिना है[1], प्राकृत में नहीं; किंतु वह मृच्छकटिक और शाकुंतल की प्राकृत में कई जगह मिलता है।

प्राकृतों में जो संस्कृतसम या तत्सम शब्द हैं वे संस्कृत से जाने जाते हैं। जो संस्कृतभव या तद्भव हैं उन्हें लोप, आगम, वर्णविकार आदि से इन वैयाकरणों ने समझाया है। रहे देशी। ये अव्युत्पन्न प्रातिपदिक हैं जिन्हें नई पुरानी प्राकृतों वाले व्यवहार करते आए हैं। इनका प्रकृति प्रत्यय विचार कठिन है। संभव है कि अधिक खोज होने पर इनमें से कई दूसरी तीसरी पीढ़ी के तद्भव सिद्ध हो जायँ। हेमचंद्र ने देशी का वैज्ञानिक विवेचन नहीं किया। अपनी देशी नाममाला में उसने क्या लिया है, क्या नहीं लिया, इसका उल्लेख वह यों करता है—(१) जो लक्षण ग्रंथ (सिद्धहैमशब्दानुशासन) में प्रकृति-प्रत्यय आदि विभाग से सिद्ध नहीं किए गए वे यहाँ लिए गए हैं, (२) जो धातु, वैयाकरण तथा कोशकारों ने देशी में गिने हैं किंतु जिन्हें हमने धातुओं के आदेश माना है वे नहीं लिए गए, (३) जो प्रकृति-प्रत्यय विभाग से संस्कृत ही सिद्ध होते हैं किंतु संस्कृत कोशों में प्रसिद्ध नहीं हैं वे यहाँ लिए गए हैं, जैसे अमृत-निर्गम = चंद्र, छिन्न-उद्भवा = दूब, महानट = शिव इत्यादि, (४) जो संस्कृत के कोशों में नहीं हैं, किंतु गौण लक्षणा या शक्ति से जिनका अर्थ बैठ जाता है, जैसे बइल्ल (= बैल) = मूर्ख, वे नहीं लिए गए। फिर वह कहता है कि महाराष्ट्र, विदर्भ, आभीर आदि देशों में जो शब्द प्रसिद्ध हैं (जैसे मगा = पीछे, हिंग = जार) उन्हें गिना जाय तो देशों के अनंत होने से पुरुषायुष से भी उनका संग्रह नहीं हो सकता इसलिये "अनादिप्रसिद्धप्राकृतभाषाविशेष" ही देशी कहा गया है। अपनी पुष्टि में एक पुराना श्लोक उद्धृत किया है कि दिव्ययुगसहस्र में वाचस्पति की बुद्धि भी इसमें समर्थ नहीं हो सकती कि देशों में

(१) ८।४।४२२

प्रसिद्ध शब्दों को पूरी तरह चुन सके[1]। इससे स्पष्ट है कि मनमानी की गई है[2], संस्कृत प्रयोग को प्रमाण न मान कर कोशों को माना है। क्या हुआ जो अमृतनिर्गम और महानट चंद्रमा और शिव के अर्थ में संस्कृत कोशों में नहीं दिए ? प्रकृति प्रत्यय विभाग और शक्ति, रूढ़ि आदि से वे संस्कृत ही हैं। यों (३) और (४) में परस्पर विरोध आता है।

संस्कृत में 'अप्रयुक्त' का विचार करते हुए पतंजलि ने कहा है कि 'उपलब्धि में यत्न करो। शब्द का प्रयोग-विषय बड़ा है। सात द्वीप की पृथ्वी, तीन लोक, चार वेद, अंग और रहस्य सहित, उनके बहुत से भेद, १०० शाखा अध्वर्युवेद की, सामवेद के १००० मार्ग, २१ तरह का बाह्वृच्य (ऋग्वेद), नौ तरह का अथर्वण वेद, वाकोवाक्य, इतिहास, पुराण, वैद्यक, इतना शब्द का प्रयोग-विषय है। इतने शब्द के प्रयोग-विषय को बिना सुने विचारे शब्द अप्रयुक्त हैं यह कहना साहसमात्र है (पहला आह्निक)। ऐसे ही (१) (२) में विरोध आता है। धातुओं में हेमचंद्र ने बड़ा अद्भुत काम किया है। एक धातु प्रधान मान लिया है। उसी अर्थ के और धातुओं को उसका आदेश मान कर झगड़ा तै किया है।

(१) देशीनाममाला, गाथा २-३, मिलाओ पतंजलि—'बृहस्पति ने इंद्र को दिव्यवर्ष सहस्र शब्दपारायण कराया किंतु अंत न पाया। बृहस्पति सा कहनेवाला, इंद्र पढ़नेवाला, दिव्य वर्ष सहस्र अध्ययनकाल, तो भी अंत न पाया। आजकल जो बहुत जीवे वह सौ वर्ष जीवे इत्यादि, (प्रथम आह्निक)।

(२) वैयाकरणों की मनमानी से पुरानी लिखने की रीति भी नष्ट हो गई। प्राकृत पोथियों के लिखनेवाले 'शोध शोध' कर लिखने लगे इसीसे दक्षिण की प्राकृत की पुस्तकों में पुराने पाठ मिलते हैं उत्तर की पुस्तकों में वे 'सुधार' दिए गए हैं (बार्नेट, ज० रा० ए० सो०, अक्टोबर १९२१)। इसी शोधने के प्रताप से 'मृगनेत्रासु रात्रिषु' का 'सुगतैतासु रात्रिषु' हो गया था (प्रतिभा, वर्ष ३)। भागवत के दक्षिणी वैष्णव टीकाकारों ने भागवत में जो वैदिक प्रयोग (आर्ष) हैं उन्हें बदलकर वर्तमान संस्कृत कर दिया है, श्रीधरस्वामी ने नहीं, यह कुंभकोणं संस्करण की टिप्पणियों से स्पष्ट है। उन्होंने भागवत को 'शुद्ध' किया किंतु क्या उसकी प्राचीनता का लोप अपने हाथों नहीं किया ?

जैसे, कहइ (कथयति) धातु माना । अब वज्जरइ, पज्जरइ, उप्पालइ, पिसुणइ, संघइ, बोल्लइ, चवइ, जम्पइ, सीसइ, साहइ को विकल्प से, 'कहइ' का आदेश कह दिया है[१]। उब्बुक्कइ को इनमें नहीं गिना क्योंकि उसे उत् + बुक्क से निकला माना है। यों देखा जाय तो वज्जरइ उच्चरति से, पज्जरइ प्रोच्चरति से, पिसुणइ पिशुनयति से, संघइ संख्याति से, जम्पइ जल्पति से, निकल सकता है। फिर हेमचंद्र लिखते हैं "औरों ने इन्हें देशी शब्दों में पढ़ा है किंतु हमने इन्हें धात्वादेश कर दिया कि विविध प्रत्ययों में प्रतिष्ठित हो जायँ, ऐसा करने से वज्जरिओ = कथित, वज्जरिऊण = कथयित्वा आदि हज़ारों रूप सिद्ध हो जाते हैं"। यह तो मनमानी हुई। या तो इन्हें स्वतंत्र धातु मानते, या इनमें तद्भव और देशी की छाँट करते। वैयाकरणों के स्वभाव से हेमचंद्र कहते हैं कि हमने इन्हें आदेश इसलिये गिना है कि इनसे प्रत्यय होसकें, ये विविध प्रत्ययों में प्रतिष्ठित हो जायँ। पतंजलि वैयाकरणों को सावधान कर गए हैं कि " जैसे घड़े से काम होने पर लोग कुम्हार के यहाँ जाते हैं कि हमे घड़ा बना दे वैसे शब्द का काम पड़ने पर कोई वैयाकरण के यहाँ नहीं जाता कि भाई हमें काम है, शब्द गढ़ दे[२]" किंतु वैयाकरण समझते हैं कि बिना उनके प्रतिष्ठित किए लोग इन धातुओं से प्रत्यय ही न कर सकेंगे। मुर्गा सवेरा होने पर बोलता है, किंतु फ्रेंच भाषा के एक नाटक में एक मुर्गे को यह अभिमान होना बताया गया है कि मैं न बोलूँगा तो सवेरा ही न होगा। अस्तु। यों चौथे पाद में कई धातुओं के आदेश गिनाए हैं जिनमें कई तो तद्भव धातु हैं और कुछ देशी। जैसे भ्रम (= घूमना) के अट्ठारह आदेशों में[३] चक्कम्मइ—चङ्क्रम से, भम्मडइ, भमडइ, भमाडइ—भ्रम से ही स्वार्थ में ड लगा कर, तलअण्टइ—तल + अट से, झुमइ, फुमइ—भ्रम

(१) ८।४।२

(२) पहला आह्निक।

(३) ८।४।१६१

से, परीइ, परइ–परि + इ से, तद्भव माने जा सकते हैं । टिरिटिल्लइ, ढुण्ढुल्लइ, ढण्ढलइ, झण्टइ, झम्पइ, गुमइ, फुसइ, ढुमइ, ढुसइ रहे, इन्हें देशी धातु माना या अनुकरण आदि से बना समझो । देशी के भांडार में से संस्कृतवाले 'संस्कृत' करके और प्राकृतवाले यों ही लेते रहे । पहलों ने यह नहीं कहा कि हमने लिया, वे यही कहते गए कि हमारा ही है, दूसरों ने देशी और तद्भवों की छाँट न की, क्योंकि तद्भवों को अपने थोड़े से नियमों से ही बँधा माना, व्यत्यय का विचार न किया ।

अगले लेख में हम पुरानी हिंदी कविता को और भी पीछे ढूँढ़ने का यत्न करेंगे ।

उदाहरणांश ।

प्रथम भाग ।

हेमचंद्र की रचना के नमूने ।

(१)

गिरिहे˘ वि आणिउ पाणिउ पिज्जइ, तरुहे˘ वि निवडिउ फलु भक्खिज्जइ ।
गिरिहुँ व तरुहुँ व पडिअउ अच्छइ, विसयहिं तहवि विराउ न गच्छइ ॥ १६ ॥

[हिंदी-सम = गिरिहुँ भि आन्यो पानी पीजै,
तरुहुँ भि निपत्यो फल भक्खीजै ।
गिरिहुँ भि तरुहुँ भि पडियो आछै,
विषयहँ तदपि विराग न गच्छै ॥]

गिरिहे-अपादान, **तरुहे**-संबंध, **गिरिहुं**, **तरुहुं**-अपादान, **पडिअउ**-निष्ठा, **अच्छइ**-आछै, छै, सं० आस्ते ।

(२)

जो जहां होतउ सो तहाँ होतउ, सत्तु वि मित्तु वि किहे˘ वि हु रावहु ।
जहिंचिहु तहिंचिहु मग्गो लीदा, एक्कएँ दिट्ठिहि सोज्झिवि ओमहु ॥२६॥

[हिंदी-सम = जो जहँ होतो सो तहँ होतो,
शत्रु भि मीत भि कोइहि आवो ।
जहँ भी तहँ भी मारग-लीना,
एकहिँ डीठिहिँ दोनहिँ जोहो ॥]

जहाँ होतउ-जहाँ होता हुआ (वर्तमान धातुज) = जहाँ से, **लीणा**-लगे हुए, लीन ।

(३)

अम्हे निन्दहु कोवि जणु, अम्हइं वण्णउ कोवि ।
अम्हे निन्दहुं कंवि नवि, नम्हइं वण्णहुं कंवि ॥३७॥

[हिंदी-सम = हमें निन्दो कोई जन, हमें वरनो कोइ ।
हम निन्दें कोई (को) भी नहीं, न हम वरनें कोइ ॥]

अम्हे-अम्हइं-पहला कर्म, दूसरा कर्ता । क्रिया से कारक का पता चलता है, विभक्ति से नहीं ।

(४)

रे मण करसि कि आलडी, विसया अच्छहु दूरि ।
करणइं अच्छहु रुन्धिअइं, कड्ढउं सिवफलु भूरि ॥४१॥

रे मन, (तू) करता है, क्यों (किमि), आलडी, हे विषयो ! रहो, दूर, हे करणो (इंद्रियां) ! रहो, रुंधे हुए, (मैं) काढ़ूँ, शिवफल (मोक्ष), बहुत ।

आलडी-आल, अनर्थ, ऊलजलूल, मिलाओ—म भंखहि आलु (आगे नं.(६२), **अच्छहु, अच्छह**—दे० ऊपर (१), **कड्ढउं**-निकाल कर अपने वश करूँ ।

(५)

संजम-लीणहों मोक्खसुहु निच्छइं होसइ तासु ।
पिय बलि कीसु भणन्तिअउ जाइं पहुच्चहिं जासु ॥ ४३ ॥

संयम— लीन का (को), मोक्षसुख, निश्चय, होगा, उसका (उसको 'हे पिया, बलि, की जाती हूँ' (ऐसा), कहती हुई, (स्त्रियाँ), नहीं, प्रभुत्व (पाती) हैं, जिसका (जिसपर) ।

होसइ = होसी (प्रबंध० नं० ३), **बलि कीसु**-मैं बल जाती हूँ, बलि की जाऊँ, **भणन्तिअउ**-भणन्तियाँ, **पहुच्चहिं**-प्रभवन्ति (सं०) ।

(६)

कव बढ भमिभइ भवगहणि मुक्ख कहन्तिहु होइ ।
एँहु आणेवउँ जइ मणसि तो जिण आगम जोइ ॥ ६१ ॥

क्यों, बढ ! (मूर्ख), भ्रमा जाता है, भवगहन में, मोक्ष, कहाँ से, होय, यह, जानने को, यदि, मन में (रखता) है, तो, जिनागम, देख ।

आणेवउं-जाणवो, जानवो, **मणसि**-मन्यसे (सं०) ।

(७)

निअम-विहूणा रत्तिहिवि खाहिं जि कसरक्केहिं ।
हुहुरु पडन्ति ति पावँद्रहि भमडहिं भवलक्खेहिं ॥६८ ॥

नियम विहीन, रात में भी, खांय, जो, कसरकों से, हुहुरु-करके, पड़ते हैं, वे, पापद्रह में, भ्रमते हैं, भव (जन्म) —लखों में ।

कसरक्केहिं-अनुकरण, कसर कसर करते हुए, गड़प गड़प करते, **हुहुरु**-पड़ने या पड़ने के समय चिल्लाने का अनुकरण, **ति**-ते, **द्रह**- दह, ह्रद ।

(८)

सग्गहों केहिं करि जीवदय दमु करि मोक्खहों रेसि ।
कहि कसु रेसिं तुहुं अवर कम्मारम्भ करेसि ॥ ७० ॥

स्वर्ग के, लिये, कर, जीवदया, दम, कर, मोक्ष के, लिये, कह, किसके, लिये, तू, और, कर्मारंभ, करता है ?

केहिं, रेसि, रेसिं, तेहिं, तणेण, प्रत्यय तादर्थ्य में होते हैं (हेमचंद्र ८।४।४२५)। इनका अर्थ वही है जो 'सेती' का, किसके सेती ?

(९)

कायकुडुली निरु अथिर जीवियडउ चलु एहु ।
ए जाणिवि भवदोसडा असुहउ भावु चएहु ॥ ७२ ॥

कायकुटी, निश्चय, अस्थिर (है), जीवित, चंचल, (है) यह, ये, जानकर, भव (संसार) दोष, अशुभ, भाव, त्जो ।

कुडुली, जीवियडउ, दोसडा में उल्ल, अड, ड स्वार्थिक हैं ।

(१०)

ते धन्ना कन्नुल्लडा हिअउल्ला ति कयत्थ ।

जो खणिखणिवि नवुल्लडअ घुट्टहिँ धरहिँ सुअत्थ ॥ ७३ ॥

वे, धन्य (हैं), कान, हृदय, वे, कृतार्थ (हैं) जो, क्षण क्षण में, नए, सुअर्थों (या श्रुतार्थों) को, घूँटते (घूँटों से पीते) हैं, और धरते हैं ।

कन्नुल्लड, हिअउल्ल, नउल्लडअ—स्वार्थ में; कान और हिय के लिये **घुंटहिं** और **धरहिं** यथासंख्य लगाना ।

(११)

पइठी कन्नि जिणागमहों वत्तडिआवि हु आसु ।

अम्हारउँ तुम्हारउँ वि एहु ममत्तु न तासु ॥ ७४ ॥

[हिंदी-सम = पैठी कान जिनागम (की) बातडी भी आसु ।

हमारो तुम्हारो यह ममत्व न तासु ।]

वत्तडिआ—बात, देखो **रत्तडी** (आगे नं० २)

इन उदाहरणों में व्याख्यान या व्याकरण का विस्तार नहीं किया गया है । आगे दूसरे भाग में जहाँ इनसे मिलते हुए दोहे या पद आए हैं वहाँ देखना चाहिए । अपने व्याकरण के सूत्रों को पहले प्राचीन उदाहरणों से समझा कर हेमचंद्र ने ये नए उदाहरणों के संग्रहश्लोक बनाए हैं जिनमें वे ही या उनसे मिलते हुए उदाहरण विषय के अनुसार यथास्थान जमाकर रक्खे हैं ।

द्वितीय भाग

(१)

ढोल्ला सामला धण चम्पा-वण्णी ।

णाइ सुवण्ण-रेह कस-वट्टइ दिण्णी ॥

ढोला तो साँवला है नायिका चंपक के वर्ण की है, मानो सुवर्ण की रेखा कसौटी पर दी हुई हो ।

ढोल्ला—सं० दुर्लभ, नायक, मारवाड़ी गीतों में ढोला बड़ा प्रेम

का शब्द है, 'गोरी छाई छै रूप ढोला धीरां धीरां आव' । **धण-गृह** की स्वामिनी, बीकानेर की ओर अब भी स्त्री को धन कहते हैं । 'थांने आय पुजास्यां गणगोर सुंदर धण ! जावा द्यो जी' (मारवाड़ी गीत) । **णाइ**-नाई, सं० ज्ञा धातु से, जाना जाता है। **रेह**-रेख। **कस-वट्ट**-सं० कषपट्ट, कसवटी, कसौटी। **दिण्णी**-दीनी ।

इसी भाव का एक दोहा कुमारपाल प्रतिबोध में से दिया जा चुका है (पत्रिका भाग २, पृ० १४५) । दोधकवृत्ति के कर्ता ने वृथा ही व्यंग्य को खोलकर इस चित्र का आनंद बिगाड़ दिया है कि "विपरीतरतौ एव एतत् उपमानं संभाव्यते !"

(२)

ढोल्ला मइं तुहुं वारिया (यो) मा कुरु दीहा माणु ।
निद्दए गमिही रत्तडी दडवड होइ विहाणु ॥

ढोला ! मैंने, तूं, वारा (= निवारण किया) है, मत, कर, दीर्घ, मान, नींद से, जायगी, रात, झटपट, होता है, विहान (= सवेरा) । नायिका नायक को मनाती है ।

यह दोहा वररुचि के प्राकृतप्रकाश की प्रति में पहुँच गया है जिससे तथा प्राकृत व्याकरणकार वररुचि तथा वार्तिककार कात्यायन को एक समझने से एक विद्वान् भ्रम से इस कविता को बहुत पुरानी मान बैठे हैं । पुरानी पोथियों से जिन्हें काम पड़ा है वे जानते हैं कि पढ़ते समय उदाहरण टिप्पणी आदि पत्रे की आयु पर लिख लिए जाते हैं और उस पोथी से प्रति उतारनेवाला उन्हें मूल में घुसेड़ देता है । विद्वान् ने यह नहीं देखा कि यह दोहा और इसका सूत्र एक ही प्रति में हैं, उसने छपी पुस्तक को आदि से अंत तक वररुचि की ज्यों की त्यों कृति मान लिया । व्याकरण के ग्रंथ विचार समय उदाहरण और टिप्पणियों से योंही बढ़ जाते हैं । इस विषय को अधिक बढ़ाना व्यर्थ है । संस्कृत व्याकरण के वार्तिककार वररुचि-कात्यायन, पाली व्याकरण का कच्चायन, और प्राकृत प्रकाश का वररुचि तीनों एक कभी नहीं है ।

(३)

बिट्टीए मइ भणिय तुहुं मा कुरु वङ्की दिट्ठि ।

पुत्ति सकण्णी भल्लि जिवँ मारइ हिअइ पविट्ठि ॥

बिटिया ! मैंने, भणी (= कही गई), तू, मत, कर, बाँकी, दीठ, पुत्रि ! सकर्णी (= कान वाली, नुकीली) भल्ली (छोटा भाला), जिम, मारै, हिये में, पैठी (वह) । वृद्धा कुट्टिनी नायिका को समझाती है । **बिट्टीए**-संबोधन का ए, **पविट्ठि** -प्रविष्टा, सं० प्रविष्टी*, हि-पैठी ।

(४)

एइ ति घोडा एह थलि एइ ति निसिआ खग्ग ।

एत्थु मुणीसम जाणिअइ जो नवि वालइ वग्ग ॥

येही, वे, घोड़े (हैं), यही, स्थली (है), ये ही, वे, निशित (= पैने), खड्ग (हैं), यहां, मनुष्यत्व, जाना जाता है, जो, नहीं भी, फिरावे, (घोड़ों की) बाग । ये घोड़े हों, यही रणस्थल हो और येही धारदार तलवार हों, वहां जो घोड़े की बाग मोड़ कर भाग न जाय, सामने डटै, तो यहाँ मनुष्यत्व (मरदानगी) जाना जाय । **मुणीसम**-संस्कृत में कुछ हो स्थलों में 'इम' लग कर पुंलिंग भाववाचक बनता है, प्राकृत में सब जगह । **नवि**-न + अपि । **वालइ**-वल् (घूमना) का प्रेरणार्थक । राजपूताने में यह दोहा प्रचलित है, ठाकुर भूरसिंह जी शेखावत के विविध संग्रह में उद्धृत है । देखो, पत्रिका भाग २ पृ० १९, टि० ५ ।

(५)

दहमुहु भुवण-भयंकरु तोसिअ-संकरु णिग्गउ रह-वरि चडिअउ ।

चउमुहु छंमुहु झाइवि एकहिं लाइवि णावइ दइवें घडिअउ ॥

यह किसी पुरानी रामायण से है । दशमुख (= रावण), भुवन-भयंकर, तोषितशंकर, निर्गत (= निकला), रथवर पर, चढ़ा हुआ, चौमुख (= ब्रह्मा) को, छँमुख (= कार्तिकेय) को, ध्यान करके, एक में, लाकर, मानो, दैव ने, घड़ा (था वह) । ब्रह्मा के

चार और स्वामिकार्तिक के छै, यों दस मुँह मानो दैव ने एक में मिलाकर उसे बनाया था। **णिम्मउ, चडियउ, घडियउ**-निगयो, चढियो, घडियो। **झाइवि, लाइवि**-ध्या(न) कर, लाकर। **णावइ**, मानो, (सं० ज्ञायते) मिलाओ **नाइं, नाउं**, मारवाड़ी **ज्यूं**, उपमा में; **नावइ, नावें** उत्प्रेक्षा में और वैदिक **न** उपमावाचक।

(६)

अगलिअ-नेह-निवट्टाहं जोअण-लक्खुवि जाउ।

वरिस-सएण वि जो मिलइ सहि सोक्खहँ सो ठाउ॥

न गले हुए नेह से निबटे हुओं का (=को), योजन लाख भी जा कर, सौ वर्ष से, भी, जो, मिलता है, हे सही (सखी), सौख्य का, वह, ठाँव (है)। सच्चा प्रेम देश और काल के बंधन नहीं मानता। जो अगलित स्नेह में पगे हैं उन्हें लाख योजन चल कर सौ वर्ष में भी जो (नायक या नायिका) मिले तो सौख्य का वही स्थान है। **जाउ**-पूर्वकालिक।

(७)

अङ्गहिं अङ्ग न मिलिअउ हलि अहरें अहरु न पत्तु।

पिअ जोअन्तिहे मुह-कमलु एम्वइ सुरउ समत्तु॥

अंग से, अंग, न, मिला, हाल, अधर ने, अधर, न, प्राप्त (किया), पिया का, जोहती (हुई) का, मुख कमल, यों ही, सुरत, समाप्त (हुआ)। यहाँ पर "पिय जोअन्तिहे मुहकमलु" का अर्थ 'पिय का मुखकमल जोहती हुई का' किया गया है। दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि पिय को देखती हुई का मुख कमल योंही सुरा (मद) से समत्त (मस्त) हो गया। पहले मे 'पिअ' का दूर के 'मुहकमलु' से संबंध कारक मान कर 'मुहकमलु' को 'जोअन्तिहे' का कर्म माना है, दूसरे में 'पिअ' को 'जोहन्तिहे' का कर्म और मुहकमलु को कर्ता। दोधकवृत्ति के कर्ता ने पहला अर्थ माना है किंतु इस विशुद्ध Platonic प्रेम के चित्र को यह कहकर वीभत्स

कर दिया है कि अतिरसातिरेकात् संभोगात् पूर्वमेव द्राव इति भाव: ! इसके विना कौन सा अर्थ नहीं खिलता था ? **एम्वइ**-पंजाबी एवें, योंही।

(८)

जे महु दिण्णा दिअहडा दइएं पवसन्तेण।
ताण गणन्तिए अङ्गुलिउ जज्जरियाउ नहेण॥

जो, मुझे, दीन्हें, दिवस, दयित ने, प्रवसते (प्रवास पर जाते हुए) ने, तिन्हें, गिनती (हुई) की, अंगुलियाँ, जर्जरित (हो गई), नख से। पति ने प्रवास पर जाते समय बता दिया था कि इतने दिनों में लौटूँगा। वह समय बीत जाने पर, यह देखने के लिये कि मेरे गिनने में कोई भूल तो नहीं हो गई, गिनते गिनते उँगलियाँ घिस चलीं। 'गिणतां गिणतां घस गई आंगलियाँ री रेख' (मारवाड़ी दोहा)। **महु**-मांहि, **दिअहडा**-धियाड़ा, देखो पहले पत्रिका भाग २, पृ० ३५। **दइएं**-दयितें (पंजाबी कर्ता का एं,-राजें गद्दा व्याही, हिंदी मइं, मैं।

(९)

सायरु उप्परि तणु धरइ तलि घल्लइ रयणाइं।
सामि सुभिच्चुवि परिहरइ सम्माणेइ खलाइं॥

सागर, ऊपर, तृण, धरै (है), तल में, घालता (= रखता या भेजता) है, रतनों को, (यों ही) स्वामी, सु-भृत्य को भी, परिहरै (= छोड़ता है) संमानित करता है, खलों को।

(१०)

गुणहिं न संपइ कित्ति पर फल लिहिआ भुञ्जन्ति।
केसरि न लहइ बोड्डिअवि गय लक्खेहिं घेप्पन्ति॥

गुणों से, न, संपत्ति, कीर्ति, भले ही (हो जाय), फल, लिखे हुए, भोगते हैं (लोग), केसरी, न, पाता है, कौड़ी भी, गज, लाखों से, लिए जाते हैं। सब अपना अपना लिखा हुआ कर्मफल भोगते हैं। गुणों से संपत्ति नहीं मिलती, कीर्ति भले ही मिल जाय।

सिंह को कोई कौड़ी को भी नहीं पूछता, हाथी लाखों रुपये देकर ख़रीदे जाते हैं। **घेप्पन्ति**–ग्रहण किए जाते हैं, मराठी घ्या (सं० ग्रह), **संपडइ**-क्रियापद हो तो **संपै**-संपन्न होवे, कीर्ति उसका कर्म।

(११)

वच्छहे गृण्हइ फलइं जणु कडुपल्लव वज्जेइ।
तोवि महद्दुमु सुअणु जिवँ ते उच्छङ्गि धरेइ ॥

वृक्ष से, ग्रहण करता है, फलों को, जन, कटु पल्लवों को, वरजता (छोड़ता) है, तो भी, महाद्रुम, सुजन, जिम, तिन्हें, उत्संग (गोद) में, धरता है। लोग कड़े पत्तों को छोड़ दें तो छोड़ दें, वृक्ष थोड़े ही उन्हें छोड़ देगा ?

(१२)

दूरुड्डाणें पडिउ खलु अप्पणु जणु मारेइ।
जिह गिरि-सिङ्गहुँ पडिअ सिल अन्नुवि चूरु करेइ ॥

दूर (की) उड़ान से (ऊँचे पद से), पड़ा हुआ, खल, अपने, जन (को), मारता है, ज्यों, गिरि शृंग से, पड़ी हुई, शिला, अन्य को, भी, चूर, करती है। **मारेइ**–मारे, **करेइ**–करे। दुष्ट का बढ़ना अपने कुल के ही अहित के लिये होता है।

(१३)

जो गुण गोवइ अप्पणा पयडा करइ परस्स।
तसु हउं कलिजुगि दुल्लहहो बलि किज्जउं सुअणस्सु ॥

जो, गुण, गुपाता (छिपाता) है, अपने, प्रकट, करता है, परके; तिसकी, मैं, कलियुग में, दुर्लभ की, बलि, किया जाऊँ, सुजन की। **गोवइ**–गोपै, छिपाता है, गुप्त करता है, मिलाओ गुइयाँ = अंतरंग (गुप्त) सखी। **हउं** = हौं, मैं। **बलि किज्जउं**–बलिहारी जाऊँ, बल जाऊँ, बलैया लूँ, देखो ऊपर पृ० ४०१ में ५। दोधकवृत्ति वाला कहता है कि बलि पूजां क्रियते इति भावः !

(१४)

तणहं तइज्जी भङ्गि नवि तें अवडयडि वसन्ति ।

अह जणु लग्गिवि उत्तरइ अह सह सइं मज्जन्ति ॥

तृणों की, तीजी, चाल, नहीं (है), तिससे, अवटतट में, बसते हैं, या, जन, (उनसे) लग कर (उनका सहारा पाकर), उतरता है, या, साथ, स्वयं, डूबते हैं। अवट या विषम कूप या खड्डे के तट पर उगनेवाले तृणों के दो ही काम हैं,—या तो उनकी कृपा से डूबता आदमी बच जाय, या वे उसके साथ डूब जायँ, उनकी कोई तीसरी भंगि नहीं। अन्योक्ति में, या तो दूसरे को तार दे वा स्वयं मारा जाय। **तइज्जी**–तीजी, तीसरी। **नवि**–न भी, नहीं। **अह**... **अह**, सं० (अथ) या...या। **सइं**–स्वयं, सैं = सब।

(१५)

दइवु घडावइ वणि तरुहुँ सउणिहं पक्क फलाइं।

सो वरि सुक्खु पइट्ठु णवि कण्णहिं खलवयणाइं ॥

दैव, घटित करता (पहुँचाता, जुटाता) है, वन में, वृक्षों के, पक्षियों के (को), पक फलों को, सो, वरन, सुख (है), प्रविष्ट, नहीं (सुख दायक हैं), कानों में, खल-वचन। वन में पक्षियो को दैव के जुटाए पक वृक्षो के फल भले किंतु कानों में घुसे खलवचन भले नहीं। भर्तृहरि के एक प्रसिद्ध श्लोक का भाव है। **घडावइ**–सं० घटयति। **सउणि**–सं० शकुनि। **वरि**–वरु, वरन। **सुक्खु**–सौख्य। **पइट्ठु** = पैठा। **णवि**–न + अपि।

(१६)

धवलु विसूरइ सामिअहो गरुआ भरु पिक्खेवि।

हउं कि न जुत्तउं दुहुं दिसिहिं खण्डइं दोण्णि करेवि ॥

धवल, विसूरता है, स्वामि का, गुरु, भार, देखकर, मैं, क्यों, न, जोता (गया), दोनों, दिशाओं में, खंड, दो, करके। धवल का अर्थ श्वेत है किंतु रूढ़ि इसकी 'धोरी' या धुर खैंचने वाले प्रवल गाड़ी के बैल में है। हेमचंद्र की देशी नाममाला में धवल का अर्थ

किया है कि जो जिस जाति में उत्तम है वही धवल है। धवलों की दृढ़ता और स्वामिभक्ति पर कई मुक्तक काव्य संस्कृत तथा प्राकृत सुभाषितों में मिलते हैं। यहाँ पर बोझ बहुत है, एक ओर धवल जुता है, दूसरी ओर कोई मरियल अड़ियल बैल है। धवल स्वामी की भारी खेप देखकर विलाप कर रहा है कि दोनों ओर दो टुकड़े करके मुझे ही क्यों न जोत दिया ?। **पिक्खेवि, करेवि**–पूर्वकालिक। **जुत्त**–युक्त (सं०), जोता। **दोण्णि**–दो, मराठी दोन।

(१७)

गिरिहें सिलायलु तरुहें फल घेप्पइ नीसावँन्नु।
घरु मेल्लेप्पिणु माणुसहं तावि न रुच्चइ रन्नु॥

गिरि से, शिलातल, तरु से, फल, ग्रहण किया जाता है, निःसामान्य (बिना भेद भाव), घर, छोड़कर, (मनुष्य से); मनुष्यों को, तो भी, न रुचता है. अरण्य। **मेल्लेप्पिणु**-छोड़कर, **रन्न**-अरण्य।

(१८)

तरुहुँ वि वक्कलु फल मुणि वि परिहणु असणु लहन्ति।
सामिहुं एत्तिउ अग्गलउँ आयरु भिच्चु गृहन्ति॥

तरुओं से, भी, वक्कल, फल, मुनि भी, परिधान (वस्त्र), अशन (भोजन), पाते हैं, स्वामिओं से, इतना अगला (= अधिक) (है कि) आदर भृत्य लेते हैं (= पाते हैं)। खाना पहनना तो जंगल में पेड़ों से भी मिल जाता है, स्वामी से आदर ही अधिक मिलता है। **लहन्ति**-सं० लभ्। **एत्तिउ**-एतो। **अग्गलउँ**-अग्गलो, आगलो सं० अग्रल, राजस्थानी में पाँच ऊपर सत्तर को 'पाँच आगला सित्तर' कहते हैं।

(१९)

अह विरल-पहाउ जि कलिहि धम्मु।

अब, विरल प्रभाव (है), ही, कलि (युग) में धर्म। **अह**-अथ, **जि**-जी, पादपूरक।

(२०)

अग्गिएं उण्हउ होइ जगु वाएँ सीअलु तेवँ ।

जो पुणु अग्गिं सीअला तसु उण्हत्तणु केवँ ॥

आगी से, ऊन्हा (गरम), होता है, जग, वायु से, शीतल, त्यां हीं, जो पुनि, आगी से, शीतल (होता है), तिसके, उष्णता, किससे (हो)? उण्हउ-सं० उष्ण। वाए॑-वायु से. पंजाबी वाओ। पुणु-पुनि। उण्हत्तणु-त्तण भाववाचक का है।

(२१)

विप्पिअ-आरउ जइवि पिउ तोवि तं आणहि अज्जु ।

अग्गिण दड्ढा जइवि घरु तो तें अग्गिं कज्जु ॥

विप्रियकारक, यद्यपि, प्रिय (है), तो भी, उसे, ला, आज, आग से, दहा गया, यद्यपि, घर, तो, उस (से), अग्नि से, काज (ही होता है)। विप्रियकारक-बुरा करनेवाला। पिउ-पीव, पिय। दड्ढा-जलाया, दाढा (रामायण) सं० दग्ध।

(२२)

जिवँ जिवँ वंकिम लोअणहँ णिरु सामलि सिक्खेइ ।

तिवँ तिवँ वम्महु निअय सरु खर-पत्थरि तिक्खेइ ॥

ज्यों, ज्यों, बांके, लोयनों से, निरु (? कटाक्ष), साँवली, सीखती है, त्यों, त्यों, मन्मथ (कामदेव), निज(क), शरों को, खरे पत्थर पर, तीखा करता है। मैंने वंकिम को 'लोअण' का विशेषण माना है जिससे 'निरु' का अर्थ स्पष्ट नहीं जान पड़ता, दोधक वृत्ति ने निरु का अर्थ 'निश्चय' करके 'लोचनों से निश्चय बाँकापन सीखती है' अर्थ किया है। वम्मह=मन्मथ। निअय-निजक। खर-तीखा। तिक्खेइ-तीखा से नामधातु।

(२३)

संगरसएहि जु वण्णिअइ देक्खु अम्हारा कन्तु ।

अइमत्तहं चत्तङ्कुसहं गयकुम्भइं दारन्तु ॥

सौ सौ लड़ाइयों में, जो बरना (वर्णन किया) जाता है, देख,

हमारा (वह) कंत, अतिमत्त, अंकुश छोड़ने वाले, गजों के, कुंभों को, (वि+)दारता हुआ। **संगरसय**-संगरशत। **चत्तंकुस**-त्यक्तांकुश

(२४)

तरुणहो तरुणिहो मुणिउ मइं करहु म अप्पहो घाउ ।

तरुणो!, तरुणियो!, जानकर, मुझे (=मेरी बात समझकर या मुझे यहाँ उपस्थित जानकर) करो, मत, अपना, घात। **मुणिउ-मइं**—मैंने समझा, या मैंने समझाया, भी हो सकता है।

(२५)

भाईरहि जिवँ भारइ मग्गेंहिं तिहिंवि पवट्टइ ।

भागीरथी, जिमि, भारती, मार्गों से, तीन से ही, प्रवर्तती (चलती) है। जैसे गंगा त्रिपथगा स्वर्ग, मर्त्य, पाताल तीनों में चलती है वैसी भारती (सरस्वती) के मार्ग भी तीन हैं—वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली—तीन रीतियाँ।

(२६)

सुन्दर-सव्वङ्गाउ विलासिणीओ पेच्छन्ताण ।

सुंदर सर्वांग (वाली) विलासिनिओं को देखते हुए (पुरुषों)का—

(२७)

निअ मुह-करहिवि मुद्ध कर अन्धारइ पडिपेक्खइ ।

ससि-मण्डल-चन्दिमए पुणु काइँ न दूरे देक्खइ ॥

निज मुख करों (किरणों) से, भी, मुग्धा, कर, अँधियारे में, देखती है, शशि मंडल की चाँदनी से, फिर, क्यों, न, दूर पर, देखती है? मुख को चंद्रमा की उपमा दी जाती है उसीके उजास से उसे हाथ अँधियारे में दिखाई देता है तो चाँदनी में क्यों न दीखे? **मुद्ध**- मुग्धि, मुग्धा, **पडिपेक्खइ**-प्रतिप्रेक्षते (सं०), **चन्दिमा**-चाँदनी। **पुणु**-पुनि।

(२८)

जहिं मरगय कंतिए संवलिअं ।

जैसे मरकत-कांति से संवलित (मिला हुआ)—

(२६)

तुच्छ-मज्झहे तुच्छजम्पिरहे ।
तुच्छच्छ-रोमावलिहे, तुच्छराय तुच्छयर-हासहं,
पियवयणु अलहन्तिहे,
तुच्छ-काय-वम्मह-निवासहं,
अन्नु जु तुच्छउँ तहे धणहें तं अक्खणह न जाइ ।
कटरि थणंतरु मुद्धडहं जें मणु विच्चि ण माइ ॥

दूती नायक से कह रही है—हे तुच्छ-राग ! शिथिल-प्रेमवाले ! जिसका मध्य भाग तुच्छ है, जो तुच्छ (मित) जल्पन (भाषण) करती है, जिसकी रोमावली तुच्छ और अच्छी है, जिसका हास तुच्छतर है, जिसके तुच्छ काय मे मन्मथ का निवास है, जो प्रिय के वचन नहीं लभती (पाती) है, ऐसी उस धन (नायिका) का जो (कुछ) अन्य तुच्छ है वह आखा (कहा) नहीं जाता (अर्थात् इतना तुच्छ है कि मानो है ही नहीं), वह यह कि उस मुग्धा का स्तनांतर इतना तुच्छ है कि बीच में मन भी नहीं माता । आश्चर्य है ।

दोधक वृत्तिकार ने इसे युग्म लिखा है पर यह एक ही रड्डा छंद है, ऐसे छंद सोमप्रभसूरि की रचना में मिलते हैं (पत्रिका, भाग २, पृ. १५१ और २२५-६ । इसमें नायिका के विशेषण प्रायः बहुव्रीहि समास हैं और हं (= उच्चारण में हें) संबंध कारक के चिह्न हैं, तहं धणहें = तहँ धणहँ = उस (का) धन का । **जम्पिर**—बोलनेवाला, **राय**-राग, प्रेम । तुच्छयर = तुच्छतर । **अलहन्ती**-अलभन्ती (सं०) । **वम्मह**-देखो ऊपर (२२), मन्मथ, कामदेव । **अन्नु**-आन । **जु**-जो । **अक्खण**-आखना, कहना । **कटरि**-आश्चर्य वाचक । **मुद्धडा**-मुग्धा, 'ड' अल्पवाचक । **जें**-जिससे । **विच्चि**-बीच, पंजाबी विच । **माइ**-समाइ ।

(३०)

फोडेन्ति जे हियडउं अप्पणउं ताहँ पराई कवण घण ।
रक्खेज्जहु लोअहो अप्पणा बालहे जाया विसम थण ॥

फोड़ते हैं, जो हियड़ा (को), अपना (को), उन्हें, पराई, कौन, घृणा (दया) (हो सकती है) ? रक्षा करो, हे लोगो ! अपने को, (क्योंकि) बाला के, जाए (उपजे) हैं, विषम (ऊंचे), स्तन। यहाँ 'बालहे' का अर्थ 'बाला के' किया है किंतु हेमचंद्र इसे पंचमी या अपादान (ङसि) कहते हैं याने बाला से उपजे हैं। **घण**-घृणा, दया। **थण**-अब भी पशुओं के लिये व्यवहृत है।

(३१)

भल्ला हुआ जु मारिआ, बहिणि महारा कन्तु।
लज्जेज्जं तु वयंसिअहु जइ भग्गा घरु एन्तु॥

भला, हुआ, जो, मारा (गया), बहन ! मेरा, कंत, लजाती (मैं), तो, (एक)-वयस-वालियों (सखियों) से, यदि, भागा, घर, आता (वह)। प्रसिद्ध दोहा है। **भग्गा**-भग्न, हारा हुआ, भागा। **वयंसिअहु**-वयस्याओं से या का (सं०) वयस् = बैस = उम्र। **लज्जेज्जं**-लजीजती, लजाती।

(३२)

वायसु उड्डावन्तिअए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तडत्ति॥

वायस (कौआ), उड़ाती (हुई) ने, पिय, दीठा (देखा), सहसा इति, आधे, वलय (कड़े, चूड़ियाँ) मही पर, गए, आधे, फूटे, तड़ इति (इस आवाज़ से)। प्रसिद्ध दोहा है. इसकी व्याख्या और रूपांतर पत्रिका भाग २ पृ० १८ में दिए गए हैं। **उड्डावन्ती**-उड़ा(व)ती। **दिट्ठउ**-दीठा। **अद्ध**-आधा, स० अर्ध।

(३३)

कमलइं मेल्लवि अलि-उलइं करि-गण्डाइं महन्ति।
असुलहमेच्छण जाहं भलि ते णवि दूर गणन्ति॥

कमलों को, छोड़ कर, अलिकुल, करियों के गंड (स्थलों) को, चाहते हैं, असुलभ (की) चाह, जिनके, भली, (होती है) वे,

न भी, दूर, गिनते हैं। **मेल्लवि**-छोड़ कर, **महन्ति**-चाहते हैं, **मेच्छण**-चाहने को, **भलि**-बड़ी, पादपूरक भी हो सकता है।

(३४)

भग्गउं देक्खिवि निअय बलु बलु पसरिअउं परस्सु ।
उम्मिल्लइ ससि-रेह जिवँ करि करवालु पियस्सु ॥

भागा, देखकर, निज, बल (=सेना)को, बल, पसरा (=फैला) हुआ, पर (=पराए) का, उमिलती (=खिलती) है, शशिरेखा, जिमि, हाथ में, तलवार, पिया के। **भग्ग**-भागा और भाँगा, **निअ-य**-निजक, **पसरियउं**-पसरियो, **उम्मिल्लइ**-उन्मीलति (सं०)।

(३५)

जइ तहो तुट्टउ नेहडा मइं सहुं नवि तिल-तार ।
तं किहे वङ्केहि लोअणेहि जोइज्जउं सय-वार ॥

यदि, तेरा, टूटा (है), नेह, मुझसे, माथ (=मेरे से), न ही, तिल (सी आँख की) तारा-वाले !, तो क्यों, (मैं) बांके, लोचनों से, जोही जाती हूँ, सौ बार? 'न वि' केवल पादपूरक है। स्नेह टूटा है तो ताक झांक क्यों करते हो? **तहो**-तुह, तुम्र। **तुट्टउ**-मारवाड़ी 'तूटना' में सं० त्रुट् की श्रुति है। **तिलतार**-तिल जैसी काली या स्निग्ध तारा (आँख की पुतली) है जिसके। **जोइज्जउं**-जोही जाती हूँ।

(३६)

जहि कप्पिज्जइ सरिण सरु छिज्जइ खग्गिण खग्गु ।
तहि तेहइ भड-घड-निवहि कन्तु पयासइ मग्गु ॥

जहा, कटता है, शर से, शर, छिदता है, खड्ग से, खड्ग, तहाँ, तैसे, भट-घटा-निवह (वीर-सेना-समूह) में, कंत, प्रकाशता है, मार्ग।

जहि-तहि, ठीक अर्थ जिसमें, तिसमें। **कप्पिज्जइ**-कपीजता है, कटता है, मारवाड़ी में कापना=काटना, कापी=कटा टुकड़ा (शाक आदि का)। **छिज्जइ**-छीजता है (सं०) छिद्यते। **भड**-

देखो प्रबंध चिंतामणि के अवतरणों में नं० १४ (पत्रिका भाग २, पृ० ४७-८)। **पयासति**-प्रकाशित करता है, उजासता है, निकालता है।

(३७)

एक्कहिं अक्खिहिं सावणु अन्नहिं भद्दवउ।
माहउ महिअल-सत्थरि गण्डत्थले सरउ॥
अङ्गिहि गिम्ह सुहच्छी-तिल-वणि मग्गसिरु।
तहें मुद्धहें मुह-पङ्कइ आवासिउ सिसिरु॥

एक में, आंख में, सावन, आन (=दूसरी) में, भादों, माधव (=वसंत), मही-तल की साथरी मे, गंडस्थल (कपोल) में, शरद, अंगों में, ग्रीष्म, सुख-बैठक (रूप) तिलवन में, मँगसिर, उस (के), मुग्धा के, मुख-पंकज में, आवासित (है), शिशिर। वियोगिनी की अवस्था है, सावन भादों आँखों में आँसू झरने से, साथरी में नए नए पत्ते बिछाने से वसंत, कपोल में पांडुता (पीलापन) होने से शरद, अंग सूखने से ग्रीष्म, मँगसिर में तिलो के खेत कट जाते हैं इसलिये वे उजड़े से दीखते हैं, वैसे ही सुख की बैठक नहीं रही; शिशिर में कमल मुरझा जाते हैं। **सत्थर**-साथरी (तुलसीदास), **सुहच्छी**-सुखासिका (सं०) सुखस्थिति। यह भी 'युग्म' नहीं है, एक छंद है।

(३८)

हियडा फुट्टि तडत्ति करि कालक्खेवें काइं।
देक्खउं हय-विहि कहिं ठवइ पइं विणु दुक्ख सयाइं॥

हे हिय !, (तू) फूट, तडत्-इति, करके, कालक्षेप से, क्या, देखूँ, हत-विधि, कहाँ, स्थापन करे, मुझ विन, दुःखशतों को ? मेरा हिया ही सैकड़ों दुःखों का आधार है, वह फट जाय तो देखें मुआ विधि मुझे छोड़ कर उन्हें कहाँ धरता है ? **तडत्ति**-देखो ऊपर (३२), **कालक्खेव**-समय बिताना, **ठवइ**-(सं०) स्थापयति, **पइं**-मैं।

(३९)

कन्तु महारउ हलि सहिए निच्छइं रूसइ जासु ।

अत्थिहिं सत्थिहिं हत्थिहिं वि ठाउवि फेडइ तासु ॥

कंत, मेरा, हला ! सखी ! निश्चय से, रूसता है, जिसके (= जिसपर), अर्थों से, शस्त्रों से, हाथों से भी, ठाँव भी, फेटता है, उसका ।

महारउ-महारो, म्हारो, **हलि**-संबोधन, **रूसइ**-रोष करता है, **अत्थ**-धन, दोधकवृत्ति का कर्ता जैन पंडित कहता है अर्थ = शब्दार्थों से भी ! **फेडइ**-फेटता है, फेंट में लेता है, घेरता है, ढहा देता है ।

(४०)

जीविउ कासु न वल्लहउं धणु पुणु कासु न इट्ठु ।

दोण्णिवि अवसर निवडिआइं तिण-सम गणइ विसिट्ठु ॥

जीवित, किसका (= किसको) न, वल्लभ (= प्यारा) है, धन, पुनि, किसका (= किसे), न, इष्ट (है), दोनों ही, अवसर निबटने पर, तृणसम, गिनै, विशिष्ट (जन) ।

निवडिआइं-निबटने पर, आ पड़ने पर, इसे भावलक्षण सप्तमी मानकर यह अर्थ किया है, अवसर-निवडिआइं को एक पद और 'दोण्णि' का विशेषण मानो तो अवसर पर निबटे (काम में आए हुए, खर्च हुए) इन दोनों ही को विशिष्ट मनुष्य तृणसम गिनता है—यह अर्थ होगा ।

(४१)

अङ्गणि चिट्ठदि नाहु ध्रुं त्रं रणि करदि न भ्रन्त्रि ।

आँगन में, बैठता है, नाथ, जो, सो, रन में, करता है, न, भ्रांति, या वह रन (में वीरता) करता है इसमें भ्रांति नहीं । यह मत समझो कि यह आँगन में बैठा लड़ता नहीं है । एक मारवाड़ी दोहे के अनुसार—

भोलो भोलो दीसतो सदा गरीबी सूत ।

काकी ! कुंजर काटतॉ जाणवियो जेठूत ॥

(भोला भोला दिखाई देता था सदा गरीबी में सीधा सादा, किन्तु चची ! लड़ाई में हाथियों को काटते समय मेरा जेठ का बेटा जान पड़ा कि उसमें ये जौहर हैं ।)

ओ सो के लिये **भ्रंत्र** आते हैं (हेमचंद्र ८।४।३६०) **भ्रं** में तो त(न) है ही, **र** लगा है जैसे **भ्रंत्रि** में (दूसरा रूप **भंति** मिलेगा दे० ४५)। **र** लगने के लिये आगे देखो **व्यास** का **व्रास** (९१)।

(४२)

तं बोल्लिअइ जु निव्वहइ ।

सो बोलिए जो निबहै । (सो बोला जाय, जो निबाहा जाय)

(४३)

एह कुमारी एहो नरु एहु मणोरह-ठाणु ।

एहउं वढ चिन्तन्ताहं पच्छइ होइ विहाणु ॥

यह, कुमारी, यह, नर, यह, मनोरथ-स्थान (है), यों, मूर्खों (का), चींतते हुओं (का), पीछे, होता है, विहान । विचार ही विचार में रात बीत जाती है । **वढ**-मूर्ख संबंध या संबोधन, **चिंतंत**-सोचते हुए ।

(४४)

जइ पुच्छह घर वड्डाइं तो वड्डा घर ओइ ।

विहलिय-जण-अब्भुद्धरणु कन्तु कुडीरइ जोइ ॥

यदि, पूछते हो, घर, बड़े, तो, बड़े, घर, वे (हैं)—विकल जनों (के) अभ्युद्धरण (करने वाले), कंत को, कुटीर में, देख । बड़े घर महल नहीं होते, विह्वलित जनों के उद्धारक मेरे कंत को कुटी में बैठा देखो—वही बड़ा घर है जहाँ परोपकार होता है । **पुच्छह**-कर्ता तुम, **विहलिय** सं० विह्वलित, **जोइ**-जोह ।

(४५)

आयइं लोअहो लोअणइं जाईसरइं न भन्ति ।

अप्पिए दिट्ठइ मउलइं पिए दिट्ठइ विहसन्ति ॥

यं, लोक के, लोचन, जातिस्मर (हैं), (इसमें) न, भ्रांति (है), अप्रिय (मनुष्य) के, देखे, (पर) मुकुलित होते हैं, प्रिय के, देखे (पर) हँसते हैं । **जाईसर**-जातिस्मर, जिसे पूर्वजन्म के प्रियाप्रिय की याद हो, यदि **जाई सरइं** दो पद हों तो, जाति को—पूर्वजन्म को—स्मरण करते हैं । **अप्पिए दिट्ठइ-पिए दिट्ठइ**-भाव-लक्षण सप्तमी, अप्रिय वा प्रिय (में) दीठे (देखे हुए) में ।

(४६)

सोसउ म सोसउ च्चिअ उअही वडवानलस्स किं तेण ।
जं जलइ जले जलणो आएण वि किं न पज्जंत्तं ॥

सूखो, न, सूखो, भी, उदधि, वड़वानल का, क्या, उससे, जो, जलता है, जल में ज्वलन (आग), इससे, ही, क्या, नहीं, पर्याप्त (हुआ) ? कठिन या असंभव कार्य सिद्ध न हो तो उद्योग में ही सफलता है ।

सोसइ-सूसो, **च्चिअ**-निश्चय, **आएण**-इससे ।

(४७)

आयहो दड्ढ-कलेवरहो जं वाहिउ तं सारु ।
जइ उट्टब्भइ तो कुहइ अह डज्झइ तो छारु ॥

इस (का), दग्ध कलेवर का, जो, वाहित (हुआ = बीत गया, चल गया), वह, सार (= अच्छा) है, जो, तोपा (जाता है) (= ढका जाता, गाड़ा जाता है), तो कुथता (सड़ता) है, और, दग्ध होता (जलाया जाता) है, तो, छार (होता है); **दड्ढ**-दाढ़ा, दग्ध, **सार**-गुजराती सारुं, अच्छा, **उट्टब्भइ** सं० = स्तभ्यते, **कुहहि**-सं० कुथ्यते, कथति, **डज्झइ**-दाझै, सं० दह्यति, **छार**-क्षार, राख, भस्म ।

(४८)

साहु वि लोउ तडप्फडइ वड्डत्तणहो तणेण ।
वड्डप्पणु परि पाविअइ हत्थिं मोक्कलडेण ॥

सब, भी, लोक, तड़फड़ाता है, बड़प्पन के, लिये, बड़प्पन, पर, पाया जाता है, हाथ से, देने से। **साहु**-सउ, मैं, **तडण्फडइ**-उत्सुक होता है, **बड्डुत्तण**-बड़ापन, **तणेण**-वास्ते से, **मोक्कलड, मोक्कलण**-देना (गुजराती)।

(४९)

जइ सु न आवइ दूइ घरु काइं अहोमुहु तुज्झु।
वयणु जु खण्डइ तउ सहिए सो पिउ होइ न मज्झु॥

यदि, सो, न, आता, है, दूति!, घर, क्यों, अधो-मुख, तेरा (हुआ)?, वचन (और वदन), जो, खण्डित करता है, तेरा, सखि!, सो, पिय, होता है, न मेरा। कुमारपालचरित के परिशिष्ट में 'सहि एसो' छपा है। दूती को उपालंभ है। 'अधोमुख' खंडित वदन को छिपाने के लिये है, वचन का खंडन कहना न मानने से है, **वयणु**-वचन और वदन का श्लेष।

(५०)

काइं न दूरे देक्खइ।
क्यों, न, दूर, देखता है?

(५१)

सुपुरिस कङ्गुहे अणुहरहिं भण कज्जें कवणेण।
जिवँ जिवँ वड्डुत्तणु लहहिं तिवँ तिवँ नवहिं सिरेण॥

सुपुरुष, कंगु को, अनुहार करते हैं, कह, काज, कौन से? ज्यों, ज्यों, बड़प्पन, पाते हैं, त्यों, त्यों, नँवते हैं, सिर से। **कङ्गु**-एक धान, **अनुहरहिं**-नकल करते हैं, सदृश होते हैं, **भणना**-कहना, **कज्जें कवणेन**-किस कार्य से? किस बात से? **कवण**-कौन। **जिवँ जिवँ तिवँ तिवँ**-जिमि जिमि (भाजत शक्रसुत)...तिमि तिमि (धावत रामसर)...(रामचरितमानस)।

(५२)

जइ ससणेही तो मुइअ अह जीवइ निन्नेह।
बिहिँवि पयारेंहिं गइअ धण किं गज्जहि खल मेह॥

यदि, सस्नेहा, (है) तो, मुई, और (जो) जीती है, (तो) निर्नेह (है), दोनों ही, प्रकारों से, गई, नायिका, क्यों, गाजता है ? खल मेघ ! यदि स्नेहवती हुई तो वियोग में मेघगर्जन सुनकर मर गई, यदि जीती है तो उसे नेह नहीं, प्रिया तो दोनों ही तरह से गई। **बिंहि**-दोनों, बे = द्वे (सं०), **मुइ-अ गइअ**-मुई, गई ।

(५३)

भमरु म रुणुझुणि रण्णडइ सा दिसि जोइ म रोइ ।
सा मालइ देसन्तरिअ जसु तुहुँ मरहि विओइ ॥

भ्रमर !, मत, रुनझुन (शब्द) कर, अरण्य में, वह, दिशा, जोह कर, मत, रो, वह, मालती, देशांतरित (है), जिसके, तू, मरता है, वियोग में ॥ **रुणझुण**-अनुकरण शब्द का नामधातु । **रण्णडइ**-देखो ऊपर (१७) 'रन्नु' ।

(५४)

पइं मुक्काहंवि वर-तरु फिट्टइ पत्तत्तणं न पत्ताणं ।
तुझ पुणु छाया जइ होज्ज कहवि ता तेहिं पत्तेहि ॥

तुम से, मुक्तों (छोड़े हुओं) का, भी, हे वरतरु !, फिटता है, (बिगड़ता है), पत्तापन, न, पत्तों का, तेरी, पुनि, छाया, यदि, होवे, किसी तरह भी, (तो) वह, उन्हीं, पत्तों से (होगी) । अन्योक्ति । **मुक्क**-मूका (गुजराती), **फिट्टइ**-हटता है, बिगड़ जाता है, मिलाओ दूध फिटना, फिटकार, मर फिटमुँहे ! **होज्ज**-होवे तो, होती तो । दोधक वृत्ति में 'विवरतरु' एक पद मान कर 'वि (पक्षी) + वर (अच्छे) का तरु' भी अर्थ किया है ।

(५५)

महु हियउं तइं ताए तुहुं सवि अन्नें विनडिज्जइ ।
पिअ काइं करउं हउं काइं तुहुं मच्छें मच्छु गिलिज्जइ ॥

नायिका अन्यासक्त नायक को कहती है—मेरा, हृदय, तैंने (लिया); उस (प्रतिनायिका) ने, तू (लिया), वह भी, अन्य से, नटाई (नचाई) जाती है, पिया ! क्या, करूं, मैं, क्या, (करै) तू,

मच्छ से, मच्छ, निगला जाता है। भर्तृहरि के 'धिकृतां' वाले श्लोक का भाव है। मच्छ मच्छ को निगलता है यह 'मात्स्य न्याय' या 'मच्छ गलागल' प्रसिद्ध कहावत है। **तइं**-तैं, **विनडिज्जइ**, विनडीजै, **गिलिज्जइ**-गिलीजै।

(५६)

पइं मइं बेंहिवि रणगयहिं को जयसिरि तकेइ।
केसहिं लेप्पिणु जम-घरिणि भण सुहु को थकेइ॥

तुझमें, मुझमें, दोनों ही में, रणगतों में, कौन, जयश्री को, तकता है? केशों से, ले कर, जम की घरवाली को, कह, सुख, कौन, रहै? (जब हम तुम लड़ने चलते हैं तो कौन जयश्री को चाह सकता है? कौन यमपत्नी के बाल खैंच कर सुख से रह सकता है? कोई भी नहीं।) **पइं मइं**-अधिकरण, **बे**-दो, **तक्केइ**-तकता है, **लेप्पिणु**-पूर्वकालिक, **थक्केइ**-थाके।

(५७)

पइं मेल्लन्तिहं महु मरणु मइं मेल्लन्तहो तुज्झु।
सारस जसु जो वेग्गला सोवि कृदन्तहो सज्झु॥

तुझे, छोड़ती का, मेरा, मरण (है) मुझे, छोड़ते हुए का, तेरा (मरण है), सारस! जिसका (=जिससे), जो दूर है, वह ही कृतांत का, साध्य (=मारने योग्य) है। नायक को सारस कह कर अन्योक्ति है। **पइं, मइं** कर्म कारक, **मेल्लन्ती, मेल्लन्त**-वर्त्तमान धातुज, **हो**-संबन्ध का 'हो' छंद के अनुरोध से लघु पढ़ा जायगा, **वेग्गला**-दूरस्थ।

(५८)

तुम्हेहिं अम्हेहिं जं किअउं दिट्ठउं बहुअजणेण।
तं तेवड्डुउं समर भर निज्जिउ एक-खणेण॥

तुमसे, हमसे, जो, किया (गया), (वह) दीठा, बहुत जन (मनुष्यों)से, वह तितना, समर (का) भर, निर्जित (किया गया),

एक वचन से (= में) । **तेवडा** = तितना, **जेवडा** = जितना, तेवडो, जेवडो । (देखो, आगे १०१)

(५९)

तउ गुण-संपइ तुज्झ मदि तुध्र अणुत्तर खन्ति ।
जइ उप्पत्ति अन्न जण महि-मंडलि सिक्खन्ति ॥

तेरी, गुण-संपत्ति, तेरी मति, तेरी, अनुत्तर (= जिसके कोई बड़ी न हो) क्षांति, यदि, पास आकर, अन्य, जन, महीमंडल में, सीखें (तो ठीक है) । **तउ, तुज्झ, तुध्र**-तेरा । **उप्पत्ति** = उप्पं तिअ, = उपेत्य (सं०)

(६०)

अम्हे थोवा रिउ बहुअ कायर एम्व भणन्ति ।
मुद्धि निहालहि गयणयलु कइ जण जोण्ह करन्ति ॥

हम, थोड़े, रिपु, बहुत, कायर, यों, कहते हैं, मुग्धे ! देख, गगन-तल (में), के, जने, जुन्हाई, करते हैं (एक चंद्रमा ही) । पाठांतर के लिये देखो, सोमप्रभ, नं० २८ (पत्रिका, भाग २, पृ० १४८) । **थोवा**-थोड़ा, सं० स्तोक, **एम्व**--एवं (सं०) पंजाबी ऐंवें, **जोण्ह**-सं० ज्योत्स्ना, हि० जुन्हाई, जोन्ह = चांद ।

(६१)

अम्बणु लाइवि जे गया पहिअ पराया केवि ।
अवस न सुअहिं सुहच्छिअहि जिवँ अम्हइ तिवँ तेवि ॥

अपनपा, लगा कर, जो, गए हैं, पथिक, पराए, कोई भी, अवश्य, नहीं, सोते हैं, सुखासिका से, जैसे, हम, वैसे, वे भी । **अम्बण**-अपनापन, ममता, स्नेह, **सुहच्छिअहिं**-सुखासिका (सं०) सुख की बैठक, सुखकी नींद, (ऊपर, ३७) **अम्हइ**-हम, म्हे (राजस्थानी) ।

(६२)

मइं जाणिउं पियविरहिअहं कवि धर होइ विआलि ।
णवर मिअङ्कुवि तिह तवइ जिह दिणयरु खयगालि ॥

मैं (ने), जाना, प्रियविरहितों को, कोई भी, सहारा, होता है, रात्रि को, नहीं पर, मयंक भी, तैसे, तपता है, जैसे दिनकर(=सूर्य) क्षय (प्रलय) काल में। देखो सोमप्रभ सं० १८, (पत्रिका, भाग २, पृ० १४४)।

(६३)

महु कन्तहो बे दोसडा हेल्लि म झङ्खहि आलु।
देन्तहो हउं पर उव्वरिअ जुज्झन्तओ करवालु॥

मेरे, कंत के, दो, दोष (हैं) हे आलि, मत, झंख, अलपल (=बक मत), देते के, मैं, पर. उबरी हूँ, जूझते को, तरवार (उबरी है)—अलपल तो बके मत, सखी! मेरे पति के दो दोष हैं, देते देते तो मैं बची और लड़ते लड़ते तलवार। हो, ओ-लघु पढ़ो, **दोसडा,** दोष (कुत्सा में ड). **हेल्लि**—हे आलि, **झङ्ख** हिं० झंखना, झींखना, **आलु**—अंडबंड, **देन्त, जुज्झन्त** वर्तमान धातु-ज, **हउं**= हौं, **उव्वरिय**-सं० उर्वरित, हिं० उबरी।

(६४)

जइ भग्गा पारकडा तो सहि मज्झु पिएण।
अह भग्गा अम्हहंतणा तो तें मारि अडेण॥

यदि, भागे, पराए, तो, सखि, मेरे पिया से, और (जो), भागे, हमारे, तो, उससे, मारे हुए से। यदि पराए पक्ष की सेना भागी हो तो मेरे पिया ने उसे भगाया होगा, यदि अपने भाग रहे हैं तो उसके मारे जाने पर ही ऐसा परिणाम हो सकता है। **भग्गा**-भग्नाः (सं०) भाँगे अर्थात् टूटे, हारे इसीसे भागे, **पारक्कडा, अम्हहं तणा**-पराए और हमारे, **मारिअड**-मारितक (सं०)। प्रसिद्ध दोहा है।

(६५)

मुह-कवरिबन्ध तहे सोह धरहि
नं मल्ल-जुज्झ ससिराहु करहिं।
तहे सहहि कुरल भमर-उल-तुलिअ
नं तिमिर डिम्भ खेलन्ति मिलिअ॥

मुख और चोटी का बँधना, उसके, शोभा, धरते हैं, मानो, मल्लयुद्ध, शशी और राहु, करते हैं, उसके, सोहते हैं, केश, भ्रमर कुल (से) तुलित (तुल्य), मानो तिमिर (अँधेरे) के बच्चे, खेलते हैं, मिले हुए (= मिलजुल कर)। नं = जैसे, नाई।

(६६)

बप्पीहा पिउ पिउ भणवि किक्तिउ रुअहि हयास ।
तुह जलि महु पुणु वल्लहइ बिंहुवि न पूरिअ आस ॥

पपीहा, पिउ, पिउ, कह कर, कितनी बार, रोता है, हे हताश, तेरी, जल में (= जल से), मेरी पुनि, वल्लभ में (= से), दोनों में ही, न, पूरी, आस ॥

(६७)

बप्पीहा कइं बोल्लिएण निग्घिण वारइवार ।
सायरि भरिअइ विमल जलि लहहि न एक्कइ धार ॥

पपीहा, क्या, बोलने से, हे निघृ ण !, बार बार, सागर में, भरे में, विमल जल से, पाता है, न, एक भी, धार ॥

(६८)

आयहिं जम्महिं अन्नहि वि गोरि सु दिज्जहि कन्तु ।
गय मत्तहं चत्तङ्कुसहं जो अब्भिडहि हसन्तु ॥

इसमें, जन्म में, अन्य में, भी, हे गौरि, सो, दीजै, कंत (मुझे) गजों, मत्तों, त्यक्ताङ्कुशों को (से), जो आ + भिडै, हँसता हुआ। **आय**-यह, **चत्त**-त्यक्त, **अब्भिडहि** सामने आवे, आ भिड़े।

(६९)

बलि अब्भत्थणि महुमहणु लहुईहूआ सोइ ।
जइ इच्छहु वड्डत्तणउं देहु म मग्गहु कोइ ।

बलि (के या से) अभ्यर्थन (माँगने) में, मधुमथन (मधु दैत्य को मारनेवाले विष्णु), लघु हुए, वह भी, यदि, चाहते हो, बड़ापन, (तो) दो, मत मांगो, कोई। **लहुईहूआ**-लघुकीभूत, **वड्डत्तण**-बड़ापन।

(७०)

विहि विनडउ पीडन्तु गह मं धणि करहि विसाउ ।

संपइ कड्ढउं वेस जिवँ छुडु अग्घइ ववसाउ ॥

विधि, नट जाओ, पीड़ा दें, ग्रह, मत, हे धन (= प्रिये), करो, विषाद, संपत्ति को, काढता हूँ, वेश (की), तरह, यदि, चलता है, व्यवसाय । **विनडउ**-नटै, नाचे, या नाहीं करे, **धन** = प्रिया, देखो ऊपर (१), मिलाओ मिरज़ापुरी कजलियों की 'धनिया', **वेस**-दोधकवृत्ति के अनुसार वेश्या, **छुडु**-यदि, **अग्घइ**-अर्घति, मोल पाता है ।

(७१)

खग्ग-विसाहिउ जहिं लहहुं पिय तहि देसहिं जाहुं ।

रणदुब्भिक्खे भग्गाइं विणु जुज्झें न वलाहुं ॥

खड्ग से, भी, साधित, जहां, पावें, प्रिय ! उस, देश को, जावें, रण-दुर्भिक्ष में, भागे (हम), विना, युद्ध (के) नहीं, प्रसन्न होते। जहां खड्ग चलाकर जीविका निर्वाह कर सकें वहां चलो, यहां तो रण-दुर्भिक्ष से (दिल) टूट गए, विना युद्ध के आनंद नहीं आता । **भग्गाइं**-भग्न, **वलाहुं**-न रति प्राप्नुमः (दोधक वृत्ति) । यह अर्थ उसी के अनुसार है किंतु कुछ खटकता है । रण-दुर्भिक्ष में भागे हैं, विना युद्ध के न लौटेंगे (जैसे दुर्भिक्ष के कारण देश से भागे विना सुभिक्ष नहीं लौटते)-यह अर्थ अच्छा है ।

(७२)

कुञ्जर सुमरि म सल्लइउ सरला सास म मेल्लि ।

कवल जि पाविय विहिवसिण ते चरि माणु म मेल्लि ॥

हे कुंजर, स्मरण कर, मत, सल्लकियां (एक प्रकार की बेलों) को, सरल (लंबे), सांस, मत, छोड़, कौर, जो, पाए, विधिवश से, उन्हें, चर, मान, मत, रख । दोधकवृत्ति के अनुसार **मेल्लि**-का दोनों जगह 'छोड़ना' अर्थ करने से निरर्थक वाक्य हो जाता है कि सल्लकी को याद मत कर, उसास मत ले, जो मिलता है उसे चर

और मान मत छोड़ ! **सास म मेल्लि** अर्थात् सांस मत ले, दूसरा **मेल्लि**-रख।

(७३)

भमरा एत्थु वि लिम्बडइ केवि दियहडा विलम्बु ।
घण-पत्तलु छाया बहुलु फुल्लहिं जाम कयम्बु ॥

हे भौंरा ! यहां, भी, नींबड़ी में, कुछ, दिन, विलंब कर, घने पत्तों-वाला, बहुत छाया वाला, फूलै, जब तक, कदंब। **एत्थं**-पंजाबी इत्थु, इत्थैं, सं० अत्र, **दियहड़ा**-दिवस, **पत्तलु**-पत्तेवाला, **जाम**-यावत्, देखो ८१, ६८।

(७४)

प्रिय एम्वहि करे सेल्लु करि छड्डहि तुहुं करवालु ।
जं कावालिय बप्पुडा लेहिं अभग्गु कवालु ॥

हे प्रिय ! अब, कर में, सेल, करो, छोड़ो, तुम, तरवार, ज्यों, कापालिक, बापुरे, लेवें, अभग्न (= अखंडित), कपाल। तुम्हारे खड्ग से शत्रुओं के सिर फट जाते हैं, कापालिकों को साबत खप्पर नहीं मिलते इसलिये तुम सेल से मारो जिससे खोपड़ी साबत तो मिलें।

(७५)

दिअहा जन्ति झडप्पडहि पडहिं मणोरह पच्छि ।
जं अच्छइ तं माणिअइ होसइ करतु म अच्छि ॥

दिवस, जाते हैं, झटपट से, पड़ते हैं, मनोरथ, पीछे (= निष्फल जाते हैं), जो है, वह भोगा जाय, 'होगा' (यों) करता (हुआ), मत, (बैठा) रह। दिन जाते हैं, जो है उसे भोगो, भविष्य के भरोसे मत रहो। **अच्छइ**-बंगला आछे, राजस्थानी छै। **माणिअइ**-देखो प्रबंध १४, पत्रिका भाग २, पृ० ४६, **होसइ**-देखो प्रबंध (३, पत्रिका भाग २, पृ० ३५), कुमार (२३, पत्रिका भाग २, पृ० १४६)

(७६)

सन्ता भोग जु परिहरइ तसु कन्तहो बलि कीसु ।
तसु दइवेण वि मुण्डियउं जसु खल्लिहडउं सीसु ॥

होते हुए, भोगों को, जो, छोड़ता है, उस (की), कांत की, बलि की जाय (उसकी बलिहारी जाइए), उसका, दैव ने, ही, मूंड दिया है, (सिर), जिसका, गंजा (है), सीस ॥ गंजा कहे कि मैंने सिर मुंड़ाया तो क्या? "बिना मिलनी के ब्रह्मचारी" सभी बन बैठते हैं। जो होते हुआते भोग विलासों को छोड़े उसकी बलैयां लीजै। **सन्ता** वर्तमान धातुज, **कीसु**-मैं कर्म (हेम०), तू कर, **खल्लि-हडउं**-खलति, खल्वाट (सं०)।

(७७)

अइतुंगत्तणु जं थणहं सो च्छेयहु न हु लाहु।
सहि जइ केवँइ तुडिवसेण अहरि पहुच्चइ नाहु ॥

अति तुंगत्व (ऊँचापन), जो, स्तनों का (है), सो, छेवा (=टोटा, घाटा) (है), न, तो, लाभ, सखि! यदि, किसी त्रुटि वश से, अधर पर, पहुँचता है, नाथ। ऊंचे स्तन चुंबन में आड़े आते हैं। **छेय**-छेकना, छेवा=कमी, **केवइ**-किसी से, कुछ से, **त्रुटि**-विलंब, **पहुच्चइ**-सं० प्रभवति (?) समर्थ होता है (दोधक वृत्ति), हिंदी 'पहुँचना' इस व्याख्या में अधिक उपयुक्त है।

(७८)

इत्तउं ब्रोप्पिणु सउणि ट्ठिउ पुणु दूसासणु ब्रोप्पि।
तो हउं जाणउं एहो हरि जइ महु अग्गइ ब्रोप्पि ॥

इतना, बोल कर, शकुनि, ठहरा, पुनि, दुःशासन, बोला—तो, हौं, जानूं, यह, हरि (है), यदि, मेरे, आगे, बोले। किसी पुराने महाभारत से। **इत्तउं**-एतो, **ब्रोप्पिणु**-पूर्वकालिक, **ब्रोप्पि**-पूर्व-कालिक, दोनों जगह (!) 'ट्ठिउ' जोड़ो अर्थात् 'बोलकर ठहरा' (दोधक वृत्ति)। **ट्ठिउ**-स्थित, ठयो।

(७९)

जिव तिवँ तिक्खा लेवि कर जइ ससि छोल्लिज्जन्तु।
तो जइ गोरिहे मुह-कमलि सरिसिम कावि लहन्तु ॥

जिमि तिमि (ज्यों त्यों), तीखे (शस्त्र), लेकर, किरणों को,

यदि, शशी, छोला जाता, तो, यदि, गोरी के, मुखकमल से, सह-शता, कोई भी (कुछ कुछ), पाता (तो पाता) ॥ **तिक्खा**-केवल विशेषण, विशेष्य गुप्त ; **कर, ससि,**-विभक्ति की बेकदरी से धोखा होता है कि **छोलिज्जन्त** का कर्म ससि है या कर; **छोलिज्जन्तु**-कर्मवाच्य की क्रियातिपत्ति, छोला जाय, कर्मवाच्य का 'ज', मिलाओ 'छीलना' का गँवारी रूप 'छोलना', इसीसे छोला = हरा चना, **जइ** = जगति (!! जगत में—दोधकवृत्ति), **सरिसिम**-सदृशता, सं० का इमनिच्, मिलाओ कुमार (२१, पत्रिका भाग २, पृ० १४५), **लहन्तु** क्रियातिपत्ति ।

(८०)

चूडुल्लउ चुण्णीहोइसइ मुद्धि कवोलि निहित्तउ ।

सासानल जाल झलक्किअउ वाह-सलिल-संसित्तउ ॥

अर्थ के लिये देखो कुमार (२३, पत्रिका भाग २, पृ० १४६) । आग पर तपाने और ऊपर से पानी की छींट पड़ने से दांत की चूड़ी दरक जायगी ।

(८१)

अब्भड वंचिउ बे पयइं पेम्मु निअत्तइ जावँ ।

सव्वासण रिउ सभवहो कर परिअत्ता तावँ ॥

(१) अभ्रवाली (रात्रि) में, चल कर, दो, पैंड, प्रेम, निबहाती (पूरा करती) है, ज्यों, (अभिसारिका), सर्वाशन (सर्वभक्ष = अग्नि) के रिपु (सागर) के संभव (पुत्र) अर्थात् चंद्रमा के, किरण, पसर गए, त्योंही । काली बादलों से घिरी रात में प्रेयसी चली थी कि चंद्र ने सहायता की (समाधि) या (२) उलटे, चल कर, दो, पैंड, प्रेमिका को, लौटाता है (प्रवासी) ज्यों, चंद्रमा के कर, फैल गए, त्यों ही । प्रिया पहुँचाने आई थी, प्रवासी ने उसे लौटाना चाहा । इतने में चंदा उग आया । फिर कहाँ का जाना आना ? ॥ **अब्भड**-अभ्रट, मेघवाला, या अभ्यट्य लौटकर, **वंच** = व्रज्, चलना, **बे**-दो, **पयइं**-पद, **निअत्तइ**, *निर्वर्तयति या निवर्तयति*,

जावँ तावँ-यावत् तावत्, **परिअ्रत्ता**-फैले। दोधकवृत्तिकार ने इसके अर्थ में बहुत गोते खाए हैं—**अणुभड**-पीछे चल कर, **वंचिउ**-ठग कर या ठगा गया, 'प्रिया लौटाती है प्रिय को' इत्यादि।

(८२)

हिअइ खुडुक्कइ गोरडी गयणि घुडुक्कइ मेहु।
वासा रत्ति पवासुअहं विसमा संकडु एहु॥

हिए में, खटकती है, गोरी, गगन में, धड़कता है, मेह, वर्षा (की) रात (में), प्रवासिओं को, विषम, संकट, (हैं) यह। **विसमा** से जान पड़ता है कि **संकड** एकवचन नहीं है। **पवासु**-'इन्' के अर्थ में 'उ' (उण्)।

(८३)

अम्मि पओहर वज्जमा निच्चु जं सम्मुह थन्ति।
महु कन्तहो-समरङ्गणइ गयघड भज्जिउ जन्ति॥

अम्मा! (मेरे) पयोधर, वज्र के से, (हैं) नित्य, जो, संमुख, ठहरते हैं, मेरे, कंत के, (जिस से) समरांगण में, गज घटा, भाग कर, जाती हैं। **वज्जम**-वज्रमय, **भज्जिउ**-भागने का ग्रामीण भाजना देखो ऊपर (६४)।

(८४)

पुत्तें जाएं कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण।
जा बप्पीकी भुंहडी चम्पिज्जइ अवरेण॥

देखो पत्रिका भाग २ पृष्ठ १९। **पुत्ते जाएं**-भावलक्षण, पुत्र जाए, जन्मे से, **मुएण**-मुएसे, **जा**-जिसकी, **बप्पीकी**-बपौतीकी, **भुंहडी**-भूमि, देखो प्रबन्ध (१) टिप्पणी, **चम्पिज्जइ**-चंपीजै, कुचली जाय, दबाई जाय, मिलाओ पगचंपी = पैर दबाना।

(८५)

तं तेत्तिउ जलु सायरहो सो तेवडु वित्थारु।
तिसहे निवारणु पलुवि नवि पर धुट्ठुअइ असारु॥

वह, तितना, जल, सागर का, सो, तितना, विस्तार, तृषा का, निवारण, पलभी, नहीं, पर, दहाड़ता है, असार। **तेत्तिउ**-तेतो, **तेवडु**-तेवडा (गुजराती), **तिस**-राजस्थानी तिस, तृषा, **धुट्टुअइ**-अनुकरण, गर्जता है। मिलाओ, राजशेखरसूरि के चतुर्विंशतिप्रबन्ध से—

वरि वियरो जहिं जलु पियइ घुट्टुग्घुट्ट चुलुएण।
सायरि अत्थि बहुय जल छि खारउं किं तेण॥

वरि-वर, अच्छा, **वियरो**-राजस्थानी बेरा, कुआ, **चुलुएण**-चिल्लू से, **अत्थि**-है।

(८६)

जं दिट्ठउं सोमग्गहणु असइहिं हसिउ निसंकु।
पिअ-माणुस-विच्छोह-गरु गिलि गिलि राहु मयंकु॥

जो, दीठो, सोम (चंद्र) ग्रहण, (तो) असतियों से, हँसियां (हँसा गया), निःशंक, पिय-मानुसों (के) विछोह कर (ने वाले) को, निगल, निगल, राहु! मयंक को। **विच्छोहगरु**-विछोहकर, नेपाली में 'करना' धातु का 'गरना' हो गया है, 'क' रहा ही नहीं, 'ग' है: 'प्रगट' को शुद्ध करके 'प्रकट' लिखनेवाले ध्यान दें।

(८७)

अम्मीए सत्थावत्थेहिं सुधिं चिन्तिज्जइ माणु।
पिए दिट्ठे हल्लोहलेण को चेअइ अप्पाणु?

अम्मा! स्वस्थ अवस्था (वालों) से, सुख से, चींता जाता है, मान। पिया दीठे पर, हलवली से, कौन, चेतता है, अपान को? स्वस्थ बैठे हों तब मान गुमान की सूझती है, पिया को देखते ही ऐसी हलवली मचती है कि अपनी सुध भी जाती रहती है, बेचारे मान की क्या चलाई? **सुधिं**-सुखिं, सुख से, **पिए दिट्ठे**-भाव-लक्षण।

(८८)

सवधु करेप्पिणु कधिदु मइं तसु पर सभलउं जम्मु।
जासु न चाउ न चारहडि नय पम्हट्ठउ धम्मु॥

शपथ, करके, कथित (कहा गया), मैं (ने), उसका, पर,

सफल, जन्म (है), जिसका, न, त्याग, न, और, आरभटा, न, और प्रभ्रष्ट (हुआ है), धर्म । **सवधु, कधिदु**-थ की जगह ध, **सभलउँ**-फ के स्थान में भ, **पम्हट्ठु**-भ्र के लिए म्ह । **आरहडि**-आरभटी, शूरवृत्ति । **चाउ**-त्याग, **पम्हट्ठउ** तीनों के साथ है, चाउ, आरहडि, और धम्म । दोधकवृत्ति का दूसरा अर्थ "जिसके अपव्यय नहीं, और धर्म भ्रष्ट नहीं हुआ" ठीक नहीं ।

(८९)

जइ केवँइ पावीसु पिउ अकिया कुड्डु करीसु ।
पाणीउ नवइ सरावि जिवँ सव्वङ्गेँ पइसीसु ॥

यदि, किसी प्रकार, पाऊँगी, प्रिय (को), (तो) न किया, कौतुक, करूंगी, पानी, नए (में), सकोरे (में), ज्यों, सर्वांग में, प्रविशूंगी (घुसूँगी) । नए मिट्टी के बरतन में पानी की तरह रोम रोम में रम जाऊंगी । पावीसु, करीसु, पइसीसु—संभावना, भविष्यत् गुजराती श, राजस्थानी स्युं । **अकिया**-अकृत, किसी ने जो न किया हो, **कुड्डु**-कौतुक, राज० कोड, **सरावि**-सं० शरावे ।

(९०)

उअ कणिआरु पफुल्लिअउ कञ्चणकन्तिपकासु ।
गोरीवयणविणिज्जिअउ नं सेवइ वणवासु ॥

ओ (= देख), कनियार, प्रफूला (है), कांचन–कांति–प्रकाश, गोरी-वदन-विनिर्जित, नाई (मानो), सेता है, वनवास । वन में विकसित होने के कारण की उत्प्रेक्षा है । **उअ**-देख (प्राकृत), **कणिआरु**–(सं०) कर्णिकार (पंजाबी पहाड़ी) कनयार, अमलताश, पीले फूलों से लद जाता है । **गोरी**–देखो प्रबन्ध (१४, पत्रिका भाग २, पृ० ४७) । **नं**-वेद का उपमावाचक 'न' बाँध में नहीं बँध सका, प्रवाह में चला आया ।

(९१)

आसु महारिसि एउ भणइ जइ सुइसत्थु पमाणु ।
मायहं चलण नवन्ताहं दिवि दिवि गङ्गाण्हाणु ॥

व्यास, महाऋषि, यों (यह), भणता (कहता) है, यदि, श्रुतिशास्त्र, प्रमाण, (हैं तो) माओं के, चरण, नँवतो के, दिन दिन, गंगा-स्नान (है)। **वासु**–व्यास, इस 'र' के लिये मिलाओ शाप =स्राप, **मायहं**-माताओं के, मातृ-माथि, माय, माइ, माई, **नवंताहं**-नेवतों, नमतों, प्रणाम करतों के, **दिविदिवि**–वेद का 'दिवे दिवे' देखो ऊपर (९०) में नं।

(९२)

केंम समप्पउ दुट्ठु दिणु किध रयणी छुडु होइ।
नव-वहु-दंसण लालसउ वहइ मणोरह सोइ॥

क्यों (कर), समाप्त हो, दुष्ट, दिन, कैसे, रजनी, झट, होय, नव वधू (के) दर्शन (की) लालसा (वाला), बहता है, (ऐसे) मनोरथ, सो (वह नायक)। **वहइ**-धारण करता है, उठाए फिरता है। **केम**-गुजराती केंम। **छुडु**–'छ' का 'झ' होने के लिये देखो ऊपर (८७), (८८), झट।

(९३)

ओ गोरीमुहनिज्जिअउ वद्दलि लुक्कु मियंकु।
अन्नु वि जो परिहविंयतणु सो किवँ भवँइ निसंकु॥

यह गोरी (के) मुँह (से) निर्जित, बादल में, लुका (है), मयंक, अन्य, भी, जो, परिभूत (हारे हुए) तनु (का), (है), सो, किमि, भ्रमै, निस्संक। हारे हुए मुँह लुकाए फिरते हैं। **परिहविय**–परि+भू=हारना (सं०) 'भू' का 'हो'।

(९४)

बिम्बाहरि तणु रयणवणु किह ठिउ सिरि आणन्द।
निरुवम रसु पिएं पिअवि जणु सेसहो दिण्णी मुद्द॥

बिंबा (फल के से) अधर पर का, रदन (दंत) व्रण, कैसा, स्थित (हुआ), श्री आनंद? निरुपम, रस, पिय ने, पीकर, जनु, शेष (रस) के (=पर), दीनी, मुद्रा। अधर पर दंतक्षत क्या है, मानों अनुपम रस पीकर पिया ने बाकी पर अपनी मुहर लगा दी

है। **बिम्बाहरितणु**—'बिंबाधर पर, तन्वी के' यह अर्थ करने की कोई आवश्यकता नहीं, '*तणु, तणा, या तणो*' संबंध-सूचक प्रत्यय हैं, बिंबाधर-पर-का-रदन-व्रण' यही अर्थ है। **ठिउ**-थियो, थो, था। **सिरि आणन्द**-संबोधन है तो किसी का नाम, संभवतः कवि का, या रदनव्रण का विशेषण। **सेवहो**- हो को लघु पढ़ो।

(६५)

भण सहि निहुअउं तेवँ मइं जइ पिउ दिट्ठु सदोसु।
जेवँ न जाणइ मज्झु मणु पक्खावडिअं तासु॥

सखी नायक की शिकायत कर रही है। मुग्धा कहती है—कह, सखि! निभृत (गुप्त), त्यों, मुझे, यदि, प्रिय, दीठा (है), सदोष, ज्यों, न, जानै, मुझका (= मेरा), मन, पक्षापतित (=पक्षपाती), तिसका। मेरा मन उस (प्रिया) का पक्षपाती है, वह न जाने, उससे छिपा कर कह। अमरु के 'नीचैः शंस, हृदि स्थितो हि ननु मे प्राणेश्वरः श्रोष्यति' का भाव है। 'उस दूसरे के पास में स्थित मेरा मन जैसे न जाने' भर्ता-इति गम्यते' (!!) (दोधकवृत्ति)

(६६)

मइं भणिअउ बलिराय तुहुं केहउ मग्गण एहु।
जेहु तेहु नवि होइ वढ सइं नारायणु एहु॥

किसी वामनावतार की कथा से। शुक्राचार्य कहता है—मैं (ने) भणा, बलिराज, तूं (=तुझे), कैसा, मंगन (याचक), यह, (है) जैसा, तैसा (=ऐसा वैसा), नहीं, होय, हे मूर्ख, स्वयं, नारायण, यह (है)। **वढ**-मूर्ख मिलाओ वंठ (हर्षचरित)। दोधकवृत्ति कहती है कि उत्तरार्द्ध राजा बलि का उत्तर है!

(६७)

जइ सो घडदि प्रयावदी केत्थुवि लेप्पिणु सिक्खु।
जेत्थुवि तेत्थुवि एत्थु जगि भण तो तहि सारिक्खु॥

यदि, सो, घड़ै, प्रजापति, कहीं (से), भी, लेकर, शिक्षा, जहाँ, भी, वहाँ, भी, इसमें, जग में, कह, तो, उस (नायिका) का,

सरीखा ? । केत्थु, जेत्थु, तेत्थु, एत्थु, कुत्र यत्र तत्र अत्र (सं०) कित्थुँ जित्थुँ तित्थुँ इत्थुं (पुरानी पंजाबी) कित्थें जित्थें तित्थें एत्थें (पंजाबी) । चौथे चरण का पाठ संभव है यह हो-'भण को तहे सारिक्खु'-कह कौन उस (का) सरीखा है ?

(९८)

जाम न निवडइ कुंभयडि सहीचवेडचडक्क ।

ताम समत्तहं मयगलह पइ पइ वज्जइ ढक्क ॥

जौं (लौं), न, (नि) पड़ती है, कुंभतट पर, सिंह (की) चपेट (का) चटाक, तौं (लौं), समस्तों, मदकलों, (गजों) के, पद पद, बाजै, ढक्का । सिंह की चपेटा लगने तक सिर पर नगारे बजते हैं । चडक्क-अनुकरण, ढक्का-एक बाजा ।

(९९)

तिलहं तिलत्तणु ताउं पर जाउं न नेह गलन्ति ।

नेहि पणट्ठइ तेज्जि तिल तिल फिट्टवि खल होन्ति ॥

तिलों का, तिलपन, तौ (लौं), पर, जौं (लौं), न, नेह, गलता है, या गलाते हैं, नेह, प्रनष्ट (होने) पर, वेही, तिल, तिल (से), फिट कर, खल, होते हैं । नेह के दो अर्थ—चिकनाई और प्रेम, खल के दो अर्थ, खल और दुर्जन । नेह निकला कि खल हो गए । दोधकवृत्ति ने नेह को बहुवचन 'गलन्ति' का कर्ता माना है, अधिक संभव है कि 'तिल' कर्ता हो और 'नेह' कर्म । तेज्जि-तेईज (गुज० मारवाड़ी) देखो प्रबंध (१७, पत्रिका भाग २, पृ० ४९) फिट्टवि—फिट्=बिगड़ना, भ्रष्ट होना, मिलाओ फिट मुए, (ऊपर,५४) 'फटना' से पट् या पाट् से है, फिट् भ्रंश्(भ्रष्ट होने) से ।

(१००)

जामहि विसमी कज्जगइ जीवहिं मज्झे एइ ।

तामहिं अच्छउ इयरु जणु सुअणुवि अन्तरु देइ ॥

जब, विषम कार्यगति, जीवों के, मध्य में, आती है, तब, रहो, इतर, जन, सुजन, भी, अंतर, देता है । इतर जन तो अलग रहा,

खजन भी किनारा कसता है। **जामहिं तामहिं, जाउं ताउं,**(९८) **जाम ताम**(९९) यावत् तावत्। **मज्झे**-माझे, मांझ में, मध्ये। **अच्छउ**—आछा, हाँ, उसकी तो बात ही क्या।

(१०१)

जेवडु अन्तरु रावण रामहं तेवडु अन्तरु पट्टण गामहं।

जितना, अंतर, रावण–राम (का) तितना, अंतर, पट्टन (नगर) (और) गांव का। **जेवडु तेवडु**—जेवडो तेवडो (गुज० राज०) जितना तितना। किसी रावण पक्षपाती की उक्ति। दोधकवृत्ति के अनुसार ग्राम पट्टण का क्रम बदलने की आवश्यकता नहीं।

(१०२)

तं मुग्गडा हराविआ जे परिविट्ठा ताहँ।

अवरोप्परु जोअन्ताहँ सामिउ गञ्जिउ जाहँ॥

वे, मूंग, हराए गए (अकारथ गए), जो, परोसे गए, उनके (उन्हें), नीचे ऊपर, जोहते हुओं के, (जिनके) स्वामी, गंजा, गया, जिनका। इधर 'मूंग परोसना' बड़े आदर और उत्सव की बात है। जँवाई आता है या त्यौहार होता है तो मूंगचावल बनते हैं। जिन कायरों के इधर उधर देखते देखते स्वामी पिट गया उन्हें मूंग परोसना वृथा है, मूँग बरबाद करना है। राजशेखर सूरि (संवत् १४०५) के चतुर्विंशतिप्रबंध में यह गाथा रत्नश्रावक प्रबंध में कही गई है जहाँ एक राजकुमार दूसरों की रक्षा के लिये प्राण देने को तैयार होता है। **मुग्गडा**-मूँग, डा के लिए देखो प्रबन्ध (१), **हराविआ,** हारना = वृथा खोना, **परिविठ्ठ**-परिविष्ट, परोसा, **अवरोप्परु**-अवर + उप्पर, नीचे ऊपर, इधर उधर देखते हुए या ऊँच नीच विचारते हुए, दोधकवृत्ति के अनुसार 'परस्पर'। **जोअन्ताहं**-देखो ऊपर (७) जोअन्तिए। **गंजिउ**-गँजना, पिटना, मारा जाना।

(१०३)

वम्भ ते विरला केवि नर जे सव्वङ्ग छइल्ल।

जो वङ्का ते वञ्चयर जे उज्जुअ ते बइल्ल॥

हे बंभा, या बंभ कहता है कि, वे, विरल, कोई भी, नर, (होते हैं), जो, सर्वांग (= सब तरह), छैले, होते हैं, बांके (होते हैं), वे, वंचक (होते हैं), जो, ऋजु (= सीधे), वे, बैल । सब तरह चतुर विरल होते हैं, बांके तो ठग और सीधे बैल । **बंभ-ब्रह्म**, कवि का नाम, प्राकृत पिंगलसूत्र के कुछ उदाहरणों पर किसी किसी टीकाकार ने लिखा है कि बंभ (ब्रह्म) बंदी या भाट के लिये आता है जैसे हरिबंभ अर्थात् हरि नामक बंदी, = ब्रह्मभाट ? **छइल्ल**- देखो (पत्रिका भाग २, पृ० १४८) बंक-वक्र (सं०) युक्ताक्षर की 'न' श्रुति, **वञ्च-यर** 'वञ्चकतर' मानने की ज़रूरत नहीं, अर या अयर कर्तृवाची प्रत्यय है, **उज्जुअ** ऋ की उ-श्रुति ।

(१०४-५)

अन्ने ते दीहर लोअण अन्नु तं भुअजुअलु ।
अन्नु सु घण थणहारु तं अन्नु जि मुहकमलु ॥
अन्नु जि केसकलावु सु अन्नु जि प्राउ विहि ।
जेण निअम्बिणि घडिअ स गुणलायण्णनिहि ॥

अन्य, वे, दीर्घ लोचन, अन्य, वह, भुजयुगल, अन्य, वह, स्तन-भार, वह, अन्य, जी, मुख कमल, अन्य, जी, केशकलाप, वह, (कहाँ तक कहूँ) अन्य, जी, प्रायः, विधि, जिसने, नितम्बिनी (नारी), घड़ी, वह, गुणलावण्यनिधि । **प्राउ** (१०५), प्राइव (१०६), प्राइम्व (१०७), पग्गिम्व (१०८)—प्रायः ।

(१०६)

प्राइव मुणिहंवि भन्तडी तें मणिअडा गणन्ति ।
अखइ निरामइ परमपइ अज्जवि लउ न लहन्ति ॥

प्रायः, मुनियों की (भी), भ्रांति (होती है), वे, मनके, गिनते हैं, अक्षय, निरामय, परमपद में, आज भी, लय, नहीं, लहते । 'मनका फेरत जुग गया' (कबीर), **मणिअडा**- मणिक, मनके 'ड' कुत्सा में ।

(१०७)

अंसुजलें प्राइम्व गोरिअहे सहि उव्वत्ता नयणसर ।
तें सम्मुह संपेसिआ देन्ति तिरिच्छी घत्त पर ॥

अश्रुजल में, प्रायः, गोरी के, हे सखि !, औटे (हैं), नयन-शर, वे, संमुख, संप्रेषित (भले ही हों), देते हैं, तिरछी, घात, पर । अश्रुजल में बुझाए हुए हैं न,—चाल सीधी है पर मार तिरछी । **उव्वत्ता**–उद्वृत्त, उवटे, औटे, । दोधकवृत्ति 'नयन सरोवरों' (!) को अश्रुजल में 'उल्लसित' बताती है ।

(१०८)

ऐसी पिउ रूसेसु हउँ रुट्ठी मइँ अणुणेइ ।
पग्गिम्व एइ मणोरहइं दुक्करु दइउ करेइ ॥

आवेगा, पिय, रूसूंगी, हौं, रूठी (का), मैं (को), अनुनय करेगा (मनावेगा वह) प्रायः, इनको, मनोरथों (को), दुष्करों (को), दयिता, करै । मन के लड्डू खाती है । **एसी**–सं० एष्यति, राज० आसी, **रूसेसु**–प्राकृत मन्तेसु, पुरानी हिंदी हनिसों, राज० करस्युं, गुज० करीश, **दुक्करु**–इस लिये कि पूरा होना वियोग के कारण कठिन है ।

(१०९)

विरहानलजालकरालिअउ पहिउ कोवि बुड्डिवि ठिअओ ।
अनु सिसिरकालि सीअलजलउ धूम कहन्तिहु उट्ठिअओ ॥

विरहानल (की) ज्वाला (से) करालित, पथिक, कोई, डूब कर स्थित (है) नहीं तो शिशिरकाल मे शीतलजल से धुआं कहां तें, उठा ? । जाड़ में पानी पर भाफ़ उठती देख कर उत्प्रेक्षा । **करालिअउ**–करालियो, दग्ध, देखो ऊपर (पत्रिका भाग २, पृ० १५०), **पहिउ**–मारवाड़ पही, 'पावणा पही'=पाहुना और पथिक, **ठिअउ**–ठियो, ठयो, **उट्ठिअउ**–उठियो, ऊठ्यो ।

(११०)

महु कन्तहो गुट्ठट्ठिअहो कउ झुम्पडा बलन्ति ।
अह रिउरुहिरें उल्हवइ अह अप्पणें न भन्ति ॥

मेरे, कंत के, गोष्ठस्थित के, क्यों, झोंपड़े, जलते हैं, या रिपु-रुधिर से, बुझाता है, या, अपने से, न भ्रांति (है इसमें)। कंत 'गोहर' सम्हालते गया है, पीछे शत्रुओं ने झोंपड़े जला दिए, उसकी जात से तो यही उम्मेद है कि मारेगा या मरेगा। **श्रह श्रह** अथ, अथ,-या···या, **गुट्ठ**-गोष्ठ, गुसांई जी का 'गाड गोठ', **उल्हवइ**-उल्हावे, बुझावे।

(१११)

पिय संगमि कउ निद्दडी पिअहो परोक्खहो केम्व ॥
मइं विन्निवि विन्नासिआ निद्द न एम्व न तेम्व ॥

पिय (के) संगम में, कहाँ, नींद, पियके, परोक्ष में, क्यों (कर नींद) ? मैं, दोनों ही (तरह) से, विनाशिता (हुई), नींद, न, यों, न, त्यों। **केम्व, एम्व, तेम्व**-क्यों, यों, त्यों, किमि, इमि, तिमि; केवें, एवें, तेवें (पंजाबी में **एवें** है)। **मइं विन्निवि विन्नासिआ**-दोधकवृत्ति 'मया द्वे अपि विनाशिते' !!

(११२)

कन्तु जु सीहहो उवमिअइ तं महु खंडिउ माणु ।
सीहु निरक्खय गय हणइ पियु पयरक्खसमाणु ॥

कंत, जो, सिंह (का =) से, उपमा दिया जाता है, तो, मेरा, खंडित (होता है), मान, सिंह, बिना रक्षक (के), गज को, हनै पिव, पद-रक्ष समेत (गजों) को (हनता है)। जंगल में हाथी जिन्हें सिंह मारता है नीरक्षक (बिना रखवाले के) होते हैं रणभूमि में उनके पैदल सिपाही रक्षक होते हैं, उन समेत हाथियों को मारनेवाले पिय को सिंह की उपमा देना मेरा मान घटाना है। **उवमिअइ**-उपमीयते (सं०), **पयरक्ख**-पद, पियादा।

(११३)

चंचलु जीविउ ध्रुवु मरणु पिअ रूसिज्जइ काइं ।
होसइं दिअहा रूसणा दिव्वइं वरिससयाइं ॥

चंचल, जीवित, ध्रुव, मरण, (है) पिय, रूसा जाता है, क्यों ?

होंगे, दिवस, रूसने, दिव्य, वर्षशत (की तरह लंबे और असह्य)। **रूसिज्जइ**–रूसीजै, **होसइं**–होशे, होसी, **रूसणा**–दिश्रहा का विशेषण, रूसने (के) दिवस ।

(११४)

माणि पणट्ठइ जइ न तणु तो देसडा चइज्ज ।
मा दुज्जणकरपल्लवेहि दंसिज्जन्तु भमिज्ज ।।

देखो सोमप्रभ (१, पत्रिका, भाग २, पृ० १३९) **माणि पणट्ठइ**-मान प्रनष्ट होने पर (भावलक्षण), **चइज्ज**-छोड़ा जाता है (दोधकवृत्ति), किंतु **भमिज्ज** के साथ से **चइज्ज भमिज्ज** = तजीजै, भ्रमीजै होना चाहिए, **दंसिज्जन्तु**-दिखाया जाता हुआ, दोधकवृत्ति के अनुसार 'दृश्यमान', डसा जाता हुआ, नहीं ।

(११५)

लोणु विलिज्जइ पाणिएण अरि खलमेह म गज्जु ।
वालिउ गलइ सुझुम्पडा गोरी तिम्मइ अज्जु ।।

लोन, विलाता है, पानी से, अरे, खल मेघ ! मत, गरज, हे जलाए गए ! गलता है, झोंपडा, गोरी, भीजती है, आज । सं० लावण्य, हिं० लौन (जैसे 'सलौना' 'नौना' में) नोन, फ़ारसी नमक, सौंदर्य अर्थ में आता है । अमरुकशतक में एक प्रक्षिप्त श्लोक है कि जब से प्रेमपियासे मैंने उस का अधर पान किया तब से तृषा बढ़ती ही जाती है, क्यों न हो, उसमें लावण्य है न ? नमक से प्यास बढ़ती है । उस पर टीकाकार इस कल्पना की ग्राम्यता पर चुटकी लेता है कि वाह कवि क्या है कोई सांभर की खान का खोदनेवाला है ! यहाँ नमक 'पानी पड़ने से गलता है' यही लेकर उक्ति है कि दुष्ट मेघ, मत गरज, झोंपडा गले जाता है, गोरी भीगती है; लवण (लावण्य) बिलाता है, बस कर । **लोणु**-लवण और लावण्य, **विलिज्जइ**-विलीयते (सं०), **वालिउ**-वाल्या (राज०) गाली, दग्ध, **तिम्मइ**-(सं०) तिम्, गीला होना । 'दोधकवृत्ति' दो अर्थ करके भी स्पष्ट नहीं हो सकी ।

(११६)

विहवि पणट्ठइ वंकुडउ रिद्धिहिं जणसामन्नु ॥
किंपि मणाउं महु पिअहो ससि अणुहरइ न अन्नु ॥

विभव प्रनष्ट होने पर, बाँकुरा, रिद्धि में, जन-सामान्य, कुछ कुछ, मेरे पिय का, शशि, अनुहरता (सदृश होता) है, न, अन्य। चंद्रमा क्षीण होता है तो कलाएं बांकी होती है, पूर्ण होता है तो सामान्य गोल और ताराओं का सा, मेरे पिया के सदृश वही है। पिया संपत्ति नष्ट होने पर अकड़ते हैं और संपत्ति में नम्रता से साधारण रहते हैं। **विहवि पणट्ठइ**-भावलक्षण, **वंकुडउ**-बांकुडो बांकुरो, **जण-सामन्नु** जन सामान्य (समास) **मणाउं**-मनाक्, कुछ। दोधकवृत्ति 'सामान्यो लोकः ऋद्धया वक्री स्यात्' 'चन्द्रस्य तारका वक्रा भवन्ति मम प्रियस्य निर्धनस्य अन्ये जना वक्रा भवन्ति' आदि न मालूम क्या क्या लिख गई है।

(११७)

किर खाइ न पिअइ न विद्दवइ धम्मि न वेच्चइ रूअडउ ।
इह किवणु न जाणइ जह जमहो खणेण पहुच्चइ दूअडउ ॥

निश्चय, खाय, न, पिए, न, भी, देवे, धर्म में, न बेचे, रुपया, यहां, कृपण, न, जाने, जैसे. यम का, क्षण से (=में), पहुँचै, दूत। **किर**-किल, **वेच्चइ**-व्ययति (सं०) खर्च करे, इसीसे बेचना, **पहुच्चइ**-प्रभवति (सं०) पहुँचे। **रूअडउ, दूअडउ**-रूपडो, दूतडो, दे० प्रबंध (१)।

(११८)

जाइज्जइ तहिं देसडइ लब्भइ पियहो पमाणु ।
जइ आवइ तो आणिअइ अह वा तं जि निवाणु ॥

जाईजै, उस (में), देसड़े (में), (जहाँ) लभै (मिलै), पिय का, प्रमाण (पता), यदि, आवे, तो, आनिए, अथ वा, वह, जी, निर्वाण (माना जाय)। मिल जाय तो ले आऊँ नहीं तो वहीं शांति मिले। **जि**-पादपूरण।

(११९)

जउ पवसन्तें सहुँ न गयश्र न मुश्र विश्रोएं तस्सु।

लज्जिज्जइ संदेसडा देन्तेहिं सुहयजणस्सु॥

जो, प्रवास करते के, साथ, न, गया (गई) न, मुश्रा (मुई), वियोग में, उसके, (मैं अब) लजाती हूँ, संदेस, देती हुई, सुभग जन के (को)। **पवसन्ते, देन्तेहि**-वर्तमान धातुज। **लज्जिज्जइ**-लजीजै, लजाया जाता है, **दिन्तेहि**-देती हुई (हम) से।

(१२०)

एत्तहे मेह पिश्रन्ति जलु एत्तहे वडवानल आवट्टइ।

पेक्खु गहीरिम सायरहो एक्कवि कणिश्र नाहिं श्रोहट्टइ॥

इत, मेह, पीते हैं, जल, इत, वडवानल, औटता है, पेखो, गंभीरता, सागर की, एक भी, कनी, नहीं, घटता। **एत्तहे ··· एत्तहे**-इते, **आवट्टइ**-आवटै, औटे, **गहीरिम**-(सं०) गंभीरिमा, इमनिच् के लिये देखो (ऊपर पृ० ४०५, पत्रिका भाग २ पृ० १४५,) **कणिश्र**-कणिका, कनी, **श्रोहट्टइ**-अवघटे। दोधकवृत्ति ने अर्थ के पहले 'हे नाथ' लगाया है, मूल में तो यह पद नहीं जान पड़ता, संभव है उसके कर्ता के सामने मूल ग्रंथ रहा हो जिसमें से यह उद्धृत है और वहां 'नाथ' की संगति (context) हो।

(१२१)

जाउ म जन्तउ पल्लवह देक्खउं कइ पय देइ।

हिश्रइ तिरिच्छी हउं जि पर पिउ डम्बरइं करेइ॥

जाओ, मत, जाते हुए का, पल्ला [पकड़ूँ], देखूँ, कै, पद, देता है (आगे), हिए में, तिरछी, हौं, जो, पर, पिय, (आ) डंबर, करै। मैं हृदय में तिरछी, आड़ी, रास्ता रोककर खड़ी हूँ, पिया जाने के आडंबर करते हैं, जाना वाना कुछ न होगा, पल्ला वल्ला मैं नहीं पकड़ती, जाओ, देखें कितने पैंड जा सकता है। **पल्लवह**-पल्ले को ?

(१२२)

हरि नच्चाविउ पङ्गणइ विम्हइ पाडिउ लोउ ।
एम्वहिँ राह पओहरहं जं भावइ तं होउ ॥

हरि, नचाया, (प्र+) आंगन में; विस्मय में, पाडा (डाला) लोक, यों (अब) राधापयोधरों का (=को), जो, भावे, सो, हो । जो ये चाहें सो करें, हरि को तो आंगन में नचा दिया और क्या करेंगे ? **नच्चाविउ**–नचाव्यो, **पाडिउ**–पाड्यो, पातित (सं०), **भावइ**–भावै । दोधकवृत्तकार न मालूम, 'वलिदैत्य ने हरि नचाया' कहाँ से ले आए ।

(१२३)

साव सलोणी गोरडी नवखी कवि विस-गण्ठि ।
भडु पच्चलिउ सो मरइ जासु न लग्गइ कण्ठि ॥

सर्वसलोनी, गोरडी, अनोखी, कोई, विस गाँठ है, भट, प्रत्युत, सो, मरे, जिसके, न लगे, कंठ में । और बिसगाँठ तो गले लगने से मारती है यह न लगे तो मारे इससे अनोखी । **सलोणी**-सला-वण्या (सं०) सलौनी, देखो (११४), **गोरडी**–बिहारी का गोरटी, चोरटी, **नवखी**–सं० नवका (नवकी !) पंजाबी-नौक्खी, (अनौखी) **भडु-भट** देखो प्रबं० (पत्रिका भाग २, पृ० ४७), **पच्चलिउ**–प्रत्युत (हेमचंद्र ८।४।४२०।) । 'अनबूडे बूडे तरे' का भाव है ।

(१२४)

मइं वुत्तउं तुहुं धुरु धरहि कसरेंहि विगुत्ताइं ।
पइं विणु धवल न चडइ भरु एम्वइ वुन्नउ काइं ॥

मैं(ने), उक्त (कहा)–तू, धुर(को), धर (उठा), कसरों से, विगुप्तों (धुरें ?) को, तैं (तुझ), विना, हे धवल !, न, चढै, भर, यों, (तू) खिन्न, क्यों ? **धवल**–धुर उठानेवाला धोरी बैल । अन्योक्ति है कि भार तू उठा, बछड़ों से क्या सरेगा ? **धुर**–आगे का भार, **कसर**–पट्ठे, छोटे बैल, **विगुत्त** ?–न उठती हुई ? **धवल**–जो जिस

जाति में उत्कृष्ट है वह धवल (देखो पत्रिका भाग ७ पृ० २६ तथा ऊपर ४०९-१०) **वुन्नउ**-वुन्नो, विषादयुक्त।

(१२५)

एक्कु कइअ ह वि न आवही अन्नु वहिल्लउ जाहि।
मइं मित्तडा प्रमाणिअउ पइं जेहउ खलु नाहिं॥

एक, कभी, भी, न, आवे, अन्य, जल्दी, जाय, मैं (ने), हे मित्र, प्रमाणित किया, तैं (ने), जैसा, खलु, नहीं। एक कभी आता नहीं, दूसरा जल्दी चला जाता है, मित्र जैसा मैंने पहचाना है वैसा तूने नहीं। अस्पष्ट। यह अच्छा अर्थ होता—एक मित्र तो कभी आता ही नहीं, दूसरा झटपट चला जाता है, हे मित्र, मैंने प्रमाणित किया है कि तुझ जैसा निश्चय कोई भी नहीं। **वहिल्लउ**-शीघ्र।

(१२६)

जिवँ सुपुरिस तिवँ घंघलइं जिवँ नइ तिवँ वलणाइं।
जिवँ डोंगर तिवँ कोट्टरइं हिआ विसूरहि काइं॥

ज्यों, सुपुरुष, त्यों, झगड़ते हैं, ज्यों, नदी, त्यों, वलन (मोड़), ज्यो, डूंगर (पहाड़), त्यों, कोतर (खोह), हे हिया! विसूरता है, क्यों? मित्रता में झगड़े होते ही हैं। **घंघलइं**-धेंधेंलना = झगड़ना, धोंधल होना, **विसूरना**-हिंदी (ऊपर पृ० ४०९)।

(१२७)

जे छड्डेविणु रयणनिहि अप्पउं तडि घल्लन्ति।
तहं संखहं विट्टालु परु फुक्किज्जन्त भमन्ति॥

जो, छोड़ कर, रत्ननिधि (समुद्र) को, अपने को, तट पर, घालते (फेंकते) हैं, उनको, शंखों को, विटाल, पराए, फूंकते हुए, भ्रमते (घूमते) हैं। अपना स्थान छोड़ने से विडंबना होती है। **छड्डेविणु**-छांड कर, पूर्वकालिक, **विट्टालु**-अधम जन (दोषक वृत्ति) अस्पृश्यसंसर्ग (हेमचंद्र), **विटाल**-विगड़ैल, **विटलना** = विगड़ना, **विटालना**- बहकाना, फोड़ना, खराब करना।

(१२८)

दिवेहि विढत्तउं खाहि वढ संचि म एक्कुवि द्रम्मु ।

कोवि द्रवक्कउ सो पडइ जेण समप्पइ जम्मु ॥

दैव से, दिया हुआ, खा, मूर्ख !, संचय कर, मत, एक भी द्रम्म कोई, डर, सो, पडै, जिससे, समाप्त होवे, जन्म । **विढत्त** अर्जित ? (८।४८०), सौंपा, **संचि**–संचना (संचय करना) धातु पुरानी हिंदी और पंजाबी में है, **द्रम्मु**–एक सिक्का, दाम, **द्रवक्कउ**-द्रव को, डर दड़वड़ी ।

(१२९)

एक्कमेक्कउं जइवि जोएदि

हरि सुट्ठु सव्वायरेण

तोवि द्रेहि जहि कहिवि राही

को सक्कइ संवरेवि दड्ढनयणा नेहिं पलुट्टा ॥

एक एक (गोपी) को, यद्यपि, जोहता है, हरि, सुठि, सर्वादर से, तो भी दीठ, जहां, कहीं भी, राधा (है वहीं है) कौन, सके, संवरण करने को, दग्ध नयनों (को), नेह से पलोटों (को) । दोधक-वृत्ति का अर्थ गड़बड़ है । **द्रेहि**-दृष्टि, डीठ, **संवरेवि** (सं०) संवरीतुं, **दड्ढ**-दग्ध, डाढे, नेहि, पाठांतर **नेहें**–नेह से, **पलुट्टा**–लिपटे, भरे ।

(१३०)

विहवे कस्सु थिरत्तणउं जोव्वणि कस्सु मरट्टु ।

सो लेखडउ पट्ठाविअइ जो लग्गइ निच्चट्टु ॥

विभव में, किस का, स्थिरत्व, यौवन में, किसका, मराठापन (अहंकार) है (तो भी) वह, लेख, पठाया जाता है, लगे, जो निचट । नायक का भरोसा नहीं, वैभव मे किस से आशा की जाय कि वह स्थिर रहेगा ? अपने यौवन का भी घमंड नहीं कि वह खिंच ही आवेगा, तो भी खंडिता या प्रोषिता सोचती है कि ऐसा संदेसा भेजूँ जो तीर की तरह चुभ जाय, चैंठ जाय । **थिरत्तणउं**-स्थिरत्व, **लेखडउ**-लेखडो, **निच्चट्टु**-अत्यंत गाढ़ा ।

(१३१)

कहिं ससहरु कहिं मयरहरु कहिं बरिहिणु कहिं मेहु ।

दूरठिआहंवि सज्जणहं होइ असड्ढलु नेहु ॥

कहाँ, शशधर (चंद्र), कहाँ, मकरधर (समुद्र), कहाँ, मोर, कहाँ, मेघ, दूर-स्थितों के भी, सज्जनों के, होय, असाधारण, नेह । **बरिहिणु**-सं० बर्हि, बरहि (तुलसी), **असड्ढलु**-सं० असंस्थुल(?)

(१३२)

कुंजरु अन्नहं तरुअरहं कुड्डेण घल्लइ हत्थु ।

मणु पुणु एक्कहिं सल्लइहिं जइ पुच्छह परमत्थु ॥

कुंजर, अन्यों (पर), तरुवरों पर, कौतुक से, घालै, हाथ, मन, पुनि, एक ही (पर), सल्लकी पर, यदि, पूछो, परमार्थ । **कुड्डु**-कौतुक विनोद, देखो ऊपर (८६) ।

(१३३)

खेड्डयं कयमम्हेहिं निच्छयं किं पयंपह ।

अणुरत्ताउ भत्ताउ अम्हे मा चय सामिअ ॥

खेल, किया (गया), हम से, निश्चय, क्या, प्रजल्पते (कहते) हो (कहें) ? अनुरक्तों (को) भक्तों को, हमें, मत, तज, स्वामी । अनुष्टुभ् छंद । **खेड्डु**-खेल, साडे खेडण दे दिन चार (पंजाबी गीत) पाठांतर में 'अणुरत्ताओ भत्ताओ' है ।

(१३४)

सरिहिं (न) सरेहिं न सरवरेहिं न वि उज्जाणवणेहिं ।

देस रवण्णा होन्ति वढ निवसन्तेहिं सुअणेहिं ॥

सरि(ता)ओं, सरों से, न सरवरों से, न, भी, उद्यानवनों से, देस, रमणीय, होते हैं, मूर्ख, (किंतु होते हैं), (नि) बसते हुए, स्वजनों से । **रवण्ण**-रमणीय, रम्य, **वढ**-देखो (४३,१२८, आदि)

(१३५)

हिअडा पइं एहु बोल्लिअओ महु अग्गइ सयवार ।

फुट्टिसु पिए पवसन्ति हउं भंडय ढक्करि सार ॥

हिअडा ! तैं (ने) यह, बोला, मुझ, आगे, सौ बार, फटूंगा, पिय (के), प्रवास करते (ही), हीं, हे भंड, हे अद्भुत ढढ़तावाले !, (अब तो तू नहीं फटा !) **हिअडा**-हे हिय, **पइं**-मध्यमपुरुष, **फुट्टिसु**-फूटियों, **पिएपवसन्ति**-भावलक्षण. **भंडय**-पाखंडी, **ढक्करिसार**-ढकर गया, निकल गया, है सार, बल जिसका। अर्थात् छूछा (दोधकवृत्ति) किंतु अद्भुत सार (हेमचंद्र) ॥

(१३६)

एक कुडुल्ली पंचहिं रुद्धी
तहं पञ्चहं वि जुअंजुअ बुद्धी ।
बहिणुए तं घरु कहिं किव नन्दउ
जेत्थु कुडुम्बउं अप्पण-छन्दउं ॥

एक, कुटी, (शरीर) पांच (इंद्रियों) से, रूंधी गई (रुकी), तिन्ह, पांचों की, भी, जुदी जुदी! बुद्धि (है), बहन! वह, घर, कह, किमि, नन्दे (प्रसन्न हो), जहां, कुटुम्ब, आप-छंदा (हो) ? **कुडुल्ली**-कुटी का कुत्सा या अल्पार्थ, **जुअंजुअ**-जुगजुग, न्यारी न्यारी, **अप्पणछन्द**-आपमुहारा, अपने अपने मत के, "असम पूजते देहरा भूतपूजिनी जोय। एकै घर में दो मता कुसल कहाँ ते होय"।

(१३७)

जो पुणि मणि जि खसफसिहूअउ चिन्तइ देइ न दम्मु न रूअउ ।
रइवसभमिरु करग्गुल्लालिउ घरहिं जि कोन्तु गुणइ सो नालिउ ।

जो, पुनि, मनही में, घुमफुसाता हुआ, गिनता है, देय, न, दम्म, न, रुपया, रतिवस (से) भ्रमण करनेवाला, (वह) कराग्र-उल्लालित, घर में ही, जी, कुंत, गुणता है, वह, मूर्ख ॥ जो सदा व्याकुल रहे, पैसा न खरचै, वह घर बैठे ही भाला घुमाया करता है, मन के लड्डू फोड़ता है। **खसफसिहूअउ**-व्याकुल, **दम्मु**-द्रम्म सिक्का, दाम, **रूअउ**-रूपक, चाँदी का सिक्का **रइ**-रति, मन की लहर, **भमिरु**-भरमता हुआ, **उल्लालिउ**-उल्लालित, **कोन्तु** कुँत, भाला, **गुणइ**-गुणै, **नालिउ**-दुर्लालित, दुर्ललित, मूढ़ ।

(१३८)

चलेहिं चलन्तेहि लोअणहिं जे तइं दिट्ठा बालि।
तहिं मयरद्धय दडवडउ पडइ अपूरइ कालि॥

(चं)चलों से, चलते हुओं से, लोचनों से, जो, तैं (ने), दीठे, हे बाले! उन पर, मकरध्वज (कामदेव), दड़वड़ा कर, पड़े, अपूरे (ही), काल में, या (दोधक वृत्ति के अनुसार) उनपर मकरध्वज का दड़वड़ा (धाड़ा) पड़ता है अपूरे काल में ही। उन पर दिन दहाड़े डाका पड़ता है, वे बेमौत मारे जाते हैं, जिन्हें तैंने चंचल नयनों से देखा। **दडवडउ**—अच(! व)स्कंदं कटकं धाटी (दोधकवृत्ति) धाड़ा, **अपूरइ कालि**—अपूर्णे काले।

(१३९)

गयउ सु केसरि पिअहु जलु निच्चिन्तइं हरिणाइं।
जसु केरएं हुंकारडएं मुहहुं पडन्ति तृणाइं॥

गया, वह, केसरी, पिओ, जल, निश्चिंत, हरिण, जिसके, केरे, हुंकार से, मुँह से (तुम्हारे), पड़ते हैं, तृण। जिसके हुंकार के सुनते ही मुंह से तृण पड़ जाया करते हैं वह सिंह गया, अब निःशंक जल पिओ। **जसु केरएं**—ध्यान दीजिए कि **जसु** (यस्य) में षष्ठी की विभक्ति **सु** या उ अलग है, केरएं विशेषण की तरह 'हुंकारए' से लगन रखता है, केर विभक्ति नहीं है जिसे 'जसु' से सटाया जाय। **जसु केरएं हुंकारडएं**—यस्य केरकेण हुंकारेण; केर = केरा। यह 'का की के' का बाप कहा जाता है किन्तु यह स्वयं ही विभक्ति नहीं है और न सट सकता है। फिर इसके बेटे पोते कैसे सटाए जा सकते हैं? इससे मिलता एक मारवाड़ी प्रसिद्ध दोहा है—

जिण मारग केहरि वुवो रज लागी तिरणांह।
ते खड़ ऊभी सूखसी नहिं खासी हरिणांह॥

(जिस मार्ग से सिंह गया रज लगी तृणों को वे खड़े ही खड़े सूखेंगे हरिण नहीं खावेंगे)

(१४०)

सत्थावत्थहं आलवणु साहुवि लोउ करेइ ।
आदन्नहं मब्भीसडी जो सज्जणु सो देइ ॥

स्वस्थावस्थों का (से), आलपन, सब ही, लोग, करे, आर्तों को 'मत डर' ऐसी अभयवाणी, जो, सज्जन (हो), वही, दे । **आलवणु**—आलपन, बातचीत (देखो ४८) **साहु**—सहु, सब, सौ, **आदन्नह**—? आपन्नहं, आपन्नों, आर्तों को, **मब्भीसडी**—मत डर, 'मा भैषीः' इस वाक्य से बनाई हुई संज्ञा, स्वार्थ में 'डी' ।

(१४१)

जइ रचसि जाइट्ठिअए हिअडा मुद्धसहाव ।
लोहें फुट्टणएण जिवं घणा सहेसइ तवि ॥

यदि, रचता है, तू, जो दीठा उसी में, हे हिय !, मुग्धस्वभाव ! लोहे से, फूटनेवाले से, ज्यों, घने, सहे जायँगे, ताप (तुझ से) । (या सहेगा ताप तू) जो दीखा उसी में रमने लगेगा तो टूटनेवाले लोहे की तरह घड़ी घड़ी खूब तपाया जायगा तब कहीं एक जगह जम कर प्रेम करने में दृढता सीखेगा। **रच्चसि**-रचता है, प्रेम करता है, **जाइट्ठिअए**-जो जो + दीठा उसी उसी में, **फुट्टणएण** फूटनेवाले से, **सहेसहि**-कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य का धोखा होता है ।

(१४२)

मइं जाणिउं बुड्डीसु हउं प्रेमद्रहि हुहुरुत्ति ।
नवरि अचिन्तिय संपडिय विप्पिय नाव झडत्ति ।

मैं (ने), जान्यो (जाना), बूडूंगी, हौं, प्रेमदह में, हुहुर यों, न पर, अचिंतित आपतित हुई (आ पड़ी), विप्रिय (रूपी), नाव, झट । प्रेम इतना था कि मैं दह के समान उसमें डूब जाती किंतु उसमें से मुझे बचाने को विप्रियरूपी नाव झटपट मिल गई। **बुड्डीसु**-बूडूँगी, देखो (पत्रिका भाग २, पृ. ३४) **हुहुरुत्ति**-अनुकरण, डूबते समय साँस के बुलबुले उठने का, या घबराने का, **नवरि** संस्कृत छायावालों का 'केवल' ही नहीं, वरन, **संपडिय**-संयोग

से आ गई, **विप्पियगाव**-'विप्रिय रूसना या वियोग बेड़ा' । (हेमचन्द्रकृति) ।

(१४३)

खज्जइ नउ कसरक्केहिं पिज्जइ नउ घुण्टेहिं ।
एवइ होइ सुहच्छडी पिएं दिट्ठे नयणेहिं ॥

खाया जाता है, न तो, कसरकों से, पीया जाता है, न तो, घूँटों से, योंही, होय, सुखस्थिति, पिय, दीठे (पर), नयनों से । खाने पीने की सी तो तृप्ति नहीं होति किंतु कोई अनिर्वचनीय सुख मिलता है । **खिज्जइ**-खाईजे, **पिज्जइ**-, पीईजे कर्मवाच्य, **कसरक्क**-बड़े बड़े ग्रास, डचके, (देखो पृष्ट ४०२) **एम्वइ**-यों ही या ऐसा होने पर भी (दो० वृ०) **सुहच्छडी**-(सुख + अस्ति) पना, 'डी' से नाम बनाया गया (दे० ३७, ६१, १४०) या सुखाशा (दो० वृ०), **नपिएं दिट्ठें**-भावलक्षण ।

(१४४)

अज्जवि नाहु महुज्जि घर सिद्धत्था वन्देइ ।
ताउंजि विरहु गवक्खेहिं मक्कडुघुग्घिउ देइ ॥

आज भी (अभी), नाथ, मेरे ही, घर, सिद्धार्थों को, बंदना करता है, तो भी, विरह, गवाक्षों (जालियों) में से बंदर घुड़की, देता है । *अभी नाथ परदेस गए नहीं हैं, घर ही में हैं, यात्रा काल के मंगल द्रव्यों को सिर से लगा रहे हैं । तो भी विरह समझ गया है कि मेरा मौका आ गया । अभी वह सदर दरवाजे से तो घुस नहीं सकता, जाली के मोखों में से मानो बंदरघुड़की दिखा रहा है ।* **अज्जवि, महुज्जि, ताउंजि**-में वि और जि कितना जोर दे रहे हैं । **सिद्धत्थ**-सिद्धार्थ पीली सरसों मंगल शकुन, **गवक्ख**-गवाक्ष (सं०) पुरानी चाल की जालियों के छेद बिलकुल गौ की आँख के से ही होते हैं इसी से हिंदी **गोखा**-दरवाजे पर का अरोखा, **मक्कडघुग्घि**-बंदरघुड़की, घुग्घिउ = चापल्य (!) (हेमचन्द्रकृति) ।

(१४५)

सिरि जरखण्डी लोग्रडी गलि मणिग्रडा न वीस ।
तो वि गोट्ठडा कराविश्रा मुद्धए उट्ठबईस ॥

सिर पर, जीर्ण, लोई गले में, मनके, न, बीस, तो भी, गोठ के निवासी (युवक), कराए, मुग्धा ने, ऊठबैठ। सिंगार की पूँजी तो यही है कि पुरानी कमली और गले में पूरे बीस मनकों की माला भी नहीं, तो भी लावण्य ऐसा है कि गाँवभर के छैलों को ऊठकबैठक करा रही है। **जरखण्डी**-जीर्ण और खंडित, **लोग्रडी**-लोई, कंबल, **मणिग्रडा**-कुत्सा का 'ड' **गोट्ठडा**-गोठ के लिये देखो ११० गांव के बाहर गोस्थान जहाँ युवक ही इकट्ठे होते हैं, **गोट्ठडा**-वहाँ के निवासी, **उट्ठबईस**-गुजराती बैसना = बैठना।

(१४६)

अम्मडि पच्छायावडा पिउ कलहिअउ विग्रालि ।
घइं विवरीरी बुद्धडी होइ विणासहो कालि ॥

अम्मा! पछतावा (है), पिया, कलहित किया, रात्रि में, अवश्य, विपरीत, बुद्धि, होय, विनास के, काल में। मान करके पछताती है। **अम्मडि-बुद्धडी**-स्वार्थ में डी, या अनुकंपा में, **पच्छायावडा**-यहाँ भी पश्चात्ताप के आगे डा है, **कलहिअउ** कलहिओ, कलहापित: (देखो पत्रिका भाग १ पृ०५०७) **विग्रालि**-देखो कुमार० (१८, पत्रिका भाग २ पृ० १४४), ऊपर (६२), **घइं** हेमचंद्र ने अनर्थक कहा है, पादपूरण या अवधारण अर्थ है।

(१४७)

ढोल्ला एह परिहासडी अइ भण कवणहिं देसि ।
हउं झिज्जउं तउ केहिं पिअ तुहुं पुणु अन्नहि रेसि ॥

ढोला!, यह, परिहास, ऐ! कह, किस में, देश में (है)? मैं, छीजूँ तेरे लिये, पिय!, तू, पुनि, अन्य के लिये। मिलाओ (५५)। यह कौन से देश की चाल है? **ढोल्ला** देखो (१) **परिहासडी**-मज़ाक, हँसी, या परिभाषा (दोषकवृत्ति), **अइभण**

दोधकवृत्ति एक शब्द मान कर अर्थ किया है अत्यद्भुत ! हेमचंद्र में भी 'अइव न' प्रधान पाठ माना है। झिज्जउं–झीजना, झीना होना, सूखना, तउकेहि-तेरे लिये, रेसि–वास्ते (हेमचंद्र ८।४।४२५)।

(१४८)

सुमिरिज्जइ तं वल्लहउं जं वीसरइ मणाउं।

जहिं पुणु सुमरणु जाउं गउ तहो नेहहो कइं नाउं॥

सुमरा जाय, वह, वल्लभ, जो, बिसरै, मन से, जिसका, पुनि, सुमरन, यदि, गया, उस(का), नेह का, क्या, नाम ?। जिसे भूलें उसे तो याद करें, और जिसका स्मरण चला जाय (भूल जाय) उसके नेह का नाम ही क्या ? कुछ नहीं। जिसका नेह है वह कभी भूला नहीं जा सकता और उसके स्मरण की ज़रूरत नहीं। सुमरिज्जइ–सुमरीजे, मणाउ–मनाक (दोधकवृत्ति), मन से, जाउं–यदि, कइं नाउं–काई नांव ? (जयपुरी)।

(१४९)

जिब्भिन्दिउ नायगु वसि करहु जसु अधिन्नइं अन्नइं।

मूलि विणट्ठइ तुंबिणिहे अवसें सुक्कइं पण्णइं॥

जीभ–इंद्रिय को, हे नायक ! वश करो, जिसके, अधीन, अन्य (इंद्रिय) (हैं), मूल (में) विनष्ट (में) होने पर, तूँबी के, अवश्य, सूखें, पान। मूलि विणट्ठइ-भावलक्षण, तुंबिणि-तुंबिनी, तूँबी, सुक्कइं–सुकैं।

(१५०)

एकसि सीलकलंकिअहं देज्जहिं पच्छित्ताइं।

जो पुणु खंडइ अणुदिअहु तसु पच्छित्तें काइं॥

एक बार, शीलकलंकित (करनेवालों) को, दिए जाते हैं, प्रायश्चित्त, जो, पुनि, खंडित करै (शील को), अनुदिवस, उसके, प्रायश्चित्त से, क्या ? एक्कसी-एक बार के अर्थ में, एकशः, मारवाड़ी एकरस्यां, एकरवां, देज्जहिं–दीजै, खण्डइ-खण्डै, अणुदिअहु-दिन दिन।

(१५१)

विरहानलजालकरालिअउ पहिउ पन्थि जं दिठ्ठउ ।
तं मेलवि सव्वहिं पन्थिअहिं सो जि किअउ अग्गिठ्ठउ ॥

विरहानल ज्वालाओं से करालित, पथिक, पंथ में, जो, दीठा, उसे, मिलकर सब (ने), पंथियों ने, सो, जी, किया, अँगीठा । विरह-ताप की अधिकता की अतिशयोक्ति, मिलाओ (१०६) । दोधकवृत्ति शायद यह अर्थ करती है कि पथिकों ने उसका अग्नि-संस्कार कर दिया 'अग्निष्ठः कृतः' । **मेलवि**-मिल कर, या रखकर **अग्गिट्ठउ**—अँगीठो, स्त्री० अँगीठी, अनुस्वार के लिये देखो पत्रिका भाग २ पृ० ४० ।

(१५२)

सामिपसाउ सलज्जु पिउ सीमासंधिहिं वासु ।
पेक्खिवि बाहुबलुल्लडा धण मेल्लइ नीसासु ॥

स्वामि (का) प्रसाद, सलज्ज, पिय, सीमासंधि में, वास, पेख कर, बाहुबलोल्ललित (पिय का), नायिका, छोड़ती है, निःश्वास । राजा की कृपा जिससे वह कभी छुट्टी न दे और कठिन कामों पर ही भेजे, पिया संकोची कि काम के लिए नाहीं न करे न छुट्टी माँगे, रहना सीमा पर जहाँ नित नए झगड़े हों, और बाहुबल से गर्वीला पिय कि आगे होकर झगड़ा मोल ले—बेचारी इतने कारणों से विरह के अंत का संभव न जानकर उसासें भरती है । **बाहुबलुल्लडा** बाहु + बल + उल्लल, उल्लट, या 'बाहु' का विशेषण 'बलुल्लड'=बल दर्प से भरे बाहु (पिय के, देखकर), धण-देखो (१, ७०,) **मेल्लइ**-रक्खै, छोड़ै, मेलै ।

(१५३)

पहिआ दिठ्ठी गोरडी दिठ्ठी मग्गु नियन्त ।
अंसूसासेहिं कञ्चुआ तिंतुव्वाण करन्त ॥

पथिक ! दीठी, गोरी ? (हाँ) दीठी, मग (को), देखती (हुई), आँसू (और) उसासों से, कंचुक को, गीला सूखा, करती (हुई) ।

आँसुओं से गीला और उसासों से सूखा, (८०) या विहुव्वाय= तन्तुजाल ताना बाना, आँसुओं का ताना, उसासों का बाना। **गोरडी**—देखो (८२, १२३) 'डी' (१४०), **निअन्त-देखती**, **तिंतुव्वाय**—तीमा, तिमित=गीला. देखो तिम्मइ (११५)।

(१५४)

पिउ आइउ सुअ वत्तडी—झुणि कन्नडइ पइट्ठ।
तहो विरहहो नासन्तअहो धूलडिआवि न दिट्ठ॥

पिय, आयो, (इस) शुभ, वार्ता (की) ध्वनि, कान में, पैठी उस(की), विरह की, भागते (की), धूल भी, न, दीठी। ऐमा भागा कि खोज तक न मिले, लंगोटी भी हाथ न आई। **वत्तडी, कन्नडइ धूलडिआ**-अब 'डी' या 'ड' पर लिखना व्यर्थ है। **नासन्त**-नश्यन् (सं०) नष्ट होना, अदर्शन होना, भागना, पंजाबी **न्हस्**-भागना।

(१५५)

संदेसें काइं तुहारेण जं संगहो न मिलिज्जइ।
सुइणन्तरि पिएं पाणिएण पिअ पिआस किं छिज्जइ॥

संदेसे से, क्या, तुम्हारे से, जो, संग से, न, मिलीजै, स्वप्नांतर में, पिए (हुए) से, पानी से, पिय ! प्यास, क्या, छीजे ? केवल संदेश से क्या ?

(१५६)

एत्तहे तेत्तहे वारि घरि लच्छि विसण्ठुल धाइ।
पिअपब्भट्ठव गोरडी निच्चल कहिंवि न ठाइ॥

इधर तिधर, द्वार (और) घर में, लक्ष्मी, विसंस्थुल, धाय (=दौड़ी फिरती है), प्रिय-प्रभ्रष्ट, इव, गोरी, निश्चल, कहीं भी, न, ठवे (स्थित होती, टिकती है)। लक्ष्मी की चंचलता की वियोगिनी की बौखलाहट से उपमा। **वारि घरि**-घर द्वार, घर बार, **पब्भट्ठ**-प्रभ्रष्ट (सं०) भटकी, चूकी।

(१५७)

एउ गृण्हेप्पिणु ध्रुं मइं जइ प्रिउ उव्वारिज्जइ।
महु करिएव्वउं किंपि णवि मरिएव्वउं पर देज्जइ॥

यह, ग्रहण करके, जो, मैं, (=मुझ से) यदि, पिय, उबारा जाय, (तो) मेरा, कर्तव्य, कुछ, भी, नहीं, (रहे) *मरना, पर, दिया* जाय। यदि यह लेकर मेरे पिय का उद्धार होजाय तो मेरा कर्तव्य कोई बाकी नहीं रहता मैं चाहे अपना मरण दे दूँ (मरण भी सह लूँ)। दोधक वृत्ति के अनुसार "किसी सिद्ध पुरुष ने विद्यासिद्धि के लिये धन आदि देकर नायिका से बदले में पति माँगा तो वह कहती है कि यदि यह लेकर पति उद्धर्त्यते-त्यज्यते-बदले में दिया जाय तो मेरा कर्तव्य कुछ नहीं है केवल मरना दे सकती हूँ" (चाहे मेरे प्राण ले लो पति को न दूँगी)। **गृण्हेप्पिणु**-पूर्वकालिक, ध्रुं-देखो (४१), **उव्वारिज्जइ**-(१) उबारा जाय, (२) बटाया जाय ? देखो ऊपर टीका, **करिएव्वउं, मरिएव्वउं**-करबो, मरबो (राज०), करवुं, मरवुं (गुजराती), कर्तव्य, मर्तव्य (सं०)।

(१५८)

देसुच्चाडणु सिहिकढणु घणकुट्टणु जं लोइ।
मंजिट्ठए अइरत्तिए सव्व सहेव्वउं होइ॥

देश (से) उचाटा जाना, शिखि (आग) पर कढना (काढ़ा जाना). घना कुटना, जो लोक में (अति दुःखदायक भयंकर दंड हैं वे) मंजीठ से, अतिरक्त से, सब, सहना, होय। रक्त=(१) लाल (२) अनुराग में पगा हुआ। मंजीठ देसनिकाला, आग पर कढना, घनी कुटाई सहती है, यह 'रक्त' होने का फल है। **सहेव्वउं**-सहबो, *सहितव्य।

(१५९)

सोएवा पर वारिआ पुप्फवईहिं समाणु।
जग्गेवा पुणु को धरइ जइ सो वेउ पमाणु॥

सोना, पर, वारित किया गया (है), पुष्पवतियों के साथ, जागने को, पुनि कौन, धरता है (पकड़ता) है, यदि, सो, वेद, प्रमाण (है)। किसी शोहदे की उक्ति। जिस वेद में 'साथ सोने' की मनाई है यदि वही प्रमाण हो तो 'साथ जागने' को कौन रोकता है? **सोएवा आगेवा**-सोवो, जागवो, **वारिश्रा**-वारित, **पुप्फवई** पुष्पवती, रजस्वला, पुष्प का उपचार हिंदी तक आया है क्योंकि प्रथम रजोदर्शन को फुलेरा कहते हैं। मिलाओ गाथा—

लोओ जूरइ जूरउ वश्रणिज्जं होइ होउ तं णाम।
एइ णिमज्जसु पासे पुप्फइ ण एइ मे णिद्दा॥

(सरस्वती कंठाभरण ३। २६)

(लोग खिझें, खिझें, वचनीय (निंदा) हो तो होने दो, आ, पास लेट जा, पुष्पवती! मुझे नींद नहीं आती)

(१६०)

हिअडा जइ वेरिअ घणा तो किं अब्भि चडाहुं।
अम्हाहिं बे हत्थडा जइ पुणु मारि मराहुं॥

हे हिय! यदि, वैरी, घने (हैं) तो, क्या, आकाश में, चढ़ें? हमारे (भी) तो, दो, हाथ (हैं), यदि, पुनः, मार कर, मरें। अब्भि-अभ्र में, शत्रुओं से बचने के लिये धरती छोड़ आकाश को चले जायँ क्या? दो हाथ तो हैं, मार कर मरेंगे।

(१६१)

रक्खइ सा विसहारिणी बे कर चुम्बिवि जीउ।
पडिबिंबिअमुंजालु जलु जेहिं अडोहिउ पीउ॥

रक्खे वह विष (=पानी) हारिणी, दो, कर, चूम कर, जीव (अपना), प्रतिबिंबित-मूंज-वाला-जल, जिनसे, पिलाया, पिया को। कहीं ताल के तीर पर मिलन हुआ था। किनारे पर मूँज उग रही थी। उसकी पानी में परछाई पड़ रही थी। पिया ने उसके हाथों से जल पिया था, फिर मिलना नहीं हुआ। नायिका उन हाथों को चूम चूम कर ही जीवित रह रही है। विष-जल संस्कृत में भी

अप्रयुक्त है, यदि बिस (कमल की नाल) लानेवाली अर्थ करें तो अच्छा हो क्योंकि कमलनाल का मूल वहाँ रहता है जहाँ जल में मुंज का प्रतिबिंब पड़ा था इस लिये कमलनाल तोड़ते समय सब स्मरण आता रहता है । बे-दोधक वृत्ति कदाचित 'जेहि' के नित्य-संबंध से इसे वर्तमान हिंदी का 'बे' मानती जान पड़ती है, चुम्बिवि-पूर्वकालिक मुंजालु-'आला' प्रत्यय 'वाला' अर्थ में, अडोहिउ-पिया, पिलाया ।

(१६२)

बाह विछोडवि जाहि तुहुं हउं तेवँइ को दोसु ।
हिअयट्ठिउ जइ नीसरहि जाणउं मुंज सरोसु ॥

देखो प्रबंध चिंतामणि वाला लेख, पत्रिका भाग २ पृ० ४४ । दोधक वृत्ति 'मुंजो भूपतिः सरोषः' कह कर यही अर्थ करती है कि नायिका नायक मुंज से कह रही है ।

(१६३)

जेप्पि असेसु कसायबलु देप्पिणु अभउ जयस्सु ।
लेवि महव्वय सिवु लहहिं झाएविणु तत्तस्सु ॥

जीतकर, अशेष, कषायबल, देकर, अभय, जगत का (को) लेकर, महाव्रत, शिव. पाते हैं, ध्यान कर; तत्व का (को) । **जेप्पि, देप्पिणु, लेवि, झाएविणु**-पूर्वकालिक, **कसाय**-कषाय, मल, क्रोधादि, **सिव**-मोक्षपद ।

(१६४)

देवं दुक्करु निअय धणु करण न तउ पडिहाइ ।
एम्वइ सुहु भुञ्जणहं मणु पर भुञ्जणहि न जाइ ॥

देना, दुष्कर, निजक-धन, करना, नहीं, तप, (प्रति) भावा, यों, सुख, भोगने का, मन (है), पर, भोगने को (= भोगा), न, जाता । **देवं**-(पाठा० देवें) देवो, देवुं (गुज०), **भुञ्जण**-भोजन, **भुञ्जणहि न जाइ**-'भोगा नहीं जाता' भोक्तुं न याति (दोधकवृत्ति) नहीं ।

(१६५)

जेप्पि चएप्पिणु सयल धर लेविणु तवु पालेवि ।
विणु सन्तें तित्थेसरेण को सक्कइ भुवणेवि ॥

जीतना, त्यागना, सकल, धरा को, लेना, तप, पालना, विना, शांति (नाथ), तीर्थंकर से (= को), कौन, सकै, भुवन में भी ? जेप्पि, चएप्पिणु, लेविणु, पालेवि, क्रियार्था क्रिया सं० तुम । ये रूप पूर्वकालिक क्रिया के रूपों से मिलते हैं ।

(१६६)

गंप्पिणु वाणारसिहिं नर अह उज्जेणिहिं गंप्पि ।
मुआ परावहिं परमपउ दिव्वन्तरहिं म जम्पि ॥

जा कर, बनारस में, नर, अथ (वा), उज्जयिनी में, जाकर, मुए (लोग), प्राप्त होते हैं, परम पद, दूसरे स्वर्गों को (= की बात), मत, कह । गंप्पिणु, गंप्पि-पूर्व कालिक, वाणारसी या बाराणसी-देखो पत्रिका भाग २ पृ० २७७-८, परावहिं-प्रापैं, दिव्वंतर-अन्य दिव, दूसरे लोक, परमपद ही मिल जाता है तो और स्वर्ग आदि की बात ही क्या, तीर्थान्तर (!) (दो० वृ०), जंप-जल्प (सं०), इसमें 'इ' केवल छंद के लिये लगा है ।

(१६७)

गंग गमेप्पिणु जो मुअइ जो सिवतित्थ गमेप्पि ।
कीलदि तिदसावास गउ सो जमलोउ जिणेप्पि ॥

गङ्गा, आ कर, जो, मुए (मरे), जो, शिवतीर्थ (काशी), जाकर, खेलता है, त्रिदशावास, गया, वह, जमलोक, जीतकर । गमेप्पिणु, गमेप्पि, जिणेप्पि-जाकर जीत कर, कीलदि-क्रीडति (सं०), तिदसावास-त्रिदश (देव) आवास, गउ-गयो ।

(१६८)

रवि अत्थमणि समाउलेण कण्ठि विइण्णु न छिण्णु ।
चक्कें खण्ड मुणालियहे नउ जीवग्गलु दिण्णु ॥

रवि (के) अस्तमन में, समाकुल ने, कंठ में दिया, न, छीना

(=काटा, दाँतों से) चक्क (चाक) ने, खंड, मृणालिका का, नाई जीवार्गला दीना। चक्रवाक ने मृणाल का कौर मुँह में लिया कि सूर्यास्त होगया। वियोग का समय आया। बेचारे ने कौर काटा भी नहीं, मुँह में डाल लिया, मानो वियोग में जीव न निकल जाय इसलिये अर्गला, (आगल, अरगड़ा) दे दी। **अत्थमणि**-देखो पत्रिकाभाग २ पृष्ठ ५६। **विइण्णु**-वितीर्ण, **चक्कें**-कर्मवाच्य का कर्ता जैसे मैं, तैं (मइं, तइं), 'ने' वृथा है, पंजाबी राजें=राजा ने। **नउ**-उपमावाचक, देखो (५), **जीवग्गलु**= जीव + अर्गला। संस्कृत के इस श्लोक का भाव है—

मित्रे क्वापि गते सरोरुहवने बद्धानने ताम्यति
क्रन्दत्सु भ्रमरेषु जातविरहाशङ्कां विलोक्य प्रियाम्।
चक्राह्वेन वियोगिना बिसलता नास्वादिता नोज्झिता
कण्ठे केवलमर्गलेव निहिता जीवस्य निर्गच्छतः ॥

(सुभाषितावलि सं. ३४८३, पीटर्सन)

(१६९)

वलयावलि-निवडण-भएण धण उद्धब्भुअ जाइ।
वल्लहविरह-महादहहो थाह गवेसइ नाइ ॥

वलयावलि (के) निपतन (के) भय से, नायिका, ऊर्ध्वभुज, जाय (जाती है), वल्लभ (के) विरह (रूपी) महा दह की, थाह, ढूँढ़ती है, मानो। वियोग में दुबली होगई है। चूड़ियाँ गिर न जायँ इस लिए बाहें ऊँची करके जाती है। मानों प्रिय के विरह के महादह की थाह ढूंढ रही है, नहीं पाती। जो गहरे पानी की थाह लेना चाहता है वह सिर पर हाथ ऊँचे कर लेता है कि पानी सिर से ऊँचा है। **उद्धब्भुअ**-ऊर्द्ध + भुज, **धण**-देखो (१), **दह** (सं०)-हृद का व्यत्यय, मिलाओ काली-दह, **गवेसइ**-सं० गवेषयति, **नाइ**-नाईं, देखो (५)।

(१७०)

पेक्खेविणु मुहु जिणवरहो दीहरनयण सलोणु।
नावइ गुरुमच्छरभरिउ जलणि पवीसइ लोणु ॥

पेख कर, मुँह, जिनवर का, दीर्घ नयन (वाला) सलोना, मानो, गुरुमत्सरभरित, ज्वलन (आग) में, प्रविशै, लावण्य ! इतना सुंदर मुख है कि लावण्य, मत्सर से भरा, आग में कूद पड़ता है। सुंदरता पर दीठ न लग जाय इसलिये "राई नौन" आग में डालते हैं। **लोअ**-देखो (११५), **नावइ**-मानो, नाई। देखो (५)।

(१७१)

चम्पयकुसुमहो मज्झि सहि भसलु पइट्ठउ।
सोहइ इन्दनीलु जणि कणइ वइट्ठउ ॥

[हिंदी-सम = चंपक-कुसुमहिं मांझ सहि भँवर पैठो।
सोहै इन्द्रनील जनु कन(क) हिं बैठो ॥]

(१७२)

अब्भा लग्गा डुङ्गरहिं पहिउ रडन्तउ जाइ।
जो एहा गिरिगिलणमणु सो किं धणहे धणाइ ॥

अभ्र (= मेघ), लागे, डूंगरों पर, पथिक, रटता हुआ, जाय (= जाता है कि), जो, ऐसा, गिरियों (को) (नि) गलने (के) मन (वाला) (मेघ है), वह, क्या, नायिका को, बचावेगा ? पहाड़ों पर मेघ देखकर वियोगी समझता है कि ये पहाड़ों को निगलेंगे, वह पुकार उठता है कि जिनका ऐसा हौसला है वे क्या बेचारी वियोगिनी को छोड़ेंगे ?

अब्भा-अभ्र, **रडन्तहु**-रडन्तां, पंजाबी रड्याना = पुकारना, **धण**-देखो (१), **धणाइ**-दोधकवृत्ति में 'धनानि इच्छति' = धन चाहता है !! **धणी** = धनी = स्वामी, उससे नामधातु **धणाइ** = धनाता है, 'धणी' पन करता है (आचार क्विप्) अर्थात् स्वामित्व दिखाता, रक्षा करता, बचाता है। राजस्थानी **धणियाप**-धणीपन, स्वामित्व।

(१७३)

पाइ विलग्गी अंत्रडी सिरु ल्हसिउं खन्धस्सु।
तोवि कटारइ हत्थडउ बलि किज्जउँ कन्तस्सु ॥

पाँव में, (वि) लगी, आँत, सिर, लहसा (झुक गया) कंधे पर, तो भी, कटार पर, हाथ, बलि, की जाऊं, कन्त की। वीरता की पराकाष्ठा। **लहसिउ**-लहसियो, **हत्थडउ**-हत्थडो, **बलि किज्जउं**-बलि जाऊँ, **किज्जउं**-कीजौं, **खन्धस्सु**-कंधे का = पर।

(१७४)

सिरि चडिआ खन्ति प्फलइं पुणु डालइं मोडन्ति।
तो वि महद्दुम सउणाहं अवराहिउ न करन्ति॥

सिर पर, चढ़े, खाते हैं, फलों को, पुनि, डालों को, मोडते (तोडते) हैं, तो, भी, महाद्रुम, शकुनों (पक्षियों) को, अपराधी न, करते हैं। महापुरुषों की क्षमा। **मोडन्ति**-सं० मोटयन्ति, तोड़ना फोड़ना। 'शकुनियों का अपराध (बिगाड़) नहीं करते' (दोधक वृत्ति)

(१७५)

सीसु सेहरु खणु विणिम्मविदु, खणु कंठि पालंबु किदु, रदिए विहिदु खणु मुंडमालिए जं पणएण तं नमहु कुसुमदामकोदण्डु कामहो।

यह गद्य इस बात का उदाहरण दिया है कि अपभ्रंश में शौरसेनी की तरह कुछ काम होता है। और कुछ खंड और एक गाथा इस लिये दिए गए हैं कि अपभ्रंश में व्यत्यय और कई प्रयोग संस्कृत के से होते हैं। उन अवतरणों को यहाँ देने का कोई प्रयोजन नहीं। इस गद्य का अर्थ यह है—सीस पर शेखर क्षण (भर के लिये) विनिर्मित क्षण (में) कंठ में प्रालंब (लंबी माला) कृत, रति ने विहित क्षण में मुंडमालिका में जो प्रणय से, उसे नमो कुसुमदाम-कोदण्ड को, काम के (को)। काम का फूल-धनुष कभी रति अपना सीसफूल बनाती है कभी गले में लटकाती है कभी मूँड़ पर माला की तरह पहनती है, उसे प्रणाम करो। **सेहरु**-शेखर, सेहरा, **विणिम्मविदु**-सं० विनिर्मापित*, **पणएण**-प्रणय से, इसे दोधकवृत्ति 'नमहु'' का विशेषण मानती है।

हेमचंद्र के व्याकरण के इस अंश में जो शब्द उदाहरणवत् दिए हैं उनका यहाँ उल्लेख निष्प्रयोजन है। जो वाक्यखंड आए हैं उनमें से कुछ के विचार के लिये पृथक् लेख का उपयोग किया जायगा।

परिशिष्ट—ऊपर पत्रिका भाग २ पृ० ४६ तथा १५० में यह भ्रम से लिखा गया है कि 'काण वि विरह करालिअँहे' आदि दोहा हेमचंद्र में है। यह हेमचंद्र में नहीं है। उस दोहे का अर्थ स्पष्ट नहीं था। उसका ठीक अर्थ करने का यत्न किया जाता है।

मूल।

काण वि / कीह वि विरह करालि यहे / इं (यह) उड्डाविअउ वराउ।

सहि / इउ अब्भुउ दिट्ठु मइ कंठि विलुलइ काऊ ॥

विरहाकुलिता कौए को उड़ाया करती हैं कि हमारा पति आज आता हो तो उड़ जा। जहाँ कई विरहाकुलिता हों वहाँ कौए की शामत आ जाय। इधर गया तो एक उड़ावे, उधर गया तो दूसरी, कहीं बैठने को ठौर ही नहीं पावे। बेचारा कष्ट में अधर झूल रहा है कि किधर जाऊँ। कुछ का (=से), विरहकरालिताओं का (=से), पै, उड़ाया गया, वराक, हे सखि या यह, अत्यद्भुत, देखा, मैं(ने), कष्ट में, विलुलता है, काक। **काण**-संबंध बहुवचन, **कंठि**=कष्टि (देखो पत्रिका भाग २ पृ० ४०) कष्ट में, **विलुलइ**-मारा मारा फिरता है, मंडराता है, **काउ**-कौआ। पहला अर्थ शास्त्री तथा टानी के भरोसे पर किया था। इस नए अर्थ के मार्गदर्शन का उपकार बाबू जगन्नाथदास (रत्नाकर) का है।

१६—अशोक की धर्मलिपियाँ ।

[लेखक—राय बहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा, बाबू श्यामसुंदरदास, बी० ए०, और पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बी० ए०,]

[क ६—नवाँ प्रज्ञापन]

[पत्रिका भाग २, पृष्ठ ३६९ के आगे]

कालसी	१	देवानं	पिये	पियदसि	लाजा		आहा
गिरनार	२	देवानं	पियो	प्रियदसि	राजा	एवं	आह
धौली	३	देवानं	पिये	पियदसी	लाजा	हेवं	आहा
जौगड़	४	देवानं	पिये	पियदसी	लाजा	..	..
शहबाज़गढ़ी	५	देवनं	प्रियो	प्रियद्रशि	रय	एवं	अहति
मानसेरा	६	देवन	प्रिये	प्रियद्रशि	रज	एवं	अह
संस्कृत-अनुवाद		देवानां	प्रियः	प्रियदर्शी	राजा	एवं	आह ।
हिंदी-अनुवाद		देवताओं का	प्रिय	प्रियदर्शी	राजा	यों	कहता है ।

कालसी	७		जने	उचावुचं	मंगलं	कलेति	आबाधसि
गिरनार	८	अस्ति	जनो	उचावचं	मंगलं	करोते	आबाधेसु
धौली	९	अथि	जने	उचावुचं	मंगलं	कलेति	आबाधे
जौगड़	१०	. .	. .	. . . .	. . .	. . .	. . .
शहबाज़गढ़ी	११		जनो	उचवुचं	मंगलं	करोति	अबधे
मानसेरा	१२		जने	उचवुचं	मगलं	करोति(३८)	अबधसि
संस्कृत-अनुवाद		अस्ति	जनः	उच्चावचं	मंगलं	करोति ।	आबाधे आबाधेषु
हिंदी-अनुवाद		है	मनुष्य	ऊँचा नीचा (=थोड़ा बहुत)	मंगल (कार्य)	करता है ।	बीमारी में बीमारियों में

कालसी	१३		अवाहसि	विवाहसि		पजोपदाये		
गिरनार	१४	वा(७१)		आवाहवीवाहेसु	वा	पुत्रलाभेसु	वा	
धौली	१५		. . .	वी . . .		·जोपदाये		
जौगड़	१६		. . .	. . . . .		पजुपदाये		
शहबाज़गढ़ी	१७		अवहे	विवहे		पजुपदने		
मानसेरा	१८		अवहसि	विवहसि		प्रजोपदये		
संस्कृत-अनुवाद		{वा	आवाहे	विवाहे आवाहविवाहेषु	वा	प्रजोत्पादे प्रजोत्पादने पुत्रलाभेषु	{वा}	
हिंदी-अनुवाद		{या}	आवहन(=बुलावे)में विवाहों में बुलाहट और विवाहों में		या	पुत्रजन्म पर	{या}	

कालसी	१९	पवाससि		एताये		अंनाये	चा	एदिषाये
गिरनार	२०	प्रवासंम्हि	वा	एतम्ही	च	अञम्हि	च	
धौली	२१	पवाससि(११)		एताये		अंनाये	च	हेदिषाये
जौगड़	२२	पवाससि		एताये		अंनाये	च(१८)	हेदिषाये
शहबाज़गढ़ी	२३	प्रवसे		एतये		अञये	च	एदिशिये
मानसेरा	२४	प्रवसस्पि		एतये		अञये	च	एदिशये
संस्कृत-अनुवाद		प्रवासे	{वा}	एतस्मिन्	च	अन्यस्मिन्	च	ईदृशे
हिंदी-अनुवाद		प्रवास में	{या}	इसमें	और,	दूसरे [अवसर] (में)	और	ऐसे में

कालसी	२५	अने	बहु	मगलं	कलेति	हेत	षु
गिरनार	२६	जनो	उचावचं	मंगलं	करोते[७२]	एत	तु
धौली	२७	अने	बहुकं	मंगलं	कलेति	एत	तु
जौगड़	२८	अने	बहुकं	. . .	. . .	.	.
शहबाज़गढ़ी	२९	जनो	ब	मंगलं	करोति	अत्र	तु
मानसेरा	३०	अने[३१]	बहु	मंगलं	करोति	अत्र	तु
संस्कृत-अनुवाद		जनः	बहु उच्चावचं बहुकं	मंगलं	करोति।	इह अत्र	तु
हिंदी-अनुवाद		मनुष्य	थोड़ा बहुत बहुत	मंगल [कार्य]	करता है।	यहाँ	तो

कालसी	३१	अबकजनियो	बहु	चा	बहुविधं	चा	खुदा
गिरनार	३२	महिडायो	बहुकं	च	बहुविधं	च	छुदं
धौली	३३	इथि	बहुकं	च	बहुविधं	च	खुदकं
जौगड़	३४	. .	. . .	.	. . . .	.	. . .
शहबाज़गढ़ी	३५	स्त्रियक	बहु	च	बहुविधं	च	पुतिकं
मानसेरा	३६	बलिकजनिक	बहु	च	बहुविध	च	खुद
संस्कृत-अनुवाद		अर्भकजनय: महिला: स्त्रिय:	बहु बहुकं	च	बहुविधं	च	क्षुद्रं पोतकं
हिंदी-अनुवाद		बालकजनय: बालकों की माताएँ स्त्रियाँ	बहुत	और	बहुत प्रकार का	और	क्षुद्र

कालसी	३७	चा	निलथिया	चा	मगलं	कलंति[२४]	से	कटवि
गिरनार	३८	च	निरथं	च	मंगलं	करोते	त	कतव्य
धौली	३९	च	निलठियं	च	मंगलं	कलेति[४०]	से	कटविये
जौगड़	४०	.	. . . .	.	मंगलं	कलेति	से	कटविये
शहबाज़गढ़ी	४१	च	निरठ्रियं	च	मंगलं	करोन्ते	सो	कटवो
मानसेरा	४२	च	निरथ्रिय	च	मगलं	करोति	से	क · वि ·
संस्कृत-अनुवाद		च	निरर्थकं निरर्थं	च	मंगलं	कुर्वन्ति ।	तत्	कर्तव्यं
हिंदी-अनुवाद		और	निरर्थक	और	मंगल[कार्य]	करती हैं ।	वह	कर्तव्य [है]

कालसी	४३	चेव	खो	मंगले	अपफले	चु	खो
गिरनार	४४	मेव	तु	मंगलं	अपफलं	तु	खो[७२]
धौली	४५	चेव	खो	मंगले	अपफले	चु	खो
जौगड़	४६	चेव	खो	मंगले[११]	अपफले	चु	खो
शहबाज़गढ़ी	४७	च	खो	मंगल	अपफलं	तु	खो
मानसेरा	४८	च	खो[५०]	मगले	अपफले	चु	खो
संस्कृत-अनुवाद		चैव च एव	खलु तु	मंगलं ।	अल्पफलं	तु	खलु
हिंदी-अनुवाद		और ही	निश्चय	मंगल (कार्य) ।	अल्प फलवाला	तो	निश्चय

कालसी	४९	एसे			इयं	चु	खो
गिरनार	५०		एतारिसं	मंगलं	अयं	तु	
धौली	५१	एस	हेदिसे	मंगले	. यं	च	खो
जौगड़	५२	एस	हेदिसे	मं . .	. .	.	.
शहबाज़गढ़ी	५३	एतं			इमं	तु	खो
मानसेरा	५४	एषे			इयं	चु	खो
संस्कृत-अनुवाद		एतत्	एतादृशं ईदृशं	मंगलं ।	इदं	तु	खलु
हिंदी-अनुवाद		यह	ऐसा	मंगल(कार्य)[है] ।	यह	ता	निश्चय

कालसी	५५	महाफले		ये	धंममगले	हेता	इयं
गिरनार	५६	महाफले	मंगले	ये	धंममंगले	तत	
धौली	५७	महाफले		ए	धंममंगले	ततेस	
जौगड़	५८	. . . .		.	. . . .	. .	. .
शहबाज़गढ़ी	५९	महफल		ये	· ममंगलं(१८)	अत्र	इम
मानसेरा	६०	महफले		ये	ध्रममंगले	अत्र	इयं
संस्कृत-अनुवाद		महाफलं	{मंगलं}	यत्	धर्ममंगलं ।	अत्र तत्र	इदं
हिंदी-अनुवाद		महान् फल वाला [है]	{मंगल}	जो	धर्ममंगल ।'	यहाँ इस(धर्ममंगल) में	यह [है]

कालसी	६१	दासभटकसि	सम्यापटिपाति	गुलुना	अपचिति
गिरनार	६२	दासभटकम्हि	सम्यप्रतिपती	गुरूनं	अपचिति
धौली	६३	दासभटकसि	संम्यापटिपति(४१)	गुलूनं	अपचि.
जौगड़	६४	. . भटकसि	संम्यापटिपति	गुलूनं	अपचिति
शहबाज़गढ़ी	६५	दसभटकस	संमप्रटिपति	गुरुन	अपचिति
मानसेरा	६६	दसभटकसि	सम्यपटिपति	गुरुन	अपचिति(४१)
संस्कृत-अनुवाद		दासभृतके	सम्यक्प्रतिपत्तिः	गुरूणां	अपचितिः
हिंदी-अनुवाद		दास [और] नौकर में	उचित व्यवहार	गुरु (जनों) की	पूजा

कालसी	६७		.नानं	सयमे		समनबंभनानं
गिरनार	६८	साधु(७४)	पाणेसु	सयमो	साधु	बम्हणसमणानं
धौली	६९		. . .	. . मे		समनबाभनानं
जौगड़	७०		पानेसु	सयमे(२०)		समनबाभना .
शहबाज़गढ़ी	७१		प्रणनं	संयम		श्रमणब्रमणन
मानसेरा	७२		प्रणन	सयमे		श्रमणब्रमणन
संस्कृत-अनुवाद		{साधु}	प्राणानां प्राणेषु	संयमः	{साधु}	श्रमणब्राह्मणानां ब्राह्मणश्रमणानां
हिंदी-अनुवाद		{उत्तम}	प्राणों का प्राणों में	संयम	{उत्तम}	श्रमणों और ब्राह्मणों का (=को)

कालसी	७३		दाने	एवे		अंने	चा	हेडिये
१४ गिरनार	७४	साधु	दानं	एत	च	अञ	च	एतारिसं
धौली	७५		दाने	एव		अंने	च	
जौगढ़	७६		. ने	एव		अंने	.	
शाहबाज़गढ़ी	७७		दन	एतं		अञं	च	
मानसेरा	७८		दने	एवे		अञे	च	एदिशे
संस्कृत-अनुवाद		{साधु}	दानं ।	एतत्	च	अन्यत्	च	एतादृशं ईदृशं
हिंदी-अनुवाद		{उत्तम}	दान ।	यह	और	दूसरा	और	ऐसा

कालसी	७९	तं	धंममगले	नामा	से	वतविये	पितिना
गिरनार	८०		धंममंगलं	नाम	त	वतव्यं	पिता
धौली	८१		धंममंगले	नाम	त	वत .	पितिना
जौगढ़	८२		. . . . .	. .	.	. . .	पितिना
शहबाज़गढ़ी	८३		ध्रममंगलं	नम	सो	वतवो	पितुन
मानसेरा	८४		ध्रममगले	नम	से	वतविये	पितुन
संस्कृत-अनुवाद		तत्	धर्ममंगलं	नाम	तत्	वक्तव्यं	पित्रा
हिंदी-अनुवाद		वह	धर्ममंगल [है]	—	सो,	कहने योग्य [है]	पिता से

कालसी	८५	पि	पुतेन	पि	भातिना	पि	सुवामिकेना	पि
गिरनार	८६	व(७५)	पुतेन	वा	भात्रा	वा	स्वामिकेन	वा
धौली	८७	.	पुतेन	पि	भातिना	पि(४२)	सुवामिकेन	पि
जौगढ़	८८	पि	पुतेन	पि	भातिना	पि	सुवामिकेन	पि
शहबाज़गढ़ी	८९	पि	पुत्रेन	पि	भ्रतुन	पि	स्पमिकेन	पि
मानसेरा	९०	पि	पुत्रेन	पि	भतुन	पि	स्पमिकेन	. (४१)
संस्कृत-अनुवाद		अपि	पुत्रेण	अपि	भ्राता	अपि	स्वामिकेन	अपि
हिंदी-अनुवाद		भी	पुत्र से	भी	भाई से	भी	स्वामी से	भी

कालसी	६१	मितसंथुतेना	आव	पटिवेसियेना	पि(२२)	इयं	साधु
गिरनार	६२					इदं	साधु
धौली	६३					..	..
जौगड़	६४					इयं	साधु
शहबाज़गढ़ी	६५	मित्रसंस्तुतेन	अव	प्रतिवेशियेन		इमं	सधु
मानसेरा	६६	मित्रसंस्तुतेन	अव	पटिवेशियेन	पि	इयं	सधु
संस्कृत-अनुवाद		मित्रसंस्तुतेन	यावत्	प्रतिवेशिकेन	अपि।	इदं	साधु
हिंदी-अनुवाद		मित्र[और]परिचित से	जबतक (=यहाँ तक कि)	पड़ोसी से	भी।	यह	उत्तम [है]

कालसी	९७	इ	कटविये	मगले	आव	तथा	अथषा	निवुतिया
गिरनार	९८	इदं	कतव्यं	मंगलं	आव	तस	अथस	निस्टानाय
धौली	९९	..	. .	..ले	आव	तस	अठस	निफटिया
जौगड़	१००	इयं	कटविये(२°)	...	. .	..	...	. . . .
शहबाज़गढ़ी	१०१	इमं	कटवो	मंगलं	यव	तस	अठस	निवुटिय
मानसेरा	१०२	इयं	कटविये	मगले	अव	तस	अथ्रस	निवुटिय
संस्कृत-अनुवाद		इदं	कर्तव्यं	मंगलं	यावत्	तस्य	अर्थस्य	निवृत्त्यै(निवृत्त्याः) निष्ठानाय निष्पत्यै(निष्पत्त्याः)
हिंदी-अनुवाद		यह	कर्तव्य[है]	मंगल	जबतक	इस[की]	उद्देश की	निबटने (= सिद्धि) के लिए (तक)

कालसी	१०३				इमं	कथमिति	एह
शहबाज़गढ़ी	१०४	निवुटस्पि	व	पन[१६]	इमं	केष	येहि
मानसेरा	१०५	निवुटसि	व	पुन	इम	केषमिति	एहि
संस्कृत-अनुवाद		निवृत्तौ	वा	पुनः।	इदं	कथमिति ? कथं	इह एतत् हि
हिंदी-अनुवाद		निबटने पर	भी	फिर।	यह	कैसे यों ?	यहाँ यह तो

गिरनार	१०६	अस्ति	च	पि		वुतं[७६]	साधु	दनं	
धौली	१०७	अथि		पि	वं	वुते		दाने	साधु
जौगढ़	१०८	. .		.		. .		. .	. .
संस्कृत-अनुवाद		अस्ति	च	अपि	इदं एवं	उक्तं	साधु	दानं	{साधु}
हिंदी-अनुवाद		है	और	भी	यह यों	कहा [गया]	उत्तम [है]	दान	{उत्तम}

कालसी	१०६	हुवले	मगले	संशयिक्ये	से	होति	सिया
शाहबाज़गढ़ी	११०	एत्रके	मगले	संशयिके	तं		सिय
मानसेरा	१११	अत्रके	म . . (४३)	ग्रशयिके	से		सिय
संस्कृत-अनुवाद		अपरं अत्रकं	मंगलं	सांशयिकं	तत्	भवति	स्यात्
हिंदी-अनुवाद		दूसरा यहां (= इस लोक) का	मंगल (कार्य)	संशयवाला	वह	है	शायद

गिरनार	११२	इति	न	तु	एतारिसं	अस्ति	दानं	व	अनगहो
धौली	११३	ति			से	नथि	. .	.	अनुगहे
जौगड़	११४				से		दाने		अनुगहे
संस्कृत-अनुवाद		इति	न	तु	एतादृशं तत्	अस्ति {नास्ति}	दानं	वा	अनुग्रहः
हिंदी-अनुवाद		ऐसा	नहीं	तो	ऐसा वह	है {नहीं है}	दान	या	अनुग्रह

काळसी	११५	व	तं	अठं	निवटेया		सिया	पुनानो	
शहबाज़गढ़ी	११६	वो	तं	अठं	निवटेय	ति	सिय	पन	
मानसेरा	११७	व	तं	अथू	निवटेय		सिय	पन	नो
संस्कृत-अनुवाद		वा	तं	अर्थं	निर्वर्तयेत्	इति	स्यात्	पुनः	न।
हिंदी-अनुवाद		या	उस को	अर्थ को	निवटावे (= सिद्ध करे)	ऐसा	शायद	फिर	न।

गिरनार	११८	व	यारिसं	धंमदानं	व	धंमानुगहो	व	त
धौली	११९	वा[४३]	आदिसे	धंमदाने		धंमनुगहे	.	.
जौगढ़	१२०	वा	आदिसे	धंमदाने		धंमानुगहे	च	से
संस्कृत अनुवाद		वा	यादृशं	धर्मदानं	वा	धर्मानुग्रहः	च वा	तत्
हिंदी-अनुवाद		या	जैसा	धर्मदान	या	धर्मानुग्रह	और या	वह

कालसी	१२१	हिदलोकिके	च	व		से	इयं	पुना		धंममगले
शहबाज़गढ़ी	१२२	इअलोकचे	वो		तिथे		इय	पुन		ध्रमंमगलं
१५ मानसेरा	१२३	इहचलोकि	च		वसे		इयं	पुन		ध्रममगले
संस्कृत-अनुवाद		इहलौकिके / इह च लोके	च	एव / एव	वसेत् / तिष्ठेत्	स्यात्। / तत्।	इ	पुनः		धर्ममंगलं
हिंदी-अनुवाद		इस लोक में	और	ही	रहै	हो। / वह।	यह	फिर		धर्ममंगल
गिरनार	१२४	तु	खो	मित्रेन	व	सुहदयेन	वा(७७)	ञातिकेन	व	
धौली	१२५	.	.	मि..	.			..केन		
जौगड़	१२६	चु	खो	मितेन(२२)				....		
संस्कृत-अनुवाद		तु	खलु	मित्रेण	वा	सुहृदयेन	वा	ज्ञातिकेन	वा	
हिंदी-अनुवाद		तो	निश्चय	मित्र से	या	सुहृद से	या	कुटुंबी से	या	

कालसी	१२७	अकालिक्ये		हंचे	पि	तं	अथं	नो	निटेति
शहबाज़गढ़ी	१२८	अकलिकं		यदि	पुन	तं	अठं	न	निवटे
मानसेरा	१२९	अकलिके		हचे	पि	तं	अथ	न	निवटेति
संस्कृत-अनुवाद		अकालिकं।		अथ चेत् / यदि	अपि / पुनः	तं	अर्थं	नो	निर्वर्तयति
हिंदी-अनुवाद		अकालिक [है]।		चाहे / यदि	भी / फिर	उस (को)	अर्थ को	न	सिद्ध करें
गिरनार	१३०	सहायन	व	ओवादितव्यं		तम्हि	तम्हि	पकरणे	
धौली	१३१	सहायेन	पि	वियोवदितवि		. .	तसि	पकलनसि(४४)	
जौगढ़	१३२	. . . .	.	. . . .		. .	. .	. . . . .	
संस्कृत-अनुवाद		सहायेन	वा / अपि	उद्वादितव्यं / व्युद्वादितव्यं		तस्मिन्	तस्मिन्	प्रकरणे	
हिंदी-अनुवाद		सहायक से	या / भी	[ऊँचे पुकार कर] कहना चाहिए		उस (पर)	उस (पर)	प्रकरण (प्रसंग) पर	

कालसी	१३३	हिद	अठं	पलत	अनंतं	पुना	पसवति
शाहबाज़गढ़ी	१३४	हिअ	अथ	परत्र	अनंतं	पुञं	प्रसवति
मानसेरा	१३५	हिद	अ ·	परत्र···(४४)	अनंतं	पुञं	प्रसवति
संस्कृत-अनुवाद		इह	अर्थं	परत्र	अनन्तं	पुण्यं	प्रसूते।
हिंदी-अनुवाद		यहाँ	अर्थ को	दूसरे(लोक)में	अनंत(को)	पुण्य को	उपजाता है।

गिरनार	१३६	इदं	कचं	इदं	साध	इति	इमिना	सकं(७८)
धौली	१३७			· ·	· ·	· ·	· · ·	· · ·
जौगढ़	१३८			. यं	साधू		इमेन	सकिये
संस्कृत-अनुवाद		इदं	कार्यं	इदं	साधु	इति	अनेन	शक्यं
हिंदी-अनुवाद		यह	कर्तव्य [है]	यह	उत्तम [है]	यों	इससे	शक्य [है]

कालसी	१३९	हंचे	पुना	तं	अठं	निवतेति	हिद	ततो
शहबाज़गढ़ी	१४०	हंचे	पुन		अथं	निवटेति		ततो
मानसेरा	१४१	हचे	पुन	तं	अथ	निवटेति	हिद	ततो
संस्कृत-अनुवाद		अथ चेत्	पुन:	तं	अर्थं	निर्वर्तयति	इह	तत:
हिंदी-अनुवाद		यदि	फिर	उस(को)	अर्थ को	सिद्ध करे	यहाँ	उससे

गिरनार	१४२	सवगं	आराधेतु	इति	कि	च	इमिना
धौली	१४३	. . .	लाधयितवे		.	.	. . .
जौगढ़	१४४	स्वगे	आलाधयितवे		कि	हि	इमेन
संस्कृत-अनुवाद		स्वर्गं	आराधयितुं	इति ।	किं	हि च	अनेन
हिंदी-अनुवाद		स्वर्ग	प्राप्त करने को	ऐसा ।	क्या[है]	निश्चय और	इससे

कालसी	१४५	उभये[२१]		लधे	होति	हिद	चा	से	अठे
शहबाज़गढ़ी	१४६	उभयस		लधं	भोति	इह	च	सो	अठो
मानसेरा	१४७	उभयस	व	लधे	होति	हिद	च	से	अथ्रे
संस्कृत-अनुवाद		उभयं	वा	लब्धं	भवति	इह	च	सः	अर्थः
हिंदी-अनुवाद		दोनों	ही	प्राप्त	होते हैं	यहाँ	और	वह	अर्थ

गिरनार	१४८	कतव्यतरं	यथा	स्वगारधि[७१]
धौली	१४९	· टय · ·	· ·	स्वगस आलधि[७२]
जौगढ़	१५०	कटवियतला[२३] · ·		· · · · · [२४]
संस्कृत-अनुवाद		कर्तव्यतरं	यथा	स्वर्गाराद्धिः स्वर्गस्य आराद्धिः।
हिंदी-अनुवाद		अधिक कर्तव्य	जैसे	स्वर्ग की सिद्धि।

कालसी	१५१	पलता	चा	अनंतं	पुंनं	पसवति	तेना	धंममगलेना
शहबाज़गढ़ी	१५२	परत्र	च	अनंतं	पुञं	प्रसवति	तेन	ध्रमंगलेन[२०]
मानसेरा	१५३	परत्र	च	अनंतं	पुञं	प्रसवति	तेन	ध्रमगलेन[२१]
संस्कृत-अनुवाद		परत्र	च	अनन्तं	पुण्यं	प्रसूते	तेन	धर्ममंगलेन।
हिंदी-अनुवाद		दूसरे (लोक) में	और	अनंत(को)	पुण्य को	उपजाता है	उस(से)	धर्ममंगल से।

[हिंदी अनुवाद]

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा इस प्रकार कहता है। लोग ऊँचा नीचा (=थोड़ा बहुत) मंगल (कार्य) करते हैं। बीमारी,[1] बुलावे (=न्योते), विवाह[2], पुत्रजन्म, परदेस जाने, तथा और ऐसे ही दूसरे अवसरों पर मनुष्य बहुत मंगल (कार्य) करता है[3]। ऐसे अवसरों पर बच्चेवालियाँ (स्त्रियाँ)[4] अनेक प्रकार के छोटे और निरर्थक मंगल (कार्य) करती हैं। ये मंगल(कार्य)[5] अवश्य करने चाहिएँ किंतु इनका फल थोड़ा होता है। इस [दूसरे अर्थात्]

---

(१) आबाध-(१) रोग, (२) दुर्भाग्य, (३) दुःख।

(२) आवाह, विवाह—आवाह =(१) न्यौता, (२) पुत्र का विवाह, बहू को घर में लाना; विवाह =बेटी का ब्याह, घर से बाहर करना (आ, या वि + वह)।

(३) अस्ति...करोति—संस्कृत का महाविरा, अस्ति—धातुरूप-सदृश अव्यय [त्वामस्मि वच्मि विदुषां० ; कुसुमायुधायं कुरुष्वमत्रास्मि करोमि (काव्यप्रकाश में उदाहरण), निःसंशयं तदृथवबोधमस्मि (अश्वघोष, बुद्धचरित, ११७२), सुंदरि नास्मि वूबे, पार्थिव त्वमसि सत्यमभ्यधाः (किरात ३।६) वामन काव्यालंकार सूत्र ५.२. ८२] हिंदी में 'है' 'था' के अनुप्रयोग का यही बीज है।

(४) यह स्त्रियों के लिये आशीर्वादात्मक पर्याय है। बच्चों की माताएँ अधिक टोना जादू, पूजा पुजापा, किया करती हैं।

(५) मंगल–उत्सवों में जीवहिंसा भी होती होगी इसी लिये अशोक उनका निराकरण करता है। बीमारी आदि के टोटके, शकुन, यात्रा, बलि, बोलारी (मनौती) आदि सभी से अभिप्राय है।

धर्ममंगल से तो निश्चय बड़ा फल होता है। उस (धर्ममंगल) में ये बातें हैं कि [जन्म से] दास और [वेतनभोगी] नौकरों से उचित व्यवहार[६] गुरुजनों की पूजा, प्राणों का संयम [प्राणियों पर दया][७] श्रमणों और ब्राह्मणों को दान। ये तथा ऐसे ही दूसरे कार्य धर्ममंगल के (कार्य) हैं। इसलिये पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र और परिचित यहाँ तक कि पड़ोसी भी यह उपदेश करें कि जब तक[८] अर्थ की सिद्धि न हो[९]—

[कालसी शहबाज़गढ़ी और मानसेरा का पाठ]

तब तक या सिद्ध होने पर भी यह (धर्म) मंगल करना उत्तम है, कर्तव्य है। यह ऐसा क्यों है? क्योंकि इस संसार में दूसरे मंगल कार्यों [का फल] संदिग्ध है, शायद वह फल को सिद्ध करै, शायद नहीं भी करै, अथवा यह [इसका फल] केवल इसी लोक में हो। पर यह धर्ममंगल तो काल (समय) से परिछिन्न नहीं है। चाहे किसी विशेष अर्थ को सिद्ध न करे तो भी यहाँ अर्थ और परलोक में अनंत पुण्य उत्पन्न करता है। यदि इस संसार में भी फल सिद्ध कर दिया तो दोनों लाभ हुए, इस धर्ममंगल से इस संसार में भी वह [चाहा हुआ] फल मिला और परलोक में भी अनंत पुण्य उत्पन्न हुआ।

---

(६) दास भृतक का भेद अनुवाद में स्पष्ट किया है। देखो प्रज्ञा० ४ टि० २ तथा कौटिल्य ३।१३।

(७) संयम—(१) प्राणों का अर्थात् इंद्रियों का (उपनिषदों का 'प्राण') (२), प्राणियों में संयम अर्थात् हिंसा से रुके रहना।

(८) यावत्—संस्कृत में इसका अनुवाद 'आ' करना अधिक उचित होता।

(९) यहाँ से लेकर कालसी, शहबाज़गढ़ी, मानसेरा का पाठ और है और गिरनार, धौली तथा जौगड़ का और। दोनों का अनुवाद पृथक् पृथक् किया है।

[गिरनार, धौली और जौगड़ का पाठ]

तब तक यह [धर्म-]मंगल [करना] उत्तम है; कर्तव्य है। यह भी कहा है कि दान उत्तम है किंतु कोई दान या अनुग्रह ऐसा नहीं है जैसा कि धर्मदान और धर्मानुग्रह। इसे मित्र, सुहृद, कुटुंबियों और सहायकों को समय समय ज़ोर देकर अवश्य कहना चाहिए कि यह कर्तव्य है, यह उत्तम है, इससे स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है[10]। इससे बढ़कर अधिक कर्तव्य[11] और क्या हो सकता है कि स्वर्ग की प्राप्ति हो ?

(१०) शक्यं स्वर्गः आराधयितुं—संस्कृत का महाविरा, 'शक्यं' विशेष्यनिघ्न नहीं होता [शक्यमनेन श्वमांसादिभिरपि क्षुत् प्रतिहन्तुम् (महाभाष्य १।१।१), न शक्यं...पुरी प्रवेष्टुं आदि (वाल्मीकि), ऊरू...शक्यं विधातुं न निमीलय चक्षुः (? कुमारदास); आराधयितवे = आराधयितुं (वैदिक, पाणिनि ३।४।९)

(११) कर्तव्यतर—देखो प्रज्ञा० ६, टि० १८। वेद में 'आतृतमातु' आता है।

—:०:—

समालोचना।

[रायल एशियाटिक सुसाइटी आफ ग्रेट ब्रिटेन ऐंड आयर्लैंड की अप्रैल सन् १६२१ की पत्रिका (पृष्ठ २८६-८७) से अनुवादित ।]

रायल एशियाटिक सुसाइटी के सभासदों का ध्यान नागरीप्रचारिणी सभा की मुख-पत्रिका "नागरीप्रचारिणी पत्रिका" के नए संदर्भ पर दिलाना चाहिए। पत्रिका का पहला अंक सन् १८६७ में प्रकाशित हुआ था और एक या दो बेर आकार में परिवर्तन के साथ उत्तर भारत के प्राचीन और माध्यमिक साहित्य पर प्रकाश डालने के अपने उद्देश्य पर वह निरंतर दृढ़ रही है। कभी कभी इसके पृष्ठों में हिंदी के प्रधान लेखकों पर उत्तम कोटि के लेख प्रकाशित हुए हैं, परंतु प्रायः उसके लेख भिन्न भिन्न विषयों पर हुए हैं। कभी कभी स्वास्थ्य तथा भैषज शास्त्र संबंधी विषयों पर सुबोध (और अपने ढंग के अच्छे) लेख भी विद्वत्तापूर्ण निबंधों के साथ ही साथ प्रकाशित होते रहे हैं। अब सभा ने पत्रिका का नया संदर्भ शुद्ध वैज्ञानिक रीति पर प्रकाशित करने का निश्चय किया है और इसके पहले दो अंक सभा के कार्य्य की विशेष उन्नति के सूचक हैं। इनसे एक ऐसी पत्रिका का आरंभ होता है जो, हम आशा करते हैं, एक भारतीय विद्वत् सभा के सर्वथा उपयुक्त होगी।

इस संदर्भ के पहले अंक (वैशाख १६७७) में अन्य मनोरंजक लेखों के साथ प्रसिद्ध विद्वान् पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा की लेखनी से निकला "डूंगरपुर राज्य की स्थापना" का लेख, तथा पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी की लिखी पटना-मूर्तियों संबंधी विवादग्रस्त विषय पर पर्य्यालोचना है। अन्य भारतीय विद्वानों के समान यह लेखक भी मानता है कि ये शिशुनाक वंश के दो राजाओं की प्रतिमाएँ हैं। इस लेख के साथ मूर्तियों तथा अभिलेखों के उत्तम फोटो चित्र भी दिए हैं। वही लेखक देवकुल पर जिसमें बाण के हर्षचरित में भास संबंधी उल्लेख तथा भास के प्रतिमा नाटक में देवकुल की चर्चा का वर्णन है, तथा वेसनगर के गरुड़ध्वज के लेख पर, छोटे छोटे मनोरंजक लेख देता है। लेखक का सिद्धांत है कि गरुड़ध्वजवाले लेख की भाषा किसी पारस देशवासी की लिखी मिश्रित प्राकृत है। राजपुताने के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक मुंशी देवीप्रसाद २१४ प्रसिद्ध भारतीयों की जिनमें राजपूत अधिक हैं, जन्मपत्रियों की सूची संवतों के साथ देते हैं। सब से प्राचीन जन्मपत्री संवत् १४७२ (सन् १४१५) की लिखी है। अंत में

(३) साधारण सभा ।

शनिवार मि० २८ श्रावण संवत् १९७८ (१३ अगस्त १९२१) संध्या के ६ बजे ।

स्थान—सभाभवन.

उपस्थित ।

बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए०, एल० एल० बी०—सभापति ।

ठाकुर शिवकुमारसिंह, बाबू ब्रजरत्नदास, बाबू अंबिकाप्रसाद श्रीवास्तव, बाबू रामचंद्र वर्म्मा, पंडित रामचंद्र शुक्ल, बाबू दुर्गाप्रसाद, और बाबू श्यामसुंदरदास बी० ए० ।

(१) १२ आषाढ़ १९७८ का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ ।

(२) प्रबंध समिति का १४ श्रावण १९७८ का कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़ा गया ।

(३) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के फ़ार्म उपस्थित किए गए:—

(१) पंडित श्रीरामआज्ञा द्विवेदी, हिंदू कालेज, काशी ३) (२) ठाकुर जसवंतसिंहजी, बीड़वाल, मालवा ५) (३) ठाकुर रायसिंहजी, बखतगढ़, मालवा ५) (४) ठाकुर परवतसिंहजी, कोद, मालवा ५) (५) महाराज भरतसिंहजी, मुलथान, मालवा ५) (६) राव राजारामसिंहजी, गाँव सुरायता, वाया सोजत, मारवाड़ ३) (७) श्रीयुत फूलचंद चतुर्भुज चौंचाणी, मंदसौर ३)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जाँय ।

(४) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफे उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए:—

(१) पंडित प्रेमशंकर दुवे, क्लार्क आफ दी कोर्ट, रायपुर । (२) बाबू [illegible], [illegible], [illegible] । (३) पंडित [illegible] बाजपेयी एम. ए., पोस्ट मास्टर, आगरा । (४) बाबू ब्रजजीवनदास, [illegible], काशी ।

(५) मंत्री ने सूचना दी कि निम्नलिखित सभासदों के पास ना० प्र० पत्रिका की चौथी संख्या वार्षिक चंदे के लिये वी० पी० द्वारा भेजी गई थी पर उन्होंने उसके लौटाकर वी० पी० लौटा दी [illegible] अस्वीकार किया है:—

(३) साधारण सभा ।

[illegible] शनिवार ता० २८ श्रावण संवत् १९७८ (१३ अगस्त १९२१) संध्या [illegible]

स्थान—[illegible]

उपस्थित ।

बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए०, एल० एल० बी० [illegible] सभापति ।

ठाकुर [illegible], बाबू [illegible], बाबू [illegible] [illegible], बाबू रामचंद्र वर्मा, पंडित रामचंद्र शुक्ल, बाबू [illegible], और बाबू [illegible] बी० ए० [illegible]

(१) १३ [illegible] १९७८ का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) प्रबंध समिति का १४ अगस्त १९७८ का कार्यविवरण [illegible] पढ़ा गया ।

(३) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किए गए:—

(१) पंडित [illegible], [illegible] ५) (२) ठाकुर [illegible]-सिंहजी, [illegible], मालवा ५) (३) ठाकुर [illegible]सिंहजी, [illegible], मालवा ५) (४) ठाकुर [illegible]सिंहजी, [illegible], मालवा ५) (५) महाराज [illegible], [illegible], मालवा ५) (६) राव [illegible] गाँव [illegible], [illegible], मारवाड़ ३) (७) श्रीयुत [illegible], मंदसौर ३)

[illegible]

(४) निम्नलिखित [illegible] के [illegible] स्वीकृत हुए:—

(१) पंडित [illegible] दुबे, [illegible] की कोर्ट, रायपुर । (२) बाबू [illegible] (३) [illegible] एम. ए., [illegible], [illegible] । (४) बाबू [illegible], [illegible] ।

[illegible]

(१) बाबू देवीप्रसाद खत्री, कानपुर। (२) मेहता चिम्मनसिंह, ब्यावर, अजमेर (३) राजा ब्रजचंद्रप्रतापसाहि, रांची (४) पंडित रामचंद्र आनंदवेश पांडे, नागपुर।

निश्चय हुआ कि इन सज्जनों के नाम सभासदों की नामावली से काट दिए जाँय।

(६) मंत्री ने रोहतक के लाला चंदूलाल बैंकर की मृत्यु की सूचना दी जो इस सभा के सभासद थे।

इस पर सभा ने शोक प्रकट किया।

(७) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं (१) बाबू अंबिका प्रसाद गुप्त, सराय गोवर्द्धन, काशी—प्रबंध पूर्णिमा, चोट, विराज, बलिदान, (२) खरीदी गईं—लखनऊ की नवाबी भाग १ और २। (३) एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता—Joarnal and Proceedings Vol XVI, 1920, No 7. (४) Indian Antiqnary for June and July 1921.

(८) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

(७) प्रबंध समिति।

शनिवार ११ भाद्रपद १९७८ (२७ अगस्त सन् १९२१) संध्या के ६ बजे

स्थान—सभाभवन

उपस्थित

पं० रामनारायण मिश्र बी. ए. (सभापति) बा. माधवप्रसाद, बा. श्यामसुंदरदास बी. ए., पं० केदारनाथ उपाध्याय, और बा. ब्रजरत्नदास।

सम्मति भेजनेवाले।

बाबू गौरीशंकरप्रसादजी बी. ए. एल. एल. बी, पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, रायबहादुर बाबू हीरालाल।

(१) गत अधिवेशन (मि० १४ श्रावण १९७८) का कार्य्य विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) श्रावण १९७८ के आय व्यय का निम्नलिखित हिसाब उपस्थित किया गया:—

बचत का ब्योरा

८८॥=)१० साधारण विभाग	१६०१०॥।–)१ विशेष मदों में
५७॥=)४ रोकड़ सभा	१०५००) इंपीरियल बंक के ७ शेयर
२१)॥ बनारस बंक सेविंग बंक	१०००) बनारस बंक फिक्सड डिपाजिट ओधसिंह पुरस्कार
	७५००) बनारस बंक फिक्सड डिपाजिट
	७॥)७ पोस्टल सेविंग बंक
	३।)॥ बनारस बंक (भवन निर्माण)

कुल जोड़ १६०६६।≡)११

बनारस बंक से अधिक लिया गया ४३६६=)७

१४७०३।–)४

(३) बा० गौरीशंकरप्रसादजी का ३० आषाढ़ १६७८ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर इस समिति के सम्मुख उपस्थित करने के लिये लिखा था (क) गत ६ मास में सभा की कितनी पुस्तकें बिकीं और इसके पहिले दो वर्षों में इन्हीं ६ महीनों में कितने कितने की कौन कौन पुस्तकें बिकीं (ख) पुस्तक भंडार का रजिस्टर उपस्थित किया जाय जिसमें अधिवेशन के दिन तक हर पुस्तक की संख्या जो भंडार में हो तथा बिक्री की संख्या ठीक ठीक जान पड़े (ग) सभा की पुस्तकों में से कौन कौन पाठविधि में कहां कहां नियत हुई हैं जिनका फिर से छापना आवश्यक है। उनकी सूची के साथ छपाई के व्यय का अनुमान उपस्थित किया जाय (घ) जो नया प्रबन्ध बिक्री के लिये किया गया है उसमें कितना व्यय पड़ा और उसके द्वारा पिछले वर्षों की अपेक्षा क्या विशेष कार्य हुआ।

मंत्री का उत्तर उपस्थित किया गया जिसमें सूचना थी कि (क) ६ मास में बिक्री इस प्रकार हुई:—

सन् १६१६	संवत १६७६–७७	संवत १६७७–७८
४५२६)	४०००)	४४१०)

(ख) ये रजिस्टर उपस्थित किए गए।

(ग) निम्नलिखित पुस्तकें पाठ्य विधि में हैं:—(१) आदर्श जीवन (२)

कबीर वचनावली (३) शासन पद्धति (४) मुसलमानी राज्य का इतिहास (५) भौतिकविज्ञान (६) सत्यहरिश्चन्द्र (७) भूषण ग्रंथावली और (८) महत्त्वका वैताप। इनमें नंबर १, २, ३, और ५ का छापना आवश्यक है जिनमें क्रम से ७३०) ६००) ४५०) और ५२५) व्यय होगा। (घ) ६ मास में ३००) व्यय हुआ और बिक्री सन् १९१९ की अपेक्षा १२३) कम तथा संवत् १९७६-७७ की अपेक्षा ४१०) अधिक हुई।

निश्चय हुआ कि पुस्तकों की बिक्री का जो ब्योरा उपस्थित किया गया है उससे विदित हुआ कि इस नए प्रबंध से जितना व्यय हुआ है उसके अनुसार लाभ नहीं हुआ। अतएव मंत्री महाशय से प्रार्थना की जाय कि आगामी अधिवेशन में वे इस विषय पर सम्मति दें कि पुस्तक विभाग के प्रबंध का सुधार किस प्रकार किया जाय।

(४) बाबू श्यामसुन्दरदासजी का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि (१) प्राचीन हिन्दी पुस्तकों को प्रकाशित करने के लिये प्रति तीसरे मास नागरी-प्रचारिणी ग्रंथमाला सौ सौ पृष्ठों की संख्याओं में प्रकाशित की जाय (२) आकार रायल अठपेजी या क्राउन चौपेजी हो (३) प्रति पुस्तक की २०००. प्रतियाँ छपवाई जाँय और (४) प्रति संख्या की लगभग ५०० प्रतियाँ तैयार कराई जाँय (५) प्रत्येक संख्या का मूल्य डाकव्यय सहित १) रक्खा जाय और (६) इंडियन प्रेस से यह तै किया जाय कि वह उसके छापने का भार अपने ऊपर ले और सभा पुस्तकों की हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त करने, उनका संशोधन और सम्पादन कराने, उन पर टिप्पणी लिखवाने तथा प्रूफ संशोधन का भार ले (७) इसके प्रकाशकों में सभा तथा इंडियन प्रेस दोनों का नाम रहे (८) दोनों जगहों से पुस्तकों की बिक्री हो और (९) प्रति वर्ष जो आय हो उसे सभा तथा इंडियन प्रेस बाँट लिया करे।

इसके साथ ही इंडियन प्रेस का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने कई शर्तों पर इसे प्रकाशित करना स्वीकार किया था जिनमें मुख्यतः ये शर्तें थीं अर्थात् छपाई और कमीशन आदि के देने पर जो मुनाफ़ा बचे उसके दो अंश प्रेस ले और एक अंश सभा को दिया जाय, मूल्य पहिले से न निर्धारित किया जाय वरन् लागत के अनुसार रक्खा जाय और पाँच वर्ष के उपरांत जितनी प्रतियाँ स्टाक में रह जाँय उनकी लागत का आधा खर्च सभा और आधा प्रेस दे। पीछे बिक्री हो जाने पर आपस में भुगतान हो जाय।

निश्चय हुआ कि (१) बाबू श्यामसुंदरदासजी के प्रस्ताव के अनुसार नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला सौ सौ पृष्ठों की संख्याओं में प्रति तीसरे मास प्रकाशित की जाय। इसका वर्ष कार्तिक से प्रारम्भ हो और प्रथम संख्या आगामी कार्तिक में प्रकाशित की जाय। इसके सम्पादन का भार बाबू श्यामसुंदरदासजी को सौंपा जाय (२) इसका आकार डबल क्राउन अठपेजी हो (३-५) ये प्रस्ताव स्वीकार किए जाँय (६-६) सभा इस ग्रंथमाला को स्वयं प्रकाशित करे।

(५) क्लार्कों का यह प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया कि श्रावण के अंतिम सोमवार और मंगल तथा माघ के अंतिम सोमवार की छुट्टियाँ उन्हें क्रमात् सारनाथ, दुर्गाजी तथा वेदव्यास के दर्शनों के लिये दी जाँय।

निश्चय हुआ कि सभा कार्यालय में जितनी छुट्टियाँ दी जाती हैं वे यथेष्ट हैं, उनकी संख्या नहीं बढ़ाई जा सकती। तथापि मंत्री जी यदि चाहें तो अन्य छुट्टियों को काट कर उनके स्थान पर ये छुट्टियाँ दे सकते हैं।

(६) पंडित निष्कामेश्वर मिश्र का ३० जुलाई का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सूचना दी थी कि हिंदी संक्षेप लेख प्रणाली पर उन्होंने एक बड़ी पुस्तक लिखी है जिसके अभ्यास से ६ मास में १०० प्रति मिनट की गति से व्याख्यान लिखे जा सकते हैं, इस पुस्तक के चार संस्करणों का अधिकार वे सभा को इस नियम पर दे सकते हैं कि उन्हें इसका आधा मुनाफ़ा दिया जाय अथवा पुस्तक के मूल्य का तिहाई प्रति बार पुस्तक छपने पर दिया जाय।

निश्चय हुआ कि पंडित निष्कामेश्वर मिश्र जी यदि प्रति मिनट ७५ शब्द की गति से भी कोई बड़ा व्याख्यान लिख कर या लिखवा कर दिखला दें तब उनका यह प्रस्ताव विचारार्थ उपस्थित किया जाय।

(७) निश्चय हुआ कि जोधसिंह पुरस्कार के लिये १०००) रु० जो बनारस बंक में फ़िक्सड डिपाज़िट में जमा है उसकी अवधि पूरी होने पर इस धन से $३\frac{१}{२}$ टकिया प्रामिसरी नोट खरीद लिए जाँय।

(८) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

(४) साधारण सभा।

शनिवार २५ भाद्रपद १९७८ ता० १० सितंबर १९२१, संध्या के ६ बजे।

स्थान—सभाभवन

उपस्थित।

बाबू रामचंद्र वर्म्मा—सभापति।

पंडित रामचंद्र शुक्ल, बाबू श्यामसुंदरदास बी० ए०, बाबू ब्रजरत्नदास, बाबू कालिकाप्रसाद, पंडित केदारनाथ पाठक, और बाबू गोपालदास ।

(१) बाबू श्यामसुंदरदासजी के प्रस्ताव तथा पंडित रामचंद्र शुक्ल के अनुमोदन पर बाबू रामचंद्र वर्म्मा सभापति चुने गए ।

(२) गत अधिवेशन (२८ श्रावण १९७८) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ ।

(३) निम्नलिखित सज्जन सभासद चुने गए:—

(१) पंडित बलदेव उपाध्याय बी० ए०, षष्ठ वर्ष, हिंदू विश्वविद्यालय, ठि० पं० सूरज दुबे, नगवा, काशी ३) (२) बै० रामकर्ण, नं० ४८ इंडियन मिरर स्ट्रीट, कलकत्ता ३) (३) ठाकुर युगलसिंह खीची एम० ए०, एल० एल० बी०, सूरसागर तालाब, बीकानेर ३) (४) पं० हरिशंकर भट्ट बी० ए०, रामापुरा, काशी ३)

(४) प्रबंधकारिणी समिति का ११ भाद्रपद १९७८ का कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़ा गया ।

(५) निम्नलिखित सज्जनों के त्यागपत्र उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए:—

(१) बाबू जयंती सहाय, गवर्नमेंट हाई स्कूल, हाथरस । (२) बाबू दामोदरदास, गुजराती, काशी । (३) बाबू हरिशंकर, काशी ।

(६) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुई—

बाबू भास्करप्रसाद गुप्त, काशी—संस्कृत भाषा की प्रथम पुस्तक, संस्कृत भाषा की द्वितीय पुस्तक, महात्मा गौतम बुद्ध, वीरार्य शिवाजी नाटक। पंडित भोलानाथ पाठक, चंदू हजाम का कुंआँ, काशी—प्राचीन भारत की राज्य प्रणाली। बाबू रामचंद्र वर्म्मा, काशी—राणा प्रतापसिंह। पुरोहित रामप्रतापजी, जयपुर—श्रीकृष्ण विज्ञान। सरस्वती सदन, इन्दौर—नेटाली हिन्द। पंडित नाथूराम प्रेमी, हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई—कालिदास और भवभूति। विद्यार्थी अनन्त बिहारीलाल माथुर, हिन्दी साहित्य हितैषी भवन, ग्वालियर—कविता कुसुम। खरीदी गई तथा परिवर्तन में प्राप्त—चन्द्रकान्ता दूसरा भाग, पंजाब हत्याकांड, राज सम्बन्धी सिद्धान्त, विज्ञान और आविष्कार, आरोग्य प्रदीप, स्वास्थ्य, वरदान, अनन्तमती, पार्वती, पलासी का युद्ध, मोहनी, सूर्य्यदेव, भ्रमर, सुकुमारी, आयुर्वेद गुलदस्ता, सावित्री और गायत्री, उत्तर ध्रुव की भयानक यात्रा, लोक परलोक हितकारी, सिद्धि, कबीर साहब की शब्दावली भाग १ से ४, घट्

साहब की बानी भाग १ से ३, दादू दयाल की बानी भाग १–२, मूलकदास की बानी, सुन्दर विलास, सन्त बानी संग्रह भाग १–२, दरिया साहब की बानी और जीवन चरित्र और सुखसागर तरंग। भारत धर्म महामंडल, काशी— Report for the year 1920. स्मिथसोनियन इन्स्टीट्यूशन, वाशिंगटन—Annual Report

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

(८) प्रबंध समिति।

शनिवार ८ आश्विन १९७८ (२४ सितंबर १९२१) संध्या के ५ $\frac{१}{२}$ बजे।

स्थान—सभाभवन

उपस्थित।

बाबू माधव प्रसाद—सभापति, पं० देवीप्रसाद उपाध्याय, बाबू वेणीप्रसाद, बाबू ब्रजरत्नदास, पंडित प्राणनाथविद्यालंकार, और पंडित रामचंद्र शुक्ल,।

सम्मति भेजनेवाले

रायबहादुर बाबू हीरालाल, पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए० और बाबू शिवकुमारसिंह।

(१) बाबू ब्रजरत्नदास के प्रस्ताव तथा पंडित देवीप्रसाद उपाध्याय के अनुमोदन पर बाबू माधवप्रसाद सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (११ भाद्रपद १९७८) का कार्य्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) मंत्री की यह सूचना उपस्थित की गई कि पुस्तकालय में न अब अलमारियां और न पुस्तकें रखने का स्थान है अतएव भवन के तीनों तरफ के बरामदे दोमँजिले तथा पक्के बनवा दिए जाँय। ऐसा करने से ४० नई अलमारियों के रखने का स्थान निकल आवेगा। इसमें ६०००) रु० व्यय होगा और अलमारी टेबुल आदि में ३०००) व्यय होगा। दोमँजिले बरामदों का नक्शा तथा व्यय का अनुमानपत्र भी साथ ही उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय और इस कार्य्य के लिये धन की सहायता प्राप्त करने का उद्योग किया जाय। ३०००) रु० एकत्र हो जाने पर इसके बनवाने में हाथ लगा दिया जाय।

(४) पंजाब के अकौंटेण्ट जनरल का पत्र उपस्थित किया गया जिसके अनुसार पंजाब में हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की खोज के लिये ५००) रु० की वार्षिक सहायता में से पहिली किस्त का २५०) प्राप्त हुआ था।

निश्चय हुआ कि पंजाब में खोज का कार्य्य प्रारम्भ कर दिया जाय, इस कार्य्य के लिये पंडित चन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी जी निरीक्षक चुने जांय और उन्हें अधिकार दिया जाय कि मंत्री की सम्मति से वे एक एजेंट उपयुक्त वेतन पर नियत कर लें।

(५) पंडित रामचन्द्र शुक्ल का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि नागरी प्रचारिणी ग्रन्थमाला डबल क्राउन अठपेजी आकार में न प्रकाशित होकर रायल अठपेजी आकार में प्रकाशित की जाय।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(६) महाराज छत्रपुर के दीवान का १६ अगस्त का पत्र नं० १०३८ उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने बुंदेलखंड में हिन्दी पुस्तकों की खोज का कार्य्य होने पर २५०) के स्थान पर कृपापूर्वक ५००) सभा को सहायतार्थ देना स्वीकार किया था।

निश्चय हुआ कि इस कृपा के लिये श्रीमान् महाराजा साहब को धन्यवाद दिया जाय तथा बुंदेलखंड के अन्य राज्यों से भी इस संबंध में सहायता के लिये प्रार्थना की जाय।

(७) मुंशी देवीप्रसादजी के दानपत्र की पांडुलिपि विचारार्थ उपस्थित की गई जिसके अनुसार उन्होंने अपनी सब पुस्तकों का स्वत्व सभा को देने की इच्छा प्रगट की थी।

निश्चय हुआ कि इस पांडुलिपि में ग्रंथकर्ता को प्रत्येक पुस्तक की जितनी प्रतियां दी जायँगी उनकी संख्या तथा रायल्टी की धनसंख्या नहीं लिखी है अतः मुंशीजी से प्रार्थना की जाय कि वे कृपापूर्वक इन दोनों को लिख दें।

(८) सहायक मंत्री के पद से बाबू बालमुकुंद वर्म्मा का त्यागपत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(९) मंत्री की रिपोर्ट उपस्थित की गई जिसमें उन्होंने प्रस्ताव किया था कि पुस्तक विभाग के लिये कोई सहायक मंत्री न नियत किया जाय, केवल एक नया क्लार्क तथा एक दफ्तरी नियत किया जाय और कुछ दिनों तक देखा जाय कि इस प्रबंध से पुस्तक विभाग का काम ठीक चलता है या नहीं।

निश्चय हुआ कि यह रिपोर्ट आगामी अधिवेशन में उपस्थित की जाय।

(१०) निश्चय हुआ कि मेहता ओंघसिंह पुरस्कार का जो रुपया सभा के पास है उसमें से १०२३) रु० लगा कर ११००) के संयुक्त प्रदेश की गवर्नमेंट के नए बॉड खरीद लिए जायँ।

(११) उपमंत्री ने सूचना दी कि बाबू महेश प्रसाद जी का यह प्रस्ताव है कि सुलेमान यात्री के यात्राविवरण का जो अनुवाद वे कर रहे हैं उसके साथ ही साथ अरबी का मूल पाठ भी सभा द्वारा प्रकाशित किया जाय।

निश्चय हुआ कि सभा की सम्मति में अरबी पाठ का प्रकाशित होना आवश्यक नहीं है।

(१२) निश्चय हुआ कि यूरोपीय दर्शन का नवीन संस्करण मनोरंजन पुस्तकमाला में ही प्रकाशित किया जाय।

(१३) गंगा पुस्तकमाला के संचालक का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने प्रार्थना की थी कि उन्हें सभा की पुस्तकें उधार दी जाँय, कमीशन साधारण बुकसेलरों से कुछ अधिक दिया जाय और सभा उन्हें अवध के लिये अपना एजेंट नियत कर दे।

निश्चय हुआ कि ये प्रार्थनाएँ स्वीकार नहीं की जा सकतीं।

(१४) पंडित निष्कामेश्वर मिश्र जी की भेजी हुई भारतेंदु जयंती की रिपोर्ट व्याख्यानों के सहित उपस्थित की गई जो उनकी संक्षेप लेख प्रणाली के अनुसार लिखी गई थी।

निश्चय हुआ कि इस प्रणाली द्वारा व्याख्यानों को लिखने के लिये एक विशेष सभा की जाय और उसमें व्याख्यानों के सफलता पूर्वक लिखे जाने पर पंडित निष्कामेश्वर मिश्र जी की पुस्तक को प्रकाशित करने के संबंध में विचार किया जाय।

(१५) बाबू देवनंदन सिंह का प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने २७ श्रावण से १६ भाद्रपद १९७८ तक की बीमारी की छुट्टी के वेतन के लिये प्रार्थना की थी।

निश्चय हुआ कि नियमानुसार इन्हें इस छुट्टी का पूरा वेतन दिया जाय।

(१६) भाद्रपद १९७८ के आयव्यय का निम्नलिखित हिसाब सूचनार्थ उपस्थित किया गया।

आय का ब्योरा	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग	व्यय का ब्योरा	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
गत मास की बचत	१५७०३।-)४		कार्य्यकर्त्ताओं का वेतन	१५१॥-)॥	५५॥=)॥
सभासदों का चंदा	४०७)		छपाई	१७=)॥	
नागरी प्रचार	१।-)		डाकव्यय	४८-)॥	
फुटकर आय	३०३=)।		नागरीप्रचार	८।=)	
पुस्तकालय	३०॥)।		पुस्तकालय	२०६॥।=)	
अमानत	८१८।=)		हिंदी पुस्तकों की खोज, संयुक्त प्रांत	२३।-)	
पुस्तकालय के लिये अमानत	१४५)		हिन्दी पुस्तकों की खोज (पंजाब)	-)	
विशेष सहायता	२४-)		फुटकर व्यय	५४२॥)।	
जोधसिंह पुरस्कार	११।-)॥		मरम्मत	६३-)॥	
पुस्तकों की बिक्री		२००-)॥	अमानत	३७३।=)	
मनोरंजन पुस्तकमाला		३६२॥)	सभाभवन प. टिकस	६६॥=)	
हिन्दी कोश		२४३=)।	पुस्तकालय के लिये अमानत लौटाई गई	२०)	
भारतेंदु ग्रंथावली		६=)।	असबाब	६३)	
पृथ्वीराज रासो		६०॥=)	देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला		१७८०।=)
सूर्यकुमारी पुस्तकमाला		१५३३।=)	मनोरंजनपुस्तकमाला		२८७)॥
देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला		२१॥=)॥।	हिंदी कोश		२३१)।
			सूर्यकुमारी पुस्तकमाला		२०२॥=)
जोड़	१६४४४-)४	२४२३॥)॥।	भवन निर्माण	१०)	
	१८८६७॥=)१			१६१८।-)।	२५५६॥।=)॥
			बचत	४१७५=)॥।	
				१४७०२।=)४	
				१८८६७॥=)१	

बचत का ब्योरा ।

७६।-)१ रोकड़ सभा	१०५००) इम्पीरियल बंक के शेयर
२१)॥ बनारस बंक सेविंग बंक	७५००) बनारस बंक फिक्सड डिपाजिट
	७॥)७ पोस्टल सेविंग बंक
११०।-)७	३)॥ बनारस बंक, भवन निर्माण
	१८०१०॥।-)१

१८१२१=)८

३४१८॥।)४ बनारस बंक से अधिक लिया गया

१४७०२।=)४

(१७) बनारस म्युनिसिपेलिटी का ३ सितम्बर १९२१ का पत्र नं० ३८६७ सूचनार्थ उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि सभाभवन पर सन् १९१७–१८ के टिकस के विषय में सभा का लिखना ठीक है और इस सन् का टिकस सभा से नहीं लिया जाना चाहिए।

(१८) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

---

(५) साधारण सभा।

शनिवार मि० २६ आश्विन १९७८ (१५ अक्तूबर १९२१) सन्ध्या के ५ 1/2 बजे

स्थान—सभा भवन

उपस्थित।

पंडित रामचन्द्र शुक्ल—सभापति।

बाबू श्यामसुन्दर दास जी बी०ए०, बाबू ब्रजरत्न दास, बाबू रामचन्द्र वर्मा पंडित सांवल जी नागर, पंडित केदारनाथ पाठक, बाबू गोपाल दास।

(१) पंडित रामचन्द्र शुक्ल सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (२५ भाद्रपद १९७८) का कार्य विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) प्रबन्धकारिणी समिति का ८ आश्विन १९७८ का कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़ा गया।

(४) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किए गए:—१ श्रीमती रामलली, ट्रेनिंग पाठिका, पुत्री पाठशाला, ललितपुर ३) २ कुँअर लक्ष्मीनारायण सिंह, बेदला, उदयपुर ३) ३ श्रीमती सूरजबाई, प्रधानाध्यापिका, महारानी कन्या पाठशाला, कोटा ३) ४ ठाकुर केसरी सिंह, खीमसर, जोधपुर हाउस, मेयोकालेज, अजमेर ५)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जाएँ।

(५) काशी के बाबू राधारमण गुप्त का त्यागपत्र उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ।

(६) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं—

पंडित रामचन्द्र दुबे, डूंगरपुर A Short History of the Dungarpur State or Western Bagar. मुंशी महेशप्रसाद जी, काशी—काव्य दर्शन। स्मिथ सोनियन इन्स्टीट्यूट, वाशिंगटन, अमेरिका—Diagnosis of some new genera of birds. New Selaginellas from the Western U. S. Alsea texts and myths. एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता—Journal and Proceedings of the Asiatic Society of Bengal New Series, Vol XVI, 1920, No 8. लाला सीताराम बी० ए०, मुट्ठीगंज, प्रयाग—Selections from Hindi Literature. मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, आरा-सिद्धनाथ कुसुमांजलि, आरा पुरातत्व, विचित्र संग्रह, बाबू जैनेन्द्र किशोर की जीवनी, अर्थ शास्त्र, बाबू राधाकृष्ण दास, पं० बलदेव प्रसाद मिश्र, अपराजिता, गत ५० वर्षों में विहार में हिन्दी की दशा, म० कु० बाबू रामदीन सिंह (बा० जैनेन्द्र किशोर लिखित), सुशील शिक्षा, सृष्टितत्व, कलवार की उत्पत्ति, श्री पेडलर, शैव प्रेम प्रतिमा, भारतवर्ष के इतिहास की समालोचना, महाराज कुमार बाबू रामदीन सिंह (बा० नरेन्द्रनारायण सिंह लिखित) और शङ्कर प्रसाद मीमांसा। बाबू जुगल किशोर मुख्तार, सरसावां, जि० सहारनपुर—वीर पुष्पांजलि। बाबू विश्वेश्वर नाथ खन्ना, नायघाट, काशी—महात्मा अब्राहम लिंकन। पंडित श्यामलाल पाठक, सरस्वती सदन, मालापुर, जबलपुर—कंसबध काव्य। खरीदी गईं तथा परिवर्तन में प्राप्त हुईं—गांधी गौरव, बरदान, अपूर्व आत्मत्याग, दरिद्रता से बचने का उपाय, प्रत्नतत्व और साहित्य मीमांसा, Elliott's History of India Vol I. Indian Antiquary for October 1921.

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—o—

(६) साधारण सभा।

शनिवार मि० २६ कार्तिक १९७८ (१२ नवम्बर १९२१) सन्ध्या के ५$\frac{१}{२}$ बजे

स्थान, सभा भवन

उपस्थित।

पंडित देवी प्रसाद उपाध्याय—सभापति, बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, बाबू ब्रजरत्नदास, बाबू रामचन्द्र वर्म्मा, पंडित केदारनाथ पाठक और बाबू गोपालदास।

(१) बाबू श्यामसुन्दरदासजी के प्रस्ताव तथा बाबू रामचन्द्र वर्म्मा के अनुमोदन पर पंडित देवी प्रसाद उपाध्याय सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (२६ आश्विन १९७८) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किए गए:—(१) बाबू हरिबकस मरोदिया, १३ सरकार लेन, कलकत्ता ३) (२) बाबू श्रीकृष्णचन्द्रशाह वकील, पायोनियर साल्ट पीटर वर्क्स, फर्रुखाबाद ३) (३) पंडित केशव प्रसाद मिश्र, भदैनी, काशी ३) (४) बाबू श्यामचन्द्र गोवर्द्धन राम, सेक्रेटरी, हिन्दी पुस्तकालय, व्यायामशाला, बाग हलवद, काठियावाड़ ३) (५) बाबू भगवानदास, द्वितीयाध्यापक, टाउन स्कूल, मड़रौनी, झांसी ३) (६) बाबू गजाधर प्रसाद महरोत्रा, कोठी, पो० बिसवाँ, जिला सीतापुर ३) (७) चौधरी हरिचरणलाल शर्म्मा, बिलौवा, आंतरी, ग्वालियर स्टेट ३)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जांय।

(४) निम्नलिखित सदस्य का त्यागपत्र उपस्थित किया गया:—बाबू ईश्वरदास वार्शनी, बहजोई, जिला मुरादाबाद।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(५) मंत्री ने सूचना दी कि निम्नलिखित सदस्यों के पास नागरी प्रचारिणी पत्रिका के जो पेकेट भेजे गए थे उन पर पोस्ट आफिस ने इन सज्जनों के देहान्त की सूचना लिख कर उन्हें लौटा दिया है—

(१) बाबू बलदेव प्रसाद वकील, बरेली (२) पंडित माखन लाल चौबे वकील, फर्रुखाबाद (३) सेठ जयदयाल साहब, बिसवाँ, सीतापुर (४) पंडित

रामदुलारे वाजपेयी, कचेहरी रोड, लखनऊ (५) रायबहादुर सीताराम विश्वनाथ पटवर्धन, डोलकरआली, पूना (६) पंडित देवदत्त शर्म्मा, काला कांकर।

सभा ने इन सज्जनों की मृत्यु पर शोक प्रगट किया।

(६) पंडित केदारनाथ पाठक का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने निम्नलिखित हिन्दी प्रेमियों की मृत्यु की सूचना दी थीः— (१) चौधरी सोना सिंह, सम्पादक, पाटली पुत्र बांकीपुर (२) बाबू कालिदास माणिक, मिश्र पोखरा, काशी (३) महामहोपाध्याय पंडित आदित्यराम भट्टाचार्य, प्रयाग (४) पंडित मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए०, तहसीलदार, महरौला, जि० आज़मगढ़।

इन सज्जनों के देहान्त पर सभा ने बड़ा शोक प्रगट किया।

(७) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईंः—

(१) कुंवर नवाबसिंह, दतौली, रिजांग, पटियाला—भारतोदय नाटक। (२) बाबू श्यामसुन्दरदासजी बी० ए०, काशी—मानसकोश। (३) पंडित रामशरण उपाध्याय, मुज़फ़्फ़रपुर—मगध का प्राचीन इतिहास। (४) श्रीयुत तिलकचन्द ताराचन्द वैद्य, सूरत—आंक नी चोपड़ी। (५) श्रीयुत जीवनदास करशनदास मेहता, बम्बई—जाति हित। (६) बाबू गोपालदास, काशी—भाषा भास्कर (प्रथम संस्करण)। (७) श्रीभारत धर्म्म महामण्डल, काशी—नवीन दृष्टि में प्रवीण भारत। (८) क्रय की गई तथा परिवर्तन में प्राप्त—रामायण अयोध्याकाण्ड, विद्या सागर, अलबेरूनी का भारत (दूसरा भाग), संक्षिप्त रामायण सचित्र, चरित्र गठन, भारतीय विदुषी, मनुष्य विचार, डाकघर, चमत्कारी बालक, भाषा सार संग्रह चौथा भाग, कादम्बरी, मानसिक आकर्षण द्वारा व्यापारिक सफलता, बाल पत्र कौमुदी, मानुषी अंग तथा स्वास्थ्य, धोखे की टट्टी और अकबर।

(८) निश्चय हुआ कि निम्नलिखित सज्जनों की उपसमिति बनाई जाय जो इस विषय पर विचार कर सभा को सम्मति दे कि सभा के साधारण अधिवेशन किस प्रकार अधिक रोचक बनाए जांयः— बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०, पंडित देवी प्रसाद उपाध्याय, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, बाबू ब्रजरत्नदास और बाबू रामचन्द्र वर्म्मा (संयोजक)

(९) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

(६) प्रबंध समिति।

शनिवार १० मार्ग शीर्ष १९७८ (२६ नवम्बर १९२१) संध्या के ५½ बजे

स्थान—सभाभवन

उपस्थित।

बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए०, एल० एल० बी०, सभापति, बाबू श्यामसुंदरदास बी०ए०, बाबू कवीन्द्रनारायणसिंह, बाबू ब्रजरत्नदास, बाबू दुर्गाप्रसाद, पंडित रामचंद्र शुक्ल, पंडित प्राणनाथ विद्यालंकार।

सम्मति भेजनेवाले।

पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र बी० ए०, पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी बी० ए०, पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी, रायबहादुर बाबू हीरालाल, पंडित जगन्नाथ निरुकरत्न, पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०।

(१) गत अधिवेशन (८ आश्विन १९७८) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) आश्विन और कार्तिक १९७८ के आयव्यय का निम्नलिखित हिसाब सूचनार्थ उपस्थित किया गयाः—

आश्विन

आय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग	व्यय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
गत मास की बचत	१४७०२।=)४		कार्यकर्ताओं का वेतन	१४७॥=)॥	३४।-)॥।
सभासदों का चंदा	३६)		छपाई	१५७१॥)॥।	
हिंदी पुस्तकों की खोज	५००)		डाकव्यय	१५६-)७	
नागरी प्रचार	१॥ॽ)		नागरी प्रचार	८।=)	
फुटकर आय	२४।ॽ)		पुस्तकालय	५ॽ)	
पुस्तकालय	६१॥=)।		पुस्तकों की खोज	११६।ॽ)।	
जोधसिंह पुरस्कार	८)		फुटकर व्यय	३७)।	
अमानत	१६६ॽ)		मरम्मत	३५॥)	

आय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग	व्यय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
स्थायी कोश	२॥)॥		जोधसिंह पुरस्कार	।-)	
भवन निर्माण	२॥=)।॥		भवन निर्माण	।=)	
पुस्तकालय के लिये अमानत	४०)		अमानत	७४।=)।॥	
पुस्तकों की खोज के लिये पंजाब गवर्मेंट की सहायता	२५०)		पुस्तकालय के लिये अमानत	५)	
पुस्तकों की बिक्री		७८॥।-)॥	मनोरंजन पुस्तकमाला		६५८।॥=)।
पृथ्वीराजरासो		७४)	हिन्दी कोश		२६७=)
हिन्दी कोश		३१६-)।	भारतेन्दु ग्रन्थावली		४६२)।॥
मनोरंजन पुस्तकमाला		१०८५-)।॥	देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला		।=)
भारतेन्दु ग्रन्थावली		३४=)	सूर्यकुमारी पुस्तक माला		१०४३।॥-)५
देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला		२५)		२२१४॥=)१	२७९६।॥=)२
सूर्यकुमारी पुस्तक-माला		३६६१।॥=)	बचत	५०११।॥=)।	
				१६०९५।)१	
	१५८२९-)१०	५२३८)॥		२११०७=)४	
	२११०७=)४				

कार्तिक १९७८

आय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग	व्यय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
गत मास की बचत	१६०६५।)१		कार्यकर्ताओं का		
सभासदों का चन्दा	६४)		वेतन	१६७॥।)।	८॥-)॥
नागरी प्रचार	⊯)		छपाई	३५६॥⊯)१	
फुटकर आय	१३।)॥		डाक व्यय	५०॥)॥	
पुस्तकालय	२२॥=)		नागरीप्रचार	८।=)	
अमानत	२८॥)		पुस्तकालय	१५२⊯)।	
स्थायी कोश	१२५)		पुस्तकों की खोज	७४॥-)॥	
रत्नाकर पुरस्कार	१०००)		फुटकर व्यय	१२६॥।-)	
पुस्तकालय के लिये			मरम्मत	५॥⊯)॥	
अमानत	३५)		भवन निर्माण	१११।)	
पुस्तकों की बिक्री		१८५॥।=)	अमानत	१०६।⊯)	
पृथ्वीराजरासो		८८)	पुस्तकालय के लिये		
हिन्दी कोश		२८७)॥	अमानत	५)	
मनोरंजनपुस्तकमाला		२६८)	पंजाब में पुस्तकों की		
भारतेन्दु ग्रंथावली		११॥)॥।	खोज	३।=)	
देवीप्रसाद ऐतिहा-			मनोरंजनपुस्तकमाला		१०६८॥।=)
सिक पुस्तकमाला		१६॥।=)	हिन्दी कोश		७४॥=)४॥
सूर्यकुमारी पुस्तक-			देवीप्रसाद ऐतिहा-		
माला		२६॥।=)	सिक पुस्तकमाला		१७७॥-)॥।
			सूर्य्यकुमारी पुस्तक-		
	१७३८३॥।-)१	८१७।⊯)।	माला		१२२१॥।⊯)।
	१८२०१।)१०			११७७॥।)१	२५५१॥=)१०॥
				३७२६।=)११॥	
			बचत	१४५७१॥।-)१०॥	
				१८२०१।)१०	

बचत का ब्योरा

२१॥≡)१॥ रोकड़ सभा	१०५००) इम्पीरियल बंक के शेयर
२६७५-)२ बनारस बंक, चलता खाता	१०२३) यू० पी० बॉंड (ओधसिंह स्थायी कोश)
३१)॥ बनारस बंक, सेविंग बंक	७॥)७ पोस्टल सेविंग बंक
	३)॥ बनारस बंक, भवन निर्माण
३०३=)६॥	११५३३॥-)१

१४५७१॥।-)१०॥

(३) मुंशी देवीप्रसादजी का २४ अक्तूबर १६२१ का पोस्टकार्ड उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि सभा उनकी पुस्तकों के स्वत्व के लिये जो रायलटी और पुस्तकों की जितनी प्रतियां देना निश्चित करे उसे वे स्वीकार करेंगे।

निश्चय हुआ कि रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा से प्रार्थना की जाय कि वे मुंशी देवीप्रसादजी की सम्मति लेकर रायलटी और पुस्तकों की प्रतियाँ निश्चित करदें।

(४) मंत्री का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि गंगा पुस्तकमाला कार्यालय को लखनऊ की सोल एजेंसी दे देने के कारण वहाँ के पुस्तक विक्रेताओं को यथेष्ट कमीशन नहीं मिलता और न उन्हें पुस्तकें ही उनके इच्छानुसार मिलती हैं। इससे सभा की बिक्री में हानि होती है। अतः इन पुस्तक विक्रेताओं को सभा स्वयं पुस्तकें भेजा करे और इन पर गंगा पुस्तकमाला को कोई कमीशन न दिया जाय।

निश्चय हुआ कि गंगा पुस्तकमाला की सोल एजेंसी अब न रक्खी जाय।

(५) पंडित उपेन्द्र शरण शर्म्मा का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा श्रीमान् ग्वालियर नरेश से यह प्रार्थना करे कि वे अपने राज्य सम्बन्धी कार्यों में हिन्दी भाषा प्रचलित कर दें।

निश्चय हुआ कि सभा इस समय इस विषय को उठाना उचित नहीं समझती।

(६) मंत्री की यह रिपोर्ट उपस्थित की गई कि पुस्तक विभाग के लिये कोई सहायक मंत्री न नियत किया जाय वरन् एक नया क्लार्क और एक दफ्तरी

नियत किया जाय और कुछ दिनों तक देखा जाय कि इस प्रबन्ध से पुस्तक विभाग का काम ठीक चलता है या नहीं।

निश्चय हुआ कि (क) कार्तिक १९७८ से पुस्तक विभाग के लिये १५) रु० मासिक वेतन पर एक क्लार्क की नियुक्ति स्वीकार की जाय (ख) आवश्यकता होने पर एक दफ्तरी भी रख लिया जाय (ग) १ अश्विन १९७८ से बाबू गोपाल दास का मासिक वेतन ७५) रु० कर दिया जाय और (घ) १ कार्तिक १९७८ से बाबू शंकरसिंह का वेतन १६) कर दिया जाय।

(७) बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर का ३१ अक्तूबर १९२१ का पत्र उपस्थित किया गया जिसके साथ उन्होंने १०००) रु० सभा को इस लिये दिया था कि उसके ब्याज से ब्रजभाषा की कविता की उन्नति के लिये सभा कोई पदक या उपहारादि दिया करे। साथ ही मंत्री ने सूचना दी कि इस रुपये में सभा का ४४॥-) रु० और मिला कर १७ सौ के प्रामिसरी नोट खरीद लिए गए हैं जिनसे प्रति वर्ष ५९॥) की आय होगी। सभा का जो अधिक रुपया लगा है वह ब्याज मिलने पर ले लिया जायगा।

निश्चय हुआ कि इसके लिये बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर को धन्यवाद दिया जाय और इसके ब्याज से ब्रजभाषा की कविता की उन्नति के लिये निम्न-लिखित नियमों के अनुसार पुरस्कार दिया जाय और ये नियम बाबू जगन्नाथ दास जी के पास स्वीकृति के लिये भेजे जांय।

१. प्रति तीसरे वर्ष २००) रु० का पुरस्कार जिसका नाम "रत्नाकर पुरस्कार" होगा उस व्यक्ति को दिया जाया करे जिसने उन तीन वर्षों में सर्वोत्तम कविता ब्रजभाषा में की हो अथवा उसके अभाव में या किसी कविता के पुरस्कार योग्य न ठहरने पर वह उस व्यक्ति को दिया जाय जिसने ब्रजभाषा के किसी प्राचीन ग्रन्थ का उपयुक्त रीति से सर्वोत्तम सम्पादन किया हो।

२. उसी नई कविता पर पुरस्कार के लिये विचार होगा जिसके कम से कम २०० चरण होंगे।

३. पहला पुरस्कार १ माघ १९७८ से ३१ पूस १९८१ तक के बीच में आई हुई नवीन कविता, अथवा उसके अभाव वा अनुपयुक्त होने पर सम्पादित ग्रन्थ के लिये दिया जाय।

४. प्रति तीसरे वर्ष सभा तीन या पांच विद्वानों की एक उपसमिति बनावेगी जो आई हुई नवीन कविताओं अथवा सम्पादित नवीन ग्रन्थों पर

विचार कर सभा को यह सम्मति देगी कि उसमें से कौन पुरस्कार के योग्य है।

(८) पंडित विन्ध्येश्वर मिश्र का २६ अक्तूबर १९२१ का पत्र सूचनार्थ उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि शीघ्रलिपि प्रणाली पर अपनी पुस्तक के छपवाने का प्रबन्ध अब उन्होंने स्वयं कर लिया है।

(९) मंत्री ने सूचना दी कि एक महाशय ने जो अपना नाम प्रकट करना नहीं चाहते, सभाभवन में प्रस्तावित परिवर्तन करने के लिये २०००) रु० देने का वचन दिया है और यह रुपया जनवरी १९२२ तक सभा को मिल जायगा।

समिति ने इस पर हर्ष और कृतज्ञता प्रगट की।

(१०) बाबू शारदाप्रसाद गुप्त का ९ नवम्बर का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने नागरीप्रचारिणी पत्रिका की उन्नति करने तथा सभा भवन में सभासदों के ठहरने के लिये एक स्थान बनवाने का प्रस्ताव किया था।

निश्चय हुआ कि मंत्री इस पत्र का उचित उत्तर दे दें।

(११) वेतन वृद्धि के लिये बनारस कलेक्टरी के लेखक बाबू प्यारे मोहन-लाल का प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि आगामी वैशाख से इनके मासिक वेतन में २) रु० की वृद्धि की जाय।

(१२) मंत्री ने सूचना दी कि सभा के क्लार्क बाबू देवनन्दनसिंह रविवार वा अन्य छुट्टी में जब घर जाते हैं तो प्रायः कार्यालय खुलने पर सभा में ठीक समय पर नहीं आते और बिना छुट्टी लिये ही अनुपस्थित भी हो जाते हैं।

निश्चय हुआ कि यदि भविष्य में बाबू देवनन्दनसिंह ऐसा ही करेंगे तो सभा को विवश होकर उन्हें पदच्युत करना पड़ेगा।

(१३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

---

(७) साधारण सभा।

शनिवार २३ पौष १९७८ ता० ७ जनवरी १९२२ सन्ध्या के ५ बजे

स्थान-सभाभवन

उपस्थित

बाबू बेनीप्रसाद—सभापति, बाबू श्यामसुन्दरदासजी बी० ए०, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, बाबू रामचन्द्र वर्म्मा, बाबू ब्रजरत्नदास, पंडित केदारनाथ पाठक, बाबू गोपालदास।

(१) बाबू बेणीप्रसादजी सभापति चुने गए।

(२) २६ कार्तिक १९७८ का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) प्रबन्ध समिति का १० मार्गशीर्ष १९७८ का कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़ा गया।

(४) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किए गए:—(१) बाबू महादेव प्रसाद एम० ए० बी० एल० मुरादपुर, पटना ३) (२) कवि गुलाब शंकरजी कल्याणजी बोरा, बांसवाड़ा ३) (३) श्रीयुत महेन्द्र जैन, मानपाड़ा, आगरा ३) (४) पंडित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, ९० सीताराम घोष स्ट्रीट, कलकत्ता ३) (५) बाबू हरिकृष्णराय बी० टी० सी० विशारद, अध्यापक, मिडिल स्कूल, बैरिया, जिला बलिया ३)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जांय।

(५) निम्नलिखित सभासदों के त्यागपत्र उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए:—(१) बाबू द्वारका प्रसाद, प्रधानाध्यापक, राष्ट्रीय विद्यालय, मोतिहारी (२) पं० रामकृष्णराव कुदले, काशी।

(६) मंत्री ने सूचना दी कि निम्नलिखित सभासदों के यहाँ नागरी-प्रचारिणी पत्रिका के जो पेकेट भेजे गए थे वे लौट आए हैं और डाक के कर्मचारियों ने इन पेकटों पर लिखा है कि इन सज्जनों का देहान्त हो गया:—(१) केपटेन ठाकुर बल्लीसिंह चौहान, कचहरी घाट, आगरा (२) बाबू महावीरप्रसाद अग्रवाल, अलीनगर, गोरखपुर।

सभा ने इन सज्जनों के देहान्त पर शोक प्रकट किया।

(७) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं। (१) गवर्मेंट आफ इण्डिया—Fauna of British Indi, Molusca Vol III (२) स्मिथसोनियन इस्टीट्यूशन, वाशिंगटन, अमेरिका—Bureau of American Athnology Vol 72, Smithsonian Miscellaneous Collections. (३) Indian Antiquary for November and December 1921. (४) खरीदी गईं तथा परिवर्तन में प्राप्त—हिन्दी विश्वकोश भाग २ और ३, महात्मा गान्धी, भयानक भेदिया, नवाबी परिस्तान २ भाग, प्रवासिनी, निर्धन की कन्या, गुलाब शिक्षा, वृन्दावतार, सती महिमा, चिन्ता, दो बहिन, रमणी रहस्य, सुर बाला, लाल चिट्ठी, वीर कर्ण, दर्प दलन, शर्मिष्ठा, एकलव्य, पतिव्रता गान्धारी, पेरिस रहस्य भाग ५, नन्दन भवन, हृदय तरंग, गुलामी से छूटने का उपाय, बाल्शेविज्म, स्वाधीन बनो, भारत दर्शन, देश बन्धु, चित्तरंजन दास, आयर्लेण्ड की राज्यक्रान्ति,

स्वतंत्रता की जयकार, हिन्दोस्तान का राष्ट्रीय झण्डा और अधखिला फूल।

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

---

(८) साधारण सभा।

शनिवार मि० २६ माघ १९७८ (११ फरवरी १९२२) सन्ध्या के ५ बजे।

स्थान—सभाभवन

उपस्थित

पंडित प्राणनाथ विद्यालंकार—सभापति, बाबू श्यामसुंदर दास जी बी०ए० पंडित रामचंद्र शुक्ल, बाबू रामचंद्र वर्म्मा, बाबू ब्रजरत्न दास, पंडित केदारनाथ पाठक, बाबू गोपालदास।

(१) पंडित रामचंद्र शुक्ल के प्रस्ताव तथा बाबू रामचंद्र वर्म्मा के अनुमोदन पर पंडित प्राणनाथ विद्यालंकार, सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (२३ पौष १९७८) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किए गएः—(१) श्रीयुत फूलशंकर बाबा भाई राजवैद्य, उदयपुर, मेवाड़ ३) (२) श्रीयुत भेरुलाल गेलड़ा, डि० बी० एल० आदर, उदयपुर ३) (३) बाबू गुरु प्रसाद धवन, मेनेजर, बनारस बंक लिमिटेड, बनारस ३) (४) बाबू रामनारायण दूगड़, उदयपुर ३) (५) श्रीयुत चतुरसेन शास्त्री अजमेरवाले, वैद्यराज, कालबा देवी रोड, बम्बई ३) (६) बाबू विशंभरनाथ भार्गव, घास कटला, अजमेर ३) (७) पंडित भास्कर गणेश जोशी, देवास सीनियर ३) (८) पंडित गोवर्धन वैद्य, जागीरदार, काणा, पो० घाणेराव, मारवाड़ ३) (९) पंडित प्रेमवल्लभ जोशी, प्रोफेसर, गवर्नमेंट कालेज, अजमेर ३)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जायँ।

(४) बाबू नरोत्तम दास खत्री, बुलानाला, काशी का त्यागपत्र उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ।

(५) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं—(१) पंडित मूलराज शर्म्मा, बागर, स्यालकोट—नारीधर्म्म दर्पण, हिन्दू धर्म्म दर्पण प्रथम भाग—(२) पंडित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, नं० ९० सीताराम घोष स्ट्रीट,

कलकत्ता—हिंदी लिंग विचार, सिंहावलोकन, अनुप्रास अन्वेषण, बिहार प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति का भाषण (३) पंडित बालमुकुंद त्रिपाठी, जबलपुर—मध्य प्रांतीय चौथे हिंदी साहित्य सम्मेलन जबलपुर का कार्यविवरण और लेखमाला। (४) श्रीयुत विद्याधिकारी, कचेरी भाषांतर शाखा, बड़ोदा राज्य—सयाजी वैज्ञानिक शब्द संग्रह। (५) लाला संतराम बी० ए०, साहित्यसदन, जालंधर, पंजाब—बालक। (६) बाबू शारदाप्रसाद गुप्त, अहरौरा, जिला मिर्जापुर—Lala Lajpat Rai, Ramkirshna Paramahansa, Dr. Rash Behari Ghose, Pandit Madan Mohan Malaviya, His Highness Shri Sayaji Rao Gaekwar. (७) बाबू शिवरामदास गुप्त, उपन्यास बहार, काशी—सुमन संग्रह, हमारी दाई। (८) बाबू शोभाचंद्र जमड़, सरदार शहर—बाल-विवाह विवेचन (९) श्रीयुत इन्द्र वेदालंकार विद्यावाचस्पति, गुरुकुल, कांगड़ी—स्वर्ण देश का उद्धार (१०) श्रीयुत व्यवस्थापक, ग्रंथरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, गिरगांव, बंबई—भारत के प्राचीन राज वंश दूसरा भाग (११) लाला भगवानदीन जी, गोविन्दपुरा, काशी—बिहारी बोधिनी। (१२) पंडित गणेशदत्त शर्म्मा गौड़, आगर, मालवा—कृष्णापमान नाटक, श्री नागरी पूजा, पुजारी जी नर्क में क्यों? (१३) बाबू ब्रजरत्नदास जी, काशी—खुसरो की हिंदी कविता। संयुक्त प्रदेश की गवर्नमेंट—General Report on Public Instruction in the United Provinces of Agra and Oudh for the year ending 31st March 1921. (१४) एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता—Journal and Proceedings of the Asiatic Society of Bengal New Series Vol XVII, 1921 No. # (१६) Indian Antiquary for January 1922 (१७) खरीदी गई तथा परिवर्तन में प्राप्त—श्री तुलसी जीवनी, महाराष्ट्रीय ज्ञान कोश, होमर गाथा, भारतवर्ष का इतिहास दूसरा भाग, पाक कौमुदी, चुम्बक, सूरदास की विनय पत्रिका और गल्प लहरी।

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

(१०) प्रबंध समिति।

शनिवार १३ फाल्गुन १९७८ (२५ फरवरी १९२२) संध्या के ५ बजे।

स्थान—सभा भवन।

उपस्थित।

पंडित रामचंद्र नायक कालिया—सभापति, बाबू श्यामसुंदरदास बी.ए., ठाकुर शिवकुमारसिंह, बाबू माधवप्रसाद, बाबू व्रजरत्नदास, पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी बी. ए., पंडित रामचंद्र शुक्ल, बाबू कवीन्द्रनारायणसिंह, बाबू बेणी प्रसाद, पंडित रामनारायण मिश्र बी. ए.,

सम्मति भेजने वाले

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी, पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र बी. ए.,

(१) बाबू श्यामसुंदरदास जी के प्रस्ताव पर सर्वसम्मति से पंडित रामचन्द्र नायक कालिया सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (१० मार्गशीर्ष १९७८) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर का २ दिसम्बर १९२१ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि "रत्नाकर पुरस्कार" के लिये सभा ने जो नियम बनाए हैं वे उन्हें स्वीकार हैं।

(४) मिसर्स नन्दलाल खन्ना खण्ड को० का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि उनकी पुस्तकों का विज्ञापन सभा के सब पैकेटों के साथ भेजा जाय और इसका उचित व्यय उनसे लिया जाय।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार नहीं किया जा सकता।

(५) पंडित पद्माकर द्विवेदी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि सभा स्वर्गवासी पंडित सुधाकर द्विवेदी जी की "गणित का इतिहास" नामक पोथी की ६०० प्रतियाँ अर्द्ध मूल्य पर उनसे खरीद ले।

निश्चय हुआ कि धनाभाव से सभा इस पुस्तक की प्रतियों को खरीद लेने में असमर्थ है पर ५०) रु० सैकड़े कमीशन पर सभा इनकी बिक्री कर सकती है।

(६) निश्चय हुआ कि आगामी वर्ष के लिये नागरीप्रचारिणी पत्रिका के सम्पादक राय बहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा तथा पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी, ना० प्रा० ग्रंथमाला के सम्पादक पंडित रामचंद्र शुक्ल; मनोरंजन पुस्तकमाला के सम्पादक बाबू श्यामसुंदरदास बी. ए.; देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला के सम्पादक रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा और सूर्यकुमारी पुस्तकमाला के संपादक पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी बी० ए० चुने जाँय।

(७) निश्चय हुआ कि आगामी वार्षिक चुनाव के लिये नियम ७५ (क-५) के अनुसार निम्नलिखित पदाधिकारी तथा प्रबंध समिति के सदस्य निर्वाचित किए जाँयः—

सभापति—पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी जी।

उपसभापति (१) पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी बी० ए०

(२) पंडित शुकदेवबिहारी मिश्र बी० ए०

मंत्री—बाबू श्यामसुंदरदास बी० ए०

उप मंत्री—बाबू व्रजरत्नदास।

प्रबंध समिति के सदस्य—ठाकुर शिवकुमार सिंह, पंडित रामचंद्र नायक कालिया, बाबू गौरीशंकर प्रसाद जी बी० ए०, एल० एल० बी०, बाबू बालमुकुन्द शर्म्मा, राय पूरनचंद्र नाहर बाबू राम गोपाल चौधरी और पंडित गिरिधर शर्म्मा चतुर्वेदी।

(८) उन सदस्यों की नामावली उपस्थित की गई जिनके यहां सभा का दो वर्ष का चंदा बाकी है।

निश्चय हुआ कि इन सज्जनों को सूचना दी जाय कि वे अपना चंदा १ चैत्र १९७८ तक भेज दें और यदि उस समय तक भी इनका चंदा न प्राप्त हो तो इनका नाम सूची "ख" में लिखा जाय।

(९) सभाभवन में दूसरी मंजिल बनवाने के संबंध में बनारस की म्युनिसिपेलिटी का स्वीकृतिपत्र उपस्थित किया गया। साथ ही स्टाक के कमरे बनवाने के लिये भी नकशा उपस्थित किया गया।

बाबू माधवप्रसाद जी ने प्रस्ताव किया कि ये कमरे सभाभवन के पूरब की ओर न बनाए जाकर उत्तर की ओर बनवाए जायें।

निश्चय हुआ कि इस संबंध में कल रविवार को राय ज्वालाप्रसाद या पंडित मातादीन शुक्ल जी से सम्मति ली जाय और इस प्रस्ताव पर विचार करने के लिये इस समिति का अधिवेशन कल संध्या के ५ बजे पुनः किया जाय।

(१०) बाबू शिवदास गुप्त का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे एक संग्रह तयार कर रहे हैं और इसके लिये सभा उन्हें अपने पुस्तकालय से तीन पुस्तकें लेने की आज्ञा दे।

निश्चय हुआ कि वे नियमानुसार पुस्तकालय के सहायक होकर उक्त पुस्तकें ले सकते हैं।

(११) गंगा पुस्तकमाला कार्यालय के संचालक का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि सभा सोल एजेंटों को पुस्तक विक्रेताओं से ५) सैकड़े अधिक कमीशन दिया करे, उन्हें १०००) रु० की पुस्तकें उधार दी जायँ, लखनऊ में उनके सिवाय और किसी को पुस्तकें न भेजी जायँ और पैकिंग तथा रेल भाड़ा उनसे न लिया जाय।

निश्चय हुआ कि सभा उन्हें लखनऊ के लिये सोल एजेंसी नहीं दे सकता और उनके अन्य प्रस्ताव भी स्वीकार नहीं किए जा सकते।

(१२) मार्ग शीर्ष, पौष और माघ १९७८ के आय व्यय का निम्नलिखित हिसाब सूचनार्थ उपस्थित किया गयाः—

मार्गशीर्ष १६७८

आय का ब्योरा	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग	व्यय का ब्योरा	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
न मास की बचत	१४५७१॥~)१०॥		कार्य्यकर्त्ताओं का		
मासदों का चंदा	६६॥)		वेतन	१३३।)॥।	१४॥)
मानत	५४।)		पुस्तकों की खोज	७४॥=)॥।	
गरी प्रचार	।=)		पुस्तकालय	४६।=)	
टकर	३=)॥		फुटकर	५८॥=)१॥	
स्तकालय	१०॥)		नागरीप्रचार	८।=)	
स्तकालय के लिये			छपाई	३६६॥=)	
अमानत	३५)		अमानत	५८=)१०	
न्दी कोश		१८६॥।=)।	पुस्तकों की खोज		
स्तकों की बिक्री		१६६।)।	(पंजाब के लिये)	१७=)८	
नोरंजन पुस्तकमाला		२०३॥=)।	डाकव्यय	८६)।	
र्यकुमारी पुस्तक			पुस्तकालय के लिये		
माला		८५=)	अमानत	५)	
ारतेंदु ग्रंथावली		८॥~)॥।	हिंदी कोश		१२१८।~)॥
वीप्रसाद ऐतिहा-			देवीप्रसाद ऐतिहा-		
सिक पुस्तकमाला		६॥=)	सिक पुस्तकमाला		१॥=)।
थ्वीराज रासो		५६।)	सूर्यकुमारी पुस्तक-		
जोड़	१४७७४॥)४॥	७१६।=)॥	माला		६१॥=)।
			मनोरंजनपुस्तकमाला		५००)
	१५४६१=)१०॥			८६०॥=)४॥	१७६६=)
				२६५६॥~)४॥	
			बचत	१२८३४।~)॥	
				१५४६१=)१०॥	

पौष १९७८

आय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग	व्यय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
गत मास की बचत	१२८३४।=)॥		कार्यकर्ताओं का वेतन	१७२॥-)।	१५)
सभासदों का चंदा	६३)		छपाई	३३४-)	
नागरी प्रचार	॥=)		डाकव्यय	१७३।॥≡)॥	
फुटकर आय	१५≡)।॥		नागरी प्रचार	८।=)	
पुस्तकालय	११२-)॥		पुस्तकालय	४७।॥-)।	
अमानत	४१)		पुस्तकों की खोज	६८=)।	
पुस्तकों की खोज (पंजाब)	२५०)		फुटकर व्यय	१२६=)७	
पुस्तकों की बिक्री		९५।॥=)	भवन निर्माण	१०१॥=)	
पृथ्वीराजरासो		४०।)	अमानत	३६)	
हिंदी कोश		६२४।-)	पुस्तकालय के लिये अमानत	५)	
मनोरंजन पुस्तकमाला		१८७॥=)	पुस्तकों की खोज (पंजाब)	२६।-)॥	
भारतेन्दु ग्रंथावली		१।=)॥	मनोरंजन पुस्तकमाला		३१४।॥=)
देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला		१९।≡)।॥	हिंदी कोश		२५८।॥=)।॥
सूर्यकुमारी पुस्तकमाला		१६५॥-)	सूर्यकुमारी पुस्तक माला		४॥≡)
जोधसिंह पुरस्कार (स्थायी फंड)	२३)				
	१३३१६॥-)।॥	११३४॥)॥		११००-)७	५९३।≡)।॥
	१४४५१=)।		बचत	१६९३॥-)४	
				१२७५७॥)११	
				१४४५१=)।	

माघ १६७८

आय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग	व्यय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
गत मास की बचत	१२७५७॥)११		कार्यकर्त्ताओं का	१५३=)।।।	१५)
सभासदों का चंदा	६)		वेतन		
नागरी प्रचार	॥=)॥		छपाई	१०४६)॥	
फुटकर आय	५॥)		नागरीप्रचार	८।=)	
पुस्तकालय	३४॥)		पुस्तकालय	३६।)॥	
अमानत	३५८।।।≈)१०		पुस्तकों की खोज	१५।=)।	
रत्नाकर पुरस्कार	।-)॥		फुटकर व्यय	१४॥)॥	
पुस्तकालय के लिये			अमानत	२।=)	
अमानत	१०)		रत्नाकर पुरस्कार	।)	
डाकव्यय का फिरता	१२५-)॥		पुस्तकों की खोज		
पुस्तकों की बिक्री		२५८॥≈)॥	(पंजाब)	४२॥-)	
पृथ्वीराजरासो		८।।।)	मनोरंजनपुस्तकमाला		१२३०।)
हिन्दी कोश		७०४=)॥	हिन्दी कोश		१६६४॥)
पुस्तकों के लिये			विज्ञापन		१०३॥)
पुरस्कार		५३।।।)	देवीप्रसाद ऐतिहा-		
मनोरंजनपुस्तकमाला		४६२।।।)॥	सिक पुस्तकमाला		५१≈)
भारतेन्दु ग्रंथावली		३६=)।।।	सूर्य्यकुमारी पुस्तक-		
देवीप्रसाद ऐतिहा-			माला		२४८॥≈)॥
सिक पुस्तकमाला		४३५॥-)।			
सूर्यकुमारी पुस्तक-				१३२१।।।≈)।	३२१३-)।।।
माला		२१८३॥≈)।			
			बचत	४६३५-)	
	१३३०१॥=)।	४१४६॥-)।।।		१२८१३।≈)	
	१७४४८॥)			१७४४८॥)	

बचत का ब्योरा

५१=)१० रोकड़ सभा	१०५००) इम्पीरियल बंक के शेयर
१७६॥)७ बनारस बंक, चलता खाता	१०२३) यू० पी० बौंड (जोधसिंह पुरस्कार)
३१)॥ बनारस बंक, सेविंग बंक	१०१७॥=) जी० पी० नोट्स (रत्नाकर पुरस्कार)
२६१॥=)११	७॥)७ पोस्टल सेविंग बंक (स्थायी कोश)
	३।)॥ बनारस बंक (भवन निर्माण)
	१२५५१॥=)१

१२८१३।=)

(१३) मंत्री ने सूचना दी कि पंडित श्रीलाल उपाध्याय जी का "गृह स्वास्थ्य रक्षा" शीर्षक लेख जिसके लिये उन्हें छन्नूलाल स्वर्णपदक दिया गया था और जो पत्रिका में प्रकाशित होने के लिये दिया गया था, खो गया है। साथ ही पंडित श्रीलाल जी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने पूछा था कि क्या सभा इस लेख को पुनः लिखवाना चाहती है।

निश्चय हुआ कि पंडित श्रीलाल उपाध्याय जी से पूछा जाय कि क्या उक्त लेख की पांडुलिपि उनके पास है और यदि हो तो क्या वे सहज में उसकी प्रतिलिपि करा सकेंगे।

(१४) बाबू हरिहर नाथ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि उन्होंने संस्था संचालन पर एक पुस्तक लिखी है और उसके परिशिष्ट में वे सभा की नियमावली का वह मसौदा देना चाहते हैं जिसे नियम संशोधन समिति ने सन् १६१६ में तयार किया था।

निश्चय हुआ कि उन्हें उक्त पुस्तक में इस नियमावली के प्रकाशित करने की अनुमति दी जाय।

(१५) निश्चय हुआ कि इस वर्ष संयुक्त प्रदेश तथा ग्वालियर की सामग्री हस्तलिपि परीक्षा के जो पर्चे आवें उन पर विचार करने के लिये निम्नलिखित सज्जनों की उपसमिति बनाई जाय:—

ठाकुर शिवकुमार सिंह, बाबू श्यामसुंदर दास बी० ए०, पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी बी० ए०, पंडित रामचंद्र शुक्ल तथा बाबू ब्रजरत्नदास (संयोजक)

(१६) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

प्रबंध समिति का स्थगित अधिवेशन।

रविवार १४ फाल्गुन १९७८ (२६ फरवरी १९२२) सन्ध्या के ५ बजे

स्थान—सभाभवन

उपस्थित।

पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०—सभापति, बाबू श्यामसुंदर दास जी बी० ए०, ठाकुर शिवकुमार सिंह, बाबू माधवप्रसाद, पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी बी०ए०, पंडित रामचंद्र शुक्ल, बाबू कर्मेन्द्रनारायण सिंह, बाबू ब्रजरत्नदास।

सभा के लिये स्टाक रखने का नया स्थान बनवाने के संबंध में विचार किया गया।

निश्चय हुआ कि—

(१) स्टाक रखने के लिये जो स्थान बने वह सभाभवन के पीछे हो। उसकी लंबाई उतनी ही हो जितनी सभाभवन की आगे की ओर की चौड़ाई है. इसकी चौड़ाई १८ फुट हो और ऊपर दो कमरे ऐसे बनाए जायँ जिनमें आए गए अतिथि ठहर सकें।

(२) सभा की जमीन के पश्चिम ओर पक्की दीवाल (जमीन के बराबर ऊंचाई तक) बनवा कर उसपर लोहे की रेलिंग लगाई जाय।

(३) मंत्री महाशय को अधिकार दिया जाय कि इस भवन के लिये धन एकत्र करने को जहां वे उचित समझें जायँ और जिसे चाहें अपने साथ ले जायँ।

---

(६) साधारण सभा।

शनिवार मि० २७ फाल्गुन १९७८ (११ मार्च १९२२) संध्या के ५ बजे

स्थान—सभा भवन

उपस्थित

पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी बी० ए० सभापति, बाबू श्यामसुंदरदास बी० ए०, पंडित रामचंद्र शुक्ल, बाबू ब्रजरत्नदास, बाबू रामचंद्र वर्म्मा, पंडित केदारनाथ पाठक, बाबू गोपालदास।

(१) बाबू ब्रजरत्नदास के प्रस्ताव तथा बाबू रामचंद्र वर्म्मा के अनुमोदन पर पंडित चंद्रधर शर्म्मा सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (२६ माघ १९७८) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) प्रबंध समिति के १३ तथा १४ फाल्गुन १९७८ के कार्यविवरण सूचनार्थ उपस्थित किए गए।

(४) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जन का आवेदनपत्र उपस्थित किया गया।

बाबू महेंद्रप्रसादसिंह, सरकल आफिसर, पो० औरंगाबाद, गया ३)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जायं।

(५) निम्नलिखित सभासदों के त्यागपत्र उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए।

(१) बाबू अमृतलाल, शील, न्यूलेन हैदराबाद (२) बाबू कन्हैयालाल गार्गीय, ब्यावर (३) बाबू शिवरामदास गुप्त, काशी (४) बाबू शिवसरनलाल कपूर, काशी।

(६) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं।

पंडित रामचंद्र शुक्ल, काशी—द्वितीय साहित्य सम्मेलन के सभापति की वक्तृता। पंडित किशोरीलाल गोस्वामी, काशी—पवित्र होली, पवित्र चैती गुलाब। श्रीयुत चारण रामदानजी कोट राज्य—श्रीरामावतार रहस्य बतीसी। मैनेजर मिथिलामिहिर दरभंगा—स्वराज्य सार। बाबू जगदंबाप्रसाद वर्म्मा, भारतरहस्य कार्यालय, श्यामपुर, जि० इलाहाबाद—भारतरहस्य उपन्यास। ठाकुर कल्याण सिंह बी० ए०, जागीरदार, खाचरिया वास, जयपुर—समयदर्शन। बाबू शारदा प्रसाद गुप्त, अहरौरा, जि० मिर्ज़ापुर—मर्क्यूगन साहबान बोर्ड माल-मद हुकुम सूबा अवध, सूबा आगरा, हिन्द के जंगल का एक्ट सन् १९७८, The Mirza pur Stone Mahal Act of 1886. बाबू कवीन्द्रनारायणसिंह, जगतगंज, काशी—भूमिहार ब्राह्मण परिचय। हिंदी साहित्य प्रचारक कार्यालय, नरसिंहपुर—भाग्य-निर्माण, नारीनीति, प्रबंधपारिजात। श्रीयुत व्यवस्थापक, साहित्यसदन, लाहोर-दयानंद वचनामृत। बाबू श्यामसुंदरदास जी बी० ए०, काशी—हिंदी कोविद रत्नमाला दूसरा भाग, हिंदी शार्ट हैण्ड, सदाचार दर्पण। बाबू रामचंद्र वर्म्मा, काशी—महात्मा गांधी। पंडित शालिग्राम शास्त्री साहित्याचार्य, बरेली—साहित्य दर्पण खंड १-२। खरीदी गई—भारतीय चरितांबुधि। Indian Antiquary for February 1922 स्मिथसोनियन इन्स्टीट्यूशन, वाशिंगटन, अमेरिका—35th Annual Report of the Bureau of American Athnology.

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

श्यामसुंदरदास

मंत्री।

सभा द्वारा प्रकाशित नवीन पुस्तकें।

सूर्य्यकुमारी पुस्तकमाला की दूसरी पुस्तक

करुणा

यह परम प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता श्रीयुत राखालदास बंद्योपाध्याय के एक ऐतिहासिक उपन्यास का अनुवाद है। इसमें यह दिखलाया गया है कि किसी समय गुप्त साम्राज्य कैसा वैभवशाली था और अंत में किस प्रकार उसका नाश हुआ। यह उपन्यास जितना ही ऐतिहासिक घटनाओं से परिपूर्ण है, उतना ही मनोरंजक भी है। अतः प्रत्येक हिंदी प्रेमी को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। बढ़िया एंटीक कागज़ और सुनहरी कपड़े की जिल्द। पृष्ठ संख्या सवा छः सौ के लगभग। मूल्य ३।।) रु० ।

सूर्य्यकुमारी पुस्तकमाला की तीसरी पुस्तक

शशांक

यह भी श्रीयुत राखालदास बंद्योपाध्याय का लिखा हुआ और करुणा की तरह का परम मनोहर ऐतिहासिक उपन्यास है। यह भी गुप्त साम्राज्य के ह्रास-काल से ही सम्बन्ध रखता है और इसमें सातवीं शताब्दी के आरंभ के भारत का जीता-जागता सामाजिक और ऐतिहासिक चित्र दिया गया है। जिन लोगों ने "करुणा" को पढ़ा है उनसे इस सम्बन्ध में और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है; पर जिन लोगों ने उसे नहीं देखा है उनसे हम यही कहना चाहते हैं कि इन दोनों उपन्यासों के जोड़ के ऐतिहासिक उपन्यास आपको और कहीं न मिलेंगे। मूल्य ३) रु० ।

देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला की तीसरी पुस्तक

सुलेमान सौदागर

यह फारस के ऐसे मुसलमान सौदागर का यात्रा-विवरण है जिसके विषय में बड़े बड़े इतिहासज्ञों का मत है कि यह पहला मुसलमान यात्री था जो भारत में आया था और यहां से होता हुआ चीन गया था। यह नवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में भारत में आया था और यहां का आँखों-देखा हाल लिख कर ले गया था। इसका मूल ग्रंथ १८११ में फ्रांस में छपा था; और इसका एक अंगरेज़ी अनुवाद १७३३ में लंडन से प्रकाशित हुआ था। ये दोनों ग्रंथ बड़ी कठिनता से प्राप्त करके मूल अरबी से यह अनुवाद किया गया है और स्थान स्थान पर अंगरेज़ी अनुवाद से मिलान भी किया गया है। इससे नवीं शताब्दी के भारत और चीन की अनेक बातों और रीति-रिवाजों आदि का पता लगता है। पुस्तक इतिहास-प्रेमियों के बड़े काम की है। मूल्य १।) रु०।

Printed by Bishweshwar Prasad, at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch.